श्रीरामचरितमानस-कथा

मानसमें तीस कथाएँ

पद्मविभूषण जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

स्वामी रामभद्राचार्य

श्रीरामचरितमानस-कथा—मानसमें तीस कथाएँ

श्रीरामचरितमानस-कथा
मानसमें तीस कथाएँ

प्रवाचक
धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय कविकुलरत्न वाचस्पति पद्मविभूषण
महाकवि श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

स्वामी रामभद्राचार्य

जीवन पर्यन्त कुलाधिपति
जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलाङ्ग विश्वविद्यालय
चित्रकूट

संपादन
डॉ. रामाधार शर्मा और **नित्यानन्द मिश्र**

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलाङ्ग विश्वविद्यालय, चित्रकूट
२०१७

संकेताक्षर-सूची

अ.को.	अमरकोश
अ.रा.	अध्यात्म-रामायण
अ.शा.	अभिज्ञानशाकुन्तलम्
ई.उ.	ईश्वास्योपनिषद्
ऋ.वे.	ऋग्वेद
क. उ.	कठोपनिषद्
क.	कवितावली
का.वि.स्तो.	काशीविश्वनाथाष्टकस्तोत्र
कु.स.	कुमारसम्भव
गी.	गीतावली
चा.नी.	चाणक्य नीति
त.सं.	तर्कसंग्रह
तै.उ.	तैत्तिरीयोपनिषद्
दु.स.	दुर्गासप्तशती
दो.	दोहावली
ना.भ.सू.	श्रीनारदभक्तिसूत्र
नी.श.	नीतिशतक
प.पु.	पद्मपुराण
पा.सू.	पाणिनीय सूत्र
पृ.रा.	पृथ्वीराज-रासो
बृ.उ.	बृहदारण्यकोपनिषद्
ब्र.सू.	ब्रह्मसूत्र
भ.गी.	श्रीमद्भगवद्गीता
भ.गी.शा.भा.	श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य
भ.पु.	भविष्य-पुराण
भ.मा.	श्रीभक्तमाल

भा.पा.सू.	महाभाष्य पाणिनीय सूत्र
भा.पु.	श्रीमद्भागवत-पुराण
म.भा.	महाभारत गीताप्रेस संस्करण
म.स्मृ.	मनुस्मृति
मा.	श्रीरामचरितमानस तुलसीपीठ संस्करण
मा.गी. प्रे.	श्रीरामचरितमानस गीताप्रेस संस्करण
मा.पु.	मार्कण्डेय-पुराण
मु.उ.	मुण्डकोपनिषद्
र.वं.	रघुवंश
रा.र.स्तो.	श्रीरामरक्षास्तोत्र
रा.स्त.स्तो.	श्रीरामस्तवराजस्तोत्र
ल.सि.कौ.	लघुसिद्धान्तकौमुदी
वा.रा.	वाल्मीकीय रामायण
वि.प.	विनयपत्रिका
वि.पु.	विष्णुपुराण
वृ.र.	वृत्तरत्नाकर
वै.सू.	वैशेषिक-सूत्र
श.स्तो.	शतस्तोत्री
शि.पु.	शिवपुराण
शि.व.	शिशुपालवध
शु.य.वे.	शुक्लयजुर्वेद (माध्यन्दिनी संहिता)
श्वे.उ.	श्वेताश्वतरोपनिषद्
स.दु.	सप्तश्लोकी दुर्गा
सां.का.	सांख्यकारिका
सा.	साकेत महाकाव्य
स्क.पु.	स्कन्दपुराण
ह.चा.	श्रीहनुमान्-चालीसा
ह.ना.	हनुमान्नाटक
हि.	हितोपदेश

विषय-सूची

संपादकीय

अकारणकरुणावरुणालय भगवान् श्रीसीतारामजी स्नेहवश हमें मानव शरीर प्रदान करते हैं। जिनके विषयमें भक्तमालकारने **कलि कुटिल जीव निस्तारहित वाल्मीकि तुलसी भयो** (भ.मा. १२९) कहा, ऐसे कलिपावनावतार गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजकी कालजयी कृति रामचरितमानसमें यह घोषणा है स्वयं रघुनाथजीकी अर्थात् जीवोंके नाथकी। उन्होंने आगे कहा कि यह मानव शरीर ही भवसागरके लिए बेड़ा है, प्रभुकी कृपा ही अनुकूलताकी वायु है, सद्गुरु ही उस नौकाके अविचल कर्णधार हैं; ये सब हैं तो दुर्लभ साज पर जीवने उनको सुलभ करके पा लिया है। जो मनुष्य इस सुन्दर समाजको पाकर भी भवसागरको पार नहीं कर पाता वह प्रभुके प्रति कृतघ्न है और वह आत्महत्यारेकी गतिको प्राप्त करता है—

कबहुँक करि करुना नरदेही। देत ईश बिनु हेतु सनेही॥
नरतनु भवबारिधि कहँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥
जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

(मा. ७.४४.६–८, ७.४४)

जैसा कि गोस्वामिपादकी प्रतिज्ञा है **नानापुराणनिगमागमसम्मतम्** (मा. १ म.श्लो. ७), यह भलीभाँति दृष्टिगोचर होता है। अब यहीं देखिये—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा॥

(भा.पु. ११.२०.१७)

अर्थात् मनुष्य का शरीर सब फलोंका मूल है और दुर्लभ होते हुए भी सुलभतासे मिला है। भवसागर पार करनेके लिए यह सुदृढ नौका है। सद्गुरु ही इसके कर्णधार (केवट) हैं। भगवान् कहते हैं कि मेरी कृपारूपी अनुकूल पवनसे यह नौका प्रेरित अर्थात् लक्ष्यकी ओर अग्रसर भी है। इतना होनेपर भी जो मनुष्य इस संसार-सागर के पार नहीं करता वह आत्मघाती है।

अब देखिए, कितनी गम्भीर बातको कितनी सहजतासे गोस्वामीजीने कहा है। उसे समझना होगा। पर कैसे? उत्तर ऊपर ही निहित है **गुरुकर्णधारम्**। तभी तो गुरुदेव भगवान् कहते हैं—**यन्न मानसे तन्न मानसे**, जो रामचरितमानसमें नहीं है वह भारतीय मानसमें भी नहीं है।

हम सब लोगोंका परम सौभाग्य है कि मानसजीमें निहित गूढार्थको सहज रूपसे सोदाहरण प्रस्तुत करनेके लिए हमारे बीच पदवाक्यप्रमाणपारावारीण निगमागमपारदृश्वा कवितार्किकचूडामणि सारस्वतसार्वभौम पण्डितप्रकाण्ड परमहंस परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डीश्वर

श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय पद्मविभूषण-सम्मानित वाचस्पति जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्यजी महाराज कर्णधारके रूपमें उपस्थित हैं।

यों तो भवसागर पार जानेके लिए संतों और विद्वानोंने विभिन्न पंथोंकी चर्चा की है—जैसे, ज्ञान-पंथ, वैराग्य-पंथ, और भक्ति-पंथ—परन्तु श्रीरामचरितमानसका तात्पर्य तो भक्ति ही है। और हो भी क्यों नहीं? श्रीमद्भागवतम्के माहात्म्यमें आया है कि भक्ति माँ हैं और ज्ञान और वैराग्य उनके पुत्र। अत: भक्तिके न होने पर तो ज्ञान और वैराग्यकी पुत्रता संदिग्ध हो जायेगी तथा वह पुत्र भी तो कुपुत्र ही कहलायेगा जो माँका ही निरादर कर दे। तभी तो गोस्वामीपाद मानसमें कहते हैं—

धिग जीवन देवशरीर हरे। तव भक्ति बिना भव भूलि परे॥

(मा. ६.११.९)

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।

(मा. ७.१३.३)

भक्ति स्वतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥

(मा. ७.४५.५)

मोदीनगर, मेरठके भक्तिरसाप्लावित रसिकोंने इस भक्तिकी प्राप्तिके लिए ही सत्संग मार्गको अपनाया क्योंकि **बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी**, और वे शरणागत हुए समर्थ कर्णधार जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्यजी महाराजके। **श्रीरामचरितमानस-कथा—मानसमें तीस कथाएँ** शीर्षक वाली रामकथाका प्रारम्भ १७ सितम्बर २०१६को हुआ और विश्राम २५ सितम्बर २०१६को। गुरुदेव भगवान्के कथा-प्रवचन का यह साठवाँ वर्ष चल रहा है जो १४ जनवरी २०१७ को पूर्ण होगा। भक्ति, ज्ञान, और वैराग्यसे संपृक्त इस सौम्य कथाने इस सौम्य संवत्सरमें हम सबको आह्लादित किया। बहुत्र ऐसा कहा जाता है कि वाल्मीकि रामायणकी रचना २४ हजार श्लोकोंमें इसलिए की गयी क्योंकि गायत्रीजीके वर्णोंकी संख्या २४ है। गुरुदेवकी अवधारणा है कि गायत्रीका जप व्याहृतियों सहित होता है और व्याहृतियों सहित गायत्रीजी ३० वर्णोंकी हो जाती हैं, अत: वाल्मीकिजी की गायत्रीमन्त्र की व्याख्या का परिष्कार करते हुए वाल्मीक्यवतार तुलसीदासजी महाराजने मानसजीमें ३० कथाएँ गुम्फित कीं। क्या ही अद्भुत अवधारणा है!

इस कथाकी विलक्षणताका अनुमान तो पाठक पढ़कर ही लगा लेंगे। कथाके शब्दोंमें यदि सागरकी गहराई है तो भावोंमें हिमालयकी ऊँचाई है। विषमसे विषम विषय का सरलतया निष्पादन है। गोस्वामी तुलसीदासके समन्वयवादकी तरह ही अनेकानेक विषयों, सिद्धान्तों, और आख्यानों का रामकथासे अलौकिक समन्वय है। कहीं देवी दुर्गा में समस्त देवोंके तेजके एकस्थ होनेके आख्यानके साथ रामकथाका समन्वय स्थापित किया गया है, तो कहीं सांख्यशास्त्रमें प्रतिपादित उपस्थित वस्तुको भी न देख पानेके आठ कारणोंके साथ समन्वय दिखाया गया है।

गुरुदेवके व्यक्तित्वमें यदि कुछ सम है तो वह है उनकी सरलता, तरलता, सहृदयता, इत्यादि जिसे हम छूकर भी नहीं छू पाते। इसी सरलतामें गुरुवरका आदेश हो गया इन नौ दिवसीय प्रवचनोंको पुस्तकाकार रूप देने का और वह भी दिसम्बर २०१६ तक ही। विषयका गाम्भीर्य,

प्रवाचककी ज्ञानगरिमामण्डित महत्ता, और अपनी अज्ञतासे हमलोग लज्जित और संकुचित हो रहे थे। हामीं भरने का साहस नहीं कर पा रहे थे पर **आग्या सिर पर नाथ तुम्हारी** (मा. १.७७.४)। अन्ततः यह कार्य प्रारम्भ किया गया। पुस्तकाकार रूप देने में यत्र-तत्र कुछ अनिवार्य परिवर्तन भी किये गये हैं। प्रवचन-कालमें किसी विषयको सुस्पष्ट करने हेतु की गयी पुनरुक्तिको छोड़ भी दिया गया है तथा कुछ स्थलोंपर सुस्पष्टता हेतु गुरुदेवकी ही वाङ्मयनिधिसे कुछ रत्नोंको जोड़ भी दिया गया है, परन्तु सर्वत्र यह महाराजश्रीके अनुमोदनसे ही हुआ है। इतना ध्यान रखा गया है कि विषयानुक्रमणिका सर्वथा तदनुवर्ती हो एवं भाव, भाषा, तथा शैली पूर्ववत् रहे।

एक बात और, इस बार मानसजीके छन्दों और चौपाई इत्यादिकोंका पाठ गुरुदेवने सस्वर किया है। अतएव यत्र-तत्र जो मात्रिक विकृतियाँ देखी जाती हैं उनका भी ध्यान इस पुस्तकमें रखा गया है। सामान्यतः *ए*कार तथा *ओ*कार गुरु (द्विमात्रिक) होते हैं पर छन्द और गायनके अनुरोधसे यह कभी-कभी लघु (एकमात्रिक) भी होते हैं, यथा **मन जाहिं राँचॆउ मिलिहि सो बर सहज सुन्दर साँवरो** (मा. १.२३६.९)। यहाँ **राँचॆउ**में *ए*कार एकमात्रिक है, अत: ह्रस्व मात्राचिह्न (*चॆ*)का प्रयोग किया गया। यही स्थिति *ओ*कारमें भी है यथा **सॊइ बसुधातल सुधा तरंगिनि** (मा. १.३१.८)। यहाँ **सॊइ**में *ओ*कार एकमात्रिक है, अत: ह्रस्व मात्राचिह्न (*सॊ*)का प्रयोग किया गया। प्रयास किया गया है कि पाठमें इसका सर्वत्र अनुसरण किया जाए। फिर भी भ्रम-प्रमाद-विप्रलिप्सा-करणापाटवादि सम्भाव्य दोषों तथा हम लोगोंकी अज्ञानताके कारण जो भी त्रुटियाँ रह गयीं होंगी, उनके लिए विज्ञवर हम लोगोंको क्षमा करते हुए मार्ग-प्रदर्शन करें ताकि भविष्यमें त्रुटियोंका अपमार्जन हो सके।

अन्तमें, जिस प्रकार गङ्गाजी की समर्चा गङ्गाजलसे ही होती है उसी प्रकार गुरुदेव भगवान् की समर्चा उन्हींकी कृति एवं उन्हीं द्वारा प्रदत्त सामर्थ्यसे उनके प्रवचनोंको पुस्तकाकार रूप देकर की जा रही है जिससे गुरुवर और रघुवरकी कृपा प्राप्त हो।

इति निवेदयतो गुरुपादपद्मचञ्चरीकौ

डॉ. रामाधार शर्मा और **नित्यानन्द मिश्र**

मकर संक्रान्ति वि.सं. २०७३
(१४ जनवरी २०१७ ई.)

भूमिका

॥ नमो राघवाय॥

भुषुण्डिभूतेश्वरयाज्ञवल्क्यतुलस्युशन्मानसराजहंसम् ।
सौमित्रिसीतार्चितपादपद्मं रामं भजे नीलपयोदकान्तिम्॥
तुलसीगिरिसम्भूता श्रीरामार्णवसंगता।
एषा श्रीमानसी गङ्गा पुनाति भुवनत्रयम्॥
सीताराम पदारविन्द मकरन्द मधुव्रत।
रामभक्त सुरधेनु शास्त्र निगमागम सम्मत॥
श्लोक सोरठा छंद दिव्य दोहा चौपाई।
तुलसीदास महेश मुदित कवि कोकिल गाई॥
रामभद्र *गिरिधर* गदित मङ्गलमय पावन प्रथा।
प्रेमसहित सादर सुनो रामचरितमानस कथा॥

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा भगवान् श्रीसीतारामजीकी अहैतुकी कृपाने समस्त भारतीय मनीषाको पूञ्जीभूत करके गोस्वामी तुलसीदासजीके रूपमें अवतीर्ण किया और उन्हीं हुलसी-हर्षवर्धन प्रभु वाल्मीकिके अवतार गोस्वामी तुलसीदासजीकी कालजयी रचना श्रीरामचरितमानसजीकी मङ्गलमयी कथाने सम्पूर्ण विश्वको एक ऐसा सांस्कृतिक पाठ्य प्रदान किया कि जिसका सहस्राब्दियों पर्यन्त आधमर्ण्य स्वीकारता रहेगा मानव समाज। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मयमें गायत्री-मन्त्रका एक अपूर्व अवदान रहा है और सभी लोग यह कहते हैं—**गायत्रीं वेदमातरम्** । अर्थात्, गायत्री वेदोंकी माँ है। महर्षि वाल्मीकिजीने गायत्रीके चौबीस अक्षरोंके आधार पर वाल्मीकि-रामायणमें चौबीस हजार मन्त्रोंकी रचना की। वह क्रम प्रारम्भ होता है—**तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्** । इस त्रिपदाके प्रारम्भसे **वरेणियम्** को मानकर चौबीस (२४) अक्षर हो जाते हैं। परन्तु, इस गणनामें व्याहृतियाँ छूट जाती हैं और यदि प्रणवके साथ व्याहृतियोंको जोड़ा जाए तो होते हैं कुल उनतीस अक्षर—**ॐ भूर्भुवस्वः तत्सवितुवरेणियं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्** । परन्तु, इसके पश्चात् **ॐ** जोड़ देनेसे गायत्रीके तीस अक्षर हो जाते हैं, अर्थात् **ॐ भूर्भुवस्वः तत्सवितुवरेणियं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॐ**। अतएव, कदाचित् गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने विचार किया होगा कि पूर्वावतार अर्थात् वाल्मीकिके रूपमें गायत्रीके चौबीस (२४) अक्षरोंको ही न्याय दिया, परन्तु इस बार व्याहृति और प्रणव सहित गायत्रीको न्याय देना होगा। और ऐसा करने पर गायत्रीके कुल अक्षरोंकी संख्या तीस (३०) होगी। फलतः गोस्वामीजीने तीस (३०) अक्षरोंके आधारपर रामचरितमानसमें तीस (३०) कथाएँ लिखीं। और, यदि स्वस्थ मानससे

गणना की जाए तो रामचरितमानसमें तीस (३०) ही कथाएँ हैं। इस प्रयोगके साथ गोस्वामीजीकी एक अवधारणा भी निहित है कि प्रत्येक महीनेमें तीस (३०) ही दिन होते हैं। अत: प्रत्येक दिनके कल्याणार्थ गोस्वामीजीने एक-एक कथाका निर्वचन किया। इसीलिए रामचरितमानसमें उन्होंने तीस (३०) कथाएँ कहीं, और उन तीस कथाओंका बड़ा ही मनोहर क्रम है। रामचरितमानसजीके बालकाण्डके इकतीसवें दोहेकी चतुर्थ पङ्क्तिसे एकतीसवें दोहे पर्यन्त, अर्थात् बारह पङ्क्तियोंमें, गोस्वामीजीने श्रीरामकथाओंकी सूची प्रस्तुत की है। गोस्वामीजी द्वारा गायी गयीं कथाएँ हैं इस प्रकार—

निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥
बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलिकलुष बिभंजनि॥
रामकथा कलि पन्नग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहँ अरनी॥
रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई॥
सोइ बसुधातल सुधातरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनि॥
असुरसेन सम नरक निकंदिनि। साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि॥
संतसमाज पयोधि रमा सी। बिस्वभार भर अचल छमा सी॥
जमगन मुँह मसि जग जमुना सी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी॥
रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसीदास हित हियँ हुलसी सी॥
सिवप्रिय मेकल सैलसुता सी। सकल सिद्धि सुख संपति रासी॥
सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। रघुबर भगति प्रेम परमिति सी॥

रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु॥

(मा. १.३१.४–१.३१)

यहाँ गोस्वामीजीने क्रमका बहुत गम्भीरतापूर्वक निर्वचन किया है। प्रारम्भ करते हैं श्रीरामचरितमानसमें वर्णित तीस (३०) कथाओंकी सूची अर्थात् तालिका—(१) **निज संदेह हरनी** (२) **निज मोह भरनी** (३) **निज भ्रम हरनी** (४) **करउँ कथा भव सरिता तरनी** (५) **बुध बिश्राम** (६) **सकल जन रंजनि** (७) **रामकथा कलिकलुष बिभंजनि** (८) **रामकथा कलि पन्नग भरनी** (९) **पुनि बिबेक पावक कहँ अरनी** (१०) **रामकथा कलि कामद गाई** (११) **सुजन सजीवनि मूरि सुहाई** (१२) **सोइ बसुधातल सुधातरंगिनि** (१३) **भय भंजनि** (१४) **भ्रम भेक भुजंगिनि** (१५) **असुरसेन सम नरक निकंदिनि** (१६) **साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि** (१७) **संतसमाज पयोधि रमा सी** (१८) **बिस्वभार भर अचल छमा सी** (१९) **जमगन मुँह मसि जग जमुना सी** (२०) **जीवन मुकुति हेतु जनु कासी** (२१) **रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी** (२२) **तुलसीदास हित हियँ हुलसी सी** (२३) **सिवप्रिय मेकल सैलसुता सी** (२४) **सकल सिद्धि** (२५) **सुख** (२६) **संपति रासी** (२७) **सदगुन सुरगन अंब अदिति सी** (२८) **रघुबर भगति** (२९) **प्रेम परमिति सी** (३०) **रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु, तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु**।

इस क्रममें प्रथम कथा है—**निज संदेह हरनी** (मा. १.३१.४), यही है गोस्वामी

तुलसीदासजी द्वारा कही हुई कथा; क्योंकि गोस्वामीजीने अपने ही मानसी-संभव संदेहको दूर करनेके लिए और—**निज संदेह**, निज जनोंके संदेहको दूर करनेके लिए रामचरितमानसजीका प्रणयन किया और वो कह भी रहे हैं—**स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति** (मा. १. मं.श्लो. ७)। यहाँ **स्वान्तःसुख**का यही तात्पर्य है कि मैं—(१) **स्व** अर्थात् सम्पूर्ण जीवात्माओंके अन्त:करणके सुखके लिए मानसजीकी रचना कर रहा हूँ। (२) **स्व** अर्थात् आत्मीय जनोंके अन्त:सुखके लिए मानसजीकी रचना कर रहा हूँ अर्थात् अपनी मानव जातिके सुखके लिए मानसजीकी रचना कर रहा हूँ। (३) **स्व** अर्थात् अपने धन श्रीरामजीके अन्त:करणके सुखके लिए मानसजीकी रचना कर रहा हूँ। (४) **स्व** अर्थात् श्रीरामजीके जो सेवक हैं उनके सुखके लिए मानसजीकी रचना कर रहा हूँ। वे यह भी कह रहे हैं—**भाषाबद्ध करब मैं सोई, मोरे मन प्रबोध जेहि होई** (मा. १.३१.२)। अतएव **वर्णानामर्थसङ्घानां**से प्रारम्भ करके तैंतालीसवें दोहे पर्यन्त गोस्वामीजीने अपने तथा संतोंके संदेहोंको दूर करने वाली कथाका प्रणयन किया। यही है प्रथम दिनकी कथा।

दूसरी कथा है **मोह हरनी** (मा. १.३१.४)। भरद्वाजजीको श्रीरामजीकी लीलाओंमें मोह हुआ और वे कह भी रहे हैं—**अस बिचारि प्रगटउँ निज मोहू** (मा. १.४६.१)। भरद्वाजके मोहको नष्ट करनेके लिए श्रीरामचरितमानसका प्रणयन किया गया। अत: याज्ञवल्क्य द्वारा कही गयी और भरद्वाज द्वारा सुनी गयी कथा मोह हरनी है। यह है द्वितीय कथा।

तीसरी कथा है **भ्रम हरनी** (मा. १.३१.४)। सतीजीको भ्रम हुआ कि भगवान् शङ्करने राघवजीको प्रणाम कैसे कर लिया—

शङ्कर जगतबंद्य जगदीशा। सुर नर मुनि सब नावत शीशा॥
तिन नृपसुतहिं कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा॥
भये मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी॥

(मा. १.५०.६-८)

अत: पार्वतीजीके भ्रमको निवृत्त करनेके लिए शिवजी द्वारा श्रीरामकथा कही गयी और वे कह भी रहे हैं—**सुनु गिरिराजकुमारि भ्रम तम रबिकर बचन मम** (मा. १.११५)। पार्वतीको भ्रम था अत: शिवजी कहते हैं—

जासु चरित अवलोकि भवानी। सतीशरीर रहिहु बौरानी॥
अजहुँ न छाया मिटति तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्रम रुज हारी॥

(मा. १.१४१.५)

अत: शिव-पार्वती रूपमें प्रस्तुत हुई श्रीरामकथा **भ्रम हरनी** है।

चतुर्थ कथा है—**करउँ कथा भव सरिता तरनी** (मा. १.३१.४)। संसारनदीकी तरणीके रूपमें प्रस्तुत हो रही है श्रीरामकथा। यही भुशुण्डिजी द्वारा गायी गई श्रीरामकथा है, जो उत्तरकाण्डमें पैंतीस (३५) चौपाइयोंमें कही गयी। यह जीवको संसारकी नदीसे पार कर देती है—**मोह नदी कहँ सुन्दर तरनी** (मा. ७.१५.७)।

अब पञ्चम कथा जो रामचरितमानसके एक सौ इक्कीसवें दोहेसे प्रारम्भ होकर एक सौ चालीसवें दोहेपर विश्राम लेती है। इस कथाका नाम है **बुध विश्राम** (मा. १.३१.५)। इस

कथामें तीन अवतारोंकी संक्षिप्त चर्चाकी गयी है। सनकादिको जब जय-विजयके व्यवहारपर क्रोध आया तो उन्होंने श्राप दिया; तब जय-विजय ही हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष, रावण और कुम्भकर्ण, तथा शिशुपाल और दन्तवक्र बने। और इधर जालन्धरकी पत्नी वृन्दाके व्रतको प्रभुने स्थानान्तरित किया तो वृन्दाने शाप देकर जालन्धरको रावण बननेके लिए विवश कर दिया और विविधविद्याविशारद वशीकृतशारद देवर्षि नारद जब मोहित हुए तब उनके मोह-भङ्गके लिए भगवान्‌ने अद्भुत लीला रची। इन तीन घटनाओंको गोस्वामीजीने एक प्रकरणमें बाँधा है। इसका नाम है—**बुध विश्राम**, क्योंकि बुध जनोंको भगवान्‌के यशमें ही विश्राम मिलता है। भगवान्‌के यशोंका वर्णन करके ही विद्वज्जन अपनी वाणीको पवित्र करते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी बालकाण्डके प्रारम्भमें कहते हैं—

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥
ब्यापक बिश्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपालु प्रनत अनुरागी॥
जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू॥
गई बहोर गरीबनिवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥
बुध बरनहिं हरिजश अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी॥

(मा. १.१३.३-८)

अर्थात् विद्वज्जन भगवान्‌के बीस यशोंका चिंतन करते हैं। उनमेंसे दस यश ऐश्वर्यपरक हैं और दस सुयश भगवान्‌के माधुर्यपरक हैं। प्रतीत होता है कि ये ही भगवान्‌के बीस यश रावणकी बीस भुजाएँ काट डालते हैं। प्रभुकृपासे ये बीस यश हैं और ठीक इसके विपरीत रावणके अपयश भी हैं—(१) **एक**—देखिये, रामचन्द्रजी एक हैं तो रावण अनेक है। (२) **अनीह**—यदि रामचन्द्रजी अनीह हैं तो रावणके पास ईहा है अर्थात् विविध अत्यन्त गलत चेष्टाएँ हैं। (३) **अरूप**—यदि रामचन्द्रजी अरूप हैं तो रावण कुरूप है। (४) **अनामा**—यदि रामचन्द्रजी अनाम हैं तो रावण कुनाम है। (५) **अज**—यदि रामचन्द्रजी अजन्मा हैं तो रावण बार-बार जन्म लेता है। (६) **सच्चिदानंद**—यदि रामचन्द्रजी सच्चिदानंद हैं तो रावण असच्चिदानंद है। (७) **परधामा**—यदि रामचन्द्रजी परधाम हैं तो रावण पापधाम है। (८) **ब्यापक**—यदि रामचन्द्रजी व्यापक हैं तो रावण व्याप्य है। (९) **बिश्वरूप**—यदि रामचन्द्रजी विश्वरूप हैं तो रावणका रूप संक्षिप्त है। (१०) **भगवाना**—यदि रामचन्द्रजी भगवान् हैं तो रावण षडैश्वर्य-विहीन है। (११) **परम कृपालु**—यदि रामचन्द्रजी परम कृपालु हैं तो रावण निष्ठुर है। (१२) **प्रनत अनुरागी**—यदि रामचन्द्रजी प्रणत-अनुरागी हैं तो रावण पापियोंमें अनुराग करता है। (१३) **जेहि जन पर ममता अति छोहू**—यदि रामचन्द्रजीको अपने जनोंपर ममत्व और छोह है तो रावणको आक्रोश है, न ममत्व है न छोह है उसको। (१४) **जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू**—यदि रामचन्द्रजी करूणाकर हैं, क्रोध नहीं करते तो रावण सदैव क्रोध करता है। (१५) **गई बहोर**—यदि रामचन्द्रजी -गई-बहोर- हैं तो रावण वस्तुओंको छीन लेता है, लौटाता नहीं। (१६) **गरीबनिवाजू**—यदि रामचन्द्रजी गरीबनिवाजू हैं, गरीबोंका सम्मान करते हैं तो रावण गरीबोंका असम्मान करता है। (१७) **सरल**—यदि रामचन्द्रजी सरल हैं तो रावण कठोर है। (१८) **सबल**—यदि रामचन्द्रजी

सबल हैं तो रावण निर्बल है। (१९) **साहिब**—यदि रामचन्द्रजी साहिब हैं तो रावण काम-किंकर है। तथा (२०) **रघुराजू**—यदि रामचन्द्रजी रघुराज हैं तो रावण कुछ नहीं, कथञ्चित् लङ्काका राजा बन गया है। इस प्रकार भगवान्‌के बीस यशोंको स्थापित करनेके लिए यह बुध विश्राम है। इनमें परम कृपालु प्रणत अनुरागी सगुण साकारके रूपमें भगवान्‌ने दस यश प्रकट किये। जय-विजयका उद्धार करनेके लिए भगवान् परम कृपालु और प्रणत अनुरागी हैं। भगवान्‌ने पृथ्वीपर कृपा की। और प्रणत प्रह्लादसे स्नेह किया। पृथ्वीपर कृपा करके बारहों अनुराग किये और प्रह्लादपर भी अनुग्रह करनेके लिए नरसिंहावतार स्वीकार कर लिया प्रभुने। **जेहि जन पर ममता अति छोहू** अर्थात् भगवान्‌को भक्तोंपर ममत्व और छोह भी है। पृथ्वीपर ममता है और प्रह्लादपर छोह। पृथ्वी भगवान्‌की पत्नी हैं और प्रह्लाद हैं पुत्र। **जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू**। जालन्धरकी पत्नीके व्रतको भगवान्‌ने टाला। वृन्दामें कोई पात्रता नहीं थी, पर भगवान्‌ने करुणा की। करुणा करके उसके पास आये। वृन्दाके श्राप देनेपर भी भगवान्‌ने क्रोध नहीं किया। यही है—**जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू**। और इसी प्रकार, नारदजीके व्यक्तित्वमें तो भगवान्‌के छहों ऐश्वर्य पूर्णरूपसे स्पष्ट दिख रहे हैं। और वस्तुतः यश क्या, ये भगवान्‌के छहों भग हैं—(१) *ऐश्वर्य*—**गई बहोर** भगवान्‌का ऐश्वर्य है। (२) *धर्म*—**गरीबनिवाजू** भगवान्‌का धर्म है। (३) *यश*—**सरल** भगवान्‌का यश है। (४) *श्री*—**सबल** भगवान्‌की श्री है। (५) *ज्ञान*—**साहिब** भगवान्‌का ज्ञान है। (६) *वैराग्य*—**रघुराजू** भगवान्‌का वैराग्य है। अर्थात् विश्वमोहिनीको देखकर नारदके मनमें काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, और मात्सर्य छहों वस्तुएँ आ गयीं। (१) *काम*—काम आया, नारदका सब कुछ चला गया—**गई बहोर**। (२) *क्रोध*—क्रोध आया, नारद गरीब हो गये, अर्थात् विश्वमोहिनीके मोहमें अपनेको इतना परतन्त्र कर लिया। (३) *लोभ*—लोभ आया तो नारद कुटिल हो गये, सरल नहीं रहे। विश्वमोहिनीको देखकर झूठ बोल दिया। लक्षणोंको देखकर बनावटी बातें की—**लच्छन तासु बिलोकि भुलाने, हृदय हरष नहिं प्रगट बखाने** (मा. १.१३१.२)। (४) *मोह*—मनमें मोह आया तो निर्बल हो गये—**देखि रूप मुनि बिरति बिसारी, बड़ी बार लगि रहे निहारी** (मा. १.१३१.१)। (५) *मद*—नारदके मनमें मद आया तो उन्होंने उन्मत्तताका बर्ताव किया और भगवान्‌के पास जाकर उन्हींके आसनपर बैठ गये। (६) *मात्सर्य*—नारदके मनमें मात्सर्य हुआ तभी तो—**समरभूमि तेहि जीत न कोई** (मा. १.१३१.३) अर्थात् नारद ऐसी महिला चाहते हैं जिसके आने से वे विश्वविजयी हो जाएँ, उन्हें कोई जीत न सके। इस प्रकार काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, और मात्सर्य इन छहों कामके विषयोंने नारदको पतनोन्मुख बना दिया। पर नारद एक ऐसे व्यक्तित्वसे जुड़ रहे हैं जिसकी मैं कल्पना नहीं कर सकता। काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, और मात्सर्य छहों हैं। अतएव नारदको बचानेके लिए भगवान्‌ने छः यशोंका प्रयोग किया। (१) **गई बहोर**—नारदका गया हुआ चरित्र लौटा लिया भगवान्‌ने। **पुनि जल दीख रूप निज पावा, तदपि हृदय संतोष न आवा** (मा. १.१३६.१)। वानरका रूप देकर भगवान्‌ने कृपा की, *काम*को समाप्त कर दिया। (२) **गरीबनिवाजू**—भगवान्‌ने नारदको सम्मानित किया, *क्रोध* समाप्त किया। (३) **सरल**—श्राप लेनेके बीचमें ही आ गये—**बीचहिं पंथ मिले दनुजारी।** (मा. १.१३६.४), नारदका *लोभ* समाप्त कर उन्हें शरण्य बनाया। (४) **सबल**—नारदका *मोह* समाप्त कर उन्हें सबल बनाया।

(५) **साहिब**—नारदका *मद* समाप्त कर उन्हें साहिब बना डाला और (६) **रघुराजू**—नारदका *मात्सर्य* समाप्त कर उन्हें रघुकुल-राज बना दिया। इस प्रकार **बुध विश्राम**।

अब छठी कथा—**सकल जन रंजनि** (मा. १.३१.५)। यह कथा सम्पूर्ण भक्तोंको आनन्द देती है। यह है मनुकी कथा। मनुका सम्पूर्ण परिवार सम्पन्न है फिर भी वे भगवान्‌के समान पुत्र चाहते हैं—**चाहउँ तुमहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराव** (मा. १.१४९)। भगवान् प्रकट हो रहे हैं। वे तीनोंको आनन्द दे रहे हैं—**नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर श्याम, लाजहिं तनशोभा निरखि कोटि कोटि शत काम** (मा. १.१४६)। **सकल जन रंजनि**, अर्थात् सबके मनको यह कथा प्रसन्न कर रही है। सबके मनको यह कथा आनन्द दे रही है। इसलिए (१) **नील सरोरुह**से पातालवासियोंके मनको, (२) **नील मनि**से मर्त्यलोकवासियोंके मनको तथा (३) **नील नीरधर श्याम**से आकाशवासियोंके मनको आनन्द दे रही है। यह है—**बुध बिश्राम सकल जन रंजनि**। इस प्रकार यही है मनुकी कथा, जो छठी कथा है। और संयोगसे इसी स्वरूपमें भगवान्‌ने—(१) नारदजीको धन्य-धन्य कर दिया, (२) मनुजीको धन्य-धन्य कर दिया, (३) शतरूपाजीको धन्य-धन्य कर दिया। सबको आनन्दित किया। **बुध बिश्राम सकल जन रंजनि, रामकथा कलिकलुष बिभंजनि**। और मनुने भी यही माँगा था कि आप मेरे यहाँ पुत्र बनकर आयें। छठी कथामें तीनों लोकोंमें रहने वालोंको आनन्दित किया। इसीलिए, इसे **सकल जन रंजनि**। कहा गया। हमारे भारतीय वाङ्मयमें (१) आकाश, (२) पाताल, (३) मध्य लोक—ये तीन लोक कहे जाते हैं तथा इन्हींको संस्कृतज्ञ *त्रिलोकी* कहते हैं। सम्पूर्ण परिवारको छोड़कर मनुजी शतरूपाके सहित श्रीरामजीको प्राप्त करनेके लिए नैमिषारण्य गये और उन्होंने तपस्याके भी तीन ही विभाग किये हैं— (१) प्रथम विभागमें जल पिया, (२) द्वितीय विभागमें वायु पी, और (३) तृतीय विभागमें वायु भी छोड़ दी—

ऐहि विधि बीते बरष षट सहस बारि आहार।
संबत सप्त सहस्त्र पुनि रहे समीर अधार॥
बरष सहस दश त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एक पद दोऊ॥

(मा. १.१४४, १४५.१)

इसीलिए मनुको वरदान देनेके लिए (१) ब्रह्मा, (२) विष्णु, और (३) शिव—ये त्रिदेव आये, पर इनको भी उन्होंने लौटाया। अतएव, तीनों लोकोंको रञ्जित करने वाले भगवान् श्रीरामका प्राकट्य हुआ और गोस्वामीजीने उस शोभाका वर्णन किया—**नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर श्याम, लाजहिं तनशोभा निरखि कोटि कोटि शत काम** (मा. १.१४६)। भगवान्‌ने (१) **नील सरोरुह**से जलचरोंको आनन्दित किया, (२) **नील मनि**से स्थलचरोंको आनन्दित किया तथा (३) **नील नीरधर श्याम**से नभश्चरोंको आनन्दित किया। इस प्रकार सबको आनन्दित किया। अन्ततोगत्वा, **लाजहिं तनशोभा निरखि कोटि कोटि शत काम** (मा. १.१४६)। मनुके समक्ष भगवान् प्रकट हुए। भगवान्‌ने पूछा—"क्या चाहिए मनु?" **सकुच बिहाइ माँगु नृप मोही, मोरे नहिं अदेय कछु तोही** (मा. १.१४९.८)। "संकोच छोड़कर माँग लो न!" मनुने कहा—**चाहउँ तुमहि समान सुत** (मा. १.१४९), "मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ। और वस्तुतस्तु, **समान** तुल्यार्थमें नहीं पर मानके सहित। मैं पुत्र तो चाहता हूँ परन्तु आपके प्रति मेरा सम्मान उसी

प्रकार रहना चाहिए अर्थात् साधारणीकरण मुझे स्वीकार्य नहीं होगा। आप भगवान् बनकर मुझे कृतकृत्य करें।" भगवान्ने धन्य कर दिया। अतएव—**सकल जन रंजनि**।

रामकथा कलिकलुष बिभंजनि (मा. १.३१.५)—श्रीरामकथा कलियुगके पापोंको नष्ट करती है। यह सातवीं कथा है। कलियुगके पाप क्या हैं—**तामस बहुत रजोगुन थोरा, कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा** (मा. ७.१०४.५)। यहाँ तमोगुण बहुत है, रजोगुण थोड़ा है, और चारों ओरसे विरोध है। इसी विडम्बनाको दूर करने के लिए प्रभुका रामावतार हो रहा है। यहाँ तमोगुण और रजोगुण समाप्त हुए—**त्रेता भइ कृतजुग कै करनी** (मा. ७.२३.६) अर्थात् त्रेतामें भी कृतयुग, प्रथम युग, आ गया। और, भगवान् श्रीरामका अवतार हुआ—**चर अरु अचर हरषजुत राम जनम सुखमूल** (मा. १.१९०)। सत्यसंध प्रभुके आनेसे सारे पाप दूर हो गये। अब कहीं पाप नहीं होगा। भगवान् श्रीरामका नाम ही सारे पापोंको नष्ट कर देता है—**जासु नाम पावक अघ तूला, सुमिरत सकल सुमंगल मूला** (मा. २.२४८.२)। इसलिए—**रामकथा कलिकलुष बिभंजनि**।

रामकथा कलि पन्नग भरनी (मा. १.३१.६)—कलियुग रूप सर्पको नष्ट करनेके लिए भरणी नक्षत्रकी भूमिकामें है आठवीं श्रीरामकथा। यही भगवान्का शेष-चरित है। शेष-चरितमें कलियुगमें सर्प नहीं रह जाता, वह समाप्त हो जाता है। जीव भगवन्मय हो जाता है। **रामकथा कलि पन्नग भरनी**।

पुनि बिबेक पावक कहँ अरनी (मा. १. ३१.६)। नौवीं श्रीरामकथा विवेक रूप अरणिके लिए अग्निके समान है। यहाँ विवेकका ही तो प्रयोग हो रहा है। भोजन करते हुए दशरथजी श्रीरामजीको बुला रहे हैं, पर उनके मित्रोंको नहीं बुला रहे हैं तो—**नहिं आवत तजि बाल समाजा** (मा. १.२०३.६)। इसीलिए भगवान् श्रीरामजी नहीं आये। यहाँ भी विवेक है। भगवान्को अकेले कभी नहीं बुलाना चाहिए, उनको तो सायुध सपरिकर बुलाना चाहिए। इसी प्रकार—**गुरुगृह गए पढ़न रघुराई, अलप काल बिद्या सब आई** (मा. १.२०४.४); यहाँ पढ़ने जा रहे हैं। विद्याका फल ही है विवेक—**विद्या बिनु बिवेक उपजाये, श्रम फल पढ़े किए अरु पाये** (मा. ३.२१.९)। **प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी, नासहिं बेगि नीति असि सुनी** (मा. ३.२१.११)। **रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिय न छोट करि, अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन** (मा. ३.११)। अत: विवेक रूप अरणिके लिए यह कथा अग्निके समान है। सर्वत्र विवेकका ही परिचय यहाँ भगवान्ने दिया है। **अलप काल बिद्या सब आई**—विद्याका आना ही विवेकका वास्तविक लक्ष्य है। इसलिए यह लीला विवेक रूप अरणिके लिए पावकके समान है।

और अब, भगवान्के विवाहकी कथा। इसलिए कहते हैं—**रामकथा कलि कामद गाई** (मा. १.३१.७)। यह दसवीं कथा कलियुगमें कामधेनुके समान है। सब कुछ दे देती है। यही कथा है विश्वामित्रके आगमनकी कथा। विश्वामित्रजी श्रीअवध पधार रहे हैं और दशरथजी नि:संकोच श्रीरामका दान कर रहे हैं। निश्चित रूपसे यह कथा कलियुगमें कामधेनु गायके समान है। गायके पास चार स्तन होते हैं। इसी प्रकार इस कथामें भी चार विभाग कहे गये हैं—(१) श्रीराम दर्शन, (२) श्रीरामके तत्त्वका विमर्श, (३) श्रीरामका दान, और (४) पुन: श्रीरामकी झाँकीकी धारणा।

इसमें भगवान्‌ने तीन लोगोंका दमन (ताटका, मारीच, और सुबाहु) करके विश्वामित्रकी रक्षा की तथा **आपु रहे मख की रखवारी** (मा. १.२१०.२)। अतः स्वयं **कलिकामद गाई** सिद्ध हो गयी।

सुजन सजीवनि मूरि सुहाई (मा. १.३१.७)—यही है अहल्योद्धारकी ग्यारहवीं कथा। अहल्योद्धारमें भगवान्‌ने एक सञ्जीवनीको प्रस्तुत किया और वह है—**रघुपति भगति सजीवन मूरी** (मा. ७.१२२.७)। भगवान्‌की भक्ति ही सञ्जीवनी बूटी है, भगवान्‌ने उसीको प्रकट कर दिया। अहल्या धन्य हो गयी। अहल्याने भगवान्‌के चरण-कमलकी रज चाही। भगवान् श्रीरामने विश्वामित्रजीसे जिज्ञासा की—"अहल्या मेरी चरण-रज क्यों चाहती हैं?" विश्वामित्रजीने कहा—"आप गुरु हैं—**जगद्गुरुं च शाश्वतम्, तुरीयमेव केवलम्** (मा. ३.४.९)। परन्तु **प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी** (मा. २.२९८.१), और गुरु होनेके कारण शिष्य तो गुरुदेवके चरण-कमलकी रज चाहेगा ही। क्या आपत्ति कर दी?" विश्वामित्रजी और विस्तारसे भगवान्‌से कहते हैं—"आप गुरु हैं। हमको आपके चरण-कमलके परागमें सुरुचि है—**बंदउँ गुरु पद पदुम परागा, सुरुचि सुबास सरस अनुरागा** (मा. १.१.१)। आपके चरणमें **सुरुचि** है और अहल्याके मनमें कुरुचि है। आपके चरणमें **सुबास** है और अहल्याके मनमें कुबास है। आपके चरण **सरस** हैं और अहल्याका मन नीरस है। आपके चरणमें **अनुराग** है और अहल्याके मनमें हेयराग है। इसलिए **चरन कमल रज चाहती** (मा. १.२१०)। प्रभु! **अमिय मूरिमय चूरन चारू** (मा. १.१.२)—अहल्या रुग्ण हो चुकी है। **अमिय मूरिमय**—अमृतकी जड़ी, जो सुन्दर चूर्ण है, वह माया और मोहका जो एक प्रकारसे अध्यासात्मक सम्बन्ध है उसको यह दूर कर देती है। **शमन सकल भवरुज परिवारू** (मा. १.१.२)—अहल्या रुग्ण है और आपके चरणोंकी धूलि सभी रोगोंके परिवारको दूर कर देती है। प्रभु! इसलिए भी उसे आपके चरण-कमलकी धूलि चाहिए। **सुकृति शंभु तनु बिमल बिभूती** (मा. १.१.३)—आप सर्वसमर्थ हैं प्रभु! अहल्या आपसे अपेक्षा करती है कि उसे पूर्ण शङ्कर बना दिया जाए, आधा शङ्कर तो बन चुकी है। अहल्या अपने पिता ब्रह्माका कर्तृत्व भी झुठलानेके लिए तैयार है क्योंकि उसका जीवन वासनात्मक हो चुका है, अतः रुग्ण है। शङ्कर तो बन गयी, आधा शङ्कर बनी। उसे पूरा शङ्कर बनना है और पूरा शङ्कर बननेके लिए आपके चरणोंकी उसे विभूति चाहिए। अहल्याके जीवनमें मङ्गल नहीं है और आपके चरणोंकी धूलि **मंजुल मंगल मोद प्रसूती** (मा. १.१.३) है अर्थात् यह मधुर मङ्गलों और प्रसन्नताओंको जन्म देने वाली है। इसलिए भी अहल्याको आपके चरण-कमलकी रज चाहिए। **जन मन मंजु मुकुर मल हरनी** (मा. १.१.४)—अहल्याका मन दर्पणके समान है और उसके मलको दूर करना होगा, पर कोमलतासे। यदि हठात् हो गया तो उसका मनोभङ्ग भी हो सकता है। **किये तिलक गुनगन बश करनी** (मा. १.१.४)—इसलिए उसको तिलकसे विभूषित कर दीजिये, जिससे सम्पूर्ण गुण-गणोंको वशमें कर सके। **श्रीगुरुपदनख मनिगन जोती** (मा. १.१.५)—अहल्याके मनमें कोई ज्योति नहीं है इसलिए कोई सिद्धि प्राप्त नहीं हो रही है। **सुमिरत दिब्य दृष्टि हिय होती** (मा. १.१.५)—प्रभु! आपके चरणके नखरूप मणिगणोंकी ज्योतिके सुमिरनसे दिव्य दृष्टि आती है और अहल्याके पास दिव्य दृष्टि नहीं है, अतः वह चरण-कमल रज चाहती है। अब कृपा कीजिये प्रभु! **दलन मोह तम सो सुप्रकासू**

(मा. १.१.६)—अहल्याके मनमें जो मोह रूप अन्धकार है, उसको नष्ट कर दीजिये। **बड़े भाग उर आवइ जासू** (मा. १.१.६)। **उघरहिं बिमल बिलोचन ही के** (मा. १.१.७)—अहल्याके पास नेत्रोंका अभाव है, इसके हृदयके नेत्र खुलने चाहिएँ। **मिटहिं दोष दुख भवरजनी के** (मा. १.१.७)—संसार-रात्रिके दोषको मिटाना होगा। आप कृपा करके अहल्याके संसारके दोषको मिटा दीजिये। **जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान, कौतुक देखहिं शैल बन भूतल भूरि निधान** (मा. १.१)—अहल्याके जीवनमें अञ्जन चाहिए और आपके चरणोंकी धूलि अञ्जन ही तो है। इस प्रकार, **सुजन सजीवनि मूरि सुहाई** अर्थात् अहल्याजीकी कथा सज्जनोंके लिए सञ्जीवनी बूटी है। अब कृपा कीजिये प्रभु!"

अहल्योद्धारके पश्चात्, अब गोस्वामीजीकी बारहवीं कथा है—**सोइ बसुधातल सुधातरंगिनि** (मा. १.३१.८)। यह विवाह कथा है। अर्थात् यह श्रीरामकथा पृथ्वी रूपमें अमृत बनकर प्रकट हुई। मिथिलाकी यात्रामें प्रभुने सर्वत्र अमरत्व ही प्रदान किया। किसीको स्नेह-सुधा दी, किसीको रूप-सुधा, किसीको शील-सुधा, किसीको सौन्दर्य-सुधा, किसीको ऐश्वर्य-सुधा, और किसीको माधुर्य-सुधा। किं बहुना, भले राजाओंने तो कह दिया कि श्रीराम-लक्ष्मण सुधाके सागर बनकर आये हैं—**सुधा समुद्र समीप बिहाई, मृगजल निरखि मरहु कत धाई** (मा. १.२४६.५)। ये सुधाके सागर हैं। जितना हो सके, अमृत पी लो। मिथिलानियाँ कहती हैं—**मरनशील जिमि पाव पियूषा, सुरतरु लहै जनम कर भूखा** (मा. १.३३५.५) अर्थात् प्रभुका दर्शन मरणशीलके लिए अमृतप्राप्तिके समान है। **सोइ बसुधातल सुधातरंगिनि**। अहल्योद्धारके पश्चात् प्रभुका मिथिलामें गमन हो रहा है। सर्वत्र अमृतकी ही वर्षा हो रही है, जहाँ देखो वहाँ अमृत ही अमृत है। मरण-धर्मसे प्रभुने सबको मुक्त किया है।

राम सीय शिर सेंदुर देहीं। शोभा कहि न जाति बिधि केहीं॥
अरुन पराग जलज भरि नीके। शशिहिं भूष अहि लोभ अमी के॥

(मा. १.३२५.८-९)

यहाँ अमृतके लोभसे सर्प कमलमें भली प्रकारसे लाल पराग भरकर चन्द्रमाको सुशोभित कर रहा है। यहाँ सीताजीका मुख चन्द्रमा है। **सोहत जनु जुग जलज सनाला, शशिहिं सभीत देत जयमाला** (मा. १.२६४.७)। तो वहाँ श्रीरामचन्द्रजीका मुख चन्द्रमा है—**रामचंद्रमुख चंद्र छबि लोचन चारु चकोर, करत पान सादर सकल प्रेम प्रमोद न थोर** (मा. १.३२१)। इसीलिए यहाँ चकोरोंकी बड़ी लंबी तालिका है। सभी चकोर ही बने। विश्वामित्रजी चकोर बन रहे हैं—**भये मगन देखत मुख शोभा, जनु चकोर पूरन शशि लोभा** (मा. १.२०७.६)। स्वयं विदेहराज जनक चकोर बन रहे हैं—**सहज बिरागरूप मन मोरा, थकित होत जिमि चंद्र चकोरा** (मा. १.२१६.३)। श्रीसीतामुखके श्रीरामचन्द्रजी चकोर बने—**अस कहि फिरि चितये तेहि ओरा, सियमुख शशि भे नयन चकोरा** (मा. १.२३०.३), एवं सीताजी स्वयं चकोरी बनीं—**अधिक सनेह देह भइ भोरी, शरदशशिहिं जनु चितव चकोरी** (मा. १.२३२.६)। सर्वत्र चकोरोंकी ही भरमार है। किं बहुना, सीताजीकी माता चकोरी बनीं—

तुलसी मुदित मन जनकनगर जन
झाँकतीं झरोखें लागीं सोभा रानीं पावतीं।

मनहुँ चकोरीं चारु बैठीं निज निज नीड
चंदकी किरिन पीवैं पलकौ न लावतीं॥

(क. १.१३)

अयोध्या पर्यन्त अमृतकी नदी बहती आयी और माताओंको भी भगवत्प्राप्ति उसी प्रकार हो रही है—**पावा परम तत्त्व जनु जोगी, अमृत लहेउ जनु संतत रोगी** (मा. १.३५०.६)। इस प्रकार श्रीरामविवाह कथा—सुधा तरङ्गिनी।

अब गोस्वामीजी अयोध्याकाण्डका उपक्रम करते हैं। अयोध्याकाण्डमें दो ही कथाओंका प्रस्ताव किया है—**भय भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनी** (मा. १.३१.८)। अयोध्याकाण्डकी पूर्वार्धकी कथा **भय भंजनि** है। सबको अभय प्रदान करनेके लिए प्रभुने अपने वनवासकी लीला प्रस्तुत की है। सभीके मनमें किसी न किसी प्रकारका भय है। किं बहुना, महाराज दशरथ स्वयं भयभीत हैं—**कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ, भयबश अगहुड़ परइ न पाऊ** (मा. २.२५.१)। कैकेयी स्वयं भयभीत है—**सभय रानि कह कहसि किन कुशल राम महिपाल** (मा. २.१३)। सचिव सुमन्त्र भयभीत हैं—**सचिव सभीत सकइ नहिं पूँछी** (मा. २.३८.८)। और लक्ष्मणजी—**माँगत बिदा सभय सकुचाहीं** (मा. २.७३.८)। सर्वत्र भय ही भय है। निर्भय केवल भगवान् श्रीराम हैं और उनका व्यक्तित्व है। सबको निर्भयता प्रदान कर रहे हैं। इसीसे आज केवट भी नहीं डरा—**माँगी नाव न केवट आना, कहइ तुम्हार मरम मैं जाना** (मा. २.१००.३)। चक्रवर्तीके पुत्रसे निर्भीक होकर तू-तू मैं-मैं करता जा रहा है। उसे किसी भी प्रकारका डर नहीं लग रहा है। कहता है कि भले ही—**केवटकी जाति कछु बेद न पढ़ाइहौं, ..., बिना पग धोये नाथ नाव ना चढ़ाइहौं** (क. २.८)। कह देता है कि प्रभु! **बिना पग धोये नाथ नाव ना चढ़ाइहौं**। इसलिए अयोध्याकाण्डका पूर्वार्ध, राम-वनवास प्रकरण, सबको निर्भय बना रहा है। इस तेरहवीं कथामें कोल-किरात भी निर्भीक होकर भगवान् श्रीरामसे बातचीत करते हैं।

भ्रम भेक भुजंगिनी (मा. १.३१.८)—चौदहवीं भरतकथा भ्रम रूप मेंढकको नष्ट करनेके लिए सर्पिनीके समान है। सबको एक प्रकारका भ्रम है कि क्या होगा, क्या नहीं। परिणाम किसके पक्षमें जायेगा। अयोध्यावासियोंको भरतके प्रति भ्रम है—**भरत कुशल पूँछि न सकहिं भय बिषाद मन माहिं** (मा. २.१५८)। कैकेयीके व्यक्तित्वके प्रति सबको भ्रम है कि ऐसा क्यों हो गया। और यह भरतजीका चरित्र जीवनके सभी पक्षोंके भ्रमको नष्ट करता है। **दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजश मिस अपहरत को, कलिकाल तुलसी से शठनि हठि रामसनमुख करत को** (मा. २.३२६.९)। अतएव, **भरतचरित करि नेम तुलसी जो सादर सुनहिं, सीय राम पद प्रेम अवशि होइ भवरस बिरति** (मा. २.३२६)। **भ्रम भेक भुजंगिनी**—यह भ्रम रूप मेंढकको नष्ट करनेके लिए सर्पिनीके समान है। सबका भ्रम दूर हुआ। भरतजीको प्रभुने पादुका प्रदान कर दी—**प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं, सादर भरत शीष धरि लीन्ही** (मा. २.३१६.४)।

अरण्यकाण्डके प्रारम्भको गोस्वामीजीने कहा कि यह कथा पार्वतीके समान है—**असुरसेन सम नरक निकंदिनि, साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि** (मा. १.३१.९)। **गिरिनंदिनि** शब्दमें यहाँ श्लेष है, अर्थात् **असुरसेन सम नरक निकंदिनि गिरिनंदिनि**। इस प्रकार अर्थ

हुआ कि जिस प्रकार पार्वतीजीने असुरोंकी सेनाका संहार किया, उसी प्रकार यह कथा नरकका संहार करती है। यही है जयन्तनिग्रह कथा। जयन्तने नरक जैसा कुकृत्य किया परन्तु प्रभुकी कृपाने उसका समाधान कर दिया। जयन्तपर भगवान्ने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। केनोपनिषद्में पार्वतीजीने इन्द्रको ब्रह्मका बोध कराया था। उसी प्रकार इस कथाने इन्द्र-पुत्र जयन्तको ब्रह्मका बोध कराया—

नारद देखा बिकल जयंता। लागि दया कोमलचित संता॥
पठवा तुरत राम पहँ ताही। कहेसि पुकारि प्रनतहित पाही॥

(मा. ३.२.९-१०)

इसलिए यह जयन्त-निग्रहकी कथा पन्द्रहवीं कथा है।

साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि (मा. १.३१.९)। संतोंको आनन्द देनेके लिए सोलहवीं श्रीरामकथा गङ्गाजीके समान है। गङ्गाजीने चार स्थानोंको श्रेष्ठ बनाया—(१) हरिद्वार, (२) प्रयाग, (३) काशी, और (४) गङ्गासागर। उसी प्रकार इस प्रसङ्गमें यह कथा भी चार मुनियोंके व्यक्तित्वसे सम्बद्ध होकर विराजमान हो रही है—(१) अत्रि, (२) शरभङ्ग, (३) सुतीक्ष्ण, और (४) अगस्त्य। अत्रिसे भेंट हरिद्वारकी गङ्गा हैं। भगवान् शरभङ्गसे मिल रहे हैं, यही प्रयागकी गङ्गा हैं। यहाँ कामदेवके पाँचों बाणोंका भङ्ग हो रहा है और मायिक प्रपञ्चको छोड़कर शरभङ्गजी वैकुण्ठ जा रहे हैं—**अस कहि जोग अगिनि तनु जारा, रामकृपा बैकुंठ सिधारा** (मा. ३.९.१)। सुतीक्ष्णजीका जो दर्शन भगवान्का हो रहा है वह काशीकी गङ्गा हैं। और गङ्गासागर के समान अगस्त्यजीसे मिलन है। वहाँ गङ्गा सागरसे मिलती है और यहाँ अगस्त्यजीका व्यक्तित्व रामजीसे मिल रहा है। गङ्गाजीने साठ हजार सगरपुत्रोंका उद्धार किया। यहाँ अगस्त्यजीके प्रयोगसे अनेकानेक ब्राह्मणोंका उद्धार हुआ, वैदिक धर्मका उद्धार हुआ। इसलिए, **साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि**—साक्षात् गङ्गाके समान।

अद्भुत आनन्द हो रहा है। **संतसमाज पयोधि रमा सी, बिश्वभार भर अचल छमा सी** (मा. १.३१.१०)। सत्रहवीं श्रीरामकथा संत समाज रूप क्षीरसागरसे उत्पन्न हुई लक्ष्मीजीके समान है। यही है लक्ष्मण-गीताका प्रकरण। लक्ष्मण-गीतामें भगवान् श्रीरामने पाँच सिद्धान्तोंका निरूपण किया है—(१) स्वस्वरूप, (२) परस्वरूप, (३) उपायस्वरूप, (४) फलस्वरूप, और (५) विरोधिस्वरूप। इसी प्रकार जैसे यहाँ संतोंके समाजरूप लक्ष्मीजीका प्राकट्य समुद्र-मन्थनसे हुआ, उसी प्रकार वेद रूप सागरका मन्थन कर श्रीरामकथा प्रकट हो रही है—**ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं, कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं** (मा. ७.१२०)।

बिश्वभार भर अचल छमा सी (मा. १.३१.१०)—संसारके भारको धारण करनेके लिए यह श्रीरामकथा अचल पृथ्वीके समान है। यही प्रसङ्ग है शूर्पणखाका जो अठारहवीं कथा है। अर्थात् जिस प्रकार किसी भी प्रकारसे पृथ्वी नहीं डिगती उसी प्रकार इस कथाके नायक भगवान् श्रीराम शूर्पणखाके किसी भी प्रपञ्चसे नहीं डिग रहे हैं, सुस्थिर हैं। पृथ्वीको शेषने धारण किया है। इसी प्रकार शूर्पणखाको विरूपित कर लक्ष्मणजीने चारित्रिक परम्परा रूप पृथ्वीकी रक्षा कर ली।

और अब—**जमगन मुँह मसि जग जमुना सी** (मा. १.३१.११)। अर्थात् यम-गणोंके मुखपर

स्याही लगानेके लिए यह उन्नीसवीं कथा यमुनाके समान है। यही खरदूषण-प्रसङ्गकी कथा है। इन्होंने इतना बड़ा पाप किया था कि इनको यमराजके यहाँ जाना था, इनको नरक होता परन्तु श्रीरामकथाने यम-गणोंके मुखमें कालिख लगाकर इन्हें साक्षात् निर्वाण पद दे दिया—**राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान, करि उपाय रिपु मारेउ छन महँ कृपानिधान** (मा. ३.२०)। और सम्पूर्ण राक्षस समाज साकेत-लोकको प्राप्त हो गया। खर, दूषण, त्रिशिरा, और उनके चौदह सहस्र सैनिकोंको भगवान्ने साकेत लोक दे दिया—**जमगन मुँह मसि जग जुमना सी**। वहाँ भी यमुना यमराजकी बहन हैं, परन्तु उनके सम्पर्कमें आकर भक्तगण यमराजसे छूट गये, इसी प्रकार यहाँ भी भगवान् श्रीरामकी कथाके सम्पर्कमें आकर, भगवान् रामका गुणगान कर राक्षस भी यमराजके बन्धनसे छूट गये।

जीवन मुक्ति हेतु जनु कासी (मा. १.३१.११)। यह बीसवीं कथा है। इसका प्रारम्भ सीताजीके अग्नि-निवास प्रकरणसे होता है। काशी महाश्मशान है। वहाँ अग्नि कभी बुझती नहीं। इसी प्रकार यहाँ भी अग्नि बुझ नहीं रही है। किं बहुना, काशीमें तो अग्निदेव सबको जला डालते हैं पर यहाँ सीताजीको भगवान्ने अग्निमें निवास दिया। अग्निने सीताजीको भस्म नहीं किया क्योंकि—**नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः, न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः** (भ. गी. २.२३)। काशीमें ही आत्मतत्त्वका विवेचन होता है और आत्मतत्त्वके लिए यही कहा जाता है। इसीलिए अग्नि नहीं जलाती, शस्त्र नहीं काटते, जल गीला नहीं करता, वायु नहीं सुखाता। ठीक इसी आत्मतत्त्वके आधारपर सीताजीको भगवान्ने अग्निमें निवास दिया—**तुम पावक महँ करहु निवासा, जब लगि करौं निशाचरनाशा** (मा. ३.२४.२) अर्थात् जबतक मैं राक्षसोंका नाश कर रहा हूँ तबतक आप अग्निमें निवास कर लीजिये। और सीताजी अग्निमें प्रवेश कर गयीं—**प्रभु पद धरि हिय अनल समानी** (मा. ३.२४.३)। पूर्ण काशीका वर्णन! वहाँ भी महाश्मशान और यहाँ भी। परन्तु वहाँ श्मशानमें मृतक जला और यहाँ अग्निमें जाकर भी सीताजी नहीं जलीं, यह वैशिष्ट्य है। काशी पञ्चक्रोशात्मिका है, यहाँ भी पाँच लोगोंको भगवान्ने मुक्ति दी—(१) मारीचको, (२) जटायुको, (३) कबन्धको, (४) शबरीको, एवं (५) नारदको। मुक्तिके शास्त्रने पाँच भेद कहे—(१) *सामीप्य मुक्ति*—इस कथामें भगवान्ने मारीच जैसे राक्षसको सामीप्य मुक्ति दे दी। मारीच प्रभुको दूर ले गया—**ऐहि विधि प्रभुहिं गऔऊ लै दूरी** (मा. ३.२७.१४), परन्तु भगवान् मारीचको समीप ले आये। यही तो वैलक्षण्य है। **निज पद दीन्ह असुर कहँ दीनबंधु रघुनाथ** (मा. ३.२७)। (२) *सारूप्य मुक्ति*—जटायुको भगवान्ने सारूप्य मुक्ति दी—**गीध देह तजि धरि हरि रूपा, भूषन बहु पट पीत अनूपा** (मा. ३.३४.१)। सारूप्यका अर्थ होता है समान रूप। समान शब्द **तद्भिन्नतत्सादृश्य**का वाचक होता है। श्रीरामजीने जटायुको अपना रूप नहीं दिया, अपने समान विष्णुजीका रूप दिया—

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा॥
श्याम गात बिशाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी॥

(मा. ३.३४.१-२)

(३) *सालोक्य मुक्ति*—कबन्धको भगवान्ने सालोक्य मुक्ति दी। कबन्धने भगवान्को अपनी बाहुओंमें जकड़ लिया। भगवान् श्रीराम और लक्ष्मणने उसकी भुजाएँ काट दी, उसको मारकर

जलाया और तुरन्त उसे राक्षस योनिसे छुटकारा मिला—**रघुपतिचरन कमल शिर नाई, गऔउ गगन आपनि गति पाई** (मा. ३.३६.४)। (४) *सार्ष्टि मुक्ति*—शबरीको भगवान्ने सार्ष्टि मुक्ति दी। सार्ष्टि का अर्थ होता है सायुज्य, भगवान्में लीन हो जाना। शबरीने प्रभुको मातृ-प्रेम दिया, चरणपखारे, अपने आँचलके आसनपर बैठाया और कन्द, मूल तथा फल खिलाये। प्रभुने नवधा भक्ति दी। फिर शबरी योगाग्निमें शरीर छोड़कर प्रभुके चरणोंमें लीन हो गयीं—**तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे** (मा. ३.३८.१४)। यही है सार्ष्टि अर्थात् सायुज्य मुक्ति। (५) *एकत्व मुक्ति*—नारदजीको भगवान्ने एकत्व मुक्ति दी। एकत्वका अर्थ भागवतके अनुसार होता है—**एकत्वं सम्बन्धः**।

गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद्वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो॥

(भा.पु. ७.१.३०)

सम्बन्धाद्वृष्णयः, इसी सम्बन्धकी व्याख्या की—**कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च** (भा.पु. १०.२९.१५)। तो, **ऐक्यं सम्बन्धम्** (तत्रत्य भावार्थदीपिका), ऐसा श्रीधराचार्य भी कहते हैं। अर्थात् नारदजीको भगवान्ने सम्बन्ध-बोध कराकर एकत्व मुक्ति दे दी। भगवान्ने नारदजीसे कहा कि तुमको सब कुछ प्राप्त है, पर एक पक्षसे अभी तुम अधूरे हो। तुमको माँ नहीं मिली क्योंकि तुम ब्रह्माजीकी गोदसे उत्पन्न हुए हो—**उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे** (भा.पु. ३.१२.२३), अतः मैं तुम्हें सम्बन्ध-बोध करा रहा हूँ। अब तुम मुझे माँ मान लो—**त्वमेव माता च पिता त्वमेव**। नारदके भगवान्से यह पूछने पर कि जब वे उनकी मायासे मोहित होकर विवाह करना चाहे तो विवाह नहीं होने दिया तो भगवान्ने कहा—

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करउँ सदा तिन कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥

(मा. ३.४५.४-५)

भगवान् नारदकी महतारी बन गये।

गह शिशु बच्छ अनल अहि धाई। तेहि राखइ जननी अरगाई॥
प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता॥

(मा. ३.४५.६-७)

इसलिए, एकत्व मुक्ति दी। काशीमें राम-नामकी प्रधानता है और इस कथामें भी नारदजीने भगवान्से यही वरदान माँगा कि भले ही आपके नाम अनेक हैं पर राम-नाम सभी नामोंसे अधिक होना चाहिए—

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक ते एका॥
राम सकल नामन ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥
राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडुगन बिमल बसहुँ भगत उर ब्योम॥

(मा. ३.४४.७-८, ३.४४)

जिस प्रकार काशीमें रामनामकी प्रधानता है—**काशी मरत जंतु अवलोकी, जासु नाम**

बल करउँ बिशोकी (मा. १.११९.१) तथा **जासु नाम बल शङ्कर काशी, देत सबहिं सम गति अबिनाशी** (मा. ४.१०.४)—उसी प्रकार प्रभुके अनेकों नामोंसे अधिक राम नाम हो—

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक ते एका॥
राम सकल नामन ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥

(मा. ३.४४.७-८)

पूर्ण एकवाक्यता है। एतावता पूर्ण काशीकी भाँति यह कथा है।

अब गोस्वामीजी किष्किन्धाकाण्डमें तीन कथाओंका प्रस्ताव करते हैं। **रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी** (मा. १.३.१२)। यह इक्कीसवीं कथा श्रीरामजीको उतनी प्रिय है, जितनी तुलसी। यह श्रीहनुमान्‌जीके मिलनकी कथा है। श्रीहनुमान्‌जी रामजीसे मिल रहे हैं। तुलसीको भगवान्‌ने शिरपर चढ़ाया और हनुमान्‌जीको हृदयसे लगाया—**तब रघुपति उठाइ उर लावा** (मा. ४.३.६)। स्नेह किया। तुलसीपर भगवान्‌का मधुर भाव है और हनुमान्‌जीपर वात्सल्य भाव है। बार-बार तुलसीजी भगवान्‌के चरणको स्पर्श करती रहती हैं और इधर हनुमान्‌जी भी—**प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना, सो सुख उमा जाइ नहिं बरना** (मा. ४.२.६) और **अस कहि परेउ चरन अकुलाई, निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई** (मा. ४.३.५)। तुलसीके बिना भगवान् प्रसन्न नहीं होते उसी प्रकार हनुमान्‌जीके बिना रामजी प्रसन्न नहीं होते। **तुलसीदास हित हिय हुलसी सी** (मा. १.३१.१२)। यह बाईसवीं कथा तुलसीदासजीको इतनी प्रिय है जितनी कि उनकी माँ हुलसी। यह बालि-वधकी कथा है। अर्थात् बालिको मारकर प्रभुने जिस प्रकार सुग्रीवकी रक्षा की, उसी प्रकार कलियुगके पापोंको नष्ट कर प्रभु मेरी रक्षा करेंगे ही करेंगे। प्रभुने सुग्रीवका पक्ष लिया, बालिका नहीं। गोस्वामीजी कहते हैं कि उसी प्रकार प्रभु हम जैसे निर्बलोंका पक्ष लेंगे, सबलोंका नहीं।

शिवप्रिय मेकल शैलसुता सी (मा. १.३१.१३)। शिवजीको यह तेईसवीं कथा उतनी ही प्रिय है जितनी नर्मदाजी। नर्मदाजीके प्रवाहमें शिवजी डूब जाते हैं, उसी प्रकार किष्किन्धाकाण्डके उत्तरार्धकी कथामें शिवजी डूब जाते हैं, तन्मय हो जाते हैं क्योंकि शिवजीके ही स्वरूप हनुमान्‌जी महाराज अब मुद्रिका लेकर सीताजीका समाचार लेने जा रहे हैं—

पाछे पवन तनय सिर नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा॥
परसा शीष सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्ह जन जानी॥

(मा. ४.२३.९-१०)

अर्थात् जैसे नर्मदेश्वर नर्मदाको नहीं छोड़ पाते, उनकी धारामें डूबते हैं—**बानरकटक उमा मैं देखा, सो मूरख जो करन चहे लेखा** (मा. ४.२२.१)। इतने निकट हो गये! पार्वतीजी कहती हैं कि हनुमान्‌जी द्वारा बुलाई गयी वानर-सेनाको मैंने देखा, वह मूर्ख है जो इसका लेखा-जोखा कर रहा है! इसकी गणना की ही नहीं जा सकती! यहाँ शिवजी डूबे-डूबे दीख रहे हैं किष्किन्धाकाण्डके उत्तरार्धकी कथामें, इसलिए—**शिवप्रिय मेकल शैलसुता सी** (मा. १.३१.१०)।

सकल सिद्धि सुख संपति रासी (मा. १.३१.१३) सुन्दरकाण्डमें तीन कथाओंका प्रस्ताव करते हैं। सुन्दरकाण्डके पूर्वार्धमें चौबीसवीं **सकल सिद्धि** कथामें हनुमान्‌जीकी आठों

सिद्धियोंकी चर्चा है। इस कथामें हनुमान्‌जी अपनी अष्टसिद्धियोंका प्रयोग कर रहे हैं—**अणिमा गरिमा चैव महिमा लघिमा तथा, प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्ट सिद्धयः** (अ.को. १.१.३५क)। (१) *अणिमा*—अणिमा सिद्धिका प्रयोग करके इतने अणु हो रहे हैं हनुमान्‌जी—**सिंधु तीर ऎक भूधर सुंदर, कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर** (मा. ५.१.५)। उछलकर कूद पड़े उसपर। **बार बार रघुबीर सँभारी, तरकेउ पवनतनय बल भारी** (मा. ५.१.६)। इतने हल्के—अणु। (२) *गरिमा*—और गरिमा अर्थात् गुरु—**जेहि गिरि चरन देइ हनुमंता, चलेउ सो गा पाताल तुरंता** (मा. ५.१.७)। जिस पर्वतपर हनुमान्‌जी चरण देकर चढ़े वह पातालमें चला गया, इतना गुरु! हनुमान्‌जीके भारीपनको पर्वत नहीं सह सका। (३) *लघिमा*—फिर लघिमा—**जिमि अमोघ रघुपति कर बाना, एही भाँति चलेउ हनुमाना** (मा. ५.१.८)। जिस प्रकार रामजीका बाण सर्रर्रसे चलता है उसी प्रकार हनुमान्‌जी चले, किसीने रोका नहीं। मैनाकने रोका पर हनुमान्‌जीने नहीं स्वीकारा—**राम काज कीन्हे बिनु मोहि कहाँ बिश्राम** (मा. ५.१)। (४) *महिमा*—सुरसाने हनुमान्‌जीको खानेका प्रस्ताव किया। यहाँ महिमाका प्रयोग हनुमान्‌जी करते हैं—उसने एक योजनका मुँह बनाया तो हनुमान्‌जी दो योजनके हो गये, उसने सोलह योजनका मुँह बनाया तो हनुमान्‌जी बत्तीस योजनके हो गये। फिर लघिमा—उसने सौ योजनका मुँह बनाया तो हनुमान्‌जी बहुत छोटा-सा रूप बनाकर—**बदन पइठि पुनि बाहेर आवा, माँगी बिदा ताहि शिर नावा** (मा. ५.२.११)—अणिमा का प्रयोग कर दिया। (५) *प्राप्ति*—अब आगे बढ़े। सिंहिकाको मारकर आ रहे हैं। लङ्किनीका दमन किया और विभीषणसे सत्सङ्ग किया। इसके पश्चात् सीताजीकी प्राप्ति कर ली—**देखि मनहि मन कीन्ह प्रनामा, बैठेहिं बीति गई निशि जामा** (मा. ५.८.७)। यह है प्राप्ति। (६) *प्राकाम्य*—सीताजीको सन्देह है कि यह छोटा-सा वानर कैसे रावणकी सेनाका वध कर सकेगा। तब हनुमान्‌जीने प्राकाम्य सिद्धिका प्रयोग किया और विशाल बन गये—**कनक भूधराकार शरीरा, समर भयंकर अतिबल बीरा** (मा. ५.१६.८)। यह हनुमान्‌जीकी छठवीं सिद्धि प्राकाम्य है। इससे राक्षसोंका वध किया। (७) *ईशित्व*—अशोक वाटिकाको विध्वंस कर अब हनुमान्‌जी सातवीं सिद्धि ईशित्वका प्रयोग कर रहे हैं। सबको दण्ड दे रहे हैं। राक्षसोंको मारा। लङ्का जला डाली। ईशित्वका प्रयोग किया। (८) *वशित्व*—लङ्काके रत्नोंपर हनुमान्‌जीका मन नहीं गया यही उनका वशित्व है। सभी रत्नोंको जलाकर खाक कर डाला पर एक भी अपने लिए नहीं रखा। सब कुछ जलाकर खाक कर दिया। आठों सिद्धियोंका प्रयोग कर दिया। सीताजीसे चूड़ामणि लेकर रामजीके पास आये। रामजीने प्रशंसा की, हृदयसे लगाया और पूछा—**केहि विधि दहेउ दुर्ग अति बंका** (मा. ५.३३.५)। तब भी अभिमान नहीं आया, यह उनका वशित्व है। उन्होंने कहा—

नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निशिचरगन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछु मोरि प्रभुताई॥

(मा. ५.३३.८-९)

पच्चीसवीं कथा **सुख** (मा. १.३१.१३)। **सुखी मीन जहँ नीर अगाधा, जिमि हरिशरन न एकउ बाधा** (मा. ४.१७.१)। भगवान्‌की शरणमें व्यक्ति जब जाता है, तब उसे सारे सुख मिल जाते हैं। रावणके द्वारा अपमानित होकर विभीषण आ रहे हैं, परन्तु प्रभुको प्राप्त करके

विभीषणके सारे दु:ख समाप्त हो जाते हैं क्योंकि भगवान्‌ने उन्हें नयनानन्द दे दिया—

दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता॥
बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी॥

(मा. ५.४५.२-३)

विभीषण भगवान्‌को देख रहे हैं। वे किसी-न-किसी भाँति स्वीकार लिये हैं—**अहोभाग्य मम अमित अति राम कृपा सुख पुंज, देखेउँ नयन बिरंचि शिव सेब्य जुगल पद कंज** (मा. ५.४७)।

छब्बीसवीं कथा **संपति रासी** (मा. १.३१.१३)। भगवान्‌ने विभीषणका राजतिलक कर दिया—**जो संपति शिव रावनहिं दीन्हि दिये दश माथ, सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ** (मा. ५.४९) अर्थात् जो संपत्ति शिवजीने रावणको दश शिर देनेके बाद दी थी, आज उसी संपत्तिको संकोच करते हुए भगवान्‌ने दे दिया और सागर निग्रह किया। सागरने भगवान्‌को संपत्ति भेंट की—**कनकथार भरि मनिगन नाना, बिप्ररूप आयउ तजि माना** (मा. ५.५८.८)। कनकथारका भगवान्‌ने स्वयं उपयोग नहीं किया। आगे चलकर—**कपिन सहित बिप्रन कहँ दान बिबिध बिधि दीन्ह** (मा. ६.१२०) होगा। इस प्रकार सुन्दरकाण्डकी कथाका संक्षेपीकरण हुआ।

अब, **सदगुन सुरगन अंब अदिति सी** (मा. १.३१.११)। यह सत्ताईसवीं युद्धकाण्डकी कथा है। सत्ताईसकी मालाकी सुमेरुनी होती है। इस प्रकार गोस्वामीजी कहते हैं कि इस कथाको सत्ताईसवीं सुमेरुनी की भाँति स्मरण रखना चाहिए। जैसे बारह सुरगणोंको अदितिने उत्पन्न किया वैसे ही यह कथा बारह सद्गुणोंको उत्पन्न करती है। आदित्य बारह हैं—**विवस्वानर्यमा पूषा त्वष्टाऽथ सविता भग:, धाता विधाता वरुणो मित्रः शक्र उरुक्रमः** (भा. ६.६.३९) अर्थात् (१) विवस्वान्, (२) अर्यमा, (३) पूषा, (४) त्वष्टा, (५) सविता, (६) भग, (७) धाता, (८) विधाता, (९) वरुण, (१०) मित्र, (११) इन्द्र, और (१२) उपेन्द्र—ये बारह आदित्य हैं। इसी प्रकार यहाँ भी बारह जनोंका युद्धकाण्डमें परितोष हुआ। क्रम देखिये—(१) शिवजीकी स्थापना की और उनको प्रसन्न किया। (२) अङ्गदजीका विश्वास प्रकट हुआ, अङ्गदके पाँवको रावण उठाता रह गया पर वह टस-से-मस नहीं हुआ, (३) हनुमान्‌जी महाराज लक्ष्मणजीके लिए सञ्जीवनी लाये, (४) स्वयं लक्ष्मणजीका त्याग यहाँ दिखा, (५) नल और (६) नीलका पराक्रम दिखा, (७) जाम्बवान् और (८) सुग्रीवका त्याग दिखा, (९) मन्दोदरी तथा (१०) माल्यवान्‌का व्यक्तित्व दिखा, (११) कालनेमिने भावना दिखायी, और (१२) अन्ततोगत्वा विभीषणकी भक्ति तो दिखी ही दिखी। विभीषणको भगवान्‌ने शिरमौर बना दिया। युद्धकाण्डमें रामेश्वरम्‌की स्थापना की और यहाँ विभीषणको लङ्काका राजा बनाया। वस्तुतस्तु, जिन बारह गुणोंकी चर्चा भगवान्‌ने सुन्दरकाण्डमें की है—

तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बंधु सुत दारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा॥

सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी॥
समदरशी इच्छा कछु नाहीं। हरष शोक भय नहिं मन माहीं॥

(मा. ५.४८.३-६)

यहाँपर किन संतोंकी चर्चा भगवान् करना चाहते हैं? उत्तर है कि जो समदर्शी हैं, जिनके हृदयमें कोई इच्छा नहीं है तथा जो हर्ष, शोक और भयसे मुक्त हैं। आगे कहते हैं—

अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसइ धनु जैसे॥
सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन के द्विज पद प्रेम॥

(मा. ५.४८.७, ५.४८)

इन्हीं बारहों गुणोंका युद्धकाण्डमें पूर्ण दिग्दर्शन हुआ है। इन्हीं गुणोंका परिचय विभीषणके मनमें संदर्शित स्पष्ट दीख रहा है। हनुमान्जीके संदर्भमें परम मित्र भगवान् ही दीख रहे हैं। न हर्ष है, न शोक है, न भय है। सगुण-साकारके उपासक हैं हम लोग—**हम सब सेवक अति बड़भागी, संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी** (मा. ४.२६.१३)। **परहित निरत** अर्थात् परहितमें निरन्तर लगे रहते हैं; अपना कोई नहीं, केवल रामजीका कार्य कर रहे हैं, नीतिमें निपुण, दृढ़ नेम अर्थात् अत्यन्त कठोर नियम और ब्राह्मणोंके प्रति प्रेम—इन बारहों गुणोंका इस सत्ताईसवीं कथामें प्रदर्शन कराया गया। **तजि मद मोह कपट छल नाना, करउँ सद्य तेहि साधु समाना** (मा. ५.४८.३)। सभय होकर विभीषण भगवान्की शरणमें आये। उन्होंने (१) मद, (२) मोह, (३) कपट तथा (४) छलको छोड़ा, उनका (५) समदर्शित्व, (६) इच्छाका अभाव, (७) हर्ष, शोक, और भयका त्याग, (८) सगुण उपासक, (९) परहित निरत, (१०) नीति निपुण, (११) दृढ़ नेम, तथा (१२) ब्राह्मणोंके प्रति प्रेम—सब कुछ विभीषणमें सकारात्मक बन गया, इसलिए यह युद्धकाण्ड विभीषणके लिए ही प्रयुक्त हुआ है—**करहु शीष धरि भूप रजाई, है तुम कहँ सब भाँति भलाई** (मा. २.१७४.६)। और रावण-वधके पश्चात् विभीषणको ही भगवान्ने कहा कि किसी भी प्रकार तुम मुझे भरतजीसे मिलवा दो—**देखौं बेगि सो जतन करूकरु सखा निहोरउँ तोहि** (मा. ६.११६)। मैं तुम्हें निहोरा कर रहा हूँ। सारे सद्गुण विभीषणमें ही आ गये—**सुनु लंकेश सकल गुन तोरे, ताते तुम अतिशय प्रिय मोरे** (मा. ५.४९.१)। तुम मुझे बहुत प्रिय हो। तुममें सभी गुण हैं। तुममें अदितिके सभी पुत्रोंके गुण आ गये हैं। यहाँ युद्धकाण्डकी सम्पूर्ण कथा विभीषणके लिए समर्पित हुई।

अब अट्ठाईसवीं कथा है—**रघुबर भगति** (मा. १.३१.१४)। भगवान्की पाँच भक्तियाँ कहीं गयीं हैं—अविचला भक्ति, अविरला भक्ति, निर्भरा भक्ति, अनपायिनी भक्ति, और प्रेमा भक्ति। यहाँ भी पाँचों भक्तियाँ दीख रहीं हैं। (१) *अविचला भक्ति*—शिव-स्वरूप हनुमान्जी हैं—**बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत** (मा. ७.१); यह हनुमान्जीकी अविचला भक्ति है। (२) *अविरला भक्ति*—भरतजीकी अविरला भक्ति है—**रामबिरह बारीस महँ भरत मगनमन होत** (मा. ७.१.क), **बैठे देखि कुशासन जटामुकुट कृशगात, राम राम रघुपति जपत स्त्रवत नयन जल जात** (मा. ७.१.ख)। (३) *निर्भरा भक्ति*—**सुनत सकल जननी उठि धाईं** (मा. ७.३.३)—माताओंकी निर्भरा भक्ति है। (४) *अनपायिनी भक्ति*—**प्रेमातुर सब लोग**

निहारी (मा. ७.६.४)—अवधवासियोंकी अनपायिनी भक्ति है। और (५) *प्रेमा भक्ति*—अन्तमें वसिष्ठजीने जब कहा—**अब मुनिवर बिलंब नहिं कीजै**, यह उनकी प्रेमा भक्ति है। इसीलिए इस प्रसङ्गमें वेदोंने और शिवजीने भी भगवान्से भक्ति माँगी—**अनाथ पर कर प्रीति जो** (मा. ७.१३०.११)। वेदोंने यह वर माँगा—**करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव येह वर माँगहीं, मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं** (मा. ७.१३.६)। और शिवजी भी—**बार बार वर माँगउँ हरषि देहु श्रीरंग, पद सरोज अनपायनी भक्ति सदा सतसंग** (मा. ७.१४)। **रघुबरभगति**। **बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी, मोह नदी कहँ सुन्दर तरनी** (मा. ७.१५.७)। इस प्रकारसे पूर्ण भक्ति, अट्ठाईसवीं कथा, भक्तिकी परिणति तब बन गयी जब सभी वानरोंको प्रभुने विदा किया; अङ्गदकी भक्ति छलक पड़ी—**अंगद हृदय प्रेम नहिं थोरा, फिरि फिरि चितव राम की ओरा** (मा. ७.१९.२)। और, अङ्गदको भेजनेके पश्चात् भी हनुमान्जीको नहीं भेजा क्योंकि हनुमान्जी परम भागवत हैं। अब अङ्गदको कहना पड़ा—**कहेहु दंडवत प्रभुहिं सन तुमहिं कहउँ कर जोरि, बार बार रघुनायकहिं सुरति कराऐहु मोरि** (मा. ७.१९ क)। इस प्रकार अट्ठाईसवीं कथा **रघुबर भगति**की कथा है।

अब उनतीसवीं कथा—**प्रेम परिमिति सी** (मा. १.३१.१४)। यह कथा प्रेमकी सीमा है। उत्तरकाण्डके बीसवें दोहेकी सातवीं पङ्क्तिसे आगे चलकर पैंतीसवें दोहे पर्यन्त **प्रेम परिमिति सी** कथा है। सर्वत्र प्रेम ही प्रेम है—

राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भये गये सब शोका॥
बैर न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥

(मा. ७.२०.७-८)

कोई किसीसे वैर नहीं कर रहा है। दैहिक, दैविक, और भौतिक ताप राम-राज्यमें नहीं व्याप रहे हैं। सब एक-दूसरेसे प्रेम कर रहे हैं। अल्पमृत्यु कहीं नहीं है। न कोई दरिद्र है, न ही दु:खी। हाथी और सिंह एक घाटपर पानी पीते हैं—**रहहिं एक सँग गज पंचानन** (मा. ७.२३.१)। रामजीने करोड़ों अश्वमेध यज्ञ किये। सीताजी रामजीके साथ रह रहीं हैं, अर्थात् सीताजीका द्वितीय वनवास नहीं हुआ; यह श्रीरामकथामें नहीं है—**कोटिन बाजिमेध प्रभु कीन्हे, दान अनेक द्विजन कहँ दीन्हे** (मा. ७.२४.१)। **पति अनुकूल सदा रह सीता। शोभाखानि सुशील बिनीता** (मा. ७.२४.३)—सीताजी निरन्तर श्रीरामजीके साथ हैं। लव-कुशका जन्म श्रीअवधमें हो रहा है। **अनुजन संजुत भोजन करहीं**। इतना प्रेम! पूरा वातावरण प्रेममय है। अन्तमें श्री सनकादि प्रेमा-भक्ति माँग रहे हैं—**प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहिं श्रीराम** (मा. ७.३४)। और—**बार बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिर नाइ, ब्रह्म भवन सनकादि गे अति अभीष्ट वर पाइ** (मा. ७.३५) अर्थात् बार-बार स्तुति करते हुए प्रेम सहित भगवान्का वंदन कर अभीष्ट वरकी प्राप्ति कर सनकादि ब्रह्मलोकको चले गये।

अब तीसवीं कथा एक आश्चर्यजनक घटनाके साथ उपस्थित हो रही है। वह कथा है—**रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु, तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु** (मा. १.३१)। यहाँ एक जिज्ञासा हो सकती है कि उत्तरकाण्डमें चित्रकूटके प्रसङ्गकी बात क्या है और **चित्रकूट चित चारु** कहकर इस कथाको विश्राम क्यों दिया जा रहा है। इसका संकेत

यह है कि तीसवीं कथा चित्रकूटकी कथा है। कारण, भगवान् संत-असंतके भेदकी कथाको श्रीभरतजीको सुनाते हैं। फिर श्रीअवध लौटकर सम्पूर्ण प्रजाको भक्तिका उपदेश दे रहे हैं। भगवान् कहते हैं कि सब लोग भजन करो। मन्दाकिनी भगवान्‌की भक्ति हैं—

मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि भरि भरि जल आछे।
तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मानौ राम भगतिके पाछे॥

(गी. २.५०.६)

और अन्ततोगत्वा, सारी प्रजाको उपदेश देकर वसिष्ठजीको वरदान देकर भगवान् शीतल अँवराईकी ओर जा रहे हैं। यहाँ संकेत क्या है? भगवान् श्रीरामने अपने चारों भाइयोंके पुत्रोंको बुलाया—लव-कुश, तक्ष-पुष्कल, चन्द्रकेतु-अङ्गद, तथा सुबाहु-शत्रुघाती। सबसे कह दिया—“देखो, हमें जो करना था वह कर लिया और—**चौथेपन जाइहि नृप कानन** (मा. ६.७.३), अर्थात् राजाको चौथेपनमें वन जाना चाहिए। मैं नित्य हूँ, मेरा शरीर कभी नहीं छूटेगा। इसलिए, अब मुझे विश्राम करना है। पर विश्राम कहाँ करूँ? अब तुमलोग अयोध्या सँभालो और मैं चलता हूँ चित्रकूट। चित्रकूटमें ही विश्राम करूँगा।” इसीलिए गोस्वामीजीने लिखा—**गये जहाँ शीतल अँवराई** (मा. ७.५०.५)। **पुनि कृपालु पुर बाहेर गयऊ** (मा. ७.५०.३)—कहाँ गये? नगरके बाहर। चित्रकूटमें यदि विश्रामकी बात नहीं होती तो **चित्रकूट चित चारु** कहते ही क्यों? श्रीरामजीकी कथा मन्दाकिनी है, चित्त ही चित्रकूट है, स्नेह ही वन है जहाँ भगवान्‌का विहार हो रहा है। इसका अर्थ यही है कि अन्तिम विहार-लीला भगवान् श्रीचित्रकूटमें करते हैं। यही अन्तिम **ॐ**की व्याख्या है—**ॐ भूर्भुवःस्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॐ**। परिणति हो चुकी श्रीरामकथाकी और ये ही हैं मानसकी तीस कथाएँ।

इस बार मोदीनगरमें सम्पन्न हुई कथाके लिए हमने विचार किया कि इसे पुस्तकाकार किया जाए और मानसमें तीस कथाओंके रूपमें इसे जनता जनार्दनके समक्ष उपस्थित किया जाए। सौभाग्यसे इस बार १४ जनवरीको मेरी कथाके भी साठ वर्ष पूरे हो रहे हैं। इस मङ्गलमय महोत्सवपर इस पुस्तकका जनता जनार्दनके कर-कमलोंमें अर्पण होगा, इससे मुझे बहुत प्रसन्नता होगी। मैं बहुत-बहुत आशीर्वाद दे रहा हूँ मोदीनगरके परिकरोंको, जिनमें पवन सिंघल, राजेन्द्र सिंघल इत्यादि और शारदा ग्रुप हैं, अनेकानेक आशीर्वाद! बहुत बहुत आशीर्वाद स्व. शारदा सिंघल एवं नन्दकिशोर सिंघल को जिनके पुत्रोंके सौजन्य और आर्थिक सहयोगसे यह पुस्तक जनता जनार्दनके सामने उपस्थित हो रही है। मैं आशीर्वाद दे रहा हूँ अपने परिकर राजेश वशिष्ठको जिन्होंने इसे श्रम करके मुद्रित किया! मैं बहुत-बहुत आशीर्वाद दे रहा हूँ इस राघव-परिवारके काका, अपने सुयोग्यतम शिष्य डॉ. श्रीरामाधार शर्माको और राघव-परिवारके वरिष्ठ सदस्य श्रीनित्यानन्दजी मिश्रको, अपने प्यारे परिकर श्रीपवन शर्मा, मोहन गर्ग और वयमें बहुत छोटे पर बहुत व्युत्पन्न अंकुर नागपालको! इस कथाकी संरचनामें राघव-परिवारकी बुआजी और मेरी अग्रजा डॉ. कुमारी गीता देवी मिश्रने अग्रिम भूमिका निभायी, अतः उनको भी आशीर्वाद! अपने परिकर व सुयोग्य वक्ता श्रीउज्ज्वल शाण्डिल्य एवं मेरे वैयक्तिक सहायक और मेरे भावना जगत्‌के पौत्र एवं सुयोग्य वक्ता श्रीवत्स बालव्यास जय मिश्रको भी अनेकशः आशीर्वाद! साधुवाद!

अन्ततोगत्वा, यह श्रीरामचरितमानसकथा गोस्वामी तुलसीदासजीके ही चरण-कमलोंमें समर्पित—

त्वदीयं वस्तु भो देव तुभ्यमेव समर्पये।
गृहाण सम्मुखो भूत्वा प्रसीद परमेश्वर॥

इति मङ्गलमाशास्ते,

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य
चित्रकूट, भारत

मकर संक्रान्ति वि.सं. २०७३
(१४ जनवरी २०१७ ई.)

प्रथम पुष्प

॥ नमो राघवाय॥

गाइये गणपति जगवंदन। शंकरसुवन भवानीके नंदन॥
सिद्धिसदन गजवदन विनायक। कृपासिंधु सुंदर सब लायक॥
मोदकप्रिय मुद मंगलदाता। विद्याबारिधि बुद्धिविधाता॥
मांगत तुलसीदास कर जोरे। बसहु रामसिय मानस मोरे॥

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥

जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी।
सुजनचकोरकदम्बो यत्कविताकौमुदीं पिबति॥

(श्री)सीतानाथसमारम्भां (श्री)रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे (श्री)गुरुपरम्पराम्॥

श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर-बिमल-जस जो दायक फल चारि॥

(श्री)रामचरितमानस बिमल कथा करौं चित चाइ।
आसन आइ विराजिये (श्री)पवनपुत्र हरषाइ॥

॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥
॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥

तुलसी सीताराम कहो हृदय राखि बिस्वास।
कबहूँ बिगड़त ना सुने (श्री)सीतारामके दास॥

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा भगवान् श्रीसीतारामजीकी कृपासे इस बारका मोदीनगरका यह एक ऐतिहासिक आयोजन है। कथाएँ तो यहाँ बहुत हुई होंगी, पर इस कथाकी दो विशेषताएँ सुन लीजिये। १४ जनवरी १९५७से अबतक मेरी एक हजार दो सौ पचास (१२५०) श्रीरामकथाएँ हो चुकी हैं और अब एक हजार दो सौ इक्यावनवीं (१२५१वीं) श्रीरामकथा मैं करने जा रहा हूँ।

इतना लम्बा इतिहास बहुत कम लोगोंका होगा।

आपको एक बात और सुनाऊँ। और लोग बड़े-बड़े सेठों और साहूकारोंको कथा सुनाते हैं। पर मैंने अपनी कथाका प्रारम्भ किया तो किसी सेठ-साहूकारके यहाँसे नहीं, किसी बड़े व्यक्तिके यहाँसे नहीं, किसी बड़े व्यक्तिको यजमान बनाकर नहीं। जीवनके सात वर्षकी अवस्थाके पश्चात् मैंने कथाका प्रारम्भ किया और अपने घरमें हल चलाने वाले एक साधारण हरिजनको मैंने यजमान बनाया। उसे **वर्णानामर्थसङ्घानां** (मा. १ म.श्लो. १)से लेकर **दह्यन्ति नो मानवाः** (मा. ७ उ.श्लो. २) पर्यन्त छः महीनेमें पूरी रामकथा सुनायी। और कथाकी दक्षिणा क्या ली थी? यह सुनकर आपको बड़ा आश्चर्य लगेगा। मैं उनको *काका* बोलता था। मेरी कथाकी यही दक्षिणा थी कि वे मुझे अपनी पीठपर बैठाकर बगीचेमें घुमाते थे। यही मेरी दक्षिणा थी। आज इतने लम्बे इतिहासमें, इतनी पवित्र-कथा मैं मोदीनगरमें सुनाने जा रहा हूँ। लक्ष्मीनारायणजीके मन्दिरमें, लक्ष्मीनारायणजीको सुना रहा हूँ। और यही कथा मेरी, भगवान्ने स्वस्थ रखा तो १४ जनवरीको मेरे ६७वें जन्मदिनपर, आप लोगोंके समक्ष प्रस्तुत होगी। मैं अध्यात्म चैनलको भी मेरी १२५१वीं श्रीरामकथाके प्रसारणके लिए बधाई देता हूँ। १२५१वीं यह श्रीरामकथा है और अबतक मैंने पाँच सौ श्रीमद्भागवत कथाएँ भी की हैं।

आइये! अब कथामें चलें।

रामकथा सुंदर करतारी। संशय बिहग उड़ावनहारी॥

(मा. १.११४.१)

रामचरितमानसकी इस पङ्क्तिपर मैं चर्चा करने जा रहा हूँ। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामकथा एक बहुत सुन्दर करतालिका (ताली) है, जो संशयरूप पक्षीको उड़ाती है। जब पक्षी आता है और हम ताली बजाते हैं, तो वह उड़ जाता है। श्रीरामकथा एक ताली है, बड़ी सुन्दर करतालिका है। ताली दो हाथोंसे बजती है, एक हाथसे नहीं बजती; दोनों हाथ जब परस्पर टकराते हैं, तब बजती है। इसका अर्थ यह है कि श्रीरामकथाके दो सिद्धान्त हैं—(१) लोकसिद्धान्त और (२) वेदसिद्धान्त और श्रीरामचरितमानसजीमें दोनोंका समन्वय है—

सरजू नाम सुमंगलमूला। लोक बेद मत मंजुल कूला॥

(मा. १.३९.१२)

अर्थात् लोकमत और वेदमत—दोनोंका श्रीमानसजीमें समन्वय है। श्रीरामकथा हमारे जीवनके लोकको भी सुधारती है और परलोकको भी। श्रीरामकथा सुनने और कहनेसे लोकमें भी लाभ और परलोक तो चकाचक है ही। गोस्वामीजीसे पूछा जाता है कि आप श्रीरामकथाका जो प्रणयन कर रहे हैं, यह बता दीजिये कि किसके लिए कर रहे हैं। उन्होंने बहुत अच्छी बात कही, प्रारम्भमें ही कहा—

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति॥

(मा. १ म.श्लो. ७)

यह जो नाना-पुराण-निगमागम-सम्मत कह रहा हूँ—कहीं-कहीं अन्यतः (अर्थात् काव्यों व नाटकोंसे) सम्मत कह रहा हूँ—यह अपने स्वान्तःसुखके लिए। **स्व**का क्या अर्थ होता है?

स्वका अन्त:सुख क्या है? सामान्यत: **स्व**के चार अर्थ कहे जाते हैं—

(१) **स्व**का प्रथम अर्थ है—आत्मा, अर्थात् आत्माके अन्त:सुखके लिए। यहाँ जितनी भी जीवात्माएँ हैं, सबके अन्त:सुखके लिए यह कथा कही जा रही है।

(२) **स्व**का दूसरा अर्थ है—आत्मीय, आत्मीयजनोंके अन्त:सुखके लिए।

(३) **स्व**का तीसरा अर्थ है—जाति, अपनी जातिके सुखके लिए।

(४) **स्व**का चौथा अर्थ है—धन, अपने धनके सुखके लिए।

देखिये! यहाँ एक बात बहुत अच्छी है। जैसा कि मैं कह चुका हूँ, मेरी श्रीरामकथाका बहुत लम्बा इतिहास है। प्रश्न उठता है—"गोस्वामीजीका धन क्या है?" श्रीरामजी तो धन हैं ही; पर मुझे लगता है कि गोस्वामीजीका धन यह राष्ट्र भी है। गोस्वामीजीने कहा—"अपने राष्ट्रके अन्त:सुखके लिए मैं रामचरितमानसकी चर्चा कर रहा हूँ।" गोस्वामीजी जानते हैं कि कैसे समयमें उनका जन्म हो रहा है।

मित्रो! आप सबने इतिहास पढ़ा होगा और जानते होंगे, उस समय देशमें हाहाकार मचा हुआ था। सभी जानते हैं कि सिकंदरसे लेकर इतने आक्रमण भारतपर हुए कि राष्ट्र जर्जर हो गया, टूट गया; वाल्मीक्यवतार गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजकी अन्तरात्माने यह भी देखा। जब पृथ्वीराज चौहानजीकी आँखें निकाली गयीं, गोस्वामीजीने अपनी आत्मासे वह दृश्य भी देखा। जब महमूद गजनवीने सोमनाथ मन्दिर तोड़ा और कम-से-कम ६४ खच्चर सोना लूटकर ले गया, गोस्वामीजीकी जीवात्माने वह दृश्य भी देखा। मुहम्मद गोरी सत्रह बार पराजित होनेके पश्चात् १८वीं बार धोखेसे पृथ्वीराज चौहानको ले गया और वहाँ उन्हें कितनी यातनाएँ दी गयीं। गोस्वामी तुलसीदासजीकी आत्माने यह भी देखा कि कविताने ही, पृथ्वीराजके द्वारा, मुहम्मद गोरीका अन्त भी करवाया। जब शब्दवेधी बाणकी चर्चा चली तो चन्द्रबरदाई सुल्तानके सामने कहते हैं—"हमारे महाराज तो शब्दवेधी बाण चलाना जानते हैं; भले ही उनकी आँखें निकाल ली गयीं हैं।" सुल्तानने कहा—"एक बार परीक्षा कर लेते हैं।" स्वयं बहुत ऊँचे मचानपर सिंहासन लगाकर बैठा। पृथ्वीराजकी आँखें निकल चुकी हैं, उन्हें लाया गया। पूरी नाप चन्द्रबरदाईने बतायी—

चारि बाँस चौबीस गज अंगुल अष्ट प्रमान।
ता ऊपर सुल्तान है अब न चूक चौहान॥

(पृ.रा.)

इतना बताते ही पृथ्वीराजने उसी प्रकारसे बाणका संधान किया और एक ही बाणमें मुहम्मद गोरीकी छाती चीर दी; यह दृश्य भी गोस्वामीजीकी आत्माने देखा। जैसा कि हम आपको बता चुके हैं कि वाल्मीकिजीने ही फिर अवतार लिया था तुलसीदासजीके रूपमें।

मुझपर यह आरोप लोग लगाते हैं—"जगद्गुरुजीकी कथा किसीकी समझमें नहीं आती।" आज मैं प्रतिज्ञा करके आया हूँ कि नौ दिनमें जहाँ आपको कथा समझमें नहीं आये तो बता दीजियेगा, समाधान करूँगा।

मित्रो! गोस्वामी तुलसीदासजीकी आत्मा सब कुछ देख रही है। इसीलिए संवत् १५५४की श्रावण शुक्ला सप्तमीके दिन हमारे उत्तरप्रदेशके बुंदेलखण्डके चित्रकूट जिलेके राजापुर नामक

ग्राममें आत्माराम द्विवेदीकी पत्नी हुलसी माताजीकी कोखसे एक ऐसे बालकका जन्म हुआ, जिसने भारतकी दिशा भी बदली और दशा भी बदली।

पन्द्रह सौ चौवन बिसै कालिन्दीके तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी धर्यो शरीर॥

श्रावण शुक्ला सप्तमीके दिन तुलसीदासजीका आविर्भाव हुआ। गोस्वामीजी कहते हैं—

जायो कुल मंगल बधावनो बजायो सुनि
भयो परितापु पापु जननी जनकको।

(क. ७.७३)

आकाशमें बधावे बजे। मित्रो! सोचिये। जन्मते ही बत्तीसों दाँत, पाँच वर्षके बालक-जैसा शरीर, जन्मके समय मुखसे राम-राम निकला। *रामबोला* नाम रख दिया गया। जय-जयकार हुई। अपने लोग एक गीत गा लेते हैं, बहुत अच्छा गीत है—

हे चित्रकूटके प्राण तुम्हारी हो जय जय।
ओ संस्कृतिके आह्वान तुम्हारी हो जय जय॥
तुमने मृत भारतको नव जीवन दान दिया।
तुमने ही मानसका मृदु मङ्गल गान किया॥
हे गुण गण ज्ञान निधान तुम्हारी हो जय जय।
हे चित्रकूटके प्राण तुम्हारी हो जय जय॥
तुमने पहिचानी धर्मशास्त्र श्रुति परिभाषा।
तुमसे ही हुई सनाथ ग्राम्य और सुरभाषा॥
हे रामभक्त धनवान तुम्हारी हो जय जय।
हे चित्रकूटके प्राण तुम्हारी हो जय जय॥
हे संत वंश अवतंस सुकवि कुलभूषण।
हुए भूरि भाग तुम्हें पाकर दूषण-दूषण॥
हे मानवता वरदान तुम्हारी हो जय जय।
हे चित्रकूटके प्राण तुम्हारी हो जय जय॥
हे कालजयी युग द्रष्टा बाबा तुलसी।
तुम्हें पाकर वसुधा हुलसी हुलसी हुलसी॥
हे *गिरिधर*के भगवान् तुम्हारी हो जय जय।
हे चित्रकूटके प्राण तुम्हारी हो जय जय॥

॥ बोलिये गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजकी जय ॥

महापुरुषोंका जीवन संघर्षमय होता है और मुझे तो ऐसा लगता है कि जबतक संघर्ष नहीं होता, तबतक उत्कर्ष भी नहीं होता। जिसके जीवनमें जितना अधिक संघर्ष होता है, उसके जीवनमें उतना ही अधिक उत्कर्ष होता है। कुछ अफवाहें हैं तुलसीदासजीके संबन्धमें। गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित तुलसीदासजीकी जीवनीने बहुत अफवाहें फैला दी हैं। अभुक्तमूल नक्षत्रकी चर्चा करते हैं ये लोग और झूठ बोलते हैं कि तुलसीदासजी अभुक्त-मूल-नक्षत्रमें जन्मे थे। उन्हें पिताने

फिंकवा दिया—ऐसा कुछ नहीं है। अब तो सब कुछ इण्टरनेटपर पता चल जाता है। ज्योतिषके अनुसार जिस दिन तुलसीदासजीका जन्म हुआ था, उस दिन अभुक्तमूल नक्षत्र था ही नहीं; न जाने कहाँसे ये लोग ले आये। इतना सत्य है कि माता-पिता जल्दी चले गये। यह तो कालका कर्म है, जल्दी उनके प्राण छूट गये और इनका पालन माता पार्वतीजीने किया; सोचिये। कवितावलीमें कह भी रहे हैं—**मेरे माय बाप गुरु शंकर भवानिये** (क. ७.१६८) और रामचरितमानसमें कह रहे हैं कि मेरे गुरु-पिता-माता स्वयं शङ्कर-भवानी हैं—

गुरु पितु मातु महेश भवानी। प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी॥

(मा. १.१५.३)

इस पङ्क्तिके दो अर्थ हैं—

(१) एक अर्थ तो यही है कि महेश भवानी ही हमारे गुरु-पिता-माता हैं, अर्थात् शङ्कर गुरु व पिता हैं और पार्वतीजी मेरी माँ हैं।

(२) और दूसरा अर्थ यह है कि यहाँ मैं पाँच लोगोंकी वन्दना कर रहा हूँ—(क) अपने गुरुदेव नरहरिदासकी वन्दना, (ख) अपने पिता आत्माराम-द्विवेदीकी वन्दना, (ग) अपनी हुलसीमाताकी वन्दना, (घ) महेशकी वन्दना और (ङ) पार्वतीजीकी वन्दना। एक-साथ गुरु, पितु, मातु हुए—

गुरु पितु मातु महेश भवानी। प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी॥

कितनी मधुर-कथा है। देखो! पार्वतीजीने तथा शिवजीने पालन किया और गोस्वामीजीके लिए नरहरिदासजी महाराजको बुलाकर कहा—"आप जाइये, बालकको राजापुरसे ले आइये। पालन-पोषण कीजिये, होनहार बालक है।" और नरहरिदासजी महाराजने किया भी। उन्होंने गोस्वामीजीको श्रीराममन्त्रकी दीक्षा दी, रामबोला नाम हटाकर सांप्रदायिक नाम *तुलसीदास* रखा।

॥ बोलिये तुलसीदास महाराजकी जय ॥

गोस्वामीजी कह भी रहे हैं कि मेरा *रामबोला* नाम गुरुदेवने हटाया—

रामको गुलाम नाम रामबोला राख्यौ राम
काज यहै नाम द्वै हौ कबहूँ कहत हौं।

(वि.प. ७६.१)

तो तुलसीदास नाम रखा। और गोस्वामीजीके विवाहकी कथा जोड़ी गयी है। उनका विवाह नहीं हुआ, लोग झूठ बोलते हैं। गोस्वामीजी बाल्यकालीन साधु हैं क्योंकि वाल्मीकिजीके अवतार हैं। यह कथा भविष्योत्तरपुराण प्रतिसर्गपर्वके चौथे सर्गमें है। हनुमान्जी महाराज वाल्मीकिजीके यहाँ आते हैं प्रतिदिन कथा सुनने रामायणजीकी। एक दिन लीला करनी थी प्रभुको। वाल्मीकिजी सठियाये कि इतनी सुन्दर कथा इस वानरको सुनाऊँ, अपमान कर दिया हनुमान्जीका। हनुमान्जी भी तरंगमें आ गये। फिर अपने नाखूनोंसे ही उन्होंने बड़े-बड़े पत्थरोंपर महानाटक लिखा। विनयपत्रिकामें उसका उदाहरण है—

महानाटक-निपुन कोटि-कविकुल-तिलक

(वि.प. २९.३)

एक बार हनुमान्जी उन पत्थरोंको श्रीरामजीके समीप ले आये। उन्हें बड़े-बड़े पत्थर लाते

देख सब लोग डरे और सोचा कि किसके ऊपर काल मंडरा रहा है? यह एक भी पत्थर किसीके ऊपर लगेगा तो उसकी ऐसी-तैसी होने वाली है। रामजीके पास ले आये, तो रामजीने कहा—"ये शिलालेख महर्षि वाल्मीकिको दिखाइये।" हनुमान्‌जीने दिखाये तो महर्षि वाल्मीकिने देखकर कहा—"यदि यह ग्रन्थ रहा, तो मेरे ग्रन्थको तो कोई पूछेगा ही नहीं।" महर्षि वाल्मीकिजीने बहुत प्रेमसे हनुमान्‌जीकी स्तुति की, कीर्तन किया। आप जानते हैं कि आज शनिवार है और शनिवार व मङ्गलवारका यह नियम है कि वक्ता न भी चाहे, तो भी हनुमान्‌जी आपको ठेल-पेलके आयेंगे, चाहे कोई भी आप कथा करते रहें। अत:—

सीताराम हनुमान्, सीताराम हनुमान्। सीताराम हनुमान्, सीताराम हनुमान्॥
सीताराम हनुमान्, सीताराम हनुमान्। सीताराम हनुमान्, सीताराम हनुमान्॥
(कीर्तन)

यह कीर्तन सुनकर हनुमान्‌जी अत्यन्त प्रसन्न हुए। संतोंका मानना है कि हनुमान्‌जीसे बड़े-से-बड़ा कोई भी काम लेना हो, तो २४ घण्टेका यही अखण्ड कीर्तन उन्हें सुनाओ। बड़े-से-बड़ा काम भी हनुमान्‌जी कर देते हैं। यह कीर्तन सुनकर झूम गये हनुमान्‌जी और उन्होंने कहा—"वरं ब्रूहि! वाल्मीकिजी! आप कोई वरदान माँगिये।" वाल्मीकिजीने कहा—"ये जो शिलालेख लेकर आये हो, इन्हें समुद्रमें फेंक दो।" हनुमान्‌जी बोले—"ठीक है! फेंक देता हूँ।" उन्होंने सारे शिलालेख समुद्रमें फेंक दिए, पर कहा—"अभी तो तुमने मुझे वाल्मीकीय-रामायण नहीं सुनायी, वानर कहकर मेरा अपमान किया। पर मैं तुम्हें एक वचन देता हूँ (श्राप तो नहीं कहा जा सकता)। मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि कलियुगमें तुम फिर अवतार लोगे और अवधी-भाषामें तुम श्रीरामकथा सुनाओगे, जिसे सभी लोग बिना प्रयासके गा-सुन लेंगे। तब तुम्हें सुनानेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इतनी सरल श्रीरामकथा होगी कि सभी अपने-आप सुन लेंगे, पढ़ लेंगे, जाओ।" तब वाल्मीकिजीने कहा—"मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूँ। किंतु एक वचन आपसे और ले रहा हूँ कि जब-जब रामकथा कहते हुए मैं फँसूंगा, तब-तब आपको मेरी जीभपर बैठकर उसको सुधारना पड़ेगा।" हनुमान्‌जीने कहा—"ठीक है।"

ऐसा हो भी गया कि दो बार श्रीरामकथा कहते-कहते गोस्वामीजी फँस गये, तब हनुमान्‌जीने तुरन्त सुधार दिया। उन्हीं वाल्मीकिजीने तुलसीदासजीके रूपमें अवतार लिया। इसके संबन्धमें वेदव्यासजीने यह वाक्य लिखा है—

वाल्मीकिस्तुलसीदासः कलौ देवि भविष्यति।
रामचन्द्रकथामेतां भाषाबद्धां करिष्यति॥

(भ.पु. प्रतिसर्ग पर्व ४.२०)

शिवजी पार्वतीजीसे कहते हैं—"हे देवि! वाल्मीकिजी ही कलियुगमें तुलसीदासजीके नामसे अवतार लेंगे और वे श्रीरामचन्द्रजीकी दिव्य-कथा, सौ करोड़ रामायणोंकी सारांशभूता कथाको अवधी भाषामें निबद्ध कर देंगे।" और यह बात भक्तमालकार नाभागोस्वामी श्रीनारायणदासजी भी स्वीकार करते हैं। वे खुलकर कह रहे हैं भक्तमालजीमें—

त्रेता काब्य निबंध करी सत कोटि रमायन।
इक अच्छर उद्धरे ब्रह्महत्यादि परायन॥

अब भक्तन सुख दैन बहुरि लीला बिस्तारी।
रामचरण रसमत्त रहत अहनिसि ब्रतधारी॥
संसार अपारके पारको सुगम रूप नौका लयो।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भयो॥

(भ.मा. १२९)

हम लोगोंका निस्तार करनेके लिए श्रीवाल्मीकिजी ही तुलसीदासजी बने। इसकी आवश्यकता यह थी कि हनुमान्‌जीने कहा—"जो तुमने सौ-करोड़ रामायण बनायीं हैं, उन्हें सामान्य व्यक्ति कैसे पढ़ेगा?" आज कोई सौ-करोड़ दिनतक तो जी ही नहीं सकता। कोई बहुत लम्बी आयु जियेगा, तो भी वह १०० वर्ष। सौ वर्षमें बताइये कि कहाँ सौ-करोड़ दिन हो पायेंगे? एक दिनमें कोई एक रामायण पढ़ेगा, तो कैसे पढ़ पायेगा? जबकि व्यक्ति बचपनमें प्रायः पढ़ता नहीं, युवावस्थामें भी नहीं पढ़ता। जब बैट्री डिस्चार्ज होने लगती है, तब पढ़ना प्रारम्भ करता है। जब बेटे-बहू अपमान करना प्रारम्भ कर देते हैं, तब सोचता है कि चलो भाई! रामायणजी पढ़ लेते हैं। मेरा तो मन्तव्य है कि इस राष्ट्रको यदि सबल बनाना है, तो रामायणजी बचपनसे ही पढ़नी चाहिए। महारानी लक्ष्मीबाई इतनी बड़ी वीराङ्गना क्यों थीं? क्योंकि वे बचपनसे रामायण पढ़ती थीं। रामलीलामें लक्ष्मणजीका अभिनय करती थीं महारानी लक्ष्मीबाई। **बंदउँ लछिमन पद जल जाता** (मा. १.१७.५)। तो क्या अवश्यकता थी? १०० करोड़ रामायणोंका सारांश दस हजार छन्दोंमें जनता-जनार्दनके सामने उपस्थित करना था। गागरमें सागरका काम कौन करवाये? हनुमान्‌जीकी कृपा थी। इसलिए गोस्वामीजी कहते हैं कि मैं जब यह श्रीरामकथा लिख रहा हूँ, तो वहाँ तीन लोगोंकी कृपा है—(१) रामजीकी कृपा है, (२) मेरे गुरुदेवकी कृपा है, और (३) हनुमान्‌जीकी कृपा है।

संबत सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि शीसा॥

(मा. १.३४.४)

हरि पद धरि शीसा—(१) **हरि** माने गुरुदेव नरहर्यानन्दजीके चरणोंमें प्रणाम करके, (२) **हरि** माने हनुमान्‌जीके चरणोंमें प्रणाम करके, और (३) **हरि** माने भगवान् श्रीरामजीके चरणोंमें प्रणाम करके, संवत् १६३१की चैत्र शुक्ला नवमीके दिन श्रीरामकथाका प्रारम्भ कर रहा हूँ। कवि तो बहुत हैं और होते रहेंगे; पर गोस्वामीजीका इतना सम्मान क्यों है? आज तो कथावाचकोंने कथाको बहुत विकृत कर दिया है। कोई पढ़ता-लिखता ही नहीं, तो क्या करेंगे? यदि वक्ता पढ़ेगा-लिखेगा नहीं, तो तीन घण्टेका समय काटनेके लिए वह कुछ तो करेगा।

मैं कहने जा रहा हूँ कि सात वर्षकी आयुमें १४ जनवरी १९५७को मैंने पूरी रामायणजी कण्ठस्थ कर ली थी। मुझे रामायण कण्ठस्थ किये अब साठ वर्ष हो जायेंगे। जिस दिन पूरी रामायणजी कण्ठस्थ कर ली, उसी दिन **वर्णानामर्थसङ्घानां**से कथाका मैंने प्रारम्भ किया। तो साठ वर्ष जब मुझे रामायण कण्ठस्थ किये हो गये, तो पाठ तो किया ही होगा मैंने। जब हम रामायणजीका पाठ करेंगे, तब न हमको नये-नये अर्थ सूझेंगे!

तो क्या कारण है कि गोस्वामी तुलसीदासजीने इतनी प्रसिद्धि पायी? कोई भी कथा तबतक सफल नहीं होती, जबतक उसके पास राष्ट्रकी व्यथाके समाधानके सूत्र नहीं मिलते। इतना ध्यान

रखना चाहिए। वही कथा सबसे सफल होती है, जो राष्ट्रकी समस्याका समाधान करती है। जो राष्ट्रकी समस्याका समाधान न करे, वो कथा है क्या? कथाएँ तो बहुत होती हैं, नाम मत लो उनका; ऐसी-ऐसी कथाएँ होती हैं। कादम्बरीकी भी कथा है, पर कौन उसे पढ़ता है? दो-चार लोग पढ़ते होंगे। यद्यपि उसमें केवल सूत्र हैं, पर रामकथा तो नहीं है वो। कथाएँ तो बहुत हैं, पटकथा लोग आये दिन लिखते रहते हैं। सिनेमामें प्रतिवर्ष हजारों पटकथाएँ लिखी जाती हैं, उनपर हजारों चलचित्र बनते हैं। उनसे क्या लेना देना? यदि प्रेमी-प्रेमिकाकी कथाकी बात करो तो बताओ, लैला-मजनू जैसी कथा कहाँ मिलेगी आपको? पर क्या यह कोई कथा है, जिसमें राष्ट्रकी समस्याका समाधान नहीं? और गोस्वामीजी कह रहे हैं कि मेरी कथामें विषयरस तो मिलेगा ही नहीं—

संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न बिषय कथा रस नाना॥
तेहि कारन आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥

(मा. १.३८.४–५)

गोस्वामीजी कह रहे हैं कि घोंघे, भेक (मेंढक) और शैवाल—ये सब कचड़े मेरे रामचरितमानसमें नहीं हैं। यहाँ विषयरसकी कथाएँ नहीं हैं। इसीलिए साधारण लोग तो यहाँ आयेंगे नहीं। जो राम और राष्ट्रमें भेद नहीं मानता होगा, निश्चित ही वह मेरी कथाका श्रोता और पाठक बनेगा। और देखिये, तुलसीदासजी महाराजको इस राष्ट्रके प्रति कितनी पीड़ा है। मुझे तो लगता है कि रामायणजी भी राष्ट्रायण हैं। यह भारत-राष्ट्रकी संहिता हैं। गोस्वामीजी अकबरके शासनकालमें जी रहे थे और उन्होंने जनताकी विपत्तिका वर्णन कवितावलीमें किया। कितना शोषण हो रहा था उस समय जनताका! अब देखिये गोस्वामीजीकी बात—

खेती न किसानको भिखारीको न भीख बलि
बनिकको बनिज न चाकरको चाकरी।
जीविकाबिहीन लोग सीद्यमान सोचबस
कहैं ऐक एकन सों कहाँ जाई का करी॥
बेदहूँ पुरान कही लोकहूँ बिलोकिअत
साँकरे सबै पै राम रावरें कृपा करी।
दारिद-दसानन दबाई दुनी दीनबंधु
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी॥

(क. ७.९७)

"जनता हाहाकार कर रही है, अब क्या करूँ? किसान खेती नहीं कर पा रहा है। भिखारीको भीख नहीं मिलती; जब किसी दाताके पास वस्तु नहीं है तो भिखारीको कैसे भीख मिलेगी? व्यापारी ठीकसे व्यापार नहीं कर पा रहा है। नौकर नौकरी नहीं कर पा रहा है। किसीको कहीं जीविका नहीं मिल रही है। लोग एक-दूसरेसे कह रहे हैं कि मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ?" तुलसीदासजी आगे कहते हैं—"हे नाथ! वेद-पुराण भी कहते हैं और लोकमें देखा जाता है कि विपत्तिमें आप सभीपर कृपा करते हैं। हे नाथ! यह रावण देखिये। आप तो रावणको मार चुके त्रेतामें, पर कलियुगमें दरिद्रतारूप रावणने सारे संसारको दबाकर रख दिया है। मैं हाहाकार कर

रहा हूँ।"

अब रामजीने कहा—"कोई बात नहीं। मैं आपके मुखसे रामचरितमानसके रूपमें अवतार लूँगा और सारे रावणोंको समाप्त कर दूँगा।" अब इतना उदाहरण देनेपर भी आपको यदि तुलसीदासजीकी तुलना समझमें न आये, तो अब क्या कहें? भारतकी समस्याओंका सूत्र ढूँढा था गोस्वामीजीने। मैं तो इस सरकारसे कहूँगा, पहले कहा भी है। आज मोदीजीका भी ६७वाँ जन्मदिन है। १९५०में उनका भी जन्म हुआ, मेरा भी। मेरा १४ जनवरी और उनका १७ सितम्बर (आज) है। आज बहुत उत्साह है। मैं भगवान्‌से प्रार्थना करता हूँ कि मोदीजी चिरंजीवी हों। आज वे अपनी माँके पास गये थे। मैं उनसे कहूँगा कि यदि तुम सच्चे मातृभक्त हो, गांधीजीके भक्त हो—जिन्होंने, रामचरितमानससे *रघुपति राघव राजा राम* सूत्र लिया था—तो रामचरितमानसको राष्ट्रीय-ग्रन्थ घोषित करो। यही तुम्हारी गांधीजीके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी और तुम्हारी माताके प्रति सच्ची भावाञ्जलि होगी। अद्भुत ग्रन्थ है यह! गोस्वामीजीको कितनी पीड़ा है इस देशके प्रति। उनको एक सुन्दर शासक चाहिए। अत: वे फिर रामजीको बुला रहे हैं—"हे राघवेन्द्रजी! एक बार फिर आप इस देशको सँभालिये।" इसलिए राष्ट्रकी समस्याओंके समाधानके लिए गोस्वामीजीने रामचरितमानसजीकी रचना की। विष भर गया था इस देशमें, पूरा देश विषैला हो गया था, अब अमृत चाहिए। इसीलिए गोस्वामीजीने कहा—

वर्णानामर्थसङ्घानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥

(मा. १ म.श्लो. १)

इस देशमेंसे विष निकालना है, विरोधका विष निकालना है। अत: अमृतके बीजसे प्रारम्भ करते हैं। *व* अमृतका बीज है, तो **वर्णानां**से प्रारम्भ करते हैं, और *व*पर विश्राम भी करेंगे—**दह्यन्ति नो मानवा:**। *व*से प्रारम्भ और *व*से ही विश्राम। देशमें अमृतकी धारा जो बहाये, ऐसी रामकथा सुधा है—

रामकथा शशि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना॥

(मा. १.४७.७)

हम भी अमृतकी वर्षा कर रहे हैं। गोस्वामीजीने कहा—"भगवन्! जब रावणने सभी वानर-भालुओंको मार डाला था, तब आपने इन्द्रसे अमृतकी वर्षा करवायी थी—"

सुधाबृष्टि भै दुहुँ दल ऊपर। जिये भालु कपि नहिं रजनीचर॥

(मा. ६.११४.६)

रामजी बोले—"कोई बात नहीं। उस बार सुरेन्द्र (इन्द्र)को माध्यम बनाया था, इस बार कवीन्द्र (तुलसीदासजी)को माध्यम बनाकर, रामकथाकी सुधावर्षा करवाकर सबको जिलाना है।" बहुत मधुर प्रस्तुति है गोस्वामीजीकी!

श्रीरामचरितमानसमें ३० कथाएँ क्यों?

वाल्मीकिजीने कहा—"मैंने गायत्रीजीके २४ अक्षरोंकी व्याख्या करके वाल्मीकि-रामायणमें २४ हजार श्लोक लिखे। गायत्रीजीमें चौबीस अक्षर माने जाते हैं। **वरेणियम्, वरेण्यम्** नहीं, माना जाता है। **तत्सवितुर्वरेणियं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्**—ये २४ अक्षर। तो २४ हजार श्लोकोंकी व्याख्या हुई।" गोस्वामीजीने कहा—"मैं विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि २४ हजार श्लोकोंकी तो व्याख्या हो गयी। पर यह बताइये कि क्या जपमें **तत्सवितुः .....** ही जपा जाता है? जपमें **ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ**—ये ६ अक्षर भी तो आते हैं। इनको मिलाकर कुल ३० अक्षर गायत्रीके बन जायेंगे। मैं अपने रामचरितमानसमें ३० अक्षरोंकी व्याख्या करूँगा।" इसलिए उन्हें बनना पड़ा तुलसीदास क्योंकि वाल्मीकि रूपमें उस बार व्याहृतिकी व्याख्या नहीं कर पाये थे। अतः गोस्वामीजीने अपने रामचरितमानसमें श्रीरामजीकी ३० कथाएँ लिखीं और ३० कथाओंके माध्यमसे गायत्रीजीके ३० अक्षरोंकी व्याख्या की। एक महीनेमें कुल तीस दिन होते हैं। अतः ३० दिनोंके लिए गोस्वामीजीने एक-एक कथा लिखी, एक-एक दिनके लिए एक-एक कथा लिखी है। तुम्हें तीसों दिनों रामकथा सुननी है। इसलिए रामचरितमानसमें कुल कथाओंकी कितनी संख्या बतायी? तीस। अब चलिये, एक-एक कथासे मैं आपका परिचय कराऊँगा और नौ दिनोंमें आपको तीसों कथाओंका परिचय हो जायेगा।

रामकथा सुंदर करतारी। संशय बिहग उड़ावनहारी॥

(मा. १.११४.१)

देखिये, गायत्रीजीमें दो बातें कही जा रही हैं। क्या दो बातें कही जा रही हैं—**तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्**। पहले क्या कहा जा रहा है? **सवितुः देवस्य वरेण्यं भर्गः धीमहि**। सामान्य लोग कहते हैं कि **सवितुः देवस्य**में सामानाधिकरणमें षष्ठी है। दोनों षष्ठी हैं, पर एक विशेषण है और एक विशेष्य है। सवितारूप जो देवता हैं, उनके वरेण्य तेजका हम ध्यान करें—ऐसा साधारण लोग कहते हैं। पर हम कह रहे हैं कि यहाँ व्यधिकरणमें षष्ठी है और दोनोंमें संबन्ध षष्ठी है—**सवितुर्देवस्य तद्वरेण्यं भर्गो धीमहि**। सवितारूप देवता नहीं, प्रत्युत सविताके भी जो देवता हैं—सविता माने सूर्यनारायण। यहाँ बहुत अच्छे-अच्छे विद्वान् लोग भी हैं, पर मैं प्रतिज्ञा करके आया हूँ कि इस बार मेरी कथाका यदि एक भी अक्षर आपको समझमें नहीं आये, तो बता दीजियेगा मैं फिर व्याख्या करूँगा, क्योंकि मैं जगद्गुरु हूँ और प्रत्येक हिन्दू मेरा श्रोता है। मैं कोई नचनिया-गवैया तो हूँ नहीं। इस **सवितुः देवस्य**में सवितारूप देवता नहीं। किसके तेजका हम ध्यान करें? जो सविताके भी देवता हैं। सूर्यनारायणके भी देवता कौन हैं? रामचन्द्रजी—

सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम्।
नमामि पुण्डरीकाक्षममेयं गुरुतत्परम्॥

(रा.स्त.स्तो. ५०)

रामजी सीताजीके साथ सूर्यमण्डलके बीचमें विराजते हैं। कभी-कभी लोग कहते हैं कि हनुमान्‌जी तो **ज्ञानिनामग्रगण्यम्** (मा. ५ म.श्लो. ३) हैं, पर उनका बालचरित्र देखकर लगता

है कि क्या ज्ञानी हैं वे? इतना तो कम-से-कम उनको विवेक होना चाहिए था, सूर्यनारायणको मुँहमें भर लिया—

जुग सहस्त्र जोजनपर भानू। लील्यो ताहि मधुर फल जानू॥

(ह.चा. १८)

अर्थात् जो इतने उपर सूर्यनारायण हैं—युग (१२ हजार योजन) सहस्त्र, अर्थात् १२,०००,००० योजन। चारों युगों (संध्या और संध्यांश)को मिलाकर संख्या १२ हजार (देववर्ष) हो जाती है [देखें—**एतद्वादशसाहस्त्रं देवानां युगमुच्यते** (म. स्मृ. १.७१)पर मनुभाष्यमें मेधातिथि व कुल्लूकभट्टकी टीका]। अद्भुत है कि हनुमान्‌जी सूर्यनारायणको निगल गये मधुर फल जानकर। इसके दो उत्तर हैं—(१) एक उत्तर यह है कि हनुमान्‌जी जानते हैं कि सूर्यनारायणके मण्डलके मध्यमें सीतारामजी रहते हैं। अत: मुँहमें भर लिया और बस!—"हे सूर्यनारायण! आप अपने मण्डलवाले सीतारामको मेरे हृदयमें विराजमान करा दीजिये। फिर मैं आपको उगल देता हूँ।" और वही हुआ। सूर्यनारायण मण्डलसे सीताराम हनुमान्‌जीके हृदयमें आ गये और सूर्यनारायणको हनुमान्‌जीने उगल दिया—

जासु हृदय आगार बसहिं राम शर चाप धर॥

(मा. १.१७)

कहाँ हनुमान्‌जीने मूर्खता की? उनको बहुत ज्ञान है।

(२) और अब कहा यह जाता है कि NASAके वैज्ञानिकोंने सूर्यमण्डलसे निर्गत तरंगोंका त्वरण कर उसकी ध्वनिको रिकॉर्ड किया तो पाया गया कि वह ॐके समान है। ॐ भगवान् राम ही हैं। **अ**कार हैं लक्ष्मणजी, **उ**कार हैं शत्रुघ्नजी, **म**कार हैं भरतजी और अर्द्धमात्रा हैं रामजी—

धरे नाम गुरु हृदय बिचारी। बेद तत्त्व नृप तव सुत चारी॥

(मा. १.१९८.१)

इसलिए गायत्रीमें दो बातें कही गयीं हैं—(१) **तत्सवितुर्देवस्य वरेण्यं भर्गो धीमहि**—सूर्यनारायणके देवताके श्रेष्ठ तेजका ध्यान करें—जो सूर्यनारायणके देवता भगवान् राम हैं, तथा (२) **धियो यो नः प्रचोदयात्**—हमारी बुद्धियोंको बुरे कार्योंसे हटाकर अच्छे कार्योंके लिए प्रेरित करें। इसी प्रकार श्रीरामकथाके भी दो अंश हैं। जब गोस्वामीजीसे पूछा गया—"आपकी श्रीरामकथामें क्या प्रकट है?" तो वे कहते हैं—

जदपि कबित रस एकउ नाहीं। राम प्रताप प्रगट एहि माहीं॥

(मा. १.१०.७)

गोस्वामीजी कहते हैं कि यद्यपि मेरे श्रीरामचरितमानसमें कविताका एक भी रस नहीं है, इसमें विषयरसकी चर्चा ही नहीं कर रहा हूँ। तो प्रश्न उठता है—"फिर इतना बड़ा ग्रन्थ लिख क्यों रहे हैं?" गोस्वामीजीने कहा—इसमें तो रामजीका प्रताप प्रकट है—**राम प्रताप प्रगट एहि माहीं** (मा. १.१०.७)। प्रतापका अर्थ क्या होता है?—तेज। **तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि** अर्थात् रामजीका भर्ग प्रकट है, जो वरेण्य यानी श्रेष्ठ है; जो **भूर्भुवः स्वः ॐ** है, **ॐ** है, सबका पालक है, जो भूलोकमें, भुवर्लोक (अन्तरिक्ष-लोक)में, स्वर्लोक (स्वर्गलोक)में, **तत्** यानी व्यापक, सर्वत्र व्याप्त है, वह रामजीका प्रभाव तीनों लोकोंमें व्याप्त है—

रबि मंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रिभुवन तम भागा॥

(मा. १.२५६.८)

इस कथामें गोस्वामीजी कहते हैं कि रामजीका प्रकाश प्रताप प्रकट है। यही है सविताके देवताका वरेण्य भर्ग। यह भर्ग है, *तेज* यहाँ नहीं कहा जानकर; **तेजः** नहीं कहा, **भर्गः** कहा। तेज नहीं है, यह तो भर्ग है। *भृज्जति इति भर्गः*—जो बुराइयोंको भून डालता है, उसे कहते हैं भर्ग। रामजीका भर्ग यानी प्रताप कितनी वस्तुओंको भून डालता है? गोस्वामीजीने कहा—"कम-से-कम सात वस्तुओंको।" रामचरितमानसके बालकाण्डका ३२वाँ (क) दोहा देखिये। हमारी कथामें तो रामायण भी लेकर बैठा कीजिये। हमारे यहाँ तो रामायण छपी है बहुत प्रामाणिक—रामचरितमानस तुलसीपीठका विजय-संस्करण। लोगोंने मुझपर मुकदमा चलाया था इसको लेकर कि जगद्गुरुजीने पाठमें छेड़छाड़ की है। बहुत सताया भिन्न-भिन्न लोगोंने, नाम लेना ठीक नहीं है। लखनऊ खण्डपीठकी डिवीजन बेंचने मेरे अनुकूल निर्णय दे दिया कि जगद्गुरुजीकी रामायण बिल्कुल प्रामाणिक है और इनपर बीस हजार रुपयेका दण्ड लगाया। और कहा कि अब विरोध करोगे, तो गैर जमानती वॉरण्ट निकलेगा और कमसे कम छः महीने जेलका आनन्द हो जायेगा। तो देखिये मैं क्या कह रहा था? भर्ग या प्रताप कितनी वस्तुओंको भूनता है? सात वस्तुओंको। इतना अच्छा भूनता है कि खाने लायक नहीं, खाक कर देता है, जला डालता है—*भृज्जति इति भर्गः*। कौन-सी वस्तुओंको?—

कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाखंड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड॥

(मा. १.३२क)

इन सात वस्तुओंको श्रीरामकथा जलाती है, यही भर्ग है। गोस्वामीजीसे पूछा गया कि आपने रामायणजीमें सात काण्ड क्यों लिखे? उन्होंने उत्तर दिया कि इसलिए लिखे क्योंकि मेरी कथाका एक-एक काण्ड एक-एक वस्तुको जलायेगा—

(१) **बालकाण्ड**—यह काण्ड **कुपथ**को जलाता है।

(२) **अयोध्याकाण्ड**—यह काण्ड **कुतर्क**को जलाता है।

(३) **अरण्यकाण्ड**—यह काण्ड **कुचालि**को जलाता है।

(४) **किष्किन्धाकाण्ड**—यह काण्ड **कलि** अर्थात् झगड़ेको जलाता है।

(५) **सुन्दरकाण्ड**—यह काण्ड **कपट**को जलाता है। इसलिए भगवान् कहते हैं—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

(मा. ५.४४.५)

सुन्दरकाण्डकी यह चौपाई रामजी द्वारा कही जा रही है। सुन्दरकाण्ड कपट, छल, छिद्रको जलाता है।

(६) **युद्धकाण्ड**—यह काण्ड **दंभ**को जलाता है।

(७) **उत्तरकाण्ड**—यह काण्ड **पाखंड**को जलाता है।

यह भर्ग है, इस भर्गका ध्यान करें। जो इन सातों बुराइयोंको भून डालता है—*भृज्जति*। *भ्रस्ज पाके*। *भृज्जति इति भर्गः*। **यो नः धियः प्रचोदयात्** अर्थात् जो हमारी **धियः** यानी बुद्धियोंको

प्रेरित करे। बहुवचन **नः** क्यों कहा गायत्रीमें? तीन प्रकारके जीव होते हैं—(१) विषयी, (२) साधक, (३) और सिद्ध। अतः सबकी बुद्धियोंको प्रेरित करें। भगवान् तीनोंकी बुद्धियोंको प्रेरित करते हैं। सिद्धोंकी भी बुद्धिको प्रेरित करते हैं, साधकोंकी बुद्धिको भी शुद्ध करते हैं, और विषयीको तो शुद्ध करते हैं ही—

बिषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने॥
राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभा बड़ आदर तासू॥

(मा. २.२७७.३–४)

तो गोस्वामीजीने कहा—"ऋषि वाल्मीकि! आपने केवल २४ अक्षरोंकी व्याख्या की, ६ अक्षर छूट गये।" **ॐ भूः भुवः स्वः** और अगला **ॐ**—ये ६ अक्षर छूट गये। अतः २४ और ६ = ३०, ऐसी ३० कथाएँ गोस्वामीजीने कहीं। एक-एक अक्षरकी व्याख्या की। गोस्वामीजीने ३० कथाओंके माध्यमसे गायत्रीजीके कुल ३० अक्षरोंकी व्याख्याको पूर्ण कर दिया।

कथा १: निज संदेह ... हरनी (मा. १.३१.४)

आइये आगे चलें! कथाका प्रारम्भ करते हैं। जब गोस्वामीजीने कहा—

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥

(मा. १.३०क)

तो लोगोंने पूछा—"आपने अपने गुरुदेवसे कौन-सी कथा सुनी?" गोस्वामीजी कहते हैं—"मेरे गुरुदेवने मुझे ३० दिनोंके आधारपर ३० कथाएँ सुनायीं, वे ३० कथाएँ मैं लिखने जा रहा हूँ।" आगे ३१वें दोहेकी चौथी पङ्क्तिसे गोस्वामीजीने कहना प्रारम्भ किया। गोस्वामीजी अपनी कथाकी विषयसूची (अनुक्रमणिका) बता रहे हैं।

निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥

(मा. १.३१.४)

चारों वक्ताओंकी दृष्टि उपस्थित हो रही है यहाँ। चार वक्ता हैं हमारे मानसजीमें। चार घाट हैं—

(१) **शरणागति घाट**—इसे *गऊ घाट* भी कहते हैं। इसके वक्ता हैं गोस्वामीजी, श्रोता हैं सभी संत और मन।

(२) **कर्म घाट**—इसे *पंचायती घाट* भी कहते हैं। इसके वक्ता हैं याज्ञवल्क्यजी और श्रोता भरद्वाजजी।

(३) **ज्ञान घाट**—इसे *राजघाट* भी कहते हैं। इसके वक्ता हैं शिवजी और श्रोता हैं भगवती पार्वतीजी।

(४) **उपासना घाट**—इसको भाषामें *जनानाघाट* या *पनघट* भी कहते हैं। यहाँ पुरुष स्नान नहीं करते, महिलाएँ करती हैं। हमारे यहाँ पहले अनुशासन था। इसीलिए हमारी कथामें कहा जाता है कि महिलाएँ जिन पङ्क्तियोंमें बैठती हैं वहाँ पुरुषोंको नहीं बैठना चाहिए और पुरुष जिन

पङ्क्तियोंमें बैठते हैं वहाँ महिलाओंको नहीं बैठना चाहिए। बहुत पाप लगता है। यहाँ तो महिलाएँ ठेल-पेलकर पुरुष वाली पङ्क्तियोंमें जाकर बैठ जाती हैं। यह ठीक नहीं है।

पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना॥

(मा. ७.२९.२)

यह सभ्यता है। पनघटपर पुरुष कभी नहीं जाता था स्नान करनेके लिए। इस पनघटके, भक्ति घाटके, वक्ता हैं भुशुण्डिजी और श्रोता हैं गरुडजी।

तो गोस्वामीजी पहले अपने घाटसे प्रारम्भ कर रहे हैं, क्योंकि शरणागतिसे सारे सद्गुण आ जाते हैं जीवमें। यथा—

भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम्॥

(भा.पु. ११.२.४२)

भागवतमें कहा गया है कि भक्ति, भगवदनुभव, और विरक्ति सब शरणागतिसे प्राप्त हो जाते हैं। अतः पहला घाट गोस्वामीजीका शरणागति घाट है।

वर्णानामर्थसङ्घानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥

गोस्वामीजी वाणी-विनायककी वन्दना करते हैं। सरस्वती और गणपतिकी वन्दनाएँ तो साधारण अर्थ है। वस्तुतः यहाँ वाणी माने सीताजी और विनायक माने विशिष्ट नायक भगवान् श्रीराम, इनकी वन्दना कर रहे हैं। क्यों? गोस्वामीजी कहते हैं—हे भगवन्! हमारे राष्ट्रमें आज पाँचोंपर संकट है—

(१) **वर्णानाम्**—आज वर्णोंपर संकट है; वर्ण व्यवस्था चूर्ण-मूर्ण हो रही है, तहस-नहस हो रही है। शासक भी वोट बैंकमें पक्षपात कर रहे हैं, उन्हींका पक्ष ले रहे हैं जो आतङ्कवादियोंके सरगने हैं। हमारा पक्ष कौन ले रहा है? कहूँ तो बहुत कुछ है कहनेको। हज यात्रामें कितनी सब्सिडी दी जा रही है! आज हमारे हिन्दू आये दिन बद्रीनाथ, केदारनाथमें मर जाते हैं। क्या सब्सिडी दी गयी उनको? मानसरोवरकी यात्रामें क्या सब्सिडी दी गयी उनको? कुछ नहीं दिया गया। अभी गाजियाबादमें बहुत बड़ा हज हाऊस बनाया गया और जो पचास करोड़ रुपया लगा वह हमारा लगा। इनके बापका लगा क्या? हमारा ही तो रुपया लगा है, और किसका लग रहा है? हज हाऊस बना रहे हैं आप, पर हमारे यहाँ हिन्दू जो तीर्थमें मरते हैं उनका क्या होता है? चार-धाम हाऊस आपने क्यों नहीं बनाया, मानसरोवर हाऊस क्यों नहीं बनवाया? कहा किसे जाए? **जवरा मारे रोए न देय**। पर अब नहीं चलेगा। गोस्वामीजीने कहा—"हे भगवन्! हमारे वर्णाश्रमपर संकट है।"

(२) **अर्थसङ्घानाम्**—हमारी आर्थिक परिस्थितिमें संकट है। अब तो, हमारे यहाँ गोमांसके निर्यातपर छूट दे दी गयी। अब तो खुलेआम निर्यात हो रहा है मांस का। यही परिस्थिति रही तो हमारा पशुधन समाप्त हो जायेगा, यहाँ पशु देखनेको नहीं मिलेंगे। चारों ओरसे हमारी स्थिति चरमरा रही है, हमारे अर्थपर संकट है।

(३) **रसानाम्**—हमारे रस (आनन्द)पर संकट है, हम आनन्दित नहीं हो पा रहे हैं।

(४) **छन्दसाम्**—वेदोंपर संकट है। वैदिक संस्कृतिको कहाँ बढ़ावा दिया जा रहा है?

(५) **मङ्गलानाम्**—हमारे मङ्गलपर संकट है।

हे भगवन्! हमारे इन पाँचों संकटोंको दूर कीजिये।

इसीलिए गोस्वामीजीने कहा कि हम रामजीकी पाँच लीलाओंका वर्णन करेंगे। ये पाँच लीलाएँ हमारे पाँचों संकटोंको दूर कर देंगीं—

(१) **बाल-लीला**—इस लीलासे **वर्णानाम्** वर्णाश्रम-संकट दूर होगा। (२) **विवाह-लीला**—इस लीलासे **अर्थसङ्घानाम्** अर्थ-संकट दूर होगा। (३) **वन-लीला**—इस लीलासे **रसानाम्** रसोंका संकट दूर होगा। (४) **रण-लीला**—इस लीलासे **छन्दसाम्** छन्दका (वेदोंका) संकट दूर होगा। (५) **राज्य-लीला**—इस लीलासे **मङ्गलानाम्** मङ्गलोंका संकट दूर होगा।

वर्णानामर्थसङ्घानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥

अब गोस्वामीजी सरस्वती और गणपतिका भी वन्दन करते हैं। साथ-साथ वाणी माने ब्रह्माणी, बृहती वाणी सीताजीका, एवं विशेषनायक धीरोदात्त नायक श्रीरामचन्द्रजीका वन्दन करते हैं।

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥

(मा. १ म.श्लो. २)

हमारे जीवनमें श्रद्धा नहीं रही आज। वैदिक धर्मके प्रति आस्था भी नहीं है, विश्वास भी नहीं है। इससे—**भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ**। हे भगवन्! हमारे श्रोताओंके मनमें वैदिक धर्मके प्रति आस्था जगाइये और वैदिक धर्मके प्रति विश्वास जगाइये।

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते॥

(मा. १ म.श्लो. ३)

आजकल तो गुरुओंकी बाढ़ लग गयी है। सब गुरु बनते फिर रहे हैं भईया!

गली-गली गुरु फिरत हैं मोते दीक्षा लेओ।

और,

धोती लोटा कुरता बीस रुपैया देओ॥

आजकल दीक्षा देना बड़ा सरल हो गया है, सभी दीक्षा दे रहे हैं। माईकपर १२० रुपये जमा कराकर दीक्षा दी जा रही है। पर गुरु कौन हो सकता है? जो बोधमय हो, सारे पुराणों, वेदोंका जिसे ज्ञान हो। गुरु शङ्करजीके समान श्रीरामभक्त होना चाहिए।

शिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी॥
पन कर रघुपति भगति दृढ़ाई। को शिव सम रामहिं प्रिय भाई॥

(मा. १.१०४.७–८)

गुरु शङ्करको बुलाओ, शङ्करजीके समान गुरु होना चाहिए।

तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥

(मा. १.१०८.७)

एक बार किसीने शिवजीसे ये प्रश्न किये—

(१) "क्यों भगवन्! आप सचमुच भोले भण्डारी हैं? अरे! जिस चन्द्रमाको दक्षने श्राप दे दिया, कितना दुष्ट शशि! **शशि गुरु तिय गामी ...** (मा. २.२२८), जो गुरुपत्नीगामी, गुरुपत्नीपर जिसकी दृष्टि चली गयी—ऐसे कलङ्कित चन्द्रमाको माथेपर धारण कर लिया आपने?" यहाँ शिवजीका उत्तर बहुत विमल है, सुनने लायक है। शिवजीने कहा—"देखिये! मेरी दृष्टि चन्द्रमाके किसी अवगुणपर नहीं गयी। चन्द्रमामें एक सद्गुण है।" "क्या सद्गुण है?" बोले—"मेरे प्रभुके नामका उत्तरार्द्ध चन्द्रमासे जुड़ा है। रामचन्द्र मेरे प्रभु हैं, उनके नामका उत्तरार्द्ध *चन्द्र* है, अतः उसे मैंने अपने मस्तकपर चढ़ा लिया।" बोलिये भक्तवत्सल भगवान्की जय! इतना कोई भगवान्का भक्त होगा?—**श्रीरामचन्द्र रघुपुङ्गव राजवर्य** (रा.स्त.स्तो. ९५)! कितना सुन्दर!!

(२) "श्रीगङ्गाको मस्तकपर क्यों रखा? गङ्गाजी तो भगवान्की चरणोदक हैं।"—आगे चलकर भगवान् गङ्गाको पार करेंगे रामावतारमें, इसलिए गङ्गाको मस्तकपर रख लिया।

(३) "और तीन-तीन नेत्र क्यों भगवन्?"—(क) अग्नि नेत्र, (ख) सूर्य नेत्र, और (ग) चन्द्र नेत्र—ये तीन हमारे रामजीके नामसे प्रकट हुए हैं। **र**से अग्नि प्रकट होती है, **आ**से सूर्यनारायण प्रकट होते हैं, **म**से चन्द्रमा प्रकट होते हैं—**हेतु कृशानु भानु हिमकर को** (मा. १.१९.१) इसलिए इनको मस्तकपर रख लिया।

शिव समको रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी॥

(मा. १.१०४.७)

कितना सुन्दर! **यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते** (मा. १ म.श्लो. ३) क्या सुन्दर, अरे! शिवजीको पाकर द्वितीयाका चन्द्रमा आज पूजित हो गया। उसी प्रकार यदि गुरुदेवका आश्रय ले लें, तो जीवनमें जो टेढ़ा शिष्य है उसकी उसी प्रकार पूजा होगी जैसे शङ्करजीके मस्तकपर द्वितीयाके चन्द्रमाकी पूजा होती है। शिष्यको गुरु माथेपर चढ़ा लेता है।

गुरुदेव परम कृपालु रे। भज मन श्रीगुरुचरणम्॥
गुरुदेव दीन दयालु रे। भज मन श्रीगुरुचरणम्।
श्रीगुरुचरणं भवभयहरणम्।
गुरुदेव परम कृपालु रे। भज मन श्रीगुरुशरणम्॥
श्रीगुरुचरणं मङ्गलकरणम्।
गुरुदेव दीनदयालु रे। भज मन श्रीगुरुचरणम्॥

बोलो गुरुदेव भगवान्की जय-जय हो! बोलो शङ्करजीकी जय!! शङ्कर रूपमें हैं गुरुदेव। शङ्करजी संहार करते हैं, उसी प्रकार गुरुदेव शिष्योंके दोषोंका संहार कर देते हैं। जिस प्रकार शङ्करजी व्यक्तिको रामजीसे मिला देते हैं, उसी प्रकार गुरुदेव व्यक्तिको रामजीसे मिला देते हैं।

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥

(मा. १ म.श्लो. ४)

सीतारामजीके गुणग्राम रूप वनमें दो लोग विहार करते हैं—(१) **कवीश्वर**—वाल्मीकिजी और (२) **कपीश्वर**—हनुमान्‌जी। इन दोनोंका विज्ञान माने अनुभव विशुद्ध है, परमपवित्र है। वो मेरा गीत है ना—

एक पी-पी करके गाता है एक गा-गा करके पीता है। २
इक जी-जी करके गाता है इक गा-गा करके जीता है॥ २

संस्कृतमें वाल्मीकिको *पिक* कहते हैं। क्या कहते हैं? *पिक*—**वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्** (रा.र.स्तो. ३४) और हनुमान्‌जीको कपि कहते हैं। और दोनोंको देखो तो एक दूसरेका उल्टा है। *पिक:* का उल्टा क्या है? *कपि:*। और *कपि:* का उल्टा क्या है? *पिक:*। *पिबन् कायति* का अर्थ है—पीते-पीते गाता है और *कायन् पिबति*—गाते-गाते पीता है। एक भगवान्‌के ऐश्वर्यका गान करता है, दूसरा भगवान्‌के माधुर्यका गान करता है। वाल्मीकिजी भगवान्‌के माधुर्यका गान करते हैं, हनुमान्‌जी भगवान्‌के ऐश्वर्यका गान करते हैं। पर सौन्दर्य दोनोंमें रहता है।

अब गोस्वामीजी सीताजीकी स्तुति करते हैं—

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥

(मा. १ म.श्लो. ५)

उद्भवस्थितिसंहारान् कारयति। सीताजी क्या करती हैं? (१) **उद्भव-कारिणीम्**—सीताजी ब्रह्माजीसे जीवकी उत्पत्ति कराती हैं। ब्रह्माजीको शक्ति देकर जीवकी उत्पत्ति कराती हैं, (२) **स्थिति-कारिणीम्**—सीताजी विष्णुजीको शक्ति देकर जीवका पालन कराती हैं, (३) **संहार-कारिणीम्**—सीताजी शङ्करजीको शक्ति देकर जीवका संहार कराती हैं, और (४) **क्लेशहारिणीम्**—सीताजी रामजीसे प्रार्थना करके जीवका क्लेश हरवा लेती हैं। तो भक्तोंने कहा—"सीताजी चार लोगोंसे चार काम करवा लेती हैं, स्वयं क्या करती हैं?" तो (५) **सर्वश्रेयस्करीम्**—सीताजी जीवका कल्याण स्वयं करती हैं। उपनिषद्‌में श्रेय और प्रेय दो बातें कहीं गयीं हैं—(१) यदि प्रेय चाहिए तो संसार मिलेगा, (२) यदि श्रेय चाहिए तो श्रीराघवेन्द्र सरकार मिलेंगे। सीताजी जीवको किसीको नहीं सौंपतीं। कहती हैं—"बेटा! तुमको यदि श्रेय चाहिए तो तुम रामजीके चरणोंमें चलो। मैं तुम्हारी सहायता करूँगी।" तो सीताजी **सर्व**का, सबका श्रेय करती हैं। इसपर मेरा कीर्तन है न—

मन भूल मत जइयो, सीता रानीके चरण।
मन भूल मत जइयो, सीता रानीके चरण॥
सीता रानीके चरण, बहूरानीके चरण।
सीता रानीके चरण, बहूरानीके चरण॥
मन भूल मत जइयो, सीता रानीके चरण।
मन भूल मत जइयो, सीता रानीके चरण॥
सीता रानीके चरण, महारानीके चरण।
सीता रानीके चरण, महारानीके चरण।

सीता रानीके चरण, पटरानीके चरण।
सीता रानीके चरण, पटरानीके चरण।
सीता रानीके चरण, राधा-रानीके चरण।
मन भूल मत जइयो, सीता रानीके चरण।
मन भूल मत जइयो, सीता रानीके चरण॥

श्रीसीता महारानीजूकी जय हो! **नतोऽहं रामवल्लभाम्**—गोस्वामीजी कह रहे हैं कि ऐसी सीताजीको मैं नमन करता हूँ। अपनी कथाका प्रारम्भ करेंगे गोस्वामीजी। कहते हैं—

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः।
यत्पादः प्लव एक एव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥

(मा. १ म.श्लो. ६)

वन्देऽहं रामाख्यमीशं हरिम्—राम ही जिनका नाम है ऐसे हरि, ईश्वर भगवान् रामजीको मैं वन्दन करता हूँ। कौन से हरि? तो, **यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा**। सारा संसार—ब्रह्मादि देवता, असुर—ये सब जिनकी मायाके वशमें हैं; **यत्सत्त्वात्**—जिनकी सत्तासे; **अमृषैव भाति सकलं**—*अमृषा सर्वं सकलं यत्सत्त्वादेव भाति*—यद्यपि संसार सत्य है, परंतु भगवान्के प्रकाशके बिना प्रकाशित नहीं होता—

जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू। मायाधीश ग्यान गुन धामू॥

(मा. १.११७.७)

इतना ही नहीं! **रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः**—जैसे साँपमें रस्सीका भ्रम भी प्रकाशित होता है प्रकाशके कारण; यदि आँखमें प्रकाश न हो तो क्या आप रस्सीको समझ सकेंगे? उनके प्रकाशसे तो सभी प्रकाशित हैं—असत् पदार्थ भी और सत् पदार्थ भी।

जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥

(मा. १.११७.८)

और भी, **यत्पादः प्लव एक एव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां**—संसार-सागरसे पार करने वालोंके लिए, जिनके मनमें संसार सागरको पार करनेकी इच्छा है, उनके लिए भगवान्का चरण ही एकमात्र जहाज है और कोई जहाज नहीं। बस, भगवान्के चरण हम पकड़ लें; वे हमें डूबने नहीं देंगे। **तमशेषकारणपरं**—जो सभी कारणोंसे परे हैं, ब्रह्माजीसे भी परे हैं, विष्णुजीसे भी परे हैं, शङ्करजीसे भी परे हैं—ऐसे रामजीको मैं वन्दन करता हूँ।

पाँच देवताओंकी वन्दना की गोस्वामीजीने—(१) गणपति, (२) सूर्य, (३) विष्णु, (४) पार्वतीजी, और (५) शिवजीकी। क्योंकि उनकी दृष्टिमें सब राममय हैं। मिथिलाके प्रकरणमें कहेंगे कि रामजीके दर्शनमें पाँचों देवताओंके दर्शन हो जाते हैं, ये भगवान्के पाँचों अङ्ग हैं—

कुंजर मनि कंठा कलित उरनि तुलसिका माल।
बृषभ कंध केहरि ठवनि बल निधि बाहु बिसाल॥

(मा. १.२४३)

गोस्वामीजी प्रतिज्ञा करते हैं।

निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥

(१) **निज संदेह हरनी**—मैं यह जो कथा कह रहा हूँ, वह मेरे सन्देहको दूर कर रही है। (२) **मोह हरनी**—याज्ञवल्क्यजीकी जो कथा है, वह मोहको दूर करेगी। (३) **भ्रम हरनी**—शिवजीकी जो कथा है, वह भ्रमको दूर करेगी और (४) **भव सरिता तरनी**—भुशुण्डिजीकी जो कथा है, वह भव सरिताकी नाव है।

गोस्वामीजीको एक ही सन्देह है। वे कहते हैं—"मैं श्रीरामकथा कैसे गाऊँगा?" कवि ने—**निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं, ताते बिनय करउँ सब पाहीं** (मा. १.८.४) कहा। उनको सन्देह है—"रामजीके दिव्य चरित्रको मैं कैसे कह सकूँगा?"

कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरतसंसारा॥

(मा. १.१२.१०)

"कहाँ रामचन्द्रजीके अपार-चरित्र और कहाँ संसारमें फँसी मेरी बुद्धि!" इसीलिए सारे विघ्नोंको दूर करनेके लिए मङ्गलाचरण किया। और आप जानते हैं कि आजतक किसी कविने इतना बड़ा मङ्गलाचरण नहीं किया। कोई करे! २० श्लोक कर लिया, बहुत कर लिया। कादम्बरीकारने भी २० श्लोकोंमें मङ्गलाचरण किया है, तो भी उनकी कादम्बरी पूरी नहीं हुई। इतना मङ्गलाचरण तो किसीने किया ही नहीं। अब बहुतसे मङ्गलाचरणका फल मिला, इतना प्रचार भी आजतक किसी ग्रन्थका हुआ नहीं जितना रामचरितमानसका हुआ।

पाँचों देवताओंकी प्रार्थना कर ली। गुरुदेवकी प्रार्थनाकी—"भगवन्! आप कृपा कीजिये।" संतोंकी प्रार्थना की और दुष्टोंकी प्रार्थनाकी कि तुमलोग विघ्न मत डालना। दुष्ट बहुत विघ्न डालते हैं, बिना कारण। अन्तमें कह दिया कि मैं संपूर्ण संसारको सीताराममय जानता हूँ—**सीयराममय सब जग जानी** (मा. १.८.२)। यहाँ *मयट्* प्रत्यय *आगत* अर्थमें हुआ है। कहते हैं कि संपूर्ण नारीवर्ग सीताजीके पाससे आया, पुरुषवर्ग रामजीके पाससे आया। अत:—

सीयराममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुगपानी॥

(मा. १.८.२)

इतना बड़ा भक्त कौन होगा?

"क्यों लिख रहे हैं आप श्रीरामकथा?" तो गोस्वामीजीने कहा—बात ऐसी है कि आपने इतिहास तो पढ़ा होगा। नालन्दा विश्वविद्यालय और तक्षशिला विश्वविद्यालयके पुस्तकालयोंमें जब विधर्मियोंने आग लगायी तो छ: महीने पर्यन्त आग जलती रही। सारी पुस्तकें जलकर खाक हो गयीं, राख हो गयीं। यह तो कतिपय पुस्तकोंको ही हमारे पूर्वज ब्राह्मणोंने अपनी जांघोंमें काट-काटकर सिलकर रखा। आज ब्राह्मणोंको बहुत गालियाँ दी जाती हैं, बहुत गालियाँ; पर आज यदि हमारा ब्राह्मण-समाज न होता तो कुछ भी न बचता। ये तो अब ब्राह्मण बौरा गये हैं, और पश्चिमी-उत्तर प्रदेशमें तो ९९%से भी अधिक ब्राह्मणोंके कन्धोंपर जनेऊ नहीं होता। ये लक्षण ठीक नहीं हैं। हमें फिर, एक बार फिर, अपने धर्मपर तत्पर हो जाना चाहिए। फिरसे **ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ**की गुंजार हो जानी चाहिए। तो देखिये, गोस्वामीजीने कहा—"जितने ग्रन्थ जल गये हैं, उन सबको मैं फिर

उज्जीवित करूँगा।" वे तो वाल्मीकि हैं न; तो वाल्मीकिजीको तो सब ग्रन्थोंका ज्ञान है। पूरे ग्रन्थ जो भी जल गये थे, सारे ग्रन्थोंके सार तत्त्वको रामचरितमानसमें लाकर भर दिया गोस्वामीजीने। बोले—"जाओ कितना जलाओगे? ऋषियोंकी प्रज्ञाको तो तुम नहीं जला सकते!" वे कह रहे हैं कि मेरी कविता तो श्मशानकी विभूति है, राख है—**भव अंग भूति मसान की** (मा. १.१०.११), वह रामजीके स्वरूप संर्कषके शरीरमें लग गयी, धन्य हो गयी।

मंगलकरनि कलिमलहरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की॥
प्रभु सुजश संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥

(मा. १.१०.११)

अर्थात् मेरी (तुलसीदासजीकी) यह कथा **मंगलकरनि** है। यह **कलिमलहरनि** है, कलिमलको नष्ट करेगी। मेरी कविता गङ्गाजीके प्रवाहकी भाँति है। **गति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की** गङ्गाजीका प्रवाह टेढ़ा है, वक्र गतिसे बहती है, पर जगत्‌को धन्य करती है। उसी प्रकार मेरी कविता भले ही टेढ़ी हो, पर गङ्गाजीके प्रवाहकी भाँति ही जीवकी दिशाको भी बदलेगी और दशाको भी। मैं मानता हूँ कि मेरी कविता मसानकी राख है। श्मशानकी राख अपवित्र होती है पर वह जब शङ्करजीके शरीरमें लग जाती है, तब तो पवित्र हो जाती है। उसी प्रकार मेरी कविता जब रामजीसे मिल गयी, तो निश्चय ही मैं धन्य-धन्य हो गया! आहा!

निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥

(मा. १.३१.४)

गोस्वामीजीने सबकी वन्दना कर डाली और कहा—"सब लोग आशीर्वाद दें मुझे।" देखिये! बहुत भक्त हैं गोस्वामीजीके, रामजी के। एक छोटी-सी बात कहूँ! एक बार गोस्वामीजी श्रीअवधमें, श्रीसरयूजीमें स्नान करने आये। उसी समय एक महिला आयी। उसे स्नान करना था। उसने गोस्वामीजीसे कहा—"बाबा! आपको आपके रामजीकी शपथ। जबतक मैं न कहूँ, पीछे मुड़कर न देखियेगा और न ही बाहर आइयेगा।" गोस्वामीजी बोले—"ठीक है।" तो उस महिलाने स्नान कर लिया, परंतु स्नान करनेके पश्चात् वह कहना भूल गयी कि बाबा बाहर निकल आइये। स्नान करके, कपड़े धारण कर वह चली गयी। कड़ाकेकी ठंड, पौषका महीना और गोस्वामीजी खड़े रह गये—"जब मेरे रामजीकी शपथ दी है, तब तो जब ये बोले तब मैं बाहर निकलूँ।" पूरी रात खड़े रहे गोस्वामीजी! सवेरा हुआ। अयोध्याके राजाने पता लगवाया कि गोस्वामीजी हैं कहाँ? सेवकोंने आकर बताया कि महाराज! वे तो सरयूजीमें खड़े हैं। राजाने पूछा—"क्यों खड़े हैं?" तब सेवकोंने कहा—"एक महिलाने शपथ दे दी थी कि जबतक मैं न कहूँ, बाहर न निकलियेगा।" राजाने पूछा—"नाम क्या था उसका?" तुलसीदासजीने कहा—"नाम मैं नहीं जानता।" अब बतायें, और समस्या हो गयी। और उन्होंने (गोस्वामीजीने) कहा—"जबतक वह महिला नहीं कहेगी तबतक भले मर जाऊँ; बाहर नहीं निकलूँगा, उसने मुझे मेरे रामजीकी शपथ दी है।" जब पूरी अयोध्यामें महिलाको ढूँढनेमें टाईम लगा तब ढिंढोरा

पिटवाया गया कि कौन महिला गोस्वामीजीसे मिली थी। अन्तमें वह महिला दोपहरतक मिली। उसने कहा—"मैं गोस्वामीजीसे मिली थी। मैंने उन्हें रामजीकी शपथ दी थी, परंतु मैं तो उनसे कहना भूल गयी। भगवन्! मुझे क्षमा करें।" लोगोंने कहा—"चल मूर्ख! चल अब तो कह दो गोस्वामीजीसे।" नारी सरयूजीके तटपर गयी और बोली—"बाबाजी! मुझसे भूल हो गयी। अब आप बाहर निकल आइये।" तो गोस्वामीजीने कहा—"बड़ी कृपा की आपने, इस बहाने सरयूमें खड़े रहनेका सौभाग्य मुझे मिला।" इतने रामभक्त थे। इतनी रामनाममें निष्ठा किसकी होगी? सीतारामजीकी तथा सबकी वन्दनाकी गोस्वामीजीने। चारों भ्राताओंकी वन्दना, हनुमान्‌जीकी वन्दना, सीतारामजीकी वन्दना। किसीने पूछा—"जब चारों भ्राताओंकी और सीताजीकी वन्दना कर ली, तो शेष तीनों बहूओंने—(१) माण्डवीजीने, (२) उर्मिलाजीने, (३) श्रुतिकीर्तिजीने—क्या बिगाड़ा था? उनकी वन्दना क्यों नहीं की आपने?" तो गोस्वामीजीने कहा कि भई! मैंने इनकी भी वन्दनाकी है; वहीं, सीताजीकी वन्दनामें—

जनकसुता जगजननि जानकी। अतिशय प्रिय करुना निधान की॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपा निरमल मति पावउँ॥

(मा. १.१८.७–८)

देखिये! यहाँ चार विशेषण दिए गये हैं—**जनकसुता**, **जगजननि**, **जानकी**, **अतिशय प्रिय करुना निधान की**।

(१) **जनकसुता**—इसमें **जनकसुता** शब्दका जो प्रयोग किया है गोस्वामीजीने—**मांडवी श्रुतकीरति उरमिला कुअँरि लई हँकारि कै** (मा. १.३२५.१२)—ये माण्डवीजी हैं, जनक वंशके राजा कुशकेतु (कुशध्वज)की बेटी हैं। तो माण्डवी **जनकसुता** हैं।

(२) **जगजननि**—श्रुतिकीर्तिजी शत्रुघ्नलालजीकी पत्नी हैं, ये **जगजननि** अर्थात् जगत्‌की माता हैं।

(३) **जानकी**—उर्मिलाजी जनकजीके गोत्रमें प्रकट (उत्पन्न) हुई हैं, अत: **जानकी** हैं।

(४) **अतिशय प्रिय करुना निधान की**—और सीताजी पृथ्वीसे प्रकट हुई हैं; इसलिए व्यवहारसे न तो वे जनकजीकी पुत्री हैं न ही कुछ। वे तो **अतिशय प्रिय करुना निधान**की हैं, वे तो रामजीको बहुत प्रिय हैं—

मन जाहिं राँचेउ मिलिहि सो बर सहज सुन्दर साँवरो।
करुना निधान सुजान शील सनेह जानत रावरो॥

(मा. १.२३६.९)

इसलिए चारोंकी वन्दना गोस्वामीजीने कर ली। **जनकसुता**से माण्डवीजी, **जगजननि**से श्रुतिकीर्तिजी, **जानकी**से उर्मिलाजी, और **अतिशय प्रिय करुना निधान की** कहनेसे सीताजीकी। तो, नाम-वन्दना—बहुत उज्ज्वल, बहुत विमल चर्चा। "क्या प्रधानता है आपकी कथामें?" गोस्वामीजी कहते हैं—मेरी कथामें भगवान्‌के स्वभावकी प्रधानता है—

प्रभु तरु तर कपि डारपर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न रामसे साहिब शीलनिधान॥

(मा. १.२९क)

इसलिए यहाँ गोस्वामीजी भगवान्‌की स्वभाव-प्रधान कथा कहेंगे।

संबत सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि शीसा॥
नौमी भौम बार मधु मासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

(मा. १.३४.४–५)

मङ्गलका दिन, चैत्र शुक्लकी नवमी, अयोध्या और—

बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥

(मा. १.३५.६)

और नाम पर लिखा—

रामचरितमानस एहि नामा। सुनत स्रवन पाइय बिश्रामा॥

(मा. १.३५.७)

"किसने नामकरण किया आपकी कथाका?" बोले—इसका नामकरण करने स्वयं शङ्करजी आये—

रचि महेश निज मानस राखा। पाइ सुसमय शिवा सन भाखा॥
ताते रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर॥

(मा. १.३५.११–१२)

मैंने कहा—"महाराज मेरे ग्रन्थका नामकरण करेंगे?" स्वयं शङ्करजीने हृदयमें विचार करके कहा—"बिल्कुल करूँगा।" शङ्करजीने आकर मेरे ग्रन्थका नाम रामचरितमानस किया और पूरा मानसका रूपक सुनाया। रामचरितमानसमें वही गुण है जो मानसमें है, मानसरोवरमें है। यहाँ सात सोपान हैं—**सप्त प्रबंध सुभग सोपाना** (मा. १.३७.१)। यहाँ प्रबन्ध माने सात काण्ड हैं, वे ही सुन्दर सीढ़ियाँ हैं उनकी। रामजीकी महिमा ही जल है; पुरईन चौपाई है; छन्द, सोरठा, और दोहा उसके सुन्दर कमल हैं। सारा रूप वर्णन कर दिया और कहा कि इसी मानसके दर्शन करके मेरी बुद्धि दिव्य हो गयी। स्नान किया उसमें और मेरे मुखसे कविता निकल पड़ी।

तब कहा—"आपकी कविताका क्या नाम है?" तो कहा—मेरी कविताका नाम है सरजू। मानससे सरजू प्रकट हुईं और रामचरितमानससे मेरी कविता—

सरजू नाम सुमंगलमूला। लोक बेद मत मंजुल कूला॥

(मा. १.३९.१२)

यही सरजू आगे रामभक्त गङ्गाजीसे मिली और राम-लक्ष्मण युगल स्वरूप शोणसे मिली और बन गयी त्रिमुहानी! रामरूप सागरमें जाकर—**राम स्वरूप सिंधु समुहानी** (मा. १.४०.४) आनन्द ले दिया इसने, गङ्गाजीसे मिलकर। रामरूपी सागरमें सम्मिलित हो गयी। यहाँ दिव्य सरजूमें उमा-महेश विवाह-बराती—ये सब जलचर; रामजीके जन्मोत्सवकी बधाई—यही भँवर; चारों भाइयोंका बालचरित्र—यही कमल, हाय-हाय! अद्भुत पूरा रूपक; सीताजीके स्वयंवरकी कथा—नदीकी सुन्दरता; नाना प्रकारके प्रश्नोत्तर—नावपर चढ़े यात्री और केवटकी चर्चा; परशुरामजीका क्रोध—घोर धार [**घोर धार भृगुनाथ रिसानी** (मा. १.४१.४)]; और आनन्द करके भगवान् श्रीरामजीका जो विवाह उत्साह हुआ—यही नदीकी बाढ़। सब लोग प्रसन्नतासे नहा रहे हैं।

राम तिलक हित मंगल साजा। परब जोग जनु जुरेउ समाजा॥
काई कुमति कैकयी केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी॥

(मा. १.४१.७–८)

श्रीराम-राज-तिलक के लिए श्रीअयोध्यामें जो मङ्गल सजाये गये—वे ही स्नानके लिए पर्व हैं, कैकेयीकी कुमति—काई है और उसको नष्ट करनेके लिए भरतजीका चरित्र ही जप-यज्ञ है। गोस्वामीजीने कहा कि मेरी कवितामें छहों ऋतुएँ हैं—(१) **हेमन्त**—श्रीशङ्कर-पार्वतीजीका विवाह; (२) **शिशिर**—श्रीरामजीके जन्मोत्सवका वर्णन; (३) **वसन्त**—श्रीसीतारामजीके विवाहका वर्णन; (४) **ग्रीष्म**—श्रीरामजीके वनवासका वर्णन; (५) **वर्षा**—राम-रावण युद्ध वर्णन; तथा (६) **शरद्**—रामराज्यका सुख और विशेष नीतिकी बड़ाई ही सुन्दर शरद्ऋतु है। एतावता—

मति अनुहारि सुबारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी शंकरहिं कह कबि कथा सुहाइ॥
अब रघुपतिपद पंकरुह हिय धरि पाइ प्रसाद।
कहउँ जुगल मुनिवर्य कर मिलन सुभग संबाद॥

(मा. १.४३ क-ख)

सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय हो! अब **मोह हरनी** कथाकी चर्चा कल।

निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥

(मा. १.३१.४)

॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥
॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥
॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥
॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥
बोलिये रामचन्द्र भगवान्‌की जय हो!
पवनपुत्र हनुमान्‌जीकी जय हो!
गोस्वामीजी तुलसीदास महाराजकी जय हो!
॥ जय जय श्रीसीताराम ॥

द्वितीय पुष्प

॥ नमो राघवाय॥

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥

श्रीरामचन्द्र रघुपुङ्गव राजवर्य
राजेन्द्र राम रघुनायक राघवेश।
राजाधिराज रघुनन्दन रामभद्र
दासोऽहमद्य भवतः शरणागतोऽस्मि॥

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी।
सुजनचकोरकदम्बो यत्कविताकौमुदीं पिबति॥

(श्री)सीतानाथसमारम्भां (श्री)रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे (श्री)गुरुपरम्पराम्॥

श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर-बिमल-जस जो दायक फल चारि॥

सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय।

(श्री)रामचरितमानस बिमल कथा करौं चित चाइ।
आसन आइ विराजिये (श्री)पवनपुत्र हरषाइ॥

सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय। पवनसुत हनुमान्‌जी महाराजकी जय हो। गोस्वामी तुलीदासजी महाराजकी जय हो। प्रेमसे बोलिये श्रीसीताराम भगवान्‌की जय हो।

॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥

॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥

तुलसी सीताराम कहो हृदय राखि बिस्वास।
कबहूँ बिगड़त ना सुने (श्री)सीतारामके दास॥

सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय।

रामकथा सुंदर करतारी। संशय बिहग उड़ावनहारी॥

(मा. १.११४.१)

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा भगवान् श्रीसीतारामजीकी कृपासे आज हम एक बहुत ऐतिहासिक चर्चा करने बैठे हैं। ऐतिहासिक चर्चा इसलिये कि यह मोदीनगरकी कथा, हमारी कथाओंकी जो संख्या है, उसमें यह १२५१वीं रामकथा है। दूसरी बात श्राद्धपक्षकी कथा है और तीसरी बात, जिस दिन मेरी कथाका ६०वाँ वर्ष पूर्ण होगा [१४ जनवरी २०१७को]—मैंने १४ जनवरी १९५७को कथाका प्रारम्भ किया था और अब आप लोगोंके पुण्यसे ६० वर्ष पूर्ण हो गये—बहुत अच्छा रहेगा कि उसी समय यह कथा पुस्तकाकार होकर आपके समक्ष आयेगी।

कलकी चर्चामें हम एक बात कह चुके हैं कि गायत्रीजीके जो २४ अक्षर होते हैं, वे जब **तत्सवितुर्वरेण्यं**से गिनते हैं तब होते हैं। पर इसके पहले व्याहृति तो होती है, प्रणव होता है, और जब जपके पश्चात् भी एक बार प्रणव लगाया जाता है; तब पूर्ण गायत्री बनती है—

ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ।

अब गायत्रीजीके अक्षरोंकी संख्या हो जाती है—तीस। तो गोस्वामीजीने यही कहा कि महर्षि वाल्मीकिजीने वाल्मीकीयरामायणमें चौबीस हजार श्लोक कहकर गायत्रीजीके चौबीसों अक्षरोंकी व्याख्या की, पर **ॐ भूर्भुवः स्वः** और पश्चात्का **ॐ**—ये ६ अक्षर छूट गये। वही वाल्मीकिजी तुलसीदासजी बनकर प्रकट हुए और कहा—"भगवन्! जो छूट गया था, उसे पूरा कर दे रहा हूँ।" तब उन्होंने रामचरितमानसजीमें २४ और ६ = ३० कथाएँ लिखकर गायत्रीजीके तीस अक्षरोंकी व्याख्या की—यही यहाँकी संगति है। जैसा कि आप सुन रहे हैं और मैं बार-बार यह बात कह भी रहा हूँ कि मेरी कथामें वे ही विषय आयेंगे जो गोस्वामीजीके सम्मत हैं, जिन्हें तुलसीदासजी महाराज चाहते हैं। यदि तुलसीपीठाधीश्वरकी कथामें तुलसीदासजीकी सम्मति नहीं आयेगी तो फिर और कहाँ आयेगी? वे पहले कह चुके हैं—

संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न बिषय कथा रस नाना॥
तेहि कारन आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥

(मा. १.३८.४–५)

कहते हैं कि जैसे मानसरोवरमें सीपी नहीं रहती, कीटभक्षी मेंढक नहीं होते, शैवाल नहीं होते; उसी प्रकार मेरी रामचरितमानसमें विषय-कथाएँ तो हैं ही नहीं। भागवतजीमें हैं, बुरा मत मानियेगा। भागवतजीमें विषय-कथाएँ हैं कुछ। अन्य ग्रन्थोंमें हैं। परंतु गोस्वामीजीकी प्रतिज्ञा है कि उनके रामचरितमानसमें किसी भी प्रकारकी विषय-कथा नहीं है। इसलिए मनचले लोगोंका यहाँ आना नहीं हो सकता। यहाँ बालक आ सकते हैं, बालिकाएँ आ सकती हैं, युवक-युवतियाँ आ सकती हैं, वृद्ध-वृद्धाएँ आ सकती हैं; पर लौंडे-लफाड़ी यहाँ नहीं आ सकते, मैं फिर कह रहा हूँ। इसलिए तीस कथाओंका प्रारम्भ करते हैं। प्रथम कथा वे अपनी ही कह रहे हैं—

निज संदेह मोह भ्रम हरनी

(मा. १.३१.४)

कहते हैं—**निज संदेह**। गोस्वामीजीको भगवान्पर संदेह नहीं, निजपर संदेह है। बारम्बार कह रहे हैं कि मैं श्रीरामकथा कह सकूँगा या नहीं—

कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत संसारा॥

(मा. १.१२.१०)

क्या बात है! कहाँ रामचन्द्रजीके अपार चरित्र जो सौ करोड़ रामायणोंमें कहे गये! अकेले महर्षि वाल्मीकिने सौ करोड़ रामायणोंमें रामकथाएँ गायीं और अगस्त्य, लोमश, अग्निवेश, कृष्णद्वैपायन वेदव्यास आदि मुनि पहले ही रामायण बनाकर श्रीहरि प्रभु श्रीराम की कीर्ति का गान कर चुके हैं—

मुनिन प्रथम हरिकीरति गाई

(मा. १.१३.१०)

इतना व्यापक तो किसीका चरित्र हो ही नहीं सकता। इसीलिए गोस्वामीजीको अपनेपर संदेह है—

निज बुधि बल भरोस मोहि नाहीं। ताते बिनय करउँ सब पाहीं॥

(मा. १.८.४)

सबसे कहते हैं—"कृपा कीजिये, जिससे कि मैं हरियशकी रचना करूँ, श्रीहरिजीका यश कह सकूँ।"

बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन बंदि कहउँ कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मंजु मनोरथ मोरि॥

(मा. १.१४छ)

और पहले कह चुके हैं—

सो न होइ बिनु बिमल मति मोहि मतिबल अति थोर।
करहु कृपा हरिजस कहउँ पुनि पुनि करउँ निहोर॥

(मा. १.१४ख)

इतना विनम्र कोई हो ही नहीं सकता। जो बड़ा होता है, वह विनम्र होता ही है—

नमन्ति फलिनो वृक्षा नमन्ति गुणिनो जनाः।
शुष्ककाष्ठाश्च मूर्खाश्च न नमन्ति कदाचन॥

"फलवाले वृक्ष झुकते ही हैं। विद्याविनयसंपन्न लोग झुकते ही हैं। सूखी लकड़ी और मूर्ख—ये कभी नहीं झुकते।" इतने विनम्र! हमारे यहाँ बहुत अच्छे कवि हुए [२०वीं शताब्दीमें], भोजपुरीकी कविता उन्होंने ही प्रारम्भकी—साकेतवासी पण्डित चन्द्रशेखरजी मिश्र। वे लिखते हैं गोस्वामीजीके लिए कि अरे! इतने विनम्र हैं गोस्वामीजी—

शास्त्र छहों रस वेद पुरानन आगमके सब तत्त्व निचोरे।
जिये लगे सब प्रिये लगे सब आखर-आखर अमृत घोरे।
पाप नसायन पुन्यपरायन हाथ रामायन मानस तोरे।
काहे बदे लिखे बबुआ यह सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे॥

इतनी विनम्रता होनेपर भी आज्ञा करते हैं—

कबित बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे॥

(मा. १.९.११)

अपने संदेहकी ४३ दोहोंमें चर्चा कर ली कि मुझे अब अपनेपर संदेह है, मैं श्रीरामकथा कैसे कह सकूँगा और कह रहा हूँ—"निश्चित है कि हमारे प्रभु राघवजी, भगवान् रामचन्द्रजी, शठ सेवककी प्रीति व रुचिकी रक्षा करेंगे। यह उनका स्वभाव है। यद्यपि मैं शठ सेवक हूँ, मैंने देखा है कि जब अहल्याको तारा प्रभुने, तो प्रत्येक पत्थरकी इच्छा हुई कि मुझपर भी भगवान् चरण रखें। तब पत्थरोंकी रुचिकी रक्षा करनेके लिए सेतुबन्धकी भगवान्ने लीला कर दी। सारे वानरोंसे पत्थर ढुलवाया और सभी पत्थरोंपर अपने चरणकमल रखकर उनकी रुचिकी रक्षा कर ली।" नहीं तो क्या एक ही बाणसे सागरको सोख नहीं लेते? विभीषण स्वयं चकित हैं। शुकने रावणसे कहा—"जिनका एक बाण सैंकड़ों सागरोंको सोख सकता है, इतना सामर्थ्य होनेपर भी आज वे ही श्रीराम, आपके छोटे भैया विभीषणसे सागर तरणका उपाय पूछ रहे हैं—**सक सर एक शोषि शत सागर** (मा. ५.५६.२), इतना सामर्थ्य होने पर भी—**तव भ्रातहिं पूँछेउ नय नागर** (मा. ५.५६.२) जो एक बाणसे अनन्त सागरोंको सुखा सकते हैं, आज वही प्रभु विभीषणसे पूछ रहे हैं—"बताइये विभीषण! सागरको कैसे पार किया जाए?"

राम तेज बल बुधि बिपुलाई। शेष सहस शत सकहिं न गाई॥
तासु बचन सुनि सागर पाहीं। माँगत पंथ कृपा मन माहीं॥

(मा. ५.५६.१ व ३)

यही तो चरित्र है प्रभुका! अब इतना उदात्त उदाहरण पूरे विश्वमें कहाँ मिलेगा? बताइये न! हम तो उत्तर लेनेके लिए बैठे हैं। पूरी कव्वाली, शेर-शायरी सब कुछ कर लो; रामजी जैसा कहीं उदाहरण मिल जाए संसारके समग्र साहित्यमें और जो दे दें, तो मैं उनका शिष्य बननेके लिए तैयार हूँ—मैं कह दे रहा हूँ।

गोस्वामीजी कहते हैं कि यद्यपि मुझको संदेह है, पर मुझे रामजीके स्वभावका भरोसा है कि रामजी दुष्ट सेवककी भी प्रीति और रुचिकी रक्षा करेंगे। पत्थरोंकी प्रीतिकी रक्षा की। वानरोंसे सभी पत्थर मँगवाकर तथा प्रत्येक शिलापर अपने चरण रखकर उन्हें धन्य कर दिया। और वानर-भालुओंकी रुचिकी रक्षा कर दी, उन्हें मन्त्री बना लिया अपना।

शठ सेवककी प्रीति रुचि रखिहैं राम कृपालु।
उपल किए जलयान जेहिं सचिव सुमति कपि भालु॥

(मा. १.२८क)

कथा २: निज ... मोह ... हरनी (मा. १.३१.४)

अब भरद्वाज संवादका प्रारम्भ कर रहे हैं—**मोह हरनी** (मा. १.३१.४)। भरद्वाजजी श्रीप्रयागमें विराजते हैं—

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिनहिं रामपद अति अनुरागा॥

(मा. १.४४.१)

भरद्वाजजी तपस्वी हैं—

तापस शम दम दया निधाना। परमारथपथ परम सुजाना॥

(मा. १.४४.२)

माघमें कल्पवास होता है, जब सूर्यनारायण मकरपर आते हैं। यहाँ गोस्वामीजी संहिता कह रहे हैं कि वक्ताको इतना स्वतन्त्र नहीं होना चाहिए, जो वैदिक-मर्यादाका ही उल्लङ्घन कर बैठे। कहते हैं कि देखिये! वक्ताको क्या-क्या कहना चाहिए इसकी एक आचार-संहिता है—

ब्रह्मनिरूपन धरमबिधि बरनहिं तत्त्वबिभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ग्यान बिराग॥

(मा. १.४४)

कह तो दिया गोस्वामीजीने। अब इतनेपर भी कोई न माने; यदि भीड़ जुटाना ही वक्ताका लक्ष्य बन जाए, तो ठीक है, उसे हम *वक्ता* नहीं, *बकता* कहेंगे। गोस्वामीजीने इस एक दोहेमें संपूर्ण वैदिक-भारतीय-संस्कृतिकी व्याख्या कर डाली। वैदिक-भारतीय-संस्कृति क्या है? किन-किन विषयोंपर चर्चाकी जा सकती है? **ब्रह्मनिरूपन**—ब्रह्मका निरूपण होना चाहिए, वह अपने-अपने संप्रदायके अनुसार वक्ता करें; अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, विशुद्धाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, अचिन्त्यभेदाभेद आदि। अब कौन कर रहा है। **धरमबिधि**—धर्मकी विधिकी चर्चा मीमांसाके अनुसार। **बरनहिं तत्त्व बिभाग**—तत्त्वके विभागकी चर्चा सांख्य, योग, वैशेषिक, और न्यायके अनुसार। **कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ग्यान बिराग**—ज्ञान और वैराग्यसे युक्त भगवान्‌की भक्तिका वर्णन। और वैसी चर्चा करूँ, तो सातों काण्डोंका विषय कह रहे हैं—(१) **बालकाण्ड**—ब्रह्मनिरूपण, (२) **अयोध्याकाण्ड**—धर्मविधि/मीमांसा, (३) **अरण्यकाण्ड**—सांख्य, (४) **किष्किन्धाकाण्ड**—योग, (५) **सुन्दरकाण्ड**—वैशेषिक, (६) **युद्धकाण्ड** वा **लङ्काकाण्ड**—न्याय और (७) **उत्तरकाण्ड**—ज्ञान, वैराग्य सहित भगवान्‌की भक्ति—यह है व्याख्या।

अब तो बालव्यास बन गये हैं लोग। अनुचित नहीं मानना चाहिए, पर ऐसे-ऐसे लड़के कथा कहते हैं जो स्वयं रामायण कभी पढ़े नहीं। जिनको **रामः रामौ रामाः**—पूरा शब्दरूप भी नहीं आता होगा। सोचिये! अरे क्या बालव्यास? बालशुक हुए थे, केवल एक ही थे वे। अब बालव्यास कौन बनेगा? वे तो बालक कभी नहीं रहे, जन्म लेते ही वे युवक बनकर बदरिकाश्रम चले गये, तो कहाँ वो बालव्यास रहे? क्योंकि व्यक्ति जब कथाको पैसेका साधन बना लेगा, जब कथा हरी-हरी नोटका साधन बन जायेगी, तो हरिका साधन तो नहीं बनेगी।

कल्पवासमें बहुत अच्छा सत्संग होता है।

एक बार भरि मकर नहाये। सब मुनीश आश्रमनि सिधाये॥

(मा. १.४५.३)

संपूर्ण मकरार्क-पर्यन्त स्नान किया। सभी ऋषि अपने-अपने आश्रम आ गये, परंतु याज्ञवल्क्यजी महाराजको भरद्वाजजीने चरण पकड़कर रोक लिया—**भरद्वाज राखे पद टेकी** (मा. १.४५.३), पूजा की और कहा—"भगवन्! मुझे एक संशय है—**नाथ एक संशय बड़ मोरे** (मा. १.४५.७)। मुझे डर भी लग रहा है, लाज भी लग रही है। वाल्मीकिजीका मैं शिष्य

हूँ, फिर भी मुझे संशय है। भगवन्! आप सद्गुरु हैं, उपनिषदोंके व्याख्याता हैं। आज आपसे मैं औपनिषद पुरुषके संबन्धमें पूछ रहा हूँ—**तं त्वा औपनिषदं पुरुषं पृच्छामि** (बृ.उ. ३.९.२६)।

राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा॥

(मा. १.४६.२)

वेद, पुराण, श्रीरामतापिनी-उपनिषद्, सीतोपनिषद्, रामरहस्योपनिषद्, हनुमद्रहस्योपनिषद् आदि अनेक उपनिषद् श्रीरामनामका प्रभाव कहते हैं। शिवजी निरन्तर जपते हैं रामनामको—**संतत जपत शंभु अबिनाशी** (मा. १.४६.३)। और सुना है कि वही वेदवेदान्तवेद्य रामचन्द्रजी दशरथजीके यहाँ अवतार लेकर आये—

एक राम अवधेशकुमारा। तिन कर चरित बिदित संसारा॥

(मा. १.४६.७)

परंतु उनके चरित्रको देखकर मुझे मोह हो गया। क्यों?—

नारि बिरह दुख सहेउ अपारा। भयउ रोष रन रावन मारा॥

(मा. १.४६.८)

भगवन्! काम, क्रोध, लोभ—ये तीनों विकार तो व्यक्तिको नरकमें ले जाते हैं। ये तीनों नरकके द्वार हैं—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

(भ.गी. १६.२१)

पर मुझे तो रामजीमें तीनों दोष दिख रहे हैं। (१) **काम**—मुझे रामजीमें काम भी दिख रहा है, तभी तो नारीका वियोग हुआ। (२) **क्रोध**—रामजीमें क्रोध भी दिख रहा है, क्रोध आया तो युद्धमें रावणको मार डाला। (३) **लोभ**—रामजीमें लोभ भी दिख रहा है, स्वर्णमृगके पीछे दौड़ पड़े। रामजी तो मुझे कामी भी दिख रहे हैं, क्रोधी भी दिख रहे हैं, और लोभी भी दिख रहे हैं। यदि इनमें तीनों दोष हैं तो शङ्करजी इनका नाम जपते कैसे हैं?

प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि

(मा. १.४६)

भगवन्! यह मेरे मनमें मोह है—"

अस बिचारि प्रगटउँ निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू॥

(मा. १.४६.१)

कितनी व्यवस्थित श्रीरामकथा है। मैं फिर कह दे रहा हूँ, हिन्दुओ! चिन्ता मत करना। किसीको कोई चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं। कहते हैं—जबतक जियेंगे ..., क्या जियेंगे? ऐसी-ऐसी बात मेरे लिए नहीं कहनी चाहिए। **अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत्** (हि.)। विद्वान् विद्याका जब चिन्तन करता है, तो वह कभी नहीं कहता कि हमको मरना है। वह तो अमर दृष्टिसे पढ़ता है। ये सब निरर्थक बातें मेरे सामने तो बोलनी ही नहीं चाहिए। अभी तो मैं बहुत लम्बे समयतक हिन्दूधर्मका नेतृत्व करूँगा। तो मित्रो! **निज संदेह मोह भ्रम हरनी** (मा. १.३१.४)के अनुसार याज्ञवल्क्य-भरद्वाज संवादकी यह द्वितीय-कथा **मोह हरनी** है।

याज्ञवल्क्यजीको हँसी आयी—**जाग्यबल्क्य बोले मुसुकाई** (मा. १.४७.२)। याज्ञवल्क्यका मतलब जानते हो? *यज्ञस्य वल्क: यज्ञवल्क:। यज्ञवल्के भव: याज्ञवल्क्य:*। **गर्गादिभ्यो यञ्** (पा.सू. ४.२.१०५)। यज्ञमें जो वल्कल (वृक्षकी छालके जो वस्त्र) टँगे थे, उसीसे याज्ञवल्क्यजीका प्राकट्य हो गया था। अद्भुत संत हैं। याज्ञवल्क्यजीने भरद्वाजसे कहा—"अरे! आप मूर्ख नहीं हैं। **रामभक्त तुम मन क्रम बानी, चतुराई तुम्हारि मैं जानी** (मा. १.४७.३)। आप मनसा-वाचा-कर्मणा राघवजीके भक्त हैं और आप चतुर हैं। **चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा** (मा. १.४७.४)—प्रभु श्रीरामजीके छिपे हुए गुणोंको आप सुनना चाहते हैं, तभी **कीन्हेहु प्रश्न मनहुँ अति मूढ़ा** (मा. १.४७.४)—ऐसे प्रश्न कर रहे हैं, मानो आप बहुत मूर्ख हैं; पर मूर्ख नहीं हैं। आप मन लगाकर सुनिये—"

तात सुनहु सादर मन लाई। कहउँ राम कै कथा सुहाई॥

(मा. १.४७.५)

आपके मनका जो मोह है, वह महिषासुर है। उसको नष्ट करनेके लिए श्रीरामजीकी कथा साक्षात् कालिका मैया हैं—

महामोह महिषेश बिशाला। रामकथा कालिका कराला॥

(मा. १.४७.६)

उस महिषासुरको मारनेके लिए भगवती प्रकट हुईं थीं। संपूर्ण देवताओंकी शक्तियाँ इकट्ठी होकर नारी बन गयीं—

एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा

(दु.स. २.१३)

संपूर्ण देवताओंका तेज एकत्र हुआ, तब वह बन गया नारी। इसी प्रकार संपूर्ण वैदिक-वाङ्मयका ज्ञान एकत्र होकर बन गयी श्रीरामकथा—**इदं नवीनतया व्याचक्षे जगद्गुरुः**। मैं जगद्गुरु हूँ और जगद्गुरुने तो किसीसे उधार नहीं लिया है। मैंने सरस्वतीजीकी निर्लोभ सेवा की है। अहंकार नहीं कर रहा हूँ, पर आपको बता तो दूँ। सोचिये! लोग क्यों पढ़ते हैं? नौकरी करनेके लिए पढ़ते हैं न। Percentage क्यों इतने अच्छे-अच्छे लाते हैं? इसीलिए कि नौकरी मिल जाए। पर आप लोगोंके पुण्यसे मेरे कितने सुन्दर percentage रहे हैं! सोचिये! शिक्षा क्षेत्रमें ९९% प्रत्येक कक्षामें लाकर भी, ९९% प्रतिशतसे नीचे तो हमने कभी देखा ही नहीं, इतना करके भी कभी नौकरीकी इच्छा नहीं की कि मुझे नौकरी मिले। दो-बार यूनिवर्सिटीको टॉप करने वाला व्यक्ति नौकरी न करे। ये जे.आर.एफ. जब चला था, जिस वर्ष प्रथम बार प्रारम्भ हुआ था, उस समय पूरे भारतके विश्वविद्यालयोंसे केवल आठ लड़कोंका चयन हुआ था। मुझे कहनेमें प्रसन्नता हो रही है कि उसमें आठों लड़कोंमें सबसे पहले चयन मेरा हुआ था। जे.आर.एफ. आप जान ही रहे हैं—J for Junior, R for Research, F for Fellow—Junior Research Fellow और मैं Senior Research Fellow भी रहा अपने समयका। परंतु पढ़नेका फल नौकरी करना थोड़े ही है। नौकरी करते हैं लोग अपने दो-एक बच्चोंका पेट पालनेके लिए। पहले तो चार-छ: बच्चे, अब तो वे भी नहीं। लोग-बाग अब यही कह रहे हैं—"हम दो हमारे दो, बांग्लादेशी आने दो।" दो लड़कोंको आप नहीं पाल पाते और अपेक्षा

करते हैं कि ये हमारी सेवा करेगा। और मैं निरपेक्ष भावसे पाल रहा हूँ सोलह वर्षोंसे हजारों लड़कोंको और मैंने अपेक्षा ही नहीं की कि कुछ देंगे ये। आपको तो अपने बेटेसे अपेक्षा होगी कि इसकी बहू आयेगी, सेवा करेगी, भले ही बहू डंडे मारे। पर हमारा तो प्रश्न ही नहीं उठता। इतने बच्चोंको हमने research करायी, पर किसी Research Scholar से एक घूँट पानीतक नहीं पिया—यह मेरा रिकॉर्ड है अपना। मित्रो! मैं यह निवेदन करने जा रहा हूँ कि श्रीरामकथाका क्या व्यक्तित्व है! देखिये—

महामोह महिषेश बिशाला। रामकथा कालिका कराला॥

(मा. १.४७.६)

जबतक श्रीरामकथाको हम साधन मानते रहेंगे, तबतक हमारा कल्याण नहीं होगा। श्रीरामकथा साधन नहीं है, यह तो हमारे सत्कर्मोंका फल है।

श्रीमद्भागवतमें मैं आपको ले चल रहा हूँ, जहाँ नारदजी वेदव्यासजीसे कहते हैं—अरे वेदव्यास!

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्॥

(भा.पु. १.५.२२)

कहते हैं—**पुंसः तपसः श्रुतस्य स्विष्टस्य सूक्तस्य बुद्धिदत्तयोः इदमेव फलं कविभिः उत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् अविच्युतोऽर्थः निरूपितः**। महापुरुषोंने संपूर्ण सत्कर्मोंका यही एकमात्र फल बताया है कि भगवान्‌के गुणगणोंका अनुकूलतासे हम वर्णन करते रहें। आपने मुझे देखा होगा। जिस समय मैं तिलक आदि करके ... कोई बहुत मेक-अप तो नहीं करता; आजकल तो वक्ता, हाय .. हाय ... हाय! मेक-अप करनेके लिए लोगोंको बुलाते हैं। भले ही भगवान् उनका चेहरा गोबर-गणेश जैसे बनाये हों; भले चेहरे पर पौने बारह बज रहे हों इनके, पूरा मेक-अप करते हैं। एक बार किसी वक्ताके उद्घाटनमें मुझे जाना था। मैं तो तैयार था और वह वक्ता तैयार ही नहीं। मैंने कहा—"कहाँ?" बोले—"गुरुजी अभी मेक-अप कर रहे हैं।" अब आयेंगे धीरे-धीरे! अरे पगले! इस मेक-अपसे कोई लाभ नहीं होगा। श्रीरामकथाके लिए आध्यात्मिक मेक-अपकी आवश्यकता होती है—

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥

(नी.श.)

सुन्दर हार व्यक्तिको सुशोभित नहीं करते। ये पुरुषोंको सुशोभित नहीं करते, महिलाओंको करते हैं। यह बहिनोंके लिए शृङ्गार है, तुम्हारे लिए नहीं। विलेपन नहीं, पुष्प नहीं, अलंकृत बाल नहीं, तो व्यक्तिको सुशोभित कौन करता है? **वाण्येका समलङ्करोति पुरुषम्**—जो संस्कारवती वाणी होती है, वही व्यक्तिको सम्यक् अलंकृत कर डालती है। आज हमारे जीवनमें वाणीके संस्कार कहाँ हैं? **क्षीयन्ते खलु भूषणानि**—सभी आभूषण नष्ट हो जाते हैं। निरन्तरका आभूषण

है कौन? *सततं भूषणं किम्?* **सततं वाग्भूषणं भूषणम्**—वाणीका आभूषण ही व्यक्तिका सततका आभूषण है।

भगवती श्रीरामकथा—

महामोह महिषेश बिशाला। रामकथा कालिका कराला॥

(मा. १.४७.६)

श्रीदुर्गासप्तशतीका यह चरित्र बडा उज्ज्वल चरित्र है, इसे *मध्यम चरित्र* कहते हैं। और *मध्यम चरित्र*का पाठ अलगसे किया भी जाता है। भगवतीजी महिषासुरको मार रही हैं—

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम्।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः॥

(दु.स. ३.३८)

और जब भगवतीजीने महिषासुरको मार दिया—

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः॥

(दु.स. ४.२)

सब भगवतीजीकी स्तुति करते हैं। तो यह मोहदलनी द्वितीय-कथा सम्पन्न।

कथा ३: निज ... भ्रम हरनी (मा. १.३१.४)

अब तृतीय कथा है—**भ्रम हरनी**।

निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥

(मा. १.३१.४)

विकारोंमें मोहका स्थान कौन है? जानते हो आप लोग? मुख्य छः विकार कहे जाते हैं—(१) काम, (२) क्रोध, (३) लोभ, (४) मोह, (५) मद, (६) मात्सर्य। तो विकारोंमें मोहका कौन-सा स्थान बताया गया?—चौथा। और संयोग देखिये, याज्ञवल्क्यजीने भरद्वाजकी कथाका जो उपक्रम किया गोस्वामीजीने चार दोहोंमें ही किया है—बालकाण्डके ४४वें दोहेसे ४७वें दोहे पर्यन्त। तुलसीदासजीकी कथा **निज संदेह हरनी** प्रथम दिनकी कथा। याज्ञवल्क्यजीकी **निज मोहू** (मा. १.४६.१) द्वितीय दिनकी कथा। इन चार दोहोंमें व्यक्तिका मोह दूर होगा क्योंकि—

महामोह महिषेश बिशाला। रामकथा कालिका कराला॥

(मा. १.४७.६)

यहाँ गोस्वामीजीने एक संकेत किया कि जैसे सभी देवताओंका तेज एकत्र होकर भगवती दुर्गा बन गया, उसी प्रकार अबतक उपलब्ध जितना भी आर्ष-वाङ्मय है [संपूर्ण लगभग डेढ़ लाख पुस्तकें कम-से-कम उपलब्ध हैं]; ऋग्वेदसे लेकर हनुमान् चालीसा पर्यन्त डेढ़ लाख जो देवतुल्य ग्रन्थ हैं, उन सभी ग्रन्थोंका सार-सर्वस्व इकट्ठा होकर रामचरितमानस बन गया—यह यहाँका तात्पर्य है।

मैं मोदीनगरवालोंको कह रहा हूँ कि आपको जहाँ भी समझमें नहीं आया उसे मैं फिर

बताऊँगा। एक-एक अक्षर आपको समझानेका प्रयास करूँगा मैं। और मेरा यह दायित्व भी है, कर्तव्य भी है क्योंकि मैं जगद्गुरु हूँ। और मुझे प्रयास करके अपने श्रोताओंको वैदिक-हिन्दू-संस्कृतिसे परिचित कराना ही होगा।

अब तृतीय कथा पार्वती-शिव संवादकी कथा है। यह **भ्रम हरनी** कथा है। तुलसीदासजीको संदेह हो रहा है अपनेपर, भरद्वाजको मोह हो रहा है, और पार्वतीजीको भ्रम हो रहा है। भले उसकी मोह संज्ञा दी गयी हो बार-बार, पर है वह भ्रम। नारदजी भी कहते हैं कि सतीजीको भ्रम हुआ—

एक बार आवत शिव संगा। देखेउ रघुकुल कमल पतंगा॥
भयउ मोह शिव कहा न कीन्हा। भ्रमवश बेष सीय कर लीन्हा॥

(मा. १.९८.७–८)

यह कथा व्यक्तिके भ्रमका हरण करेगी—**निज संदेह मोह भ्रम हरनी** (मा. १.३१.४)। **चकित भये भ्रम हृदय बिशेषा** (मा. १.५३.१) बहुत सुन्दर प्रस्तावना है।

एक बार त्रेता जुग माहीं। शंभु गये कुंभज ऋषि पाहीं॥

(मा. १.४८.१)

एक बार त्रेतायुगमें शङ्करजी सतीजीको साथ लेकर कुम्भजके यहाँ जा रहे हैं। यहाँ शिवजीके जीवनमें नौ (९) लक्षण घट रहे हैं, भक्तिके नौ अनुमापक। क्या प्रमाण है कि व्यक्ति भक्त है? यहाँ शिवजीमें नवों लक्षण घटेंगे—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(भा.पु. ७.५.२३)

(१) **श्रवणम्**—शिवजी सतीजीके साथ अगस्त्यजीके यहाँ आये तो सिद्धान्त बनाया श्रवण का—किसी समर्थ सन्तसे श्रीराम-कथाका श्रवण करना चाहिए। कितनी सुन्दर बात है! नहीं तो क्या आवश्यकता थी कि शिवजी अगस्त्यजीके यहाँ आ रहे हैं—

संतनके संग लाग रे, तेरी बिगड़ी बनेगी।
बिगड़ी बनेगी तेरी, सबरी बनेगी॥
ध्रुवजीकी बन गयी, प्रह्लादजीकी बन गयी।
गणिकाको खुल गयो भाग रे, तेरी बिगड़ी बनेगी॥
शबरीकी बन गयी, अहिल्याकी बन गयी।
केवटको खुल गयो भाग रे, तेरी बिगड़ी बनेगी॥
सुग्रीवकी बन गयी, विभीषणकी बन गयी।
हनुमतको खुल गया भाग्य रे, तेरी बिगड़ी बनेगी॥
अरे पाण्डवकी बन गयी, सुदामाकी बन गयी।
द्रौपदीको खुल गयो भाग रे, तेरी बिगड़ी बनेगी॥
कर्माकी बन गयी और मीराकी बन गयी।
करमैतीको खुल गयो भाग रे, तेरी बिगड़ी बनेगी॥

तुलसीकी बन गयी, कबीराकी बन गयी।
रामभद्राचार्यको खुल गयो भाग रे, तेरी बिगड़ी बनेगी॥
संतनके संग लाग रे, तेरी बिगड़ी बनेगी॥

बिगड़ीको तो संत या भगवंत ही बनाते हैं। वेषसे कोई संत नहीं होता, संतके लक्षण होते हैं। मैं तो यह नहीं कह रहा हूँ कि मुझमें संतके लक्षण हैं, पर प्रयास कर रहा हूँ। ६६ वर्ष बहुत काम कर लिया, अब तो संतोंके पदचिह्नों पर चलनेका प्रयास करूँ। रामनाम जपमें और रामकथामें शेष जीवन पूर्ण हो—यही भगवान्‌से प्रार्थना है। जब नारदजीसे पूछा गया—"भगवान्‌की भक्ति कैसे मिलती है?" तो उन्होंने कहा—"मुख्य साधन यही है कि महत्संग होना चाहिए। संतोंका संग हो, सद्गुरु यदि मिल जाएँ। आहाहा! **सद्गुरु मिलै जाहिं जिमि संशय भ्रम समुदाइ** (मा. ४.१७), **महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च** (ना.भ.सू. २.१५)।

शिवजी कथा श्रवण करने गये अगस्त्यजीके यहाँ।

रामकथा मुनिवर्य बखानी। सुनी महेश परम सुख मानी॥

(मा. १.४८.३)

अगस्त्यजीके यहाँ शिवजी भगवान्‌की कथा सुन रहे हैं—श्रवणम्।

(२) **कीर्तनम्**—और कीर्तन देखिये! अगस्त्यजीने कहा कि मुझे दक्षिणामें आपसे कुछ लेना है। श्रोता वक्ताको दक्षिणा देता ही है, आपने मुझसे रामकथा सुनी है। मैं दक्षिणामें आपसे भगवान्‌की भक्तिके विषयमें कुछ पूछूँगा—

ऋषि पूछी हरि भगति सुहाई। कही शंभु अधिकारी पाई॥

(मा. १.४८.४)

तो ८४ प्रसंग सुनाये शिवजीने अगस्त्यजीको और उन्हीं ८४ प्रसंगोंमें भक्तिके ८४ सूत्रोंके सिद्धान्त घटा दिए।

कहत सुनत रघुपति गुणगाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥

(मा. १.४८.५)

कुछ दिनोंतक वहाँ विराजे। इतने तन्मय हैं कि सतीजीका स्मरण ही नहीं आया कि वह भी वहाँ रह रही हैं। इसलिए गोस्वामीजी **गिरिनाथा** कह रहे हैं, **सतिनाथा** नहीं कहा। सतीजीने भगवान्‌की कथा नहीं सुनी। वह कुछ और चिन्तन कर रही थीं। सब पंडालमें आते है, कथा सुनने थोड़े-ही आते हैं। तो मित्रो! सतीजीने कथा नहीं सुनी। पर शिवजीने मनमें परम सुख मानकर यह कथा सुनी—**सुनी महेश परम सुख मानी**। कीर्तन भी हो गया—**कहत सुनत रघुपति गुणगाथा**।

(३) **स्मरणम्**—अब स्मरण देखिये। इतने तन्मय हुए शिवजी कि अगस्त्यजीसे कहा—"भगवन्! इतनी सुन्दरकथा आपने सुनायी। मुझे रामजीके दर्शन करने हैं।" अगस्त्यजीने कहा—"अरे मित्र! आपके आनेसे थोड़ी देर पहले, कुछ ही घण्टों पहले, प्रभु मेरे यहाँ आये थे और मैंने उनसे बहुत अच्छी चर्चाएँ कीं।" **प्रभु अगस्त्य कर संग** (मा. ७.६५)। कुछ दिन रहनेके कारण इतने दिनोंमें ही रामजीने लक्ष्मणजीको उपदेश भी दे दिया और शूर्पणखाका काण्ड हो गया। **कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा** (मा. १.४८.५)—जबतक अगस्त्यजीके यहाँ शिवजी

विराजे, इतने ही दिनोंमें पञ्चवटीमें खर-दूषणके साथ रामजीका संग्राम और उन दोनोंका वध, सीताजीका अग्निप्रवेश, मारीचके साथ रावणका दण्डकारण्यमें आना तथा उसका कपट कुरङ्ग बनना और मारीचकी सहायतासे छल करके रावण द्वारा सीताजीका अपहरण कर लेना—ये सब घटनाएँ घट गयीं। इधर जटायु और शबरीजीको गति देकर भगवान् पम्पा सरकी ओर बढ़ रहे हैं। **हृदय बिचारत जात हर केहिं बिधि दरसन होइ** (मा. १.४८क)। शिवजी चल पड़े, मार्ग में जाते-जाते मन में विचार कर रहे हैं कि प्रभु श्रीरामजीके दर्शन किस विधिसे हो सकते हैं।

शंकर उर अति छोभ सती न जानहिं मरम सोइ।
तुलसी दरशन लोभ मन डर लोचन लालची॥

(मा. १.४८ख)

तलफला गये। यह है स्मरणम्। आनन्द कर दिया—**मन डर लोचन लालची**। लोग कथाके बीचमें भिन्न-भिन्न गाने गाते हैं। मैं इतना करता हूँ कि मैं भगवान्के चरित्रके ही गीत बनाकर गाता हूँ। गाता मैं भी हूँ, पर मैं गाना नहीं गाता हूँ, गीत गाता हूँ। गीत भगवान्के होते हैं।

मेरा जग गया मनका गीत, अब मुझे क्या चिन्ता।
मुझे मिल गया मनका मीत, अब मुझे क्या चिन्ता॥

शिवजी तड़प रहे हैं और सभीसे पूछ रहे हैं—"हे वृक्षो! हे गोदावरी मैया! तुमने मेरे रामजीको देखा है?" "कैसे रामजीको?"

धनुहिं चढ़ाते हुए किसीने मेरे राम देखे।
मन्द मुस्काते हुए किसीने मेरे राम देखे॥
कटितट मुनीपट बाण-धनुधारी।
कितको गये है मेरे विपिनबिहारी॥
चित्तको चुराते हुए किसीने मेरे राम देखे॥ धनुहिं ...
नील-श्याम-घनतन जटा सिर धारे।
कटिपे निसंग कसे धनुष सँवारे॥
मनको लुभाते हुए किसीने मेरे राम देखे॥ धनुहिं ...
गोदावरी कृपा करके प्रभुको बता दो।
तरुवों दया करके राघवको दिखा दो॥
नैन तरसाते हुए किसीने मेरे राम देखे॥ धनुहिं ...
किस बिधरामजीके दर्शन पाऊँ।
***गिरिधर* प्रभुको अपने दृगमें बसाऊँ॥**
करुणा बरसाते हुए किसीने मेरे राम देखे॥ धनुहिं ...
धनुहिं चढ़ाते हुए किसीने मेरे राम देखे।
मन्द मुस्काते हुए किसीने मेरे राम देखे॥

शंकर उर अति छोभ सती न जानहिं मरमु सोइ।
तुलसी दरशन लोभ मन डर लोचन लालची॥

शिवजीके मनमें बहुत क्षोभ है पर सतीजी नहीं जान पा रहीं हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि शिवजीके मनमें तुलसी—**तु** अर्थात् तुरीय श्रीराम, **ल** अर्थात् लक्ष्मण और **सी** अर्थात् सीताजीके दर्शनोंका लोभ है। परन्तु प्रभुकी गोपनीयता-भङ्गका डर है। और तभी—**शंभु समय तेहि रामहिं देखा** (मा. १.५०.१) अर्थात् शिवजीने भगवान् श्रीरामके दर्शन पा लिए। परन्तु, **कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी** (मा. १.२३१.६)। प्रसन्न हुए शिवजी।

(४) **पादसेवनम्**—सतीजी भगवान् रामके पास आयीं। उनको यह लगा कि मुझे देखकर रामजी अपनी दृष्टि डालेंगे मुझपर। रामजी तो **जेहि सपनेहुँ पर नारि न हेरी** (मा. १.२३१.६)। श्रीरामस्तवराजमें एक वचन आया है बहुत अच्छा—

विश्वामित्रप्रियं दान्तं स्वदारनियतव्रतम्।
यज्ञेशं यज्ञपुरुषं यज्ञपालनतत्परम्॥

(रा.स्त.स्तो. ४३)

जब रामजीने सतीजीपर दृष्टि नहीं डाली तो शिवजी बहुत प्रसन्न हुए। वाह! प्रभो!! वाह!!! आपने सेमी-फाईनल तो जीत लिया। इतने प्रसन्न कि—

जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चले मनोज नसावन॥

(मा. १.५०.३)

कामदेवने पाँचों बाणोंका प्रयोग किया, कोई अन्तर ही नहीं पड़ा। रामजीको कुछ नहीं लग रहा हैं, प्रत्युत रामजीको तो लग रहा है कि यह कामदेव पाँच फूलोंकी माला पहना रहा है—

अरविन्दमशोकञ्च चूतञ्च नवमल्लिका।
नीलोत्पलञ्च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः॥

(वृ.र.)

(१) कमल, (२) अशोक, (३) आम्र, (४) नवमल्लिका (चमेली), और (५) पारिजात—पाँचों बाण मार दिए, पर कोई अन्तर नहीं। शिवजीकी भले समाधि टूटे, पर रामजीको कुछ होने वाला ही नहीं है। इतने प्रसन्न हुए शिवजी कि कहा—"वाह! प्रभो!!"

मित्रो! इतने भाव हैं मानसजी के ... मित्रो! मानसजीके इतने भाव हैं कि मैं क्या बताऊँ आपको! मैंने तो संसारमें रहकर बहुत सहा; क्योंकि ९९% मूर्खोंसे ही मेरा पाला पड़ा। कुछ लोगोंने मुझपर कटाक्ष किये कि महाराजजीके यहाँ तो बैठो तो केवल कुछ मत सुनो, रामकथाका पारायण सुन लो; पूरी चौपाई गा डालते हैं। अब उनको क्या समझाऊँ! उनके प्रश्नोंके उत्तर मैंने बहुत दिये, पर एक उत्तर बहुत अच्छा है; जो मुझे अभी सूझ रहा है। गोस्वामीजीसे पूछा जाता था—"आपकी कथा क्या है? बताइये! आपकी चौपाइयाँ क्या हैं?" गोस्वामीजी बोले—

श्याम सुरभि पय बिशद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सियराम जस गावहिं सुनहिं सुजान॥

(मा. १.१०ख)

"मेरी चौपाई श्यामा गौ है।" कौन गौ है? श्यामा गौ। कोई कहे—"गायको न दोहूँ और दूध मिल जाए", यह संभव है क्या? आप बताओ। अरे! गौको प्यारसे पुचकारो और खिलाओ-पिलाओ। बछड़ा गायके थनमें मुँह मारे, तब दूध देगी। इसी प्रकार गोस्वामीजीकी वाणी काली गाय है। उसको जब हम दुलारेंगे, तब न चौपाई सुन्दर-सुन्दर भाव हमको बतायेगी। वह हमारी कोई नौकर तो नहीं है। गाय बहुत विचित्र होती है। उसको प्रेम दो, तो दूधसे पूरी बाल्टी भर देती है और अगर चिढ़ा दो तो इतना बढ़िया लात मारती है कि ऐसी-तैसी हो जाती है, दाँत ही टूट जाते हैं। गायकी मार बहुत कठिन होती है; भैंस उतना नहीं मारती है, मूर्ख। गौमाता फिर सीधा लात चलाती हैं, और वह मुखपर लगे तो एकौ दाँत बचनेकी स्थिति नहीं बनती। तो भईया! हमारे पास तो श्यामा गौ है, बहुत प्रेमसे हम पालते हैं, देशी गाय है हमारी। और उनको अपनी भक्तिका चारा खिलाते रहते हैं और वो हमें दूध देती रहती हैं।

अब यहीं देखिये! शिवजी इतने प्रसन्न हुए। "भगवान्‌के उपर कामदेवके पाँचों बाणोंका प्रभाव नहीं पड़ पाया—यह बात कहाँसे सिद्ध होगी?"

जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चले मनोज नसावन॥

यहाँ जो पाँच संबोधन दिये भगवान् श्रीरामको—(१) हे सत्, (२) हे चित्, (३) हे आनन्द, (४) हे जगपावन, (५) हे मनोज नसावन जय! **अस कहि चले**। अब यदि आप यह अर्थ नहीं करियेगा तब चौपाई लगेगी नहीं। अभी तो शङ्करजीने कामदेवको नहीं जलाया है न। तो जब कामदेवको नहीं जलाया तो फिर कैसे **मनोज नसावन** कह रहे हैं गोस्वामीजी? कोई गोस्वामीजीको पागल कुत्तेने काट रखा है क्या? इतना तो उनको ज्ञान है न कि अभी प्रसंगमें काम-दहन नहीं हुआ है, इसीलिए शिवजीके लिए **मनोज नसावन** शब्द कहा ही नहीं जा सकता। अतः—

जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चले मनोज नसावन॥

हे प्रभु! आपकी जय हो। हे राघवेन्द्र! हे मेरे प्रभु!!

हे राम तुम्हारी जय जय हो। हे राम तुम्हारी जय जय हो॥
जितकाम तुम्हारी जय जय हो। प्रभु राम तुम्हारी जय जय हो॥
हे राम तुम्हारी जय जय हो। प्रभु राम तुम्हारी जय जय हो॥

सब लोग गाइये। हमारे मोदीनगरवाले पूछेंगे—"आप क्यों गवा रहे हैं हमसे?" तो क्या करें, आप ही बताइये? हम तो रावण नहीं हैं कि हम आपको रुलायें, हम तो गवायेंगे। और आपका लाभ क्या है? जानते हैं? हम आपको वचन देकर जा रहे हैं—यदि मेरे साथ आज इस कथामें गा लेंगे न, तो एक वर्षकी मेरी गारंटी! एक वर्षतक तो आपके घरमें रोनेका प्रसंग ही नहीं आयेगा और एक वर्ष यदि बीत जाए तो फिर मेरे साथ गा लीजियेगा, फिर renew करवा लीजियेगा। आप गा नहीं रहे हैं; मुझे बहुत क्रोध आ रहा है, थुथुरने करनेका मन कर रहा है। फिरसे गाइये! पहले मैं गाऊँ, फिर आप गाइयेगा।

श्रीराम तुम्हारी जय जय हो। श्रीराम तुम्हारी जय जय हो॥
आप्तकाम तुम्हारी जय जय हो। आप्तकाम तुम्हारी जय जय हो॥

पूर्णकाम तुम्हारी जय जय हो। पूर्णकाम तुम्हारी जय जय हो॥
घनश्याम तुम्हारी जय जय हो। घनश्याम तुम्हारी जय जय हो॥
मेरे राम तुम्हारी जय जय हो। मेरे राम तुम्हारी जय जय हो॥
श्रीराम तुम्हारी जय जय हो। श्रीराम तुम्हारी जय जय हो॥

इस चौपाईमें शिवजीने भगवान्‌की पाँचों लीलाओंका संकीर्तन किया। ये पाँच लीलाएँ हैं— (१) बाललीला, (२) विवाहलीला, (३) वनलीला (४) रणलीला तथा (५) राजलीला।

(क) **सत्** से शिवजीने बाललीलाका संकीर्तन किया। इसीलिए बाललीलामें सत्ताका वर्णन आया है।

(ख) **चित्** से शिवजीने विवाहलीलाका संकीर्तन किया। इसीलिए रामजीने शिवजीके अहंकार रूप धनुषको तोड़ा।

(ग) **आनंद**से शिवजीने वनलीलाका संकीर्तन किया। इसीलिए अयोध्याकाण्डमें बार-बार आनन्द शब्द आया है। देखें—

नव गयंद रघुबीरमन राज अलान समान।
छूट जानि बनगमन सुनि उर अनंद अधिकान॥

(मा. २.५१)

अर्थात् रघुकुलके वीर श्रीरामके मनरूप युवा हाथीके हृदयमें राज्यरूप बन्धनको छूटा जानकर और वनमें जाना सुनकर आनन्द अधिक हो गया अर्थात् जैसे बन्धन छूटनेसे गजशालासे निकलकर वन की ओर चला हुआ हाथी बहुत आनन्दित हो उठता है, उसी प्रकार भगवान्‌का मन भी राज्यरूप बन्धनको छूटा हुआ जानकर और अपने वनगमनकी आज्ञा सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। और भी—

लसत मंजु मुनिमंडली मध्य सीय रघुचंद।
ग्यानसभा जनु तनु धरे भगति सच्चिदानंद॥

(मा. २.२३९)

अर्थात् मुनि-मण्डलीके मध्यमें भगवती श्रीसीता एवं रघुकुलके चन्द्रमा भगवान् श्रीराम सुशोभित हो रहे हैं, मानो ज्ञानकी सभामें भक्ति तथा सच्चिदानन्द। तात्पर्य यह कि सत्, चित्, और आनन्द स्वरूप परब्रह्म ही शरीर धारण करके विराजमान हैं।

(घ) **जगपावन**से शिवजीने रणलीलाका संकीर्तन किया। राक्षसोंको मारकर जगत्‌को पवित्र किया-

जग पावनि कीरति बिस्तरिहैं। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहैं॥

(मा. ६.६६.३)

(ङ) **मनोज नसावन**से शिवजीने राजलीलाका संकीर्तन किया। सभीके विकारोंको भगवान्‌ने दूर किया। इसका ज्वलन्त उदाहरण है—

जब ते रामप्रताप खगेशा। उदित भऍउ अति प्रबल दिनेशा॥
पूरि प्रताप रहॆउ तिहुँ लोका। बहुतन सुख बहुतन मन शोका॥

जिनहिं शोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अबिद्या निशा नसानी॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने॥
बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा। इन कर हुनर न कवनिहुँ ओरा॥
धर्म तड़ाग ज्ञान विज्ञाना। ए पंकज बिकसे विधि नाना॥
सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत शोक ए कोक अनेका॥
येह प्रताप रबि जाके उर जब करइ प्रकाश।
पछिले बाढ़हि प्रथम जे कहे ते पावहिं नाश॥

(मा. ७.३१)

अर्थात्, गरूड़जीको सावधान करते हुए भुशुण्डिजी कहते हैं—"हे पक्षिराज! जबसे श्रीराम प्रतापरूप अत्यन्त प्रबल सूर्यनारायण उदित हुए हैं, तभीसे तीनों लोक प्रभुके प्रतापरूप सूर्यके प्रकाशसे भर रहे हैं। इससे बहुत लोगोंके मनमें सुख होता है और बहुत लोगोंके मनमें शोक होता है। प्रभुके प्रतापरुप सूर्यसे जिन्हें शोक है, उनका व्याख्यान करके कहता हूँ। सर्वप्रथम अविद्यारूप रात्रि नष्ट हो गई, पापरूप उल्लू जहाँ-तहाँ छिप गये। काम, क्रोध और कुमुद संकुचित हो गये। प्रभुके प्रतापरूप सूर्यनारायणके उदित होने पर अनेक कर्म, तीनों गुण, काल, स्वभाव—ये सब चकोर कहीं भी सुख नहीं प्राप्त कर रहे हैं। मत्सर, मान, मोह, मद आदि जो चोर हैं इनका किसी भी ओर कौशल नहीं दिख रहा है। धर्मरूप सरोवरमें ज्ञान और विज्ञानरूप ये नानाविध कमल विकसित हो रहे हैं। सुख, सन्तोष, वैराग्य, और विवेकरूप—ये अनेक चकवे शोकसे रहित हो गये। यह श्रीरामप्रतापरूप सूर्य जब भी जिसके हृदयमें प्रकाश करता है, तब पीछे कहे हुए सद्गुण (ज्ञान विज्ञानादि) बढ़ जाते हैं तथा अविद्या, पाप, काम, क्रोधादिका नाश हो जाता है।"

अब पादसेवन कर लिया। प्रणाम किया और चरणकी, चरणचिह्नोंकी सेवा कर ली। भगवान्के चरणचिह्नोंपर जो धूल लगी थी, अपनी जटासे झाड़ दी। अपने सिरपर जो गङ्गाजी हैं उनसे कहा—"थोड़ी धार दे दो, भगवान्के चरणचिह्नोंको स्नान कराऊँगा।" स्नान करवाया भगवान्के चरणचिह्नोंको—**ॐ शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्तऽआश्विनाः श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामाऽअवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः** (शुक्लयजुर्वेद २४.३)। यह है पादसेवनम्।

(५) **अर्चनम्**—

चले जात शिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता॥

(मा. १.५०.३–४)

पुलकावलिसे भगवान् शिव भगवान् श्रीरामजीका अर्चन कर रहे हैं।

(६) **वन्दनम्**—शिवजीने रामजीको प्रणाम कर लिया। प्रणाम करके ही चले थे। आगे सतीजी कहेंगीं—**तिन नृपसुतहिं कीन्ह पर नामा** (मा. १.५०.७)।

तिन नृपसुतहिं कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद पर धामा॥

(मा. १.५०.७)

(७) **दास्यम्**—शिवजी सतीजीसे कहते हैं—"धीर मुनिजन जिनकी सदैव सेवा करते रहते हैं, वे ही त्याग-वीरता, दया-वीरता, विद्या-वीरता, पराक्रम-वीरता, और धर्म-वीरता से उपलक्षित रघुवीर प्रभु श्रीराम मेरे इष्टदेव हैं—"

सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥

(मा. १.५१.८)

(८) **सख्यम्**—

मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहिं ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोइ राम ब्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निज तंत्र नित रघुकुलमनी॥

(मा. १.५१.१)

(९) **आत्मनिवेदनम्**—

अस कहि लगे जपन हरिनामा।

(मा. १.५२.८)

पूरी नवधा भक्ति ही शिवजीमें आ गयी।

अब सतीजीको भ्रम हो रहा है। उसी भ्रमको संदेह कहेंगे, पर है वह भ्रम—**सती सो दशा शंभु कै देखी** (मा. १.५०.५) संदेह हो गया—"अरे! ये तो जगद्वन्द्य हैं शङ्करजी! जगदीश्वर हैं!! देवता, मनुष्य सभी उन्हें प्रणाम करते हैं। **तिन नृपसुतहिं कीन्ह पर नामा** (मा. १.५०.७)—इन्होंने राजपुत्रको प्रणाम कर लिया।" **कहि सच्चिदानंद**—प्रथमानुवाद कर रही हैं—सत्, चित्, आनन्द और **जगपावन**का अनुवाद किया **पर** , और **मनोज नसावन**का अनुवाद किया **धामा**। **कहि सच्चिदानंद पर धामा** (मा. १.५०.७) और

भये मगन छबि तासु बिलोकी।

(मा. १.५०.८)

सतीजीने भगवान्‌के प्रति एक-दो संदेह नहीं किये, १५ संदेह किये, १५ प्रकारसे भ्रम किये और बहुत तीखा व्यङ्ग्य किया—"शिव! ये व्यर्थके १५ नेत्र रखे हो, तुम १५ नेत्रवाले होकर भी नेत्रहीन हो चुके हो।"

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥

(मा. १.५०)

सतीजीने शिवजीके दिये पाँचों विशेषणों—(१) **सत्**, (२) **चित्**, (३) **आनन्द**, (४) **जगपावन**, (५) **मनोज नसावन** (मा. १.५०.३)पर भ्रम किया। (६) **तिन नृपसुतहिं कीन्ह परनामा** (मा. १.५०.७)—प्रणामपर भ्रम किया। (७) **भये मगन छबि तासु बिलोकी** (मा. १.५०.८)—शिव भगवान्‌की छविपर मग्न हुए, उसपर भ्रम किया। और—

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥

(८) **ब्रह्म जो ब्यापक**, (९) **बिरज**—रजोगुणसे रहित, (१०) **अज**, (११) **अकल**—किसी भी प्रकारकी कलासे रहित, (१२) **अनीह**—चेष्टा रहित, (१३) **अभेद**—अपने-परायेके भेदसे रहित, (१४) **सो कि देह धरि होइ नर**, (१५) **जाहि न जानत बेद**—आठ भ्रम इनपर किये। आठ और सात पन्द्रह।

शिवजीने बहुत समझाया—"सती! इतना बड़ा भ्रम नहीं करना चाहिए। ये मेरे इष्टदेव हैं सती! तुम नहीं समझ रही हो। अवतारके कारण नहीं समझ पायीं।" शिवजीने कहा—

मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहिं ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोइ राम ब्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भक्त हित निज तंत्र नित रघुकुलमनी॥

(मा. १.५१.९)

एक बारमें शिवजीने सतीजीके पन्द्रहों प्रश्नोंके उत्तर दिए—

(१) **मुनि**, (२) **धीर**, (३) **जोगी**—योगी और (४) **सिद्ध** निर्मलमनसे जिन्हें गाते हैं—ये चार। (५) **निगम**, (६) **पुरान**—पुराण, (७) **आगम** नेति कहकर जिनकी कीर्ति गाते हैं—सात। सोइ—(८) **राम**, (९) **ब्यापक**, (१०) **ब्रह्म**—दस। (११) **भुवन निकाय पति**, (१२) **माया धनी**, दस-दो बारह। (१३) **अवतरेउ अपने भक्त हित**, (१४) **निज तंत्र नित**, और (१५) **रघुकुलमनी**। एक साथ इसी छन्दमें सतीजीके पंद्रहों प्रश्नोंके उत्तर शिवजीने दिये, फिर भी सती नहीं समझीं। शिवजीने कहा—"मैं नेत्रहीन नहीं हूँ, मेरे पंद्रहों नेत्र सुरक्षित हैं सती! मैंने मिथिलाकी बारातमें ही इन्हें पंद्रहों नेत्रोंसे देखा। इन पंद्रहों नेत्रोंसे इनकी आरती किया करता हूँ।

लाग न उर उपदेश जदपि कहेउ शिव बार बहु।

(मा. १.५१)

इतना बड़ा भ्रम! कोई बात नहीं!" खीझकर कह दिया—

जौं तुम्हरे मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीक्षा लेहू॥

(मा. १.५२.१)

"यदि आपके मनमें बहुत संदेह है तो जाकर परीक्षा क्यों नहीं ले लेतीं? क्यों निरर्थक मेरा सिर खा रही हैं तर्क करके?" अब दूसरा कोई गँवार होता तो दो चाँटे जड़ देता। पर चाँटा जड़नेके समान ही तो है, यदि पत्नीसे पति किसी व्यवहारसे खीझ जाए। बड़ोंकी वाणी ही बाणके समान होती है। **जैसे जाइ मोह भ्रम भारी** (मा. १.५२.३)—मैं कह चुका हूँ कि यह कथा भ्रम हरनी है। यहाँ मोह-मूलक भ्रम है।

शिवजी कहते हैं—सती! विवेकसे काम लीजियेगा—**करेहु सो जतन बिबेक बिचारी** (मा. १.५२.३)। विवेकसे काम कैसे लें? विवेक कहाँसे आता है? सत्संगसे आता है—**बिनु सतसंग बिबेक न होई** (मा. १.३.७) और इन्होंने सत्संग किया ही नहीं तो इनके पास विवेक रहेगा कहाँसे? और अविवेकका परिचय दे दिया—

पुनि पुनि हृदय बिचार करि धरि सीता कर रूप।
आगे होइ चलि पंथ तेहिं जेहिं आवत नरभूप॥

(मा. १.५२)

सीताजीका वेष बनाया, पहनावा पहन लिया; पर स्वरूप नहीं बना सकती थीं। **आगे होइ चलि पंथ तेहिं**—आगे आ गयीं उसी मार्गमें। **जेहिं आवत नरभूप**—जहाँसे भगवान् आ रहे हैं। लक्ष्मणजीने देखा—**लछिमन दीख उ माकृत बेषा** (मा. १.५३.१) और जान गये लक्ष्मणजी। यहाँ **उ** एक पद है और **मा** अलग है—यह ध्यान रखिये। यहाँ **उ**का अर्थ है सतीजी। लक्ष्मणजीने क्या देखा—**चकित भये भ्रम हृदय बिशेषा** (मा. १.५३.१)। हृदयमें विशेष भ्रमके कारण, **उ** माने, सतीजीने **मा कृत बेषा**—मेरी माता सीताजीका वेष बना लिया है, ऐसा लक्ष्मणजीने देखा। तब **चकित भये** अर्थात् चकित हो गये। इस पङ्क्तिका फिरसे अर्थ समझ लीजिये, थोड़ा कठिन ग्रन्थ है न! **चकित भये भ्रम हृदय बिशेषा**—हृदयमें विशेष भ्रमके कारण—**उ** शब्द महेशका भी वाचक है और महेशकी पत्नीका भी वाचक है—**उ** माने सतीजीने, **मा कृत बेषा**, मेरी माता सीताजीका वेष बना लिया। **मा माने चैव मातरि** कोषमें है यह वर्णन। नोट करो। तब लक्ष्मण चकित! अरे राम-राम! यहाँ **उ** अलग है।

लछिमन दीख उमाकृत बेषा। चकित भये भ्रम हृदय बिशेषा॥

(मा. १.५३.१)

यहाँ **उ** जब आप अलग रखेंगे, तभी ग्रन्थ समझमें आयेगा। **उमाकृत बेषा** कहेंगे तो गड़बड़ा जायेगा। अभी इनका नाम उमा है नहीं; जब पार्वती बनेंगी, तब न इनका नाम उमा होगा। इसीलिए मानसजीको समझनेके लिए बहुत तीव्र बुद्धिकी आवश्कता होगी। जब कह रहे हैं—**नानापुराणनिगमागमसम्मतं** (मा. १ म.श्लो. ७), तो फिर इसमें हठ करनेकी क्या आवश्यकता है? अब निक्कर पहननेका भी सहूर नहीं और बन जाते हैं कथावाचक, तो क्या करें हम? हा! हा!! हा!!!

तो लक्ष्मणजी कुछ नहीं बोले, समझ गये। लगा—“इनको भी शूर्पणखावाला प्रसाद दे दें अभी, ये भी अपनी सीमामें आ जाएँ।” पर राघवने कहा—“नहीं लक्ष्मण! शूर्पणखा और इनमें अन्तर है। शूर्पणखा कामविवश होकर मेरी परीक्षा कर रही थी, यह उसे भ्रम है। शूर्पणखा मेरी परीक्षा नहीं कर रही थी, शूर्पणखा मुझे मोहित करना चाहती थी; ये तो मेरी परीक्षा कर रही हैं। मैं परीक्षा करूँगी कि तुम परनारीको कैसे नहीं देखते?” “भैया! चिन्ता न करें।” वसिष्ठजीने भी कह दिया—“भौजाई साहिबा! चिन्ता मत कीजिये। यह बालक साधारण नहीं है, यह वसिष्ठ विश्वविद्यालयसे पढ़कर आया है चकाचक। यह परीक्षामें आपके शत-प्रतिशत प्रश्नोंके उत्तर देगा, चिन्ता मत करिये; यह मेरा विद्यार्थी है, भाभी माँ!” और वही हुआ।

देखिये! यहाँ एक बात कहनी बहुत आवश्यक है। गोस्वामीजीने श्रीरामचरितमानसका पहला प्रसंग यही क्यों चुना? आजतक जितने भी कवि हुए—वाल्मीकिजीसे लेकर अबतक—वे नायकके जन्मसे कथा कहेंगे या नायकके विवाहसे कथा करते हैं। जैसे *नैषधीयचरितम्* नायकके विवाहसे प्रारम्भ हो रहा है, *किरातार्जुनीयम्* अर्जुनके शौर्यसे प्रारम्भ हो रहा है, *शिशुपालवधम्* भगवान् श्रीकृष्णकी विजय-यात्रासे प्रारम्भ हो रहा है; परंतु रामचरितमानसका प्रारम्भ तो हो

रहा है जब नायिका बिछुड़ गयी है। नायिकाके वियोगमें भगवान् श्रीराम व्याकुल हैं। वे हमको आपको बता रहे हैं कि नायिकापर कितना प्रेम है रामजी को। सीताजीके अतिरिक्त किसी दूसरी महिलाको सामान्य दृष्टिसे भी प्रभु नहीं देख रहे हैं। इसलिए रामचरितमानस इसका नाम है—**रामस्य चरितानि मानसेषु येन तत्**—जिनकी कृपासे हमारे मनमें रामजी, हमारे मानसोंमें, रामजीके चरित्र उतर आते हैं। लक्ष्मणजीसे राघवेन्द्रजीने कहा—"नहीं लक्ष्मण! ये मेरी परीक्षिका हैं, मैं भारतीय छात्र हूँ। भारतीय छात्र परीक्षकको गुरुवत् मानता है। मैं इन्हें प्रणाम करूँगा, इन्हें दण्ड नहीं देना है।" तुरन्त प्रभुने—**जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू** (मा. १.५३.७) हाथ जोड़कर प्रणाम किया—"माताजी! दाक्षायणीजी प्रणाम।" प्रवेशपत्र दिखाया—**पिता समेत लीन्ह निज नामू** (मा. १.५३.७)—"मैं दशरथपुत्र राम आपको प्रणाम करता हूँ।" अरे! परीक्षा हो चुकी! परनारीको माँके समान देखा, प्रणाम किया और आगे ज्ञानकी परीक्षा। चरित्रकी परीक्षा हो चुकी, अब चलिये ज्ञानकी परीक्षा। मैं आपको पहचानता हूँ—

कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

(मा. १.५३.८)

शङ्करजी कहाँ हैं? अर्थात् मैं आपको जान गया कि आप सतीजी हैं, पर यह बताइये कि आपने शङ्करजीका साथ क्यों छोड़ दिया? क्यों विश्वासको अलग कर दिया आपने?—

बिनु बिश्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
रामकृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्राम॥

(मा. ७.९०क)

अब आपको विश्राम नहीं मिलेगा, फिरती रहेंगी आप। भक्ति आपके पास आयी नहीं, मेरी कृपा आपपर हो नहीं रही है; मैं आपको प्रणाम कर रहा हूँ। सतीजी भयभीत हो गयीं—**राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोच** (मा. १.५३)। कोमल वचन तो हैं ही पर गूढ हैं, बहुत अर्थ छिपे हैं यहाँ। सतीजीसे भगवान् राम बहुत सारे प्रश्न कर रहे हैं—

मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम्।
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शङ्करं
वन्दे ब्रह्मकुलं कलङ्कशमनं श्रीरामभूपप्रियम्॥

(मा. ३ म.श्लो. १)

यहाँ रामजीने सतीजीसे ग्यारह प्रश्न किये—

(१) **मूलं धर्मतरोः**—अरे! **कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू** (मा. १.५३.८)। शङ्करजी धर्मके मूल हैं—**मूलं धर्मतरोः**, उनकी पत्नी होकर आज आप इतना बड़ा अधर्म क्यों कर रही हैं? हे राम! ये गूढ वचन?—**राम बचन मृदु गूढ़ सुनि ...** (मा. १.५३)।

(२) **विवेकजलधेः पूर्णेन्दुम्**—शङ्करजी विवेक सागरके चन्द्रमा हैं, विवेक सागरको उल्लसित करनेके लिए शरत्की पूर्णिमाके चन्द्रमा हैं, उनकी पत्नीमें इतना बड़ा अविवेक कैसे आया? **कहाँ बृषकेतू**!

(३) **आनन्ददम्**—शङ्करजी सबको आनन्द देते हैं, आज उन्हींकी पत्नी मेरे चरित्रानन्दपर

कुठाराघात करने आ रही हैं? **कहाँ बृषकेतू**!

(४) **वैराग्याम्बुजभास्करम्**—शङ्करजी वैराग्य रूपी कमलको विकसित करनेके लिए सूर्यके समान हैं, उनकी पत्नीको भी इतना बड़ा राग आज हो गया? क्या कभी ऐसी परीक्षा आपको लेनी चाहिए? सूर्यकुलमें जन्मे मेरी आप हत्या करने आ गयीं आज? मैं भी तो कमल हूँ, सात-सात कमल मेरे पास हैं माताजी! **नवकंजलोचन कंजमुख करकंज पदकंजारुणं** (वि.प. ४५.१) और मेरे नेत्र भी अम्बुज हैं—**नव अंबुज अंबक छबि नीकी** (मा. १.१४७.३)। आप क्या कर रही हो? **कहाँ बृषकेतू**!

(५) **ह्यघघनध्वान्तापहम्**—शङ्करजी पाप रूप घने अन्धकारको नष्ट करते हैं, किन्तु आज आप इतने पाप कर रही हैं? **कहाँ बृषकेतू**!

(६) **तापहम्**—शङ्करजी सबके ताप नष्ट करते हैं और आप मुझे ताप दे रही हैं? **कहाँ बृषकेतू**!

(७) **मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवम्**—शङ्करजी मोह रूपी बादलको नष्ट करने हेतु वायुके समान हैं। उनकी पत्नी सतीको मोह कैसा? **कहाँ बृषकेतू**!

(८) **ब्रह्मकुलम्**—ब्राह्मण शङ्करजीका परिवार हैं। उन्हींकी पत्नी मुझ ब्राह्मणभक्तको आज सताने आ गयीं? **कहाँ बृषकेतू**!

(९) **कलङ्कशमनम्**—शङ्करजी कलङ्कको नष्ट करते हैं! आज उन्हींकी पत्नी मुझे कलङ्कित करने आ गयीं? **कहाँ बृषकेतू**!

(१०) **श्रीरामभूपप्रियम्**—शङ्करजी मुझको प्रिय हैं। आज उन्हींकी पत्नी मेरे लिए अप्रिय कार्य क्यों कर रही हैं? **कहाँ बृषकेतू**!

(११) **शङ्करम्**—सबका कल्याण करते हैं शङ्करजी। उन्हींकी पत्नी होकर आप इतना बड़ा अकल्याण क्यों कर रही हैं?

सतीजीने कोई उत्तर नहीं दिया। वे चल पड़ीं पश्चात्ताप करते हुए—

मैं शंकर कर कहा न माना। निज अग्यान राम पर आना॥

(मा. १.५४.१)

"क्या करूँ? मैंने शङ्करजीका कहा नहीं माना, अपना अज्ञान रामजीपर ला दिया। जाकर क्या उत्तर दूँगी?" फिर भगवान्ने भी अपने प्रभावको दिखाया। इनको भगवान्ने भी अपने प्रभावसे पंद्रह उत्तर दिए। इनकी चर्चा फिर कभी करूँगा।

सती क्या करें अब? शिवजीके पास आयीं। भ्रमका परिणाम बहुत भयंकर होता है मित्रो! अभी भी भ्रम है—

सती समुझि रघुबीरप्रभाऊ। भयबश शिव सन कीन्ह दुराऊ॥

(मा. १.५६.१)

गड़बड़ कर दिया, झूठ बोल गयीं। शिवजीने कहा—"सही-सही बताइये, सच-सच बताइये, आपने किस विधिसे परीक्षा ली है—**लीन्ह परीक्षा कवनि बिधि कहहु सत्य सब बात** (मा. १.५५)।" किंतु सतीजी झूठ बोल रही हैं—**कछु न परीक्षा लीन्ह गोसाईं** (मा. १.५६.२) अर्थात् कुछ भी परीक्षा मैंने नहीं ली। सरस्वतीजीने कहा कि मैं भी अब कुछ करूँगी, बहुत

हो गया इनका! सरस्वतीजीने रामजीको यही कह दिया कि ये कहती हैं कि **कछु न परीक्षा लीन्ह गोसाईं** (मा. १.५६.२)। ये आपको **गोसाईं** कहती हैं—"हे गोसाईं! मैंने कोई परीक्षा नहीं ली।" वस्तुत:—

कछु न परीक्षा लीन्ह गोसाईं। कीन्ह प्रनाम तुम्हारिहि नाईं॥

(मा. १.५६.२)

सभी इन्द्रियोंके स्वामी रामजीने इनकी कोई परीक्षा नहीं ली और इनको आपकी ही भाँति प्रणाम कर लिया। जब सतीजीने यह बात कही, तब शङ्करजीने ध्यान देकर जाना—"अरे राम-राम! इन्होंने तो मेरी स्वामिनीका वेष धारण कर लिया। क्या करूँ? अरे! कुछ भी हो, मेरी माताजीका चिन्तन किया तभी इनका वेष बनाया न इन्होंने! जब चिन्तन कर रहीं हैं तब तो ये मेरी माँ हो गयीं, पत्नी नहीं रहीं।" अब तो भाव इनका बदल गया। "अब क्या करूँ?" आहाहा! कितनी सुन्दर मर्यादा है शिवजीकी!! नहीं अब ये मेरी पत्नी नहीं रहेंगी—**परम प्रेम नहिं जाइ तजि किए प्रेम बड़ पाप** (मा. १.५६)। पर करना क्या चाहिए? अब तो भगवान् ही समाधान बतायें! भगवान्‌के चरणचिह्नोंको प्रणाम किया—

तब शंकर प्रभु पद सिर नावा। सुमिरत राम हृदय अस आवा॥

(मा. १.५७.१)

अब समाधान आ गया—

ऐहिं तन सतिहिं भेंट मोहि नाहीं। शिव संकल्प कीन्ह मन माहीं॥

(मा. १.५७.२)

भगवान्‌ने समाधान दे दिया—"इतना करना चाहिए कि इस शरीरसे सतीजीका स्पर्श मत करना बस! जबतक इनका यह शरीर रहेगा, तबतक इनमें पत्नी भाव मत रखना।" **ऐहिं तन सतिहिं भेंट मोहि नाहीं, शिव संकल्प कीन्ह मन माहीं॥**

देखिये! आगे कह रहे हैं आकाशवाणी द्वारा—

अस पन तुम बिनु करइ को आना। रामभगत समरथ भगवाना॥

(मा. १.५७.५)

शिवजीने त्याग कर दिया। यहाँ तो एक ही त्याग है, पर एक साथ पाँच त्याग हो गये—

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥

(वि.प. १७४.१)

पाँच उदाहरण दिये हैं—

तज्यो पिता प्रहलाद बिभीषन बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितन्हि भये मुद मंगलकारी॥

(वि.प. १७४.२)

अद्भुत आनन्द कर दिया। इन लोगोंने पाँच वस्तुएँ त्यागीं—

(१) **प्रह्लादजी**—इन्होंने **पिता**को त्यागा, (२) **विभीषणजी**—इन्होंने **बंधु** रावणको त्यागा,

(३) **भरतजी**—इन्होंने **महतारी** अर्थात् माता कैकेयीजीको त्यागा, (४) **बलिजी**—इन्होंने **गुरु** शुक्राचार्यको त्यागा, (५) **ब्रजवनिताएँ**—इन्होंने **कंत** अर्थात् पतियोंको त्यागा।

परंतु यहाँ तो शङ्करजीने एक साथ पाँचोंको त्याग दिया। कैसे?

(१) **तज्यो पिता प्रहलाद**—सतीजीके त्यागके समय उनके पिता दक्षको त्याग दिया, तो पिताका त्याग हो गया। पत्नीका पिता भी पिताके समान होता है, त्याग दिया।

(२) **बिभीषन बंधु**—विभीषणने बन्धुको त्यागा था। शिवजीने सतीके त्यागके साथ-साथ सभी देवताओं और अपने भाइयोंको त्याग दिया।

(३) **भरत महतारी**—भरतजीने माँको त्यागा, तो शिवजीने सतीजीको त्यागकर अपनी पत्नीकी माता प्रसूतिको त्याग दिया; वो भी माँ हैं।

(४) **बलि गुरु तज्यो**—बलिने गुरुको त्यागा। शिवजीने अपने गुरुके समान ब्रह्माजीकी भी बात नहीं मानी; ब्रह्माजीको छोड़ दिया।

(५) **कंत ब्रज-बनितन्हि**—ब्रजवनिताओंने कंतको त्यागा, तो शिवजीने अपनी कान्ताको त्यागा।

एक साथ पाँचों त्याग हो गये!

आकाशवाणी हुई—"इतनी कठोर प्रतिज्ञा आपके बिना कौन कर सकता है!" कैलाश आये। यह **भ्रम हरनी** (मा. १.३१.४) कथा है। शिवजी सहज स्वरूपका चिन्तन करने लगे—

शंकर सहज स्वरूप सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा॥

(मा. १.५८.८)

मैं तो भगवान्‌का दास, आत्मा हूँ। हमारे शतस्तोत्रीमें यह स्तोत्र आया है। *स्वस्वरूपचिन्तनम्,* सहज स्वरूपका चिन्तन किया—

अहं नैव वर्णी गृहस्थो न चाहं न वैखानसोऽहं यतिर्नो कदाचित्।
अहं नित्यमुक्तो विशुद्धोऽहमात्मा सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥
सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहं सदा राघवीयो जनोऽहं जनोऽहम्॥

(श.स्तो. ९६)

इस स्वरूपका चिन्तन किया। **लागि समाधि अखंड अपारा** (मा. १.५८.८)—सत्तासी हजार वर्षके लिए समाधिमें चले गये। उठे तबतक सतीजीको निश्चय हो चुका था कि अब ये मेरे पति नहीं रहे—

राम नाम शिव सुमिरन लागे। जानेउ सती जगतपति जागे॥

(मा. १.६०.३)

जब मैं पहली कथा सुना रहा था हल जोतने वाले अपने काकाको, तो जब यह प्रसंग आया—मैं छोटा था, सात वर्षकी अवस्था कोई बड़ी नहीं होती। जब प्रसंग आया—**जानेउ सती जगतपति जागे** (मा. १.६०.३) तो उन्होंने मुझे यह भाव बताया। कहा—"गिरधरजी! एक हमरो भाव सुनो हो?" हमने कहा—"बतावा काका!" वे बोले—"सतीजीको शिवजी त्याग चुके हैं यह सतीजी जान गयी हैं; इसलिए सतीजी यह नहीं कह रहीं हैं कि **जानेउ सती मोर पति जागे**, वे कह रही हैं—**जानेउ सती जगतपति जागे**। अब ये मेरे पति नहीं रहे, अब तो

जगत्‌के पिता हो चुके। और आगे चलकर पार्वतीजी कहेंगी—**बिश्वनाथ मम नाथ पुरारी** (मा. १.१०७.७)।"

तो इस प्रकारसे शिवजीको वन्दन किया। शङ्करजीने सम्मुख आसन दे दिया। इधर पिता दक्षजीका यज्ञ हो रहा है। दक्षजीने सतीजीको नहीं बुलाया है। शिवजीके मना करनेपर भी सतीजी जा रही हैं। और वास्तवमें तो वे जानकर जा रही हैं—"यज्ञमें ही मैं अपना शरीर छोड़ दूँगी अग्नि में, और शरीर छोड़कर अग्निमें निवास कर रहीं सीताजीसे क्षमा माँग लूँगी कि हे सीते! अपराध मैंने किया है, आप मुझे क्षमा कीजिये।"

सीते कीजे क्षमा मैंने जाना नहीं॥
मैंने जाना नहीं, पहचाना नहीं
सीते कीजे क्षमा मैंने जाना नहीं॥
मोह भ्रम काननमें भटक भटक के
सीतारामको भी पहचाना नहीं।
सीते कीजे क्षमा मैंने जाना नहीं॥
राम कथा गा-गा करके
विमल विवेक उर आना नहीं।
सीते कीजे क्षमा मैंने जाना नहीं॥
त्रिभुवनगुरु शिव बहुत समझाये
उनका उपदेश मैंने माना नहीं।
सीते कीजे क्षमा मैंने जाना नहीं॥
माता कीजे क्षमा मैंने जाना नहीं॥
आपका ही रूप धरिके करी मैं परीक्षा
भक्ति अनुराग उर ठाना नहीं।
सीते कीजे क्षमा मैंने जाना नहीं॥
***गिरिधर* स्वामिनी क्षमाकी पुत्री सीता**
दुष्ट सती पुत्रीको भूलाना नहीं।
सीते कीजे क्षमा मैंने जाना नहीं॥
अपनी कुपुत्रीको भूलाना नहीं
सीते कीजे क्षमा मैंने जाना नहीं॥

सती मरत हरि सन बर माँगा। जनम जनम शिव पद अनुरागा॥

(मा. १.६५.५)

सीता कीजे क्षमा मैंने जाना नहीं॥

सीताजीने क्षमा कर दिया। हिमाचलराजकी कन्या बनकर फिर पार्वतीने जन्म लिया। सतीजीने जो पन्द्रह संदेह कर पन्द्रह अपराध किये थे, उन्हींके अनुसार अपनी दसों इन्द्रियों और पाँचों महाभूतोंको अग्निमें जला डाला और फिर भगवद्भक्तिके रूपमें प्रकट हुईं। पार्वतीजीका जन्म

हुआ। देवताओंने पुष्पोंकी वर्षा की। पार्वती मैयाकी जय हो!

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(स.दु. ३)

गोस्वामीजीने देखा कि उधर शङ्करजीके पास नौ लक्षण आ गये हैं, इधर पार्वतीजी नौ रूपोंमें दिख रही हैं। गोस्वामीजीने कहा कि आज पार्वतीजीके आनेसे हिमाचल बहुत सुन्दर लग रहे है, जैसे वैष्णव रामभक्तजन रामभक्तिको पानेसे सुन्दर लगते हैं—

सोह शैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन रामभगति के पाये॥

(मा. १.६६.३)

अद्भुत आनन्द हो गया! वेदव्यासजी और तुलसीदासजीमें होड़ लग गयी। वेदव्यासजीने कहा—"मैं इनको नौ दृष्टिसे देखता हूँ।" तुलसीदासजीने कहा—"ठीक है! मैं भी इन्हें नौ दृष्टिसे देखता हूँ।" "अच्छा कैसे?" वेदव्यासजीने कहा—**प्रथमं शैलपुत्री च** (मा.पु. चण्डीकवच ३) अर्थात् इनका प्रथम स्वरूप है शैलपुत्री। तुलसीदासजीने कहा—"आपको ये शैलपुत्री दिख रही हैं, मुझको तो साक्षात् सत्संगति ही दिख रही हैं।" **जिमि जन रामभगति के पाये** (मा. १.६६.३)। "सत्संगति ही पार्वतीजी बनकर आ गयी हैं"—**प्रथम भगति संतन कर संगा** (मा. ३.३७.८)। "अच्छा?" "देखिये! नारदजीके साथ छोटी होकर भी कितना बढ़िया सत्संग कर रही हैं"—**सुता बोलि मेली मुनि चरना** (मा. १.६६.८), "चरणोंमें लिपट गयी हैं, नारदजीकी बातें सुन रही हैं, विचलित नहीं हो रही हैं। नारदजी जबकि कह रहे हैं कि इनको भयंकर पति मिलेंगे—"

अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संशय छीना॥
जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख॥

(मा. १.६७.८, १.६७)

सब लोग रो रहे हैं—

सुनि मुनि गिरा सत्य जिय जानी। दुख दंपतिहिं उमा हरषानी॥

(मा. १.६८.१)

पर ये मुस्कुरा रही हैं, क्योंकि ये जानती हैं—"संत कभी अशुभ बोलते ही नहीं। सारा संसार अशुभ बोलता है, पर संतके मुखसे अशुभ नहीं निकलता।" जान गयी हैं कि समाधान होगा। ये भगवान् हैं। ग्यारह आसक्तियाँ इनमें हैं, भगवान्के प्रति ग्यारह प्रकारका लगाव है इनके अन्दर—

गुणमाहात्म्यासक्ति-रूपासक्ति-स्मरणासक्ति-पूजासक्ति-दास्यासक्ति-सख्यासक्ति-वात्सल्यासक्ति-कान्तासक्त्यात्मनिवेदनासक्ति-तन्मयतासक्ति-परमविरहासक्ति-रूपैकधाप्येकादशधा भवति॥

(ना.भ. सू. ८२)

कठिन नहीं! चिन्ता मत करना। भगवान्के प्रति ग्यारह प्रकारसे लगाव रखना चाहिए। ये ग्यारहों लक्षण शिवजीमें हैं—

(१) **गुणमाहात्म्यासक्ति**—भगवान्‌के गुणमें लगाव रखना चाहिए।

(२) **रूपासक्ति**—भगवान्‌के रूपमें लगाव रखना चाहिए।

(३) **स्मरणासक्ति**—भगवान्‌के स्मरणमें लगाव रखना चाहिए।

(४) **पूजासक्ति**—भगवान्‌की पूजामें लगाव रखना चाहिए।

(५) **दास्यासक्ति**—भगवान्‌के दास्यमें, सेवामें, जितना हो सके अपने हाथसे हम भगवान्‌की सेवा करें।

(६) **सख्यासक्ति**—भगवान्‌के सख्यमें, विश्वासमें आसक्ति।

(७) **वात्सल्यासक्ति**—भगवान्‌के प्रति वात्सल्य रखना चाहिए।

(८) **कान्तासक्ति**—भगवान्‌के कान्ता भावमें, कमनीय सेवामें आसक्ति रखनी चाहिए।

(९) **आत्मनिवेदनासक्ति**—भगवान्‌के प्रति आत्मनिवेदन रखना चाहिए, उन्हें सब कुछ सौंप देना चाहिए।

(१०) **तन्मयतासक्ति**—भगवान्‌के प्रति तन्मयता होनी चाहिए।

(११) **परमविरहासक्ति**—भगवान्‌से बिछुड़नेमें परम विरहकी अनुभूति होनी चाहिए।

"तो शिवजीमें ये ग्यारह आसक्तियाँ हैं, इसलिए एकादश रुद्र हैं शिवजी। सारे दोष उनमें समाप्त, उनके पास कोई दोष ही नहीं है। मैं तपस्या करूँगी शिवजीके लिए। ये रामभक्त हैं।" नारदजीने सपनेमें तपस्याके सात गुण गिनाते हुए कहा—"पार्वतीजी! जाकर तपस्या कीजिये। बहुत विशेषता है तपस्याकी—

> **तप सुखप्रद दुख दोष नसावा॥**
> **तपबल रचइ प्रपंच बिधाता। तपबल बिष्णु सकल जग त्राता॥**
> **तपबल शंभु करहिं संघारा। तपबल शेष धरइ महिभारा॥**
> **तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहु जाइ तप अस जिय जानी॥**

(मा. १.७३.२–५)

(१) **तप सुखप्रद**—तपस्या सुखप्रद है, (२) **दुख दोष नसावा**—तपस्या दोष-दु:खको नष्ट करती है, (३) **तपबल रचइ प्रपंच बिधाता**—तपके बलसे ही ब्रह्माजी इस पञ्चभूतात्मक जगत्‌की रचना करते हैं, (४) **तपबल बिष्णु सकल जग त्राता**—तपके बलसे ही विष्णुजी सारे संसारका पालन करते हैं, (५) **तपबल शंभु करहिं संघारा**—तपके बलसे ही शङ्करजी इस जगत्‌का संहार करते हैं अर्थात् बिखरे हुए संसारको समेटकर प्रभु श्रीरामजीके चरणोंमें विश्राम करा देते हैं, (६) **तपबल शेष धरइ महिभारा**—तपके बलसे ही शेषजी पृथ्वीका भार धारण करते हैं, (७) **तप अधार सब सृष्टि भवानी**—यह सम्पूर्ण सृष्टि तपके आधारपर चल रही है। हे भवानी! अर्थात् कल्याणमय शङ्करजीकी शाश्वत पत्नी पार्वतीजी! ऐसा हृदयमें जानकर वनमें जाकर तप कीजिये।

तब पार्वतीजी वन में जाकर तपस्या करने लगीं—

> **उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तप करना॥**

(मा. १.७४.१)

पार्वतीजीने सात प्रकारसे तपस्या की—

संबत सहस मूल फल खाये। शाक खाइ शत बरष गवाँये॥
कछु दिन भोजन बारि बतासा। किये कठिन कछु दिन उपवासा॥
बेल पात महि परइ सुखाई। तीनि सहस संबत सोइ खाई॥
पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहिं नाम तब भयउ अपरना॥

(मा. १.७४.४–७)

आनन्द कर दिया! भक्तकी सात भूमिकाएँ होती हैं—

(१) **संबत सहस मूल फल खाये**—एक सहस्र वर्षतक मूल फल खाये, (२) **शाक खाइ शत बरष गवाँये**—शाक खाकर सौ वर्ष बिताये, शाकम्भरी बन गयीं। यहाँ समीप ही है शाकम्भरीका स्थान। बोलिये शाकम्भरी मैयाकी जय! यहाँके लोग शाकुम्भरी बोलते हैं, (३) **कछु दिन भोजन बारि**—और कुछ दिन जल, (४) **बतासा**—कुछ दिन वायु, (५) **किये कठिन कछु दिन उपवासा**—कुछ दिन कठिन उपवास किया, (६) **बेल पात महि परइ सुखाई, तीनि सहस संबत सोइ खाई**—तीन सहस्र वर्ष बेलपत्र खाये, (७) **पुनि परिहरे सुखानेउ परना, उमहिं नाम तब भयउ अपरना**—और फिर इसको छोड़ा तो इनका नाम पड़ गया *अपर्णा*। इस प्रकार सात तपस्याएँ कीं।

अन्तमें भगवान् रामने आकाशवाणीकी और कहा—"ब्रह्माजी! जाकर इनको समझाइये। चली जाएँ, शङ्करजी मिलेंगे।" ब्रह्माजीने पार्वतीजीको समझाया। भगवान् राम शङ्करजीके पास प्रकट हुए और बोले—"देखिये! पार्वतीजीने अपार तप किया है। सुनिये! मैं आपका हित चाहता हूँ। शिवजी! आपमें नौ दोष हैं और ये नौवों दोष जीवके तबतक नहीं मिटते, जबतक उसको नवधा भक्ति प्राप्त नहीं होती। आपके ये नौ दोष आगे कहेंगे सप्तर्षि—"

तेहि के बचन मानि बिश्वासा। तुम चाहहु पति सहज उदासा॥
निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली॥

(मा. १.७९.५–६)

(१) **सहज उदासा**—आप सहज उदास हैं, (२) **निर्गुन**—आप निर्गुण हैं, (३) **निलज**—आप निर्लज्ज है, (४) **कुबेष**—आप कुवेषधारी हैं, (५) **कपाली**—आप कपाली हैं, (६) **अकुल**—आप अकुल हैं, कोई कुल नहीं है आपका, (७) **अगेह**—आप अगेह हैं, आपका घर नहीं है, (८) **दिगंबर**—आप दिगम्बर हैं, (९) **ब्याली**—आप व्याली हैं—ये नौ दोष हैं आपमें। जब नवधा भक्ति रूप पार्वतीसे विवाह करियेगा, तब ये नौवों दोष मिट जायेंगे। इसलिए—

अब बिनती मम सुनहु शिव जौ मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु शैलजहिं यह मोहि माँगे देहु॥

(मा. १.७६)

"शिवजी! पार्वतीजीसे अब विवाह कीजिये। यह मैं आपसे भीख माँगता हूँ।" शिवजीने कहा—"ठीक है।" इधर सप्तर्षियोंने पार्वतीजीके स्नेहकी परीक्षा ली और उनसे कहा—"नारदजीकी बात सुनकर तुम सहज उदास पतिको चाहती हो? नौ दोष हैं इनके!" पार्वतीजीने कहा—"अब तो तय हो गया। इनके नौ दोष हैं तो मैं नवधा भक्ति हूँ। अब तो इन्हींसे विवाह करूँगी—"

तजउँ न नारद कर उपदेशू। आपु कहहिं शत बार महेशू॥

(मा. १.८१.५)

"अब मैं परीक्षा लूँगी। शिवजीसे मैं विवाह तभी करूँगी, जब वे कामको जला देंगे। क्योंकि शिवजी भक्त हैं, भक्तके पास काम नहीं रहता।" देवताओंने कामको परीक्षा लेनेके लिए भेजा। उसने सारे संसारको व्यथित किया और शिवजीपर पञ्चबाण छोड़े।

तब शिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा॥

(मा. १.८७.६)

तीसरा नेत्र खोल दिया। तो कामको शिवजीने भस्म किया तीसरे नेत्रसे, तीसरा नेत्र मस्तकपर होता है। रेफका उच्चारण मस्तकसे होता है—**ऋटुरषाणां मूर्धा** (पा. १.१.८, ल.सि.कौ. १०)। *राम* केवल कहा, *राम* भी पूरा नहीं। र कहते-कहते एक क्षणमें खाक हो गया। कामकी विभूति लगा ली। शिवजीके गणोंने शिवजीका शृङ्गार किया। जटाके मुकुटपर सर्पका मौर; कुण्डल, कङ्कण, और कौपीन भी सर्प; शरीरपर विभूति; बाघाम्बर; मस्तकपर चन्द्रमा और गङ्गाजी; तीन नेत्र; यज्ञोवीत सर्पका; हाथमें त्रिशूल और डमरू; और नन्दी बैलपर विराजमान होकर चले—**बसहँ चढि बाजहिं बाजा** (मा. १.९२.५)। आहाहा! शिवजी जानते हैं कि वे भक्तसे विवाह करने जा रहे हैं। नन्दी भी बहुत सुन्दर लग रहे हैं—

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश॥

(ऋ.वे. ४.५८.३)

सामान्य बैलके कितने सींग होते हैं? बताओ! आप तो जानते हो? दो। और नन्दीके जानते हो? **चत्वारि शृङ्गा**—चार सींग हैं। बैलके कितने चरण होते हैं?—चार। और यहाँ—**त्रयो अस्य पादा**—इसके तीन चरण हैं। बैलके सिर कितने होते हैं?—एक। और यहाँ—**द्वे शीर्षे**—नन्दीके दो सिर हैं। बैलके पास हाथ तो नहीं होता, यहाँ **सप्त हस्तासो अस्य**—सात हाथ हैं इसके। **त्रिधा बद्धो**—तीन रस्सियोंसे बँधा है। **वृषभो रोरवीति**—"बा-बा" नहीं कर रहा है, "राम राम राम राम राम राम" कह रहा है। ऐसे नन्दीपर चढ़कर भगवान् शङ्कर आ रहे हैं। आहाहा ...

रुद्रगणोंको बुला लिया है भगवान्ने—

जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिं मग जाता॥

(मा. १.९४.१)

बारात नगरके निकट आ गयी, खलबली मच गयी। सब लोग आये और देवताओंकी सेना देखकर तो बहुत प्रसन्न हुए। जब भगवान्को देखा—तो 'यही दूल्हा है' कहकर लगे नमस्ते करने—"जीजाजी! नमस्ते।" भगवान् कहने लगे—"नहीं! नहीं!! मैं तुम्हारा जीजा नहीं हूँ।" लोगोंने पूछा—"फिर कौन हो?" भगवान्ने कहा—"मैं तो सहबाला हूँ, जीजाजी आगे मिलेंगे।" और जब जीजाजी मिले तो—

शिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बाहन सब भागे॥

(मा. १.९५.४)

सब वाहन भड़क गये और बच्चे डर गये। जो युवक थे वो तो खड़े रहे, बालक तो भागे

बेचारे। इतने भयभीत जीजाको देखकर! जीजाजी नमस्ते! अरे जीजाजीको देखो साँप, बिच्छू, मुण्डमाला! बच्चोंको तो डरसे सुसू होने लगा। माताएँ किवाड़ बंद करके तैयारी कर रही थीं, बच्चोंने किवाड़ खड़खड़ाये। माताएँ पूछीं—"क्या बात है?" बच्चोंने कहा—"अरे!! किवाड़ तो खोलो।" किवाड़ खुला। माताएँ बोलीं—"अरे! पायजामा कैसे गड़बड़ हो गया?" बच्चोंने कहा—"क्या करें, यह दुल्हा इतना ही भयंकर है!"

बर बौराह बरद असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा॥
तन छार ब्याल कपाल भूषन नगन जटिल भयंकरा॥

(मा. १.९५.८–९)

"कोई बात नहीं बेटा! ये शङ्करजी हैं।" भगवान् बारात लेकर आये जनवासेमें, मैनाजी आरती उतारने चलीं—**बिकट बेष रुद्रहिं जब देखा** (मा. १.९६.४)। रुद्रको देखा तो भयभीत हो गयीं, भाग उठीं और भवनमें जा बैठीं। आरती फेंक दी, भयभीत हो गयीं, क्या करें? उन्होंने कहा कि कुछ भी हो मैं पार्वतीका शिवसे विवाह नहीं करूँगी—**घर जाउ अपजस होउ जग जीवत बिबाह न हौं करौं** (मा. १.९६.९)।

भोजपुरीका यह गीत देखिये—

जन्म भरी धेरीया कुमारी मोरी रइहै बरु बावरेके संग मोरी गौरा नहीं जइहैं।
जन्म भरी धेरीया कुमारी मोरी रइहै बरु बावरेके संग मोरी गौरा नहीं जइहैं॥
वेस विकराल मुंडमाल लपटाए बा भूतवा पिसचवा बरतिया ले आऐ बा।
इन्हें देखि बेटी बिन मारे मर जइहैं बरु बावरेके संग मोरी गौरा नहीं जइहैं॥
सीसपर गंगा ससि कंठमें गरल बा उरवामें सोहे सखी इनके मुंड मलवा।
इन्हें देखि बेटी मोरी प्राण तज देइहैं बरु बावरेके संग मोरी गौरा नहीं जइहैं॥
साँपके जनेऊ सोहे साँपकी लंगोटीयाँ अंगमें रमाए बाटै मुर्दाके भूतियाँ।
इन्हें देखी बेटी मोरी कुँएनामें गिरिहे बरु बावरेके संग मोरी गौरा नहीं जइहैं॥
बैल पे सवार बाटे बउरहि मुरतिया जोगिनी जमाति लेही प्रेत कै बरतिया।
***रामभद्राचार्य* कैसे गीतियाँ सुनइहै बरु बावरेके संग मोरी गौरा नहीं जइहैं॥**
जन्म भरी धेरीया कुंवारी मोरी रइहै बरु बावरेके संग मोरी गौरा नहीं जइहैं॥

अब मैनाजीको पार्वतीजीने समझाया कि नहीं, जो मेरे भाग्यमें होगा वो होगा। सब लोग रोये। अन्तमें नारदजीने सबको समझाया, सब लोग प्रसन्न हुए और दिव्य विवाह हुआ। शिवजीने आज पार्वतीजीका पाणिग्रहण किया—**पानिग्रहन जब कीन्ह महेशा, हिय हरषे तब सकल सुरेशा** (मा. १.१०१.३) वैदिक मन्त्रोच्चारण हुए। दहेज मिला, सब शङ्करजीने लौटा दिया; केवल पार्वतीजीको लेकर साथ चले। इसका अर्थ यह है कि गोस्वामीजी प्रारम्भसे ही दहेज प्रथाके विरोधी हैं। कार्त्तिकेयजीका जन्म हुआ, गणपति जन्मे और भगवती पार्वतीजी अब शिवजीसे कथा सुननेको उपस्थित हुईं और बोलीं—

निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥

(मा. १.३१.४)

अब कल चार कथाएँ आपको सुनायी जाएँगीं। सातवीं कथा श्रीरामजन्मकी कथा है। चलिये।

॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥
॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥
बोलिये रामचन्द्र भगवान्‌की जय हो!
सब लोग बोलिये सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय हो!
पवनपुत्र हनुमान्‌जीकी जय हो!
गोस्वामीजी तुलसीदास महाराजकी जय हो!
॥ जय जय श्रीसीताराम ॥

तृतीय पुष्प

॥ नमो राघवाय॥

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥
नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥
यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥
(श्री)सीतानाथसमारम्भां (श्री)रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे (श्री)गुरुपरम्पराम्॥
श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर-बिमल-जस जो दायक फल चारि॥

सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय।

(श्री)रामचरितमानस बिमल कथा करौं चित चाइ।
आसन आइ विराजिये (श्री)पवनपुत्र हरषाइ॥

पवनसुत हनुमान्‌जी महाराजकी जय हो। गोस्वामी तुलीदासकी जय हो।

॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥
॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥
॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥
॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥

तुलसी सीताराम कहो हृदय राखि बिस्वास।
कबहूँ बिगड़त ना सुने (श्री)सीतारामके दास॥

सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय।

रामकथा सुंदर करतारी। संशय बिहग उड़ावनहारी॥

(मा. १.११४.१)

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा भगवान् श्रीसीतारामजीकी कृपासे मोदीनगरमें, श्रीराघव-सेवा-समितिके तत्त्वावधानमें, समायोजित अपनी १२५१वीं रामकथाके तृतीय सत्रमें आप सभी बहिनों-भाइयोंका मैं बहुत-बहुत स्वागत करता हूँ। जैसा कि आप सुन रहे हैं, गोस्वामीजीकी प्रतिज्ञा है

कि वे हमारे-आपके कल्याणके लिए, महीनेके तीसों दिनोंके लिए, बहुत सोच-समझकर तीस कथाएँ कह रहे हैं।

चारों वक्ता कथा कह रहे हैं—उसमें (१) **निज संदेह हरनी** गोस्वामीजीकी निजसंदेहकी कथा है, (२) **मोह हरनी कथा** याज्ञवल्क्यजीकी है, जो भरद्वाजजीको सुनायी जा रही है, (३) **भ्रम हरनी कथा** शिवजी पार्वतीजीको सुना रहे हैं।

शिव-पार्वती-विवाह संपन्न हो चुका है। आज भक्तिके नौ लक्षणोंवाले शिवजी-जैसे परम भक्तको नवधा भक्तिस्वरूपिणी हिमाचलनन्दिनी पार्वतीजी प्राप्त हो गयीं हैं। शिवजीको सब कुछ मिल गया—

(१) **प्रथम भगति संतन कर संगा** (मा. ३.३७.८)—सत्संगतिके रूपमें पार्वतीजी मिलीं। **प्रथमं शैलपुत्री च** (मा.पु. चण्डीकवच ३)।

(२) **दूसरि रति मम कथा प्रसंगा** (मा. ३.३७.८)—भगवान्‌के कथा प्रसंगोंमें रतिके रूपमें पार्वतीजी मिलीं। **द्वितीयं ब्रह्मचारिणी**।

(३) **गुरुपद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान** (मा. ३.३७)—मानरहित गुरुचरणकमलकी सेवाके रूपमें शिवजीको पार्वतीजी मिलीं। **तृतीयं चन्द्रघण्टेति**।

(४) **चौथि भगति मम गुनगन करइ कपट तजि गान** (मा. ३.३७)—भगवद्गुणगणगानके रूपमें पार्वतीजी मिलीं। **कूष्माण्डेति चतुर्थकम्**।

(५) **मंत्र जाप मम दृढ़ बिश्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥** (मा. ३.३८.१)—साक्षात् दृढ़-विश्वासके साथ मंत्रजपके रूपमें भी शिवजीको पार्वतीजी मिलीं। **पञ्चमं स्कन्दमातेति**।

(६) **छठ दम शील बिरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा॥** (मा. ३.३८.२)—दम, शील, बहुत कर्मोंसे वैराग्य और सज्जनों-वैष्णवोंके धर्मके रूपमें पार्वतीजी शिवजीको मिलीं। **षष्ठं कात्यायनीति च**।

(७) **सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोते संत अधिक करि लेखा॥** (मा. ३.३८.३)—सातवीं भक्तिके रूपमें सर्वत्र भगवद्दर्शन और संतोंको भगवान्‌से अधिक मानना—इस सातवीं भक्तिके रूपमें भी पार्वतीजी शिवजीको मिलीं। **सप्तमं कालरात्रीति**।

(८) **आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥** (मा. ३.३८.४)—जो लाभ है, उसीमें संतोष करना और स्वप्न में भी किसीका दोष न देखना—ऐसी आठवीं भक्तिके रूपमें भी पार्वतीजी शिवजीको मिलीं। **महागौरीति चाष्टमम्**।

(९) **नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिय हरष न दीना॥** (मा. ३.३८.५)—सरलता, सबसे छलहीन होना, हृदयमें केवल भगवान्‌का भरोसा, हर्ष और दैन्य कुछ नहीं। **नवमं सिद्धिदात्री च**।

इस प्रकार आज नवधा-भक्ति, मार्कण्डेय पुराणोल्लिखित नवदुर्गारूप पार्वतीजीका शरीर धारण करके, शिवजीको प्राप्त हो गयी।

सोह शैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन रामभगति के पाये॥

(मा. १.६६.३)

अब क्या? जब नौ लक्षणवाले भक्तको नवधा-भक्ति मिल गयी, तो शिवजीके सारे नौ दुर्गुण दूर हो गये—

तेहि के बचन मानि बिश्वासा। तुम चाहहु पति सहज उदासा॥
निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली॥

(मा. १.७९.५–६)

(१) **सहज उदासा**—अब वे उदास नहीं रहे, (२) **निर्गुन**—अब वे निर्गुण नहीं रहे, सगुण हो गये, (३) **निलज**—अब निर्लज्ज नहीं हैं, उनकी एक मर्यादा है, (४) **कुबेष**—अब कुवेष नहीं, आज तो सुन्दर वेष है—

कुंद इंदु दर गौर शरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा॥
तरुन अरुन अंबुज सम चरना। नख दुति भगत हृदय तम हरना॥
भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी। आनन शरद चंद्र छबि हारी॥

(मा. १.१०६.६–८)

अरे! श्रीरामजीकी कथा कहनेके लिए आज शिवजी सज-धजकर आये हैं। क्या सुन्दर कुंद पुष्प, चन्द्रमा और शङ्खके समान गौर शरीर है उनका, लम्बी भुजाएँ हैं, मुनिवस्त्र-ब्रह्मग्रन्थि धारण कर रखे हैं। यह जो हमने धारण कर रखा है, इसको हम ब्रह्मग्रन्थि कहते हैं; यह रामग्रन्थि है, यही रामजी धारण करते हैं। और हम लोग सामान्यत: लक्ष्मणग्रन्थि धारण करते हैं—यह हमारा वेष है। यहाँतक कि कुर्ता भी हमारा निजी वेष नहीं है। इसे धोतीके साथ पहना जाता है, वृन्दावनमें पहनते हैं, उसको चौबंदी भी कहते हैं और बगलबंदी भी कहते हैं। वह हमारा वेष है। तो कुवेष नहीं रह गया।

(५) **कपाली**, (६) **अकुल**, (७) **अगेह**, (८) **दिगंबर**, (९) **ब्याली**।

जटा मुकुट सुरसरित शिर लोचन नलिन बिशाल।
नीलकंठ लावन्यनिधि सोह बालबिधु भाल॥
बैठे सोह कामरिपु कैसे। धरे शरीर शांतरस जैसे॥

(मा. १.१०६, १०७.१)

भगवान् शिव वटवृक्षके नीचे कितने आनन्दमें बैठे हैं। आज वक्ता पहले आ गया, श्रोताको अब आना है। **पारबती भल अवसर जानी** (मा. १.१०७.२)—बहुत अच्छा अवसर देखकर भगवती आ रहीं हैं और शिवजीने उन्हें—**बाम भाग आसन हर दीन्हा** (मा. १.१०७.३)—वामभागमें बैठाया। शिवजीकी धर्मपत्नी बहुत प्रेमसे विराजमान हुईं और कामके शत्रु शिवजीसे रामकी कथा पूछी—

कथा जॊ सकल लोक हितकारी। सॊइ पूछन चह शैलकुमारी॥

(मा. १.१०७.६)

संपूर्ण संसारका हित करने वाली जो कथा है, वही पूछना चाह रही हैं भगवतीजी। जब सतीजीके शरीरमें थीं, तब पंद्रह संशय किये थे और आज सोलह प्रश्न कर रही हैं। वाल्मीकिजीने भी पार्वतीजीके गुरुदेव नारदजीसे सोलह प्रश्न किये थे। और पार्वतीजी त्रिभुवनपति शिवजीसे अब सोलह प्रश्न करती हैं; जिनमें आठ प्रश्न श्रीरामकथाके हैं। बड़े सुन्दर-सुन्दर प्रश्न किये—

(१) **तुम पुनि राम राम दिन राती, सादर जपहु अनँग आराती, राम सो अवध नृपति सुत सोई** (मा. १.१०८.७–८)—जिनको आप जपते रहते हैं, वे रामजी कौन हैं? वे राम क्या वही अवधनरेश के पुत्र हैं?

(२) **की अज अगुन अलख गति कोई** (मा. १.१०८.८)—यदि अवधनृपतिपुत्र वही श्रीरामजी हैं; तो अलख, अगुण, अजन्मा कोई और भी है क्या?

(३) **जौ नृपतनय त ब्रह्म किमि नारिबिरह मति भोरि** (मा. १.१०८)—यदि परब्रह्म परमात्मा रामजी दशरथपुत्र बने, तो ब्रह्म कैसे? उनकी बुद्धि नारीके विरहमें कैसे व्याकुल हो गयी? उनका चरित्र देखकर और महिमा सुनकर मेरी बुद्धि भ्रमित हो रही है—**भ्रमति बुद्धि अति मोरि** (मा. १.१०८)। **भ्रम हरनी** (मा. १.३१.४) कथा है यह।

(४) **जौ अनीह ब्यापक बिभु कोऊ, कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ** (मा. १.१०९.१)—यदि राम अनीह, व्यापक, विभु हैं; तो यह समझाकर बताइये।

ये चार प्रश्न अध्यात्मके किये। फिर आठ प्रश्न कथासे संबन्धित किये—

(५) **प्रथम सो कारन कहहु बिचारी, निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी** (मा. १.११०.४)—वह कौन सा कारण है कि निर्गुण ब्रह्मने सगुण शरीर धारण किया?

(६) **पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा, बालचरित पुनि कहहु उदारा** (मा. १.११०.५)—हमें रामजीका अवतार सुनाइये, उनके उदार बाल चरित्र सुनाइये।

(७) **कहहु जथा जानकी बिवाही** (मा. १.११०.६)—जिस प्रकारसे श्रीसीतारामजीका विवाह हुआ, वह सुनाइये।

(८) **राज तजा सो दूषन काही** (मा. १.११०.६)—भगवान्‌ने राज्यको छोड़ा, इसमें किसका दोष है?

(९) **बन बसि कीन्हे चरित अपारा** (मा. १.११०.७)—भगवान्‌ने वनमें रहकर कौनसे अपार चरित्र किये?

(१०) **कहहु नाथ जिमि रावन मारा** (मा. १.११०.७)—भगवान्‌ने रावणको कैसे मारा?

(११) **राज बैठि कीन्हीं बहु लीला, सकल कहहु शंकर शुभशीला** (मा. १.११०.८)—भगवान्‌ने राज्यसिंहासनपर बैठकर जो अनेक लीलाएँ कीं, उन्हें सुनाइये।

(१२) **बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम, प्रजा सहित रघुबंशमनि किमि गवने निज धाम** (मा. १.११०)। इस दोहेपर लोग बड़ा संशय करते हैं। पार्वतीजी कह रही हैं—“मुझे सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि भगवान्‌ने लङ्का-विजयके पश्चात् संपूर्ण वानरी प्रजाको अपने पुष्पक-विमानपर कैसे बैठा लिया और सबको पुष्पकसे लेकर अयोध्याजी गये?” और कहा जाता है कि पुष्पक-विमानका नियम है कि कितने ही लोगोंको बैठाओ, फिर भी पुष्पक-विमानकी एक सीट रिक्त ही रहती है। ये बारह प्रश्न हो गये।

(१३) **पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी, जेहिं बिग्यान मगन मुनि ग्यानी** (मा. १.१११.१)—वह रामतत्त्व कहिये, जिसके विज्ञान (अनुभव)में ज्ञानी मुनि मग्न रहते हैं। यहाँ **बिग्यान**का अर्थ है अनुभव।

(१४) **भगति ग्यान बिग्यान बिरागा, पुनि सब बरनहु सहित बिभागा** (मा.

१.१११.२)—मुझे भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य इनको विभागके सहित समझाइये।

(१५) **औरउ रामरहस्य अनेका, कहहु नाथ अति बिमल बिबेका** (मा. १.१११.३)—और भी जो अनेक रामजीके रहस्य हैं, वे बताइये।

(१६) **जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई, सोउ दयालु राखहु जनि गोई** (मा. १.१११.४)—सोलहवाँ प्रश्न बहुत अच्छा है। जो कुछ मैंने नहीं पूछा उसको भी छिपाइयेगा नहीं, भगवन्! बता दीजियेगा।

पार्वतीजीने ये सोलह प्रश्न किये भगवान्‌से। शिवजी बहुत गद्गद हो गये और ध्यानरसमें दो दण्डतक डूबे रहे—

मगन ध्यानरस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपतिचरित महेश तब हरषित बरनै लीन्ह॥

(मा. १.१११)

ध्यानरसमें मग्न हो गये शिवजी। मङ्गलाचरण करके उन्हीं बालरूपी भगवान् रामका वर्णन कर रहे हैं—

बंदउ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥

(मा. १.११२.३)

बालक तो बालक होता है। बालकमें भगवद्बुद्धि बहुत सरलतासे हो जाती है, उसमें संसारके भाव तो आते नहीं। शिवजी रामके बालरूपका मङ्गलाचरण कर रहे हैं।

निम्नलिखित चौपाई संपूर्ण रामायणका सारांश है। गोसाईजीके मुखसे पहली बार यही चौपाई निकली थी, जिसको यहाँ उन्होंने व्यवस्थित किया—

मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दशरथ अजिर बिहारी॥

(मा. १.११२.४)

हमारे पश्चिमी उत्तरप्रदेशके लोग कहते हैं—**द्रवउ सो दशरथ अजर बिहारी**। **अजर** कभी मत बोलना, यह **अजिर** है। **अजिर** माने आँगन होता है। तो **अजिर** बोलना **अजर** नहीं।

मंगल भवन अमंगल हारी, द्रवउ सो दशरथ अजिर बिहारी (मा. १.११२.४)—यह संपूर्ण रामायण है। (१) **मंगल भवन**—यह भगवान्‌का नाम है, (२) **अमंगल हारी**—यही भगवान्‌का रूप है, (३) **दशरथ अजिर**—यह भगवान्‌का धाम है, (४) **बिहारी**—यह भगवान्‌की लीला है। ऐसे भगवान् **द्रवउ**—हमपर कृपा करें।

इस चौपाईका एक और अर्थ बहुत अच्छा है। **द्रवउ**का एक बहुत सुन्दर अर्थ है। शङ्करजी कहते हैं—"भगवन्! एक-बार द्रवित हो जाइये।"

भाजि चले किलकात मुख दधि ओदन लपटाइ।

(मा. १.२०३)

मुखमें दही-भात भरे हैं। ऐसे बालरूप भगवन्! एक-बार द्रवित हो जाइये। अपनी लार टपका दीजिये। दो-चार कण मुझे दे दीजिये, मैं खा लूँ। मेरा मुख विष पीनेसे तीखा-तीखा हो गया है। सरकार! एक बार मुझे अपनी जूठन दे दीजिये।

मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दशरथ अजिर बिहारी॥

(मा. १.११२.४)

अहा! कितना सुन्दर! भगवन्! मेरे चेले भुशुण्डिजी तो आपकी जूठन खाते रहते हैं—**जूठन परइ जो अजिर महँ सो उठाइ करि खाउँ** (मा. ७.७५क) तो भगवन्! एक बार द्रवित हो जाइये। अपने मुखकी लार गिरा दीजिये।

द्रवि जाइये तनिक अरे द्रवि जाइये, दशरथके ललन तनिक द्रवि जाइये॥
राजीवलोचन राम भव-भय-मोचन, दही-भात बाँटि-बाँटिके खाइये॥
तनिक द्रवि जाइये ..., दशरथके ललन तनिक द्रवि जाइये॥
कुटिल अलक लटकति मुख ऊपर, विधुमुखकी शोभा प्रभु सरसाइये॥
तनिक द्रवि जाइये ..., दशरथके ललन तनिक द्रवि जाइये॥
घनकी बिजुरियाँ-से दुई दुई दतुरियाँ, मधुर-मधुर प्रभु मुस्काइये॥
तनिक द्रवि जाइये ..., दशरथके ललन तनिक द्रवि जाइये॥
किलकन मिस दधि ओदनगिराइये, विधुमुखसे लार प्रभु टपकाइये॥
तनिक द्रवि जाइये ..., दशरथके ललन तनिक द्रवि जाइये॥
जूठनहित अब मततरसाइये, *गिरिधर*पर करुणा बरसाइये॥
तनिक द्रवि जाइये ..., दशरथके ललन तनिक द्रवि जाइये॥
मंगल भवन अमंगल हारी द्रवउ सो दशरथ अजिर बिहारी॥
तनिक द्रवि जाइये ..., दशरथके ललन तनिक द्रवि जाइये॥

॥ बोलिये भक्तवत्सल भगवान्‌की जय ॥

करि प्रनाम रामहिं त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी॥

(मा. १.११२.४–५)

देख रहे हो? यह है मानसका भाव। देखो—**करि प्रनाम रामहिं त्रिपुरारी**। जब जूठन मिल गयी, तब वाणी कैसी निकली?—**हरषि सुधा सम गिरा उचारी** (मा. १.११२.५) अमृतसमान हो गयी। यह है रामचरितमानसका भाव। अभी हम ब्रह्मग्रन्थि धारण करते-करते कह रहे थे कि प्रत्येक वैष्णवका मन होता है कि अपने ठाकुरजीको बढ़िया सजाये, उन्हें सुन्दर शृङ्गार धारण कराये। मेरे पास तो वैसा सामर्थ्य नहीं है, मन मेरा भी होता है। मैंने कहा कि कोई बात नहीं प्रभो! और लोग भिन्न-भिन्न वस्तुओंसे आपका शृङ्गार करेंगे और मैं जबतक जीवित रहूँगा, तबतक मधुर-मधुर, नये-नये श्रीरामकथाके भावोंसे आपको सजाता रहूँगा।

आनन्द आ गया। मैं मोदीनगरवालोंको नहीं सुना रहा हूँ, यह ध्यान रखिये। यह तो अपने हनुमनउको सुना रहा हूँ और रामजीको सजा रहा हूँ। तो इसलिए, कितने सुन्दर लग रहे हैं रामजी—क्या बताऊँ आपको।

मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दशरथ अजिर बिहारी॥

(मा. १.११२.४)

दशरथजीके **अजिर** माने आँगनमें भगवान् विहार कर रहे हैं, खेल रहे हैं। आपने देखा होगा कि छोटा-सा बालक जब खेलता है, तो मुखसे उसके लार टपकती है। शिवजी कह रहे

हैं—"थोड़ी-सी दही-भातवाली लार टपका दीजिये। दो चार कण मुझे मिल जाएँ तो मेरे मुखका कड़वापन चला जाए।" टपका दी लार तो शिवजीने चाट ली और मुखका कड़वापन चला गया—तो **हरषि सुधा सम गिरा उचारी** (मा. १.११२.५)। और पार्वतीजी स्वीकारती भी यही हैं—

नाथ तवानन शशि स्त्रवत कथा सुधा रघुबीर।
श्रवन पुटनि मन पान करि नहिं अघात मतिधीर॥

(मा. ७.५२.ख)

अभी तो आगे कहेंगी—

शशि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी।

(मा. १.१२०.१)

"भगवन्! आपके मुखचन्द्रसे निर्झरित होती हुई रघुवीरजीकी कथासुधाको **स्त्रवन पुटनि** कानरूपी दोनोंसे पीता हुआ मेरा मन अघा नहीं रहा है।" लोग कहते हैं कि देवताओंके सुधापानके पश्चात् पार्वतीजी आयीं, तो उनको अमृत नहीं मिला। "पर देवताओ! मुझे तो वह अमृत मिल गया, जिस अमृतको पीकर भुशुण्डिजी सत्ताईस कल्पोंसे अमर हैं, मरे नहीं। तुम तो एक मन्वन्तर पश्चात् नहीं रहोगे।"

शिवजीने कथा प्रारम्भकी और पार्वतीजीकी बहुत प्रशंसा की—**धन्य धन्य गिरिराजकुमारी** (मा. १.११२.६)। आप धन्य हैं पार्वतीजी! आपने तो श्रीरामकथा-गङ्गाके संबन्धमें पूछा। अबतक तो मेरे सिरपर गङ्गा बहती थी, अब लगता है कि आप यह कहना चाहती हैं कि सिरवाली गङ्गासे कोई लाभ नहीं होगा, अब आप अपने मुखसे श्रीरामकथा-गङ्गा बहाइये—

पूँछिहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जस पावनि गंगा॥

(मा. १.११२.७)

आदरसे सुनिये पार्वतीजी! भ्रम मत कीजिये। अगुण-सगुणमें कोई भेद नहीं होता—

अस निज हृदय बिचारि तजु संशय भजु रामपद।
सुनु गिरिराज कुमारि भ्रम तम रबि कर बचन मम॥

(मा. १.११५)

शिवजी बार-बार कह रहे हैं—पार्वती! रामजीको समझनेका प्रयास करो। मेरे मतमें निर्गुण-सगुणमें कोई भेद नहीं है—

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बश सगुन सो होई॥

(मा. १.११६.२)

पुरुष प्रसिद्ध प्रकाशनिधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि शिव नायउ माथ॥

(मा. १.११६)

इस प्रसंगको रामायण-संप्रदायमें *शिवगीता* भी कहा जाता है। पार्वती! भगवान् राम सच्चिदानन्द दिनेश हैं—

जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा।

(मा. १.११६.४)

नामजप कीजिये, भ्रम अपने आप दूर हो जायेगा। पार्वती! रामजी ब्रह्म व्यापक हैं। "कौन हैं रामजी?" देखिये पार्वती! विषयोंको इन्द्रियोंसे प्रकाश मिलता है, इन्द्रियोंको देवताओंसे प्रकाश मिलता है, देवताओंको जीवात्मासे प्रकाश मिलता है, और जीवात्माको भी परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे प्रकाश मिलता है—

बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक ते एक सचेता॥
सब कर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

(मा. १.११७.५–६)

बार-बार शिवजी यह बात कहेंगे। पार्वती! रस्सीमें व्यक्तिको सर्पका भ्रम होता है, जलमें सूर्यनारायणकी किरणोंका भ्रम होता है; उसी प्रकार इस भगवद्रूप-संसारमें जीवको अपनेपनका भ्रम हो रहा है। यह भ्रम केवल भगवान्‌की कृपासे मिटता है—

जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपालु रघुराई॥

(मा. १.११८.३)

सतीके शरीरमें तुमको इसीलिए भ्रम हुआ कि तुमपर भगवान्‌की कृपा नहीं हुई थी और भगवान्‌की अकृपाका यही तात्पर्य है कि तुम्हारा मन सत्संगमें नहीं लगा।

बिनु सतसंग बिबेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥

(मा. १.३.७)

मैं तुमको ले गया था अगस्त्यजीके यहाँ। फिर भी तुम्हें सत्संग सुलभ नहीं हुआ क्योंकि तुमपर रामजीकी कृपा नहीं थी। अब हो गयी है कृपा—

रामकृपा ते पारबति सपनेहुँ तव मन माहिं।
शोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं॥

(मा. १.११२)

अब **भ्रम हरनी** (मा. १.३१.४) कथा से भ्रम दूर हो जाएगा। कितना सुन्दर!

अब चलिये पूरा वर्णन करें—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बक्ता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास अशेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

(मा. १.११८.५–८)

पार्वती! देख रही हो, भगवान्‌की नौ विलक्षणताएँ हैं। अब तुमको समझमें आ ही जायेगा क्योंकि तुम नवधा-भक्ति हो—

(१) **बिनु पद चलइ**—रामजीको चलनेके लिए चरणकी आवश्यकता नहीं पड़ती। वे चरण चलाये बिना भी चल सकते हैं। श्रीअवधके राजमहलमें माताजीने पालनेपर पौढ़ा दिया था। पट बंद करके श्रीरङ्गनाथजीका भोग लगा रही थीं। प्रभुने चरण नहीं चलाया पर वहाँ पहुँच गये।

(२) **सुनइ बिनु काना**—रामजी बिना कानके सुन सकते हैं। ताराके राजमहलमें बालि और ताराका जो संवाद हो रहा था उसे सुन लिया।

(३) **कर बिनु करम करइ बिधि नाना**—रामजी बिना हाथसे बड़े-बड़े कर्म कर लेते हैं। रामजीने शङ्करजीके धनुषपर हाथ नहीं लगाया था। किसीने नहीं देखा था—

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहुँ न लखा देख सब ठाढ़े॥

(मा. १.२६१.७)

फिर भी धनुष तोड़ा—**तेहि छन राम मध्य धनु तोड़ा** (मा. १.२६१.८) यह कैसे तोड़ा? **कर बिनु करम करइ बिधि नाना**।

(४) **आनन रहित सकल रस भोगी**—मुख नहीं चलाया पर भरद्वाजजीके यहाँ जो भी सुन्दर-सुन्दर पदार्थ ऋद्धि-सिद्धिने प्रकट किये, वह सब भगवान् पा गये। और अवधमें भी माताजीने देखा तो सो रहे हैं—**करि शृंगार पलना पौढ़ाए** (मा. १.२०१.१)। सोते हुए भी वहाँ—**भोजन करत देख सुत जाई** (मा. १.२०१.४)—सैंकड़ों थालियोंकी ऐसी-तैसी कर डाली।

(५) **बिनु बानी बक्ता**—आगे जब हनुमान्‌जी सीताजीको संदेश कह रहे हैं, तो वाणी है हनुमान्‌जीकी और बोल रहे हैं रामचन्द्रजी। नहीं तो हनुमान्‌जी सीताजीको **प्रिया** कहेंगे क्या?—

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा॥

(मा. ५.१५.६–७)

क्या हनुमान्‌जी ऐसा वाक्य बोलेंगे? हनुमान्‌जी चुप हो गये—**अस कहि कपि गदगद भयउ** (मा. ५.१४) गद्गदका अर्थ होता है वाणीका रूक जाना। वे तो चुप हो गये, **भरे बिलोचन नीर** (मा. ५.१४)। तब स्वर है जैसे मैं बोल रहा हूँ माईकसे, तो हनुमान्‌जीकी वाणी माईककी भूमिका निभा रही है। माईकको थोड़े कुछ समझमें आ रहा है कि मैं क्या बोल रहा हूँ; तभी तो—

राम कहेउ बियोग तव सीता। मो कहँ सकल भये बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृशानू। काल निशा सम निशि शशि भानू॥
कुबलयबिपिन कुंतबन सरिसा। बारिद तप्त तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग श्वास सम त्रिबिध समीरा॥
कहेहूँ ते कछु दुख घटि होई। काहि कहौं येह जान न कोई॥
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा॥

(मा. ५.१५.१–६)

यहाँ **बिनु बानी बक्ता** है।

(६) **बड़ जोगी**—रामजी बहुत बड़े योगी हैं। प्रवर्षण-पर्वतपर अट्ठारह पद्म वानरोंसे मिलना है, समय नहीं है। अत: जितने वानर थे, उतने रूप बना लिये भगवान्‌ने और कहते हैं—

अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुशल जेहि पूछी नाहीं॥

(मा. ४.२२.३)

ऐसा कोई वानर ही नहीं है, जिससे रामजीने कुशल नहीं पूछी। इसी प्रकार अयोध्याजीमें

लौटनेपर—

अमित रूप प्रगटे तेहिं काला। जथाजोग मिले सबहिं कृपाला॥

(मा. ७.६.५)

(७) **तन बिनु परस**—रामजी शरीरके बिना भी स्पर्श कर सकते हैं। सुतीक्ष्णजीको हृदयमें स्पर्श कर लिया और सुतीक्ष्णजी इतने पुलकित हुए कि जैसे कटहलका फल हो। कटहलके फलमें देखो, कितना बढ़िया काँटा होता है। अरे! एक व्यक्तिने विनोद किया—"हरा-हरा काँटा; बूझो तो बूझो नहीं तो नाक-कान काटा।" तो,

मुनि मग माझ अचल होइ बैसा। पुलक शरीर पनसफल जैसा॥

(मा. ३.१०.१५)

(८) **नयन बिनु देखा**—आँखका प्रयोग किये बिना भगवान् देख रहे हैं। लङ्कामें बैठे हैं और भरतजीपर दृष्टि है। विभीषणसे कह दिया कि जल्दी कीजिये, मुझे पुष्पकसे श्रीअवध पहुँचाइये—

दशा भरत की सुमिरि मोहि निमिष कल्प सम जात॥

(मा. ६.११६क)

मैं देख रहा हूँ, क्या करूँ? अरे!

बीते अवधि जाउँ जौ जियत न पावउँ बीर।

(मा. ६.११६ग)

यह है **नयन बिनु देखा**।

(९) **ग्रहइ घ्रान बिनु बास अशेषा**—भरद्वाजजीके आश्रममें ऋद्धि-सिद्धिसे प्रकट **स्त्रक चंदन बनितादिक भोगा** (मा. २.२१५.८)। माला, चन्दन सब लोगोंने भोगे पर भरतजीको कुछ भी अनुभव नहीं हुआ और सारी सुगन्ध बिना नाकके रामजीने ले ली। इस प्रकार बहुत सुन्दर कथा सुनायी। पार्वतीजीका भ्रम दूर हो गया। और संकेत देखिये—

निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥

(मा. १.३१.४)

प्राय: मेरा स्वभाव है कि कोई भी बात मैं बिना प्रमाणके कहना नहीं स्वीकारता, मुझे अच्छा नहीं लगता। पूरा सब समझा दिया। मुझे अपनेपर अहंकार नहीं है पर गौरव अवश्य है। मैं बहुत प्रसन्न हूँ अपने जीवनमें और मैं भगवान्‌को कभी-कभी चिढ़ाता हूँ। आनन्द लेता हूँ कि भगवन्! आपने मेरे कर्मोंका फल मुझे दिया है। कोई छूट नहीं दी आपने। कोई कर्म रहे होंगे, आँखें बंद हो गयीं। परंतु मैंने इन बंद आँखोंवाली अवस्थामें जितना काम किया है भगवन्! आपके आँखवाले करोड़ों बेटे नहीं कर पायेंगे। अब देखिये! यह अहंकार नहीं है। बापके सामने भीख माँगने नहीं जाना चाहिए, बल्कि अच्छा कर्म करके पुरस्कार लेने जाना चाहिए। तो मैं तो प्रभुसे पुरस्कार लेने जाता हूँ, भीख नहीं माँगता उनसे।

तीसरी कथा **भ्रम हरनी** है। पार्वतीजी! **राम सो परमातमा भवानी** (मा. १.११९.५)—रामजी परमात्मा हैं, वहाँ भी आपने भ्रम कर लिया—**तहँ भ्रम अति अबिहित तव बानी** (मा. १.११९.५)।

सुनि शिव के भ्रमभंजन बचना। मिटि गइ सब कुतरक कै रचना॥

(मा. १.११९.७)

शिवजी कहते हैं—"ऐसा संशय मत करो"—ये भ्रमभञ्जन वचन हैं।

भइ रघुपतिपद प्रीति प्रतीती। दारुन असंभावना बीती॥

(मा. १.११९.८)

पार्वतीजी बहुत प्रसन्न हुईं और कहा—"भगवन्! मुझे रामजीका स्वरूप ज्ञात हो गया। मेरा सब कुछ चला गया, मोहात्मक शरदातप चला गया। मैं सुखी हूँ। अब कथा सुननेका मन है। तो निर्गुण-निराकार-निर्विकार भगवान् सगुण-साकार शरीर क्यों धारण करते है माने अवतार क्यों लेते हैं?" यहाँ तीसरी कथा संपूर्ण—**निज संदेह मोह भ्रम हरनी** (मा. १.३१.४)।

कथा ४: करउँ कथा भव सरिता तरनी (मा. १.३१.४)

अब चौथी-कथा उत्तरकाण्डमें कहनी पड़ेगी। यह भुशुण्डिजीकी कथा है—**करउँ कथा भव सरिता तरनी** (मा. १.३१.४)। चार वक्ता हैं—(१) **तुलसीदासजी**—इनकी कथा **निज संदेह हरनी** है, (२) **याज्ञवल्क्यजी**—इनकी कथा **मोह हरनी** है, (३) **शिवजी**—इनकी कथा **भ्रम हरनी** है और (४) **भुशुण्डिजी**—इनकी कथा **भव सरिता तरनी** है। **तरनी** माने होता है नाव। वास्तवमें मोह तो सबको होता ही है। परंतु जब भगवान् युद्धमें मेघनादके नागपाशमें बंध गये और नारदजीने गरुडदेवको भेजा। गरुडदेवने भगवान् श्रीरामका बन्धन काट तो दिया, पर उनको मोह हो गया—"अरे! ये कौन-से भगवान् राम हैं?"

भवबंधन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम।
खर्ब निशाचर बाँधेउ नागपाश सोइ राम॥

(मा. ७.५८)

"एक छोटे-से राक्षसके नागपाशमें बंध गये, ये कैसे भगवान्?" बहुत मोह हो गया, डूबने लगे गरुडजी मोहकी नदीमें। नारदजीने समझाया, पर नहीं समझ पाये। ब्रह्माजीने समझाया, तो भी नहीं समझे। शिवजीने कहा—"भैया! जब नारद और ब्रह्मा नहीं समझा पाये आपको, दो-दो आचार्य आज अनुत्तीर्ण हो गये, तो मैं अपना समय नष्ट नहीं करूँगा आपको समझानेके लिए।"

मिलेहु गरुड मारग महँ मोही। कवनि भाँति समुझावौं तोही॥

(मा. ७.६१.३)

"आपको तो मैं आपके ही वर्गके व्यक्तिके पास भेज रहा हूँ, क्योंकि पक्षी पक्षीकी भाषा समझता है—**समुझइ खग खगही कै भाषा** (मा. ७.६२.९)। चलिये! आपको मैं भेज रहा हूँ। उत्तरदिशामें नीलगिरि पर्वतपर भुशुण्डिजी रह रहे हैं। इतनी कथा कोई सुनाता ही नहीं, पर वे प्रतिदिन कथा सुनाते हैं। यद्यपि वे मेरे विद्यार्थी हैं, मैंने उन्हें रामचरितमानस पढ़ाया; परंतु इतना अच्छा वे सुनाते हैं कि क्या कहूँ आपको—"

सुनहिं सकल मति बिमल मराला। बसहिं निरंतर जे तेहि ताला॥

(मा. ७.५७.९)

"मैंने भी हंसका शरीर धारण करके वहाँ रहकर बहुत दिनतक एक आवृत्ति श्रीरामकथा सुनी। देखिये! पढ़ाना अलग होता है, सुनाना अलग होता है। और जो व्यक्ति पढ़ा भी सके और सुना भी सके, वह बहुत अच्छा माना जाता है। तो मैंने उन्हींसे सुनानेकी विधि सीखी, तब पार्वतीजीको सुनायी। वहीं जाइये।"

गरुडजी भुशुण्डिजीके पास आये। भुशुण्डिजीने देखा कि गरुडजी चौरासी लाख योनियोंमें भटकते-भटकते डूब गये थे। इसीलिए गरुडजीकी चौरासी लाख योनियोंको नष्ट करनेके लिए भुशुण्डिजीने श्रीरामकथाके बहुत दिव्य चौरासी प्रसंग सुनाये। तो यह—**भव सरिता तरनी** (मा. १.३१.४)।

भुशुण्डिजी कह भी रहे हैं—

बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी। मोह नदी कहँ सुन्दर तरनी॥

(मा. ७.१५.७)

आनन्द कर दिया। यह है चौथी कथा है। सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय हो।

सुनु शुभ कथा भवानि रामचरितमानस बिमल।
कहा भुशुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड॥
सो संबाद उदार जेहि बिधि भा आगे कहब।
सुनहु राम अवतार चरित परम सुंदर अनघ॥

(मा. १.१२०ख–ग)

मैंने भी आपको चार कथाएँ सुना दीं।

कथा ५: बुध बिश्राम (मा. १.३१.५)

अब चलिये, पाँचवीं कथा। पाँच, छः, सात—इन तीनों कथाओंका संकेत गोस्वामीजी एक ही चौपाईमें दे रहे हैं—

बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष बिभंजनि॥

(मा. १.३१.५)

पञ्चम कथाका शीर्षक है **बुध बिश्राम** और यह आरम्भ हो रही है—

सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाये। बिपुल बिशद निगमागम गाये॥

(मा. १.१२१.१)

से ....

सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहिं न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहिं भजिय महामाया पतिहिं॥

(मा. १.१४०)

...तक।

देखिये! **बुध बिश्राम** (मा. १.३१.५) यह पञ्चम कथा विद्वानों (बुधों)को विश्राम देती है क्योंकि भगवान्‌के यशको बुधजन बहुत प्रेमसे गाते हैं। विद्वान् लोग जानते हैं कि भगवान्‌के

सगुण-साकार यशमें छः गुण हैं। पर गोस्वामी तुलसीदासजीने भगवान्‌के दस माधुर्यपरक यशोंका वर्णन किया है। भगवान्‌के पिताश्रीका नाम आप जानते हैं न?

राम राम सब कोइ कहे दशरथ कहे न कोइ।
एक बार दशरथ कहे जनम कोटि फल होइ॥

दशरथजी जैसा कोई प्रेमी नहीं है भगवान्‌का। तो भगवान्‌के पिताश्रीका नाम है दशरथ। जब भगवान् दशरथजीके बेटे बनकर आये, तो अपने साथ कितने यश ले आये? दस यश। रामजीके मूल कितने यश हैं? दस, ध्यान रखिये—

सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपालु प्रनत अनुरागी॥
जेहिं जन पर ममता अति छोहू। जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू॥
गई बहोर गरीब निवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥

(मा. १.१३.५–७)

(१) **परम कृपालु**—भगवान् बहुत कृपालु हैं। (२) **प्रनत अनुरागी**—प्रणतोंपर भगवान् अनुराग करते हैं। (३) **जेहिं जनपर ममता अति छोहू**—भगवान्‌को भक्तोंपर ममता भी है और छोह (अर्थात् प्रेम) भी है। (४) **जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू**—भगवान् कृपा करके फिर क्रोध नहीं करते। जिसपर कृपा कर दी; कृपाके पश्चात् कितनी भी गलती करे, उसपर उन्हें क्रोध नहीं आता। (५) **गई बहोर**—भगवान् गयी हुई वस्तुको लौटा लाने वाले हैं। (६) **गरीब निवाजू**—भगवान् दीनोंको सम्मानित करते हैं। (७) **सरल**, (८) **सबल**, (९) **साहिब** अर्थात् स्वामी, और (१०) **रघुराजू**—रघुकुलके राजा हैं।

बुध बरनहिं हरिजश अस जानी। करहिं पुनीत सुफल निज बानी॥

(मा. १.१३.८)

विद्वान् लोग भगवान्‌के इसी यशका वर्णन करते हैं। दस यशोंके वर्णनके इस प्रसंगमें मूलरूपसे तीन भक्तोंकी कथा कही जायेगी—(क) प्रह्लादजीकी कथा, (ख) वृन्दाजीकी कथा और (ग) नारदजीकी कथा।

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥

(मा. १.१२२.४)

भगवान्‌के दो द्वारपाल जय और विजय हैं। इन्हें सनकादिका श्राप मिला, तब जय बने हिरण्यकशिपु और विजय बने हिरण्याक्ष।

(१) **परम कृपालु** (मा. १.१३.५)—हिरण्याक्षको मारनेके लिए परम कृपालु भगवान्‌ने शूकरावतार धारण किया और उसका वध किया।

(२) **प्रनत अनुरागी** (मा. १.१३.५)—प्रणत प्रह्लादपर प्रेम करते हुए भगवान्‌ने नृसिंहावतार धारण कर हिरण्यकशिपुका वध किया। यही दोनों रामावतारमें रावण और कुम्भकर्ण, कृष्णावतारमें शिशुपाल और दन्तवक्र हुए। भगवान् ने इनका उद्धार कर दिया।

(३) **जेहिं जनपर ममता अति छोहू** (मा. १.१३.६)—ममताके कारण व इन दोनों भक्तोंका उद्धार करनेके लिए रामावतार लिया भगवान्‌ने और रावण-कुम्भकर्णको मारा। **अति छोहू**—छोह करनेके कारण कृष्णावतार लेकर प्रतिदिन सौ-सौ गालियाँ देने वाले शिशुपालको मुक्त

किया, दन्तवक्रको मुक्त कर दिया।

(४) **जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू** (मा. १.१३.६)—वृन्दाजी भगवान्की भक्त थीं। भगवान्के प्रति उनका पतिभाव था, परंतु विवाह जलन्धरसे हो गया था। भगवान् रामने विष्णुसे कहा—"इनका स्पर्श करके व्रत टाल दीजिये।"

छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।

(मा. १.१२३)

टारेउ शब्द है, **नासहु** नहीं है। भगवान् अच्युत हैं, वे कभी च्युत नहीं होते। यदि च्युत हुए होते तब न उनका व्रत नष्ट हुआ होता? पतिव्रतको **टारेउ** अर्थात् स्थानान्तरित कर दिया, जो जलन्धरके साथ था वह विष्णुके साथ चला गया। यह भगवान्ने करुणाकी और समझाया कि इस संसारके पतिको क्यों मानती हो?

ऐसे वरको क्यों वरे जो जन्मे और मर जाए।
मीरा बरे गोपालको जहाँ चूड़ो अमर होई जाए॥

करुणाकी भगवान्ने। परंतु पङ्क्ति देखिये—

जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह॥

(मा. १.१२३)

अर्थात् उसने जब मर्म जाना तो भगवान्को क्रुद्ध होकर श्राप दिया। भगवान्ने तो करुणाकी थी। वृन्दाने शाप दिया—"जाओ विष्णो! तुम पत्थर हो जाओगे।" विष्णु तो बन गये शालग्राम और रामजीको श्राप दिया—"प्रभो! आपके कहनेसे विष्णुने मेरा व्रत टाला। जाइये! आपकी पत्नीका मेरा पति हरण करेगा। परंतु आप युद्धमें उसे मारकर परम पद दे दीजियेगा।" तो श्राप दोनोंको मिला। रामजीने करुणा करके विष्णुजीसे केवल वृन्दाके व्रतको अपनेतक सीमित किया। भगवान् विष्णुके साथ इसको जोड़ दिया कि जिससे इसका कल्याण हो जाए पर श्राप देनेपर भी भगवान्ने क्रोध नहीं किया—

जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू।

(मा. १.१३.६)

भगवान् जिसपर करुणा करते हैं, वह कितनी भी गलतियाँ करे फिर भी क्रोध नहीं करते। भगवान्को दूसरी तरफसे क्रोध आ रहा है कि मैंने तुम्हारा कल्याण किया और तुम मुझे श्राप दे रही हो? पर—

तासु श्राप हरि कीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपालु भगवाना॥
तहाँ जलंधर रावन भएऊ। रन हति राम परमपद दयऊ॥

(मा. १.१२४.१–२)

॥ बोलिये भक्तवत्सल भगवान्की जय ॥

देखिये! रामकथा गङ्गा है यह—

रामकथा गंगा सरस बहल जाये यामे कोउ कोउ नहाये॥
ध्रुवजी नहाये प्रहलादजी नहाये गणिका नहायी आपन सुगना पढ़ाये।
रामकथा गंगा सरस बहल जाये यामे कोउ कोउ नहाये॥

सबरी नहाई जटायूजी नहाये केवट नहाये प्रभु नौका चढ़ाये।
रामकथा गंगा सरस बहल जाये यामे कोउ कोउ नहाये॥
सुग्रीव नहाये विभीषण नहाये हनुमत नहाये आपन पूँछिया हिलाये।
रामकथा गंगा सरस बहल जाये यामे कोउ कोउ नहाये॥
हनुमत नहाये आपन चुटकी बजाये यामे कोउ कोउ नहाये॥
ब्रह्माजी नहाये यामे विष्णुजी नहाये शंकरजी नहाये आपन डमरु बजाये।
रामकथा गंगा सरस बहल जाये यामे कोउ कोउ नहाये॥
लक्ष्मी नहाई यामे पार्वती नहाई सरस्वती आपन वीणा बजाये।
रामकथा गंगा सरस बहल जाये यामे कोउ कोउ नहाये॥
नारद नहाये सनकादिक नहाये शुकदेव नहाये श्रीमद्भागवत सुनाये।
रामकथा गंगा सरस बहल जाये यामे कोउ कोउ नहाये॥
तुलसी नहाये यामे सूरा नहाये *रामभद्राचार्य* नहाये मानस सुनाये।
रामकथा गंगा सरस बहल जाये यामे कोउ कोउ नहाये॥

॥ बोलिये भक्तवत्सल भगवान्‌की जय ॥

तो मोदीनगरवालो! समझमें आ रहा है न सबको? समझमें आये तो ताली बजाना। चलिये भाई, चलिये! अब बोलिये नहीं! एक-एक अक्षरको समझानेका मैं प्रयास करूँगा। विद्वानोंके चार यशोंकी चर्चा मैंने कर दी, अब श्रीनारद-मोह प्रकरणमें भगवान् एक साथ इन छः यशोंका प्रयोग करेंगे—

गई बहोर गरीब निवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥

(मा. १.१३. ७)

भगवान्‌के चार यश हम आपको अबतक सुना चुके हैं और यही **बुध बिश्राम** (मा. १.३१.५), विद्वानोंका विश्राम है—

(१) **परम कृपालु** (मा. १.१३.५) जयके लिए और (२) **प्रनत अनुरागी** (मा. १.१३.५) विजयके लिए बने। हिरण्याक्षको मारनेके लिए शूकरावतार और हिरण्यकशिपुको मारनेके लिए नृसिंहावतार लिया। (३) **जेहिं जनपर ममता अति छोहू** (मा. १.१३.६)—इन दोनोंके लिए रामावतार और कृष्णावतार हुआ। तो रामावतारमें ममता दिखायी। इतनी ममता दिखायी कि जब अङ्गदजीको भेजने लगे राघवजी, तो उनसे कहा—

काज हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥

(मा. ६.१७.८)

यह ममता नहीं है विद्यार्थियो? बताओ! **काज हमार तासू हित होई**—मेरा कार्य भी हो जाए और उसका हित भी हो जाए, **रिपु सन करेहु बतकही सोई**। यह है ममता—**जेहिं जन पर ममता अति छोहू** (मा. १.१३.६)। कृष्णावतारमें शिशुपाल प्रतिदिन गालियाँ देता था भगवान्‌को। **दमघोषसुतः पाप आरभ्य कलभाषणात्** (भा.पु. ७.१.१७)—जबसे बोलना प्रारम्भ किया उसने, तबसे भगवान्‌को प्रतिदिन गालियाँ देता था। पर इतना **छोह** था भगवान्‌को कि उन्होंने कह दिया था—"गालियाँ देनेका मन है तो जीवन भर गालियाँ दो। सौ गालियाँ जीवन

भर देते रहोगे तो मैं कुछ नहीं बोलूँगा। पर जिस दिन एक सौ एक होंगी, उसी दिन मैं तुम्हारा वध कर दूँगा।" और युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें जब एक सौ एक गालियाँ दे दीं तब भगवान्ने उसका वध किया।

देखिये! मैं रात-दिन रामायणजीकी पङ्क्तियोंको लगाता हूँ। जबतक लिखाता हूँ तबतक पाणिनिको लिखाता हूँ और जब उससे समय मिलता है, तो विद्याकी कसम! एक भी क्षण मैं अपना व्यर्थ नहीं बिताता। केवल सीतारामजीके चरणोंका चिन्तन करता रहता हूँ बस! कुछ नहीं करता मैं और न मेरे लिए कुछ करनी है। मैं जानता हूँ कि मेरा गन्तव्य यही है कि आजतक बहुत कुछ कर लिया। अब तो जीवन भर बस सीतारामजीके नाम, रूप, लीला, धामका चिन्तन करूँगा। यही कर्म विश्राम-श्वासतक चलेगा मेरा। (४) **जेहिं करुना करि कीन्ह न कोहू** (मा. १.१३.६)—यह है **करुना करि** करुणाकरका प्रकरण या वृन्दाका प्रकरण।

अब नारदजीके प्रकरणमें भगवान् एक साथ शेष छः यशोंका प्रयोग करेंगे। नारदजीको एक-बार समाधि लगी और समाधि लगनेपर इन्द्रको भय लगा कि कहीं नारदजी उसका सिंहासन ले लेंगे। कामदेवको बुलाकर इन्द्रने कहा—"किसी प्रकार नारदजीकी समाधि तोड़ो।" कामदेवने पूरी कलाओंका प्रयोग कर लिया, पर नारदजीकी समाधि नहीं टूटी। तो कामदेवने एक दूसरा उपाय सोचा। देखिये! एक बात बताऊँ! दुष्ट लोगोंके स्पर्शसे भी बहुत प्रभाव पड़ता है। जो भजन नहीं करते, उसके छूनेसे भी भजनपर प्रभाव पड़ता है। अब कामदेवने क्या किया, जानते हैं—**गहेसि जाइ मुनि चरन** (मा. १.१२६)। नारदजीके चरण पकड़ लिये। अब देखिये! नारदजीकी समाधि टूट रही है पर नारदजी समझ नहीं पा रहे हैं। **भयउ न नारद मन कछु रोषा** (मा. १.१२७.१)—उन्हें क्रोध तो नहीं आया, परंतु भगवान्का भजन तो छूट गया। **कहि प्रिय बचन काम परितोषा** (मा. १.१२७.१)—ये लीजिये! मतलब कामदेवने अपना कार्य तो कर ही दिया, कामदेवको नारद समझा रहे हैं कि कोई बात नहीं! जाओ। अरे! भगवान्की सेवा करते समय हमने किसीसे बात कर ली तो भी सेवा तो टूटी। इसलिए हमने निर्णय लिया कि जबतक भगवान्की सेवा नहीं होगी, तबतक मैं किसीसे बात नहीं करूँगा। और जब बहुत आवश्यक होगा तो संस्कृतमें बोलूँगा, उससे व्रत भङ्ग नहीं होता। संस्कृत भाषाका सबसे बड़ा फल यह है कि मान लो हम मौनमें हैं तो अन्य भाषामें बोलेंगे तो मौन टूट जायेगा, परंतु संस्कृतमें बोलनेसे मौन नहीं टूटता है। वह देवभाषा है न! परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि अधिक बोलते जाओ। अपना काम चलानेके लिए तुम संस्कृतमें बोलोगे तो मौन नहीं टूटेगा। इसीलिए जब शबरी माताके यहाँ भगवान् पधारे और माताजीने चख-चखकर भगवान्को फल खिलाये तो भगवान् भी प्रेम सहित खाये। देखिये! महिलाओंका स्वभाव होता है; वे भोजन बनाकर जब खिलाती हैं तो उनको अपेक्षा रहती है कि खाने वाला उनकी प्रशंसा करे। एक नियम है, यह महिलाओंके लिए उचित भी है। महिला तबतक प्रसन्न नहीं होगी, जबतक उसको लगे नहीं कि उसका भोजन अच्छा बना है। तो शबरी माताजीको भी लगा होगा कि मेरे फल कैसे हैं, इसलिए भगवान् बार-बार बखान कर रहे हैं—**प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि** (मा. ३.३६)। तो खाते समय भगवान् बखान रहे हैं, क्या उनका मौन व्रत नहीं टूटा? तो हमने कहा कि नहीं टूटा, क्योंकि भगवान् संस्कृतमें बोल रहे हैं। शबरी माताजीसे कहा—"बहुसुन्दरम्! बहु

स्वादु! सुस्वादु मातः।" अतः संस्कृतमें बोलनेसे भगवान्‌का नियम नहीं टूटा। **गर्हेसि जाइ मुनि चरन तब कहि सुठि आरत बैन** (मा. १.१२६)। नारदजीका व्रत टूट तो गया, पर विकार नहीं आया। उनको झूठा अहंकार हो गया कि उन्होंने कामको जीत लिया। क्योंकि शङ्करजीको तो क्रोध आ गया था, इन्हें क्रोध नहीं आया, जबकि सब रक्षा भगवान्‌नेकी थी। शङ्करजीके पास गये, बताया। शङ्करजीने कहा—"ऐसी गलती अब दोबारा मत करना। भगवान् विष्णुको यह बात मत बताना।" पर क्या! वो तो तरंगमें थे। जाकर विष्णु भगवान्‌को भी बता दिया कि मैंने कामदेवको जीत लिया। और इतना अहंकार है कि भगवान्‌के आसनपर उन्हींके साथ जाकर बैठ गये। अब लो! यह कहा कि भगवान् तो गृहस्थ हैं, मैं तो विरक्त हूँ। विरक्तोंके मनमें यह बात कभी-कभी अधिक आती है कि मैं विरक्त हूँ। अरे! विरक्त हो तो क्या हुआ? क्या गृहस्थ बुरा होता है? कभी-कभी ऐसे गृहस्थ हमने देखे हैं जो इतना भजन करते हैं जो विरक्त कभी कर ही नहीं सकता। यह सब भेद नहीं रखना चाहिए। चाहे गृहस्थ हो चाहे विरक्त हो, मुख्य बात यह है कि वो भगवान्‌के प्रति अनुरक्त हो। जो भगवान्‌के प्रति अनुरक्त नहीं है, वह विरक्त भी है तो दो कौड़ीका है—

तुलसी जो पे राम सो नहीं साँचिलो स्नेह।
मुंड मुंडाए बाद ही भांड भये तज गेह॥

हमने बहुत-से गृहस्थोंको चार बजे उठकर भजन करते देखा है और विरक्त जो सात-सात बजेतक पसर कर सोता रहेगा तो क्या होगा? बताइये! यहाँ तो भजन प्रधान है, कोई भी हो। नारदजीको इतना अहंकार हो गया कि **बैठे आसन ऋषिहिं समेता** (मा. १.१२८.५)। भगवान्‌ने कहा—"अच्छा!" फिर भगवान्‌ने अपनी मायाकी प्रेरणा कर दी—"दे दो एक बार बाबाको प्रसाद।" मार्गमें ही वैकुण्ठसे भी सुन्दर मायाका नगर रच डाला। अपनी मायाको विश्वमोहिनी कुमारी बना दिया, शीलनिधिकी कन्या। और नारदजी देखे। अरे! उनका वैराग्य टूटा, सब कुछ नष्ट हो गया। अब नारदजीके पास कुछ भी शेष नहीं बचा।

करौं जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी॥

(मा. १.१३१.७)

कन्याके लक्षण देखे तो बुद्धि दूषित होनेके कारण उनके लक्षणोंका उल्टा अर्थ ले लिया। देखा भगवान्‌की माया को। अरे! बड़ी सुन्दर है माया! बड़ी अद्भुत है माया! मायाके हाथके लक्षण देखे और मनमें विचार करने लगे—

जो एहि बरइ अमर सोइ होई। समरभूमि तेहि जीत न कोई॥
सेवहिं सकल चराचर ताही। बरइ शीलनिधि कन्या जाही॥

(मा. १.१३१.३–४)

पर उसका अर्थ दूसरा था—शीलनिधिकी कन्या उसे वरण करेगी जो अमर होगा। यह उसके वरणकी योग्यता है, वरणका परिणाम नहीं है। शीलनिधिकी कन्या उसका वरण करेगी जो युद्धमें अजेय होगा, जो चराचर सबका सेव्य होगा—यह है मूल अर्थ। पर नारदजीकी बुद्धिमें विकार आ गया है, अतः वे कह रहे हैं—"नहीं! नहीं!! जो पुरुष इसका वरण करेगा, वह अमर हो जायेगा, वह युद्धमें विजयी होगा। जो पुरुष इसका वरण करेगा, वह चराचरका सेव्य होगा।"

अब नारदजीके मनमें आया कि मुझे किसी प्रकार यह कन्या मिलनी चाहिए। पर कैसे मिलेगी? गाल तो पिचके हुए हैं, बाल सब श्वेत हो गये हैं, द्रव्य लगानेपर भी काले नहीं होंगे। तब सोचा—"चलो! भगवान्‌से रूप माँग लेता हूँ।" अब भगवान्‌से कहा—"भगवन्! आप अपना रूप मुझे दे दीजिये।" भगवान्‌ने पूछा—"क्यों?" नारदजी बोले—**आन भाँति नहिं पावौं ओही** (मा. १.१३२.६)। भगवान्‌ने पूछा—"किसे?" नारदजी कन्याका नाम नहीं ले रहे हैं, कह रहे हैं—"उसे।" भगवान्‌ने कहा—"अरे बाबा! अभी विवाह नहीं हुआ, तबतक घरवाली बना लिया तुमने? अब सब कुछ नष्ट हो गया, चला गया सब कुछ। गरीब हो गये। सरलकी अपेक्षा कुटिल हुए। सबल नहीं, निर्बल हो गये। स्वामी नहीं, दास हो गये कामिनीके। राजा नहीं, रंक हो गये।" तब रामजीने कहा—"कोई बात नहीं! विष्णुजी आपने तो इन्हें दण्ड दिया पर मैं सुधारूँगा।" तो भगवान्‌ने सोचा कि क्या करूँ। तब विष्णुजीको हटाकर रामजीने स्वयं भूमिका सँभाली और इनको वानरका रूप दे दिया। वानरका रूप क्यों दिया? क्योंकि आगे चलकर हनुमान्‌जी वानर बनेंगे। तो वास्तवमें हनुमान्‌जीका चेहरा दे दिया। यदि हनुमान्‌जीका चेहरा इनको मिल जायेगा तो ये मायाके चक्करसे बच जायेंगे, यह सबसे बड़ी बात है। इसलिए—

मुनि हित कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना॥

(मा. १.१३३.७)

आहाहा! किसीने नहीं देखा। **सो स्वरूप नृपकन्या देखा** (मा. १.१३४.७), राजकुमारीने देख लिया और कहा भगवन्! आपने बचा लिया इनको, नहीं तो आज तो इनकी ऐसी-तैसी होती ही। इनको हनुमान्‌जीका रूप मिल गया इसलिए मायाने इन्हें नहीं देखा, भूलकर भी नहीं देखा। सब कुछ मिल गया नारदजीको अब। नारदजीने देखा कि भगवान् मायाको ले गये, तो व्याकुल हो गये। रुद्रगणोंने कहा—"अपना मुख शीशेमें तो देखो।" जलमें देखा—**पुनि जल दीख रूप निज पावा** (मा. १.१३६.१)—मिल गया रूप, सब कुछ मिल गया। अन्तमें नारदजी भगवान् नारायणको शाप देने चले। भगवान् नारायण तो थे नहीं, रामजी थे वहाँ। **संग रमा सोइ राजकुमारी** (मा. १.१३६.४)—साथमें सीताजी, **सोइ राजकुमारी**' वही मायावाली सीताजी, जिनका प्रयोग अभी करेंगे अरण्यकाण्डमें। भगवान्‌ने पूछा—"कहाँ जा रहे हो?" नारदजीने श्राप दे दिया—"ठीक है! आपने राजाका शरीर धारण करके मुझे ठगा, आपको वही शरीर मिले।" भगवान्‌ने कहा—"कोई बात नहीं।" नारदजीने कहा—"मेरा अपकार किया—आप नारी वियोगमें दु:खी होंगे।" भगवान्‌ने कहा—"कोई बात नहीं! विवाह तो हो ही जायेगा मेरा।" नारदजीने इन्हें यह नहीं कहा कि जैसे तुमने मेरा विवाह नहीं होने दिया, तुम्हारा विवाह भी न हो। पर कहा—"आपने मेरी आकृति वानरकी की, वही वानर आपकी सहायता करेंगे।"

कपि आकृति तुम कीन्हि हमारी।
करिहैं कीस सहाय तुम्हारी॥

(मा. १.१३७.७)

आनन्द हो गया। भगवान्‌ने माया दूर कर दी और एक साथ छ: यशोंका प्रयोग किया—(५) **गई बहोर** (मा. १.१३.७)—उनका गया हुआ ब्रह्मचर्य मिल गया, (६) **गरीब निवाजू** (मा. १.१३.७)—उन्हें सम्मान दिया भगवान्‌ने, (७) **सरल** (मा. १.१३.७)—सरलता बरती, कुटिल

मायाको दूर कर दिया, (८) **सबल** (मा. १.१३.७)—मुनिको बलवान् बना दिया, रुद्रगणोंको शाप देकर उन्हें राक्षस बनाया, (९) **साहिब** (मा. १.१३.७)—सेवककी रक्षा कर ली, (१०) **रघुराजू** (मा. १.१३.७)—मुनिको रंक बननेसे रोक दिया। बोलिये भक्तवत्सल भगवान्‌की जय हो!

बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष बिभंजनि॥

(मा. १.३१.५)

रुद्रगणोंको वरदान दिया नारदजीने कि तुम्हारे कारण भगवान्‌का अवतार होगा। इस प्रकार पञ्चम कथाकी व्याख्या कर दी।

॥ बोलिये भक्तवत्सल भगवान्‌की जय ॥

कथा ६: सकल जन रंजनि (मा. १.३१.५)

अब छठी कथा—**सकल जन रंजनि** (मा. १.३१.५)। दोहा १४१से १५२तक मानसजीकी यह छठी कथा है। यह कथा है मनु-शतरूपाके वरदानकी कथा। इससे सबको आनन्द मिलेगा, इसी कथाके प्रभावसे भगवान्‌का प्राकट्य होगा। शिवजी कहते हैं कि इस अवतारमें जितनी लीलाएँ भगवान्‌ने कीं—

लीला कीन्ह जो तेहिं अवतारा। सो सब कहिहउँ मति अनुसारा॥

(मा. १.१४१.६)

इस अवतारकी सम्पूर्ण लीलाओंका वर्णन रामचरितमानसमें है। और लीलाओंके वर्णनके बारेमें संक्षेप है। चलिये! परिचय बहुत सुन्दर है—

स्वायम्भुव मनु अरु शतरूपा। जिन ते भइ नरसृष्टि अनूपा॥

(मा. १.१४२.१)

स्वायम्भुव मनु ब्रह्माजीके दाहिने अङ्गसे प्रकट हुए थे और शतरूपाजी ब्रह्माजीके वाम अङ्गसे प्रकट हुईं। वैदिक विवाह हुआ और इन्हींसे व्यवस्थित मनु-सृष्टिका प्रारम्भ हुआ। इनके यहाँ दो पुत्र हैं—उत्तानपाद और प्रियव्रत। उत्तानपाद जम्बूद्वीपके राजा हैं और शेष छः द्वीपोंके राजा हैं प्रियव्रत। मनुजीके यहाँ तीन बेटियाँ हैं—आकूति, देवहूति, और प्रसूति। मनुजीने विष्णुके बहुत-से अंशावतारोंके दर्शन किये हैं। कम से कम, न्यूनातिन्यून, भगवान्‌के दस अवतार स्वायम्भुव मनुके सामने हुए हैं—

(१) **सनकादि**—यह अवतार मनुजीके जन्मसे पहले हुआ पर दर्शन हो रहे हैं; (२) **नारद**—यह अवतार भी मनुजीके जन्मसे पहले हुआ, (३) **वाराह**—मनुजीके सामने ही भगवान्‌का वाराह अवतार हो रहा है, मनुजी दर्शन कर रहे हैं। (४) **सहस्रशीर्षा**—मनुजीके पौत्र ध्रुवजीको वरदान देनेके लिए भगवान्‌का चतुर्थ अवतार सहस्रशीर्षा अवतार हुआ—

त एवमुत्सन्नभया उरुक्रमे कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपम्।
सहस्रशीर्षापि ततो गरुत्मता मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः॥

(भा.पु. ४.९.१)

आज एक हजार मस्तक धारण करके भगवान् आ रहे हैं मनुके पौत्रको ध्रुवको दुलारनेके लिए। मनुने देखा। आहाहा!!

(५) **पृथु**—इन्हीं ध्रुवके वंशमें साक्षात् पृथुजी हुए। ये भी भगवान् हैं। इनमें दोनों अंश हैं। इनमें भगवान्‌का तो आवेश होता है और भक्तका प्रवेश भी होता है यानि टू-इन-वन।

(६) **ऋषभदेव**—इन्हीं मनुजीके यहाँ द्वितीय पुत्र प्रियव्रतके वंशमें ऋषभदेवका अवतार हो रहा है। छः अवतार तो इनके पुत्रोंकी परम्परामें हुए।

और इन्हीं मनुजीकी बेटियोंके यहाँ देखिये—

(७) **यज्ञनारायण**—आकूतिजीके यहाँ स्वयं यज्ञनारायणजीका प्राकट्य हुआ, इनको इन्द्र बनाया मनुजीने।

(८) **कपिल**—इधर देवहूतिजीके यहाँ कपिलजीका अवतार हुआ—

आदिदेव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला॥

(मा. १.१४२.६)

(९) **दत्तात्रेय**—कपिलजीकी दूसरी बहन अनसूयाजीके यहाँ भगवान्‌का दत्तात्रेय अवतार हुआ।

(१०) **नर-नारायण**—इधर प्रसूतिजीकी तेरहवीं बेटी मूर्तिके यहाँ धर्मके संकल्पसे नर-नारायण अवतार हुआ, दसवाँ अवतार।

दस भगवानोंको मनु देख चुके हैं, परंतु उनको संतोष नहीं हो रहा है—

अब तो स्वायम्भुव मनुको अवतारी चाहिए॥
अवतारी चाहिए अविकारी चाहिए।
अब तो स्वायम्भुव मनुको अवतारी चाहिए॥
अवतारी चाहिए अविकारी चाहिए।
अब तो स्वायम्भुव मनुको सदाचारी चाहिए॥
अब तो स्वायम्भुव मनुको अवतारी चाहिए॥

इसलिए दोनों बेटोंको पूरा राज्य सँभलवाया। जम्बूद्वीप उत्तानपादको और शेष छः द्वीप प्रियव्रतको सँभलवाकर मनुजी अब अंश नहीं चाहते, अंशी चाहते हैं। अवतार नहीं चाहते अवतारी चाहते हैं। अतः नैमिषारण्य आकर—**द्वादश अक्षर मंत्रवर जपहिं सहित अनुराग** (मा. १.१४३)—युगलमन्त्र (षडक्षर सीतामन्त्र व षडक्षर राममन्त्र), जो हम तुम लोगोंको देते हैं, उसी युगलमन्त्रका जप करने लगे और **बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग** (मा. १.१४३)।

नमोऽस्तु वासुदेवाय ज्योतिषां पतये नमः।
नमोऽस्तु रामदेवाय जगदानन्दरूपिणे॥

(रा.स्त.स्तो. ५१)

देखो! **वासुदेव** शब्द सीतारामजीका वाचक है। सीताजी वसुधासे प्रकट हुई हैं इसलिए उनको *वासु* कहते हैं और *दीव्यति इति देवः* रामजीको *देव* कहते हैं। अतः *वासु* और *देव*—

सीताजी एवं रामजी—इन दोनोंके चरणोंमें मन लग गया। उग्र तपस्या की—**बुध बिश्राम सकल जन रंजनि** (मा. १.३१.५)। छः हजार वर्ष केवल जल पीकर रहे, छः हजार वर्ष वायुका सेवन किया और दस हजार वर्षोंके लिए वो भी छोड़ दिया, एक चरणपर खड़े रहे। ब्रह्माजी ब्रह्मलोक देनेके लिए आये, विष्णुजी वैकुण्ठ देनेके लिए आये, शिवजी कैलाश देनेके लिए आये, सबको लौटा दिया। कहा—"नहीं! हम नहीं चाहते किसीसे कुछ।" कहे बस—

हमरा न चाही शिवलोक हो हम भारते रहिबै॥
ब्रह्माके ब्रह्मलोक न चाही विष्णुके वैकुंठ न चाही।
अरे हमरा ना चाही कैलाश हो हम भारते रहिबै॥
हमरा न चाही शिवलोक हो हम भारते रहिबै॥
हमरा न चाही सुधा रामकथा सुधा पीबै।
वसुधापर सीताराम गुन गन गाई जीबै।
हमरा न चाही देव लोकके वैभव।
हम रहबै सदा ही अशोक हम भारते रहिबै॥
हमरा न चाही तीनों लोक हम भारते रहिबै॥
हमराके आठों जोगी जनककी सिद्धि न चाही।
हमराके देव लोक दुर्लभ निधि न चाही।
हमराके चाही भारत माता केर मटिया।
सिरधर होबई विभोर हम भारते रहिबै॥
हमारा न चाही तीनों लोक हम भारते रहिबै॥
चित्रकूट कामदगिरिके परिक्रमा करिबै।
सीताराम सुषमा नयन भरी निहरबै।
सरजू औ मंदाकिनि नित हि नहिबै।
नचबई जईसे दीनवामें कोक हम भारते रहिबै॥
हमारा न चाही तीनों लोक हम भारते रहिबै॥
साग पात खाई खाई दिवस गवईबै।
रामायण गीता बाँची वाणी धन्य करबै।
***गिरधर* प्रभु केर गुण गण गाई गाई।**
दिनरात रहिबे अशोक हम भारते रहिबै॥
हमारा न चाही तीनों लोक हम भारते रहिबै॥

॥ बोलिये भक्तवत्सल भगवान्‌की जय ॥

आहा! शिवजीसे कह दिया कि कुछ भी करो, हमको भारतमें रहना है। अन्तमें भगवान् रामने दर्शन दिया—**बिश्वबास प्रगटे भगवाना** (मा. १.१४६.८)। और जैसे हम कहे **सकल जन रंजनि** (मा. १.३१.५), आज भगवान् उसी प्रकारका रूप धारण कर रहे हैं—

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर श्याम।
लाजहिं तन शोभा निरखि कोटि कोटि शत काम॥

(मा. १.१४६)

(१) **नील सरोरुह**—नीले कमल बनकर जलचरोंका रञ्जन किया, (२) **नील मनि**—नीलमणि बनकर स्थलचरोंका रञ्जन किया, और (३) **नील नीरधर श्याम**—नीले बादल बनकर नभश्चरोंका रञ्जन किया—**सकल जन रंजनि** (मा. १.३१.५)। सीतारामजीके रूपको देखा मनुजीने। भगवान्ने कहा—"मनुजी! क्या चाहते हैं आप?" मनुजीने कहा—"आप देंगे?" भगवान्ने कहा—"हाँ! देनेके लिए ही तो आया हूँ।" तो मनुजीने कहा—"प्रभु! चौथेपनमें मैंने तपस्याकी है।" **चाहउँ तुमहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराव** (मा. १.१४९)। "मैं आपको भी चाहता हूँ और आपके समान तीन बेटे और चाहता हूँ—"

दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाव।
चाहउँ तुमहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराव॥

(मा. १.१४९)

"मैं आपके समान सुत चाहता हूँ, पर कैसे-कैसे?—(१) **दानि सिरोमनि**—मैं पहला बेटा दानी शिरोमणि चाहता हूँ आपको—रामजीको। (२) **कृपानिधि**—द्वितीय पुत्र मुझे चाहिए कृपानिधि—भरत। (३) **नाथ**—तृतीय पुत्र चाहिए नाथ—लक्ष्मण। (४) **प्रभु**—चतुर्थ पुत्र चाहिए प्रभु—सर्वसमर्थ शत्रुघ्न।" ओह!

देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥

(मा. १.१५०.१)

"बहुत अच्छा! आप माँगिये शतरूपाजी!" उन्होंने कहा—

जो बर नाथ चतुर नृप मागा। सोइ कृपालु मोहि अति प्रिय लागा॥

(मा. १.१५०.४)

क्या बात है! यहाँ **चतुर** शब्द **बर**के साथ भी जुड़ेगा और **नृप**के साथ भी। हे नाथ! **चतुर नृप** माने बहुत ही चतुर महाराजने जो चतुर वर माँगे हैं, जो चार वरदान माँगे हैं, चार पुत्र रूपी वरदान माँगे हैं, वो मुझे बहुत प्रिय लगे। यह है मानस। मैं जानती हूँ आपको—

तुम ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतरजामी॥

(मा. १.१५०.६)

मैं जान गयी—आप **ब्रह्म** हैं, भरत **ब्रह्मादि जनक** हैं, लक्ष्मण **जग स्वामी** हैं, शत्रुघ्न **अंतरजामी** हैं। सब जानती हूँ मैं।

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहिं कृपा करि देहु॥

(मा. १.१५०)

भगवान् गद्गद हो गये। माताजीने छः वरदान माँगे और बोलीं कि आप भगवान् हैं इसलिए मैं आपसे छः वरदान माँगती हूँ—

(१) **सोइ सुख**—मुझे वही सुख अर्थात् अपने निजी भक्तों जैसा सुख दीजिये, (२) **सोइ गति**—भक्तों जैसी गति दीजिये, (३) **सोइ भगति**—भक्तों जैसी भक्ति दीजिये, (४) **सोइ निज चरन सनेहु**—भक्तों जैसा अपने चरणोंमें प्रेम दीजिये, (५) **सोइ बिबेक**—भक्तों जैसा विवेक दीजिये, (६) **सोइ रहनि**—भक्तों जैसी रहनी अर्थात् व्यवहार दीजिये।

भगवान् प्रसन्न! और कहा—

मातु बिबेक अलौकिक तोरे। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे॥

(मा. १.१५१.३)

"माँ! आपका अलौकिक विवेक है, धन्य कर दिया!" मनुजीने कहा कि मुझे दो वरदान और चाहिए—

सुत बिषयिक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ॥

(मा. १.१५१.५)

"हे भगवन्! आपके चरणोंमें मुझे पुत्र विषयक प्रेम हो।" यहाँ एक बात बहुत गम्भीर है जो ध्यान देनी चाहिए। आगे चलकर मनुजी दशरथके रूपमें क्यों जन्म लिये? इसीलिए कि यहाँके प्रकरणमें मनुजीने भगवान्से दस वरदान माँगे थे। इसको ध्यानसे सुनते हैं। दस वरदान माँगे। अब देखते जाइये—

जो स्वरूप बश शिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥
जो भुशुण्डि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रशंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारतिमोचन॥

(मा. १.१४६.४–६)

यहाँ पर **देखहिं हम सो रूप भरि लोचन**का अन्वय उपरोक्त चारों अर्द्धालियोंसे होगा। अर्थात्, **जो स्वरूप बश शिव मन माहीं, देखहिं हम सो रूप भरि लोचन**, **जेहि कारन मुनि जतन कराहीं, देखहिं हम सो रूप भरि लोचन।** इत्यादि। प्रकारान्तरसे यहाँ चार वरदान माँगे गये—

(१) **जो स्वरूप बश शिव मन माहीं**—आपका जो स्वरूप शिवजीके मनमें निवास करता है, हम उस रूपका नेत्र भरकर दर्शन करें ऐसी कृपा करें।

(२) **जेहि कारन मुनि जतन कराहीं**—जिसके लिए मुनिजन यत्न करते रहते हैं (कि हमारे हृदयमें बसें), हम उस रूपका नेत्र भरकर दर्शन करें ऐसी कृपा करें।

(३) **जो भुशुण्डि मन मानस हंसा**—जो काकभुशुण्डिजीके मनरूप मानस-सरोवरका हंस हैं, हम उस रूपका नेत्र भरकर दर्शन करें ऐसी कृपा करें।

(४) **सगुन अगुन जेहि निगम प्रशंसा**—सगुण और निर्गुणके रूपमें जिसकी वेदोंने प्रशंसाकी है, हम उस रूपका नेत्र भरकर दर्शन करें ऐसी कृपा करें। चार स्वरूपोंके दर्शन करने के लिए चार वरदान माँगे, इसलिए अगले दोहे (मा. १.१४६)में चार उपमाएँ दी गयीं—(क) **नील सरोरुह**, (ख) **नील मनि**, (ग) **नील नीरधर श्याम**, (घ) **लाजहिं तन शोभा निरखि कोटि कोटि शत काम**—ये चार वरदान।

और फिर अगले वरदानमें चार पुत्र माँगे—

दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाव।
चाहउँ तुमहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराव॥

(मा. १.१४९)

(५) **दानि सिरोमनि**—प्रथम पुत्रके रूपमें आप दानी शिरोमणि रामजी को चाहता हूँ, (६) **कृपानिधि**—द्वितीय पुत्रके रूपमें मुझे कृपानिधि भरत चाहिए, (७) **नाथ**—तृतीय पुत्रके रूपमें नाथ लक्ष्मण चाहिए, (८) **प्रभु**—चतुर्थ पुत्रके रूपमें प्रभु अर्थात् सर्वसमर्थ शत्रुघ्न चाहिए।

और दो वरदान—(९) **सुत बिषयिक तव पद रति होऊ।** (मा. १.१५१.५) अर्थात् आपके चरणोंमें मेरा पुत्र-विषयक प्रेम हो और (१०) **मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना, मम जीवन तिमि तुमहि अधीना** (मा. १.१५१.६) अर्थात् मेरा जीवन आपके अधीन हो।

दस वरदान माँगे मनुजीने और छः वरदान शतरूपाजीने। भगवान्ने कहा—"आप जब अयोध्याके राजा बनेंगे, तब मैं आपका पुत्र बनूँगा।" इस प्रकार **बुध बिश्राम सकल जन रंजनि** (मा. १.३१.५)। **सकल जन रंजनि** कथा हो चुकी है। इस कथाने सबको आनन्द किया, सबके मनका रञ्जन किया। जय-जयकार हो गया, देवताओंने पुष्पोंकी वर्षा की, धन्य-धन्य कर डाला। बोलिये भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्र भगवान्की जय हो।

कथा ७: रामकथा कलि कलुष बिभंजनि (मा. १.३१.५)

अब सातवीं कथा। एक-एक कथापर दृष्टि डालती जाओ माताओ! यूँ तो मोदीनगर मेरा ही है, पर मैं बहुत व्यस्त रहता हूँ, सदा यहाँ आना नहीं हो पाता। पर यह कथा निश्चित रूपसे आपको अध्यात्म समझनेके लिए विवश करेगी। इतना तो समझमें आ ही जायेगा कि रामचरितमानसजीमें कुल कितनी कथाएँ हैं—३०। उनमेंसे मैंने कितनी कथाओंकी व्याख्या कर दी? छः। अब सातवीं कथा **रामकथा कलि कलुष बिभंजनि** (मा. १.३१.५)—कलियुगके सभी कलुषोंको नष्ट करेगी यह कथा।

सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति शंभु बखानी॥

(मा. १.१५३.१)

१५३वें दोहेकी प्रथम पङ्क्तिसे कथा प्रारम्भ हो रही है और यह १९२वें दोहेतक जायेगी—

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥

(मा. १.१९२)

प्रतापभानु, जो रावण बनेंगे, सत्यकेतुके बड़े पुत्र हैं। सत्यकेतुके दूसरे पुत्र हैं—अरिमर्दन। सत्यकेतुने बड़े पुत्रको राज्य सँभलवाया। ये कैकेय देशके राजा हैं। कैकेय देशकी लीला ही कुछ ऐसी है। कैकेय देशमें जन्मे प्रतापभानु रामजीके शत्रु रावण बन गये और कैकेय देशमें जन्म लेनी वाली कैकेयीजीने रामजीको वनवास दिया। और लगता यही है कि उन्होंने बदला लिया कि हमारे देशके जन्म हुए व्यक्तिका उद्धार तो हमें ही करना है, इसलिए रावणका उद्धार

करनेके लिए ही कैकेयीजीने रामजीको वनवास दिया।

प्रतापभानु एक बार विन्ध्याचलमें आखेट करने आये। एक सुअरने उन्हें मार्ग भुला दिया, वह कालकेतु नामका राक्षस था। उसने कपट मुनिसे इनको मिलवाया। और कपट मुनिने प्रतापभानुको इतना बरगला दिया कि अबतक वो भगवान्से तो कुछ नहीं माँगे थे। ज्ञानी थे, भक्त होते तो कदाचित् पतन नहीं होता। प्रतापभानु रावण, अरिमर्दन कुम्भकर्ण, और उनके मन्त्री धर्मरुचि विभीषण बने। देखिये यहाँपर इतनी गड़बड़ हुई। मनुजीने किसीसे नहीं माँगा, भगवान्से माँगा। पर प्रतापभानुने भगवान्से न माँगकर किसी दूसरे व्यक्तिसे माँग लिया, इसलिए सर्वनाश हो गया।

रावणने पूरे संसारको वशमें कर लिया। पृथ्वी भयभीत हो गयी। पृथ्वीने गौका रूप धारण किया। ब्रह्माजीको साथ लेकर कैलाश आयीं। शिवजीने कहा—"भगवान् प्रेमसे प्रकट होते है, मैं जानता हूँ। इसलिए भगवान्को बुलाइये।" अब ब्रह्माजी चारों मुखोंसे भगवान्को बुला रहे हैं—

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई॥

(मा. १.१८६.१)

ब्रह्माजी चारों मुखोंसे भगवान्की स्तुति कर रहे हैं—"हे सुरनायक।" *शोभनो रः यस्मिन् स सुरः*। आपको पाकर रकार अर्थात् रेफ सुन्दर हो गया। रावणको पाकर रेफ कुत्सित हो गया था। तो सूर्य हैं आप! "हे प्रभु! अब कृपा कीजिये।" **सिंधुसुता प्रिय कंता**—सिन्धुकी सुता हैं लक्ष्मीजी, उनके प्रिय हैं नारायण; उनके सिन्धुसुता प्रियसे *कं सुखं तनोति इति कंतः*। **सिन्धुसुता प्रिय कंता**। उनके सुखका विस्तार कर रहे हैं प्रभु।

जय जय अबिनाशी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा।
अविगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगतमोह मुनिबृंदा।
निशिबासर ध्यावहिं गुनगन गावहिं जयति सच्चिदानंदा॥

(मा. १.१८६.२)

हे प्रभु आपकी जय हो!

जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिय भगति न पूजा॥
जो भवभय भंजन मुनिमन रंजन गंजन बिपति बरूथा।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी शरन सकल सुरजूथा॥

(मा. १.१८६.३)

सभी देवता आपकी शरणमें हैं। प्रभु! अब बचा लीजिये।

शारद श्रुति शेषा ऋषय अशेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना।
जेहिं दीन पियारे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा॥

(मा. १.१८६.४)

अब भगवान् आकाशवाणी कर रहे हैं—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेशा। तुमहिं लागि धरिहउँ नरबेशा॥
अंशन सहित मनुज अवतारा। लैहउँ दिनकर बंश उदारा॥

(मा. १.१८७.१–२)

भगवान् चार बार प्रतिज्ञा कर रहे हैं—

(१) **तुमहिं लागि धरिहउँ नरबेशा** (मा. १.१८७.१)।

(२) **अंशन सहित मनुज अवतारा, लैहउँ दिनकर बंश उदारा** (मा. १.१८७.२)।

(३) **तिनके गृह अवतरिहउँ जाई** (मा. १.१८७.५)।

(४) **परम शक्ति समेत अवतरिहउँ** (मा. १.१८७.६)।

अवतार लेनेकी भगवान्ने चार-बार प्रतिज्ञा कर ली और कहा—"मैं चार लीलाएँ करूँगा। हम चारों भाई मिलकर अवतार लेंगे और परमशक्ति सीताजी भी अवतार लेगीं—इस प्रकार पाँच अवतार हमारे होंगे।" रावणका अवतार हो ही गया है। हनुमान्जीका भी अवतार होगा—**राम काज लगि तव अवतारा** (मा. ४.३०.६)। अब ब्रह्माजीने पृथ्वीको समझाया। शिवजीने कहा—"पार्वतीजी! सभी देवता वानर बन रहे हैं, मैं भी वानर बनूँगा। पार्वतीजी! अब आप अपना घर सँभाल लीजिये—"

मन्दिर संभारो गौरा मन्दिर संभारो गौरा।
अरे गौरा संभारो परिवार हम तो वानर बनबै॥
गणपति संभारो गौरा कार्त्तिक संभारो गौरा।
गौरा संभारो गंगधार हम तो वानर बनबै॥
गौरा संभारो परिवार हम तो वानर बनबै॥
शेषके संभारो गौरा चन्द्रमा संभारो गौरा।
गौरा संभारो नंदी हमार हम तो वानर बनबै॥
गौरा संभारो परिवार हम तो वानर बनबै॥
बाहर संभारो गौरा भीतर संभारो गौरा।
गौरा संभारो गिरधर निराधार हम तो वानर बनबै॥
गौरा संभारो परिवार हम तो वानर बनबै॥

पार्वतीजीने कहा—"मैं आपके बिना नहीं रहूँगी।" शिवजीने कहा—"ठीक है! मैं हनुमान् बनता हूँ और तुम हनुमान्की पूँछ बन जाओ।" यही तो रावणने गलती की। पार्वतीजी हनुमान्जीकी पूँछ बन गयीं। शिवजी हनुमान्जी और पार्वती हनुमान्जीकी पूँछ! रावणने अगर पूँछमें आग न लगायी होती तो लङ्का बच जाती। पर रावण तो मूर्ख था, पूँछमें आग लगवा दी।

पार्वतीजीने कहा—"नालायक! यह तो तुम मुझे ही जलाना चाहते हो? तो मैं तेरी लङ्का जला दे रही हूँ। जाओ।"

इधर दशरथजी महाराज प्रकट हुए। तीन दशरथोंकी चर्चा है—(१) मनुजी भी दशरथ, (२) कश्यपजी भी दशरथ और (३) उल्कामुख महाराज भी दशरथ। तीन कौशल्याएँ—(१) शतरूपाजी भी कौशल्या, (२) अदितिजी भी कौशल्या, (३) उल्कामुखकी पत्नी सरोजवदना सती भी कौशल्या। साठ हजार वर्ष बीत गये, पुत्र नहीं आया। **एक बार भूपतिमन माहीं, भइ गलानि मोरे सुत नाहीं** (मा. १.१८९.१)। पद्मपुराणका वर्णन है कि शान्ताजी सुमित्राजीकी कोखसे जन्मी थीं। महाराजने अपने मित्र अङ्गराज रोमपादको दे दिया था। इन दोनोंकी संधि थी कि जिसके यहाँ संतान पहले आयेगी वह एक दूसरेको दे देगा। यहाँ इस बार जो *सिया के राम*में दिखाया कि कौशल्याजीकी बेटी शान्ताजी हुईं, वह गलत है। सुमित्राजीकी बेटी हैं शान्ताजी। तो **भइ गलानि मोरे सुत नाहीं** कह रहे हैं, यह नहीं कहा कि **भइ गलानि मम संतति नाहीं**। संतान तो है, बेटी मेरे पास है; परंतु बेटा नहीं है, यह ग्लानि हुई। गुरुदेवके यहाँ आये, कहा—"भगवन्! क्या बताऊँ? मेरी रानियोंकी गोद सूनी है। एक बेटी थी, वो भी मैंने अपने मित्रको दे दी।" हम लोगोंकी भाषामें मानो यही कहा—

तू तो होई गईल गुलरीके फूलवा ललन॥
तू तो होई गईल, गुलरीके फूलवा ललन॥
सबके लालन मातु ढिग करते विविध विनोद।
मेरी रानी आज लो भगवन सूनी कोख।
रोई रोईके कितनी बितौलि रैन तू तो होई गईल ...॥
चरण सरोजत शीश धरी बिनय करऽउँ कर जोर।
गिरधर प्रभुको गोद ले, पुरउ मनोरथ मोर।
प्रभु कर दीजै, पूरी अब मेरे सपन तू तो होई गईल ...॥

गुरुदेवने कहा—**धरहु धीर होइहैं सुत चारी** (मा. १.१८९.४)। "राजन्!" **धरहु धीर** "धैर्य धारण कीजिये।" "कैसे **होइहैं**? बेटी तो है।" "अरे नहीं! **सुत**।" "कैसे? मेरी पत्नियाँ तो अब वृद्ध हो गयी हैं। अब वो गर्भ नहीं धारण...!" "अरे चुप चुप! **सुत चारी** एक नहीं चार बेटे होंगे। ले जाओ चकाचक।" यज्ञ करवाया, अग्नि प्रकट हुए। अग्निने कहा—"राजन्! वसिष्ठजीने जो सोचा, आपका वह कार्य पूरा हो गया। यह लीजिये, (हविष्य) खीर ले जाइये।" सुन्दर सोनेकी बटलोईमें खीर दी अग्निने! आधा भाग कौशल्याजीको दे दिया। आधेके दो भाग किये, चौथाई कैकेयीजीको और इधर चौथाईमें दो भाग कौशल्याजी और कैकेयीजीके हाथसे रखकर सुमित्राजीको।

एहि बिधि गर्भसहित सब नारी। भईं हृदय हरषित सुख भारी॥
जा दिन ते हरि गर्भहिं आये। सकल लोक सुख संपति छाये॥

(मा. १.१९०.५–६)

आ गये भगवान् गर्भमें, बारह महीने गर्भमें विराजे, चैत्रकी शुक्ल पक्षकी नौवीं आयी। अरे!

नौमी तिथि मधु मास पुनीता (रामजी प्रकट भये)।
शुक्ल पक्ष अभिजित हरि प्रीता (रामजी प्रकट भये)॥

(मा. १.१९१.१)

नवमी तिथि, सुन्दर मधुमास, शुक्ल पक्ष, अभिजित् मुहूर्त, **हरि प्रीता** अर्थात् श्रीराम जिस पर प्रसन्न रहते हैं ऐसा पुनर्वसु नक्षत्र, दिवसका मध्य भाग, पावनकाल है; शीतल, मन्द, और सुगन्धित वायु बह रही है; देवता प्रसन्न हैं, संतोंके मनमें चाव है, वन कुसुमित हैं, पर्वतोंके समूह मणियोंसे युक्त हो गये हैं, सभी सरिताएँ आज अमृतकी धारा बहा रही हैं, आकाशमें दुन्दुभी बज रही है, जयजयकार हो रहा है! देवता विनती करके पधार गये—**सुर समूह बिनती करि पहुँचे निज निज धाम** (मा. १.१९१)। यहाँ यह अर्थ नहीं लेना चाहिए कि स्वर्ग गये। अपितु भगवान्‌के शरीरमें ही देवता समा गये, रामजीके शरीरमें। भगवान्‌की भुजामें इन्द्र समा गये, भगवान्‌के चरणमें चले गये विष्णुजी, भगवान्‌के नेत्रमें समा गये सूर्यनारायण, भगवान्‌के दाँतोंमें यम देवता, भगवान्‌के मनमें चन्द्रमा, बुद्धिमें ब्रह्मा, अहंकारमें शङ्करजी, चित्तमें विष्णु और सब देवता। अब भगवान् कौशल्याजीके सामने प्रकट हो रहे हैं। चार भुजाएँ नहीं, भगवान्‌की भुजाओंपर धनुष-बाण **चारी** अर्थात् थिरक रहे हैं—**निज आयुध भुज चारी** (मा. १.१९२.१)। शरीर मेरे मेघके समान है, सारे आभूषण धारण किये हैं, वनमाला है, कमलके समान विशाल नेत्र हैं। कौशल्याजीने देखा, स्तुति की—"अरे भगवन्! आप तो साक्षात् साकेतविहारी भगवान् राघवजी हैं। रामजी! मेरी इच्छा है कि पहले आप बालक बनिये, जिससे आपकी बाललीलाका मैं आनन्द लूँ। मुझे दूधू पिलानेका मन है।"

आहाहा,

भऐ प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्याहितकारी।
हरषित महतारी मुनिमनहारी अद्भुत रूप निहारी।
लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिशाला शोभासिंधु खरारी॥
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता।
करुना सुखसागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भऐउ प्रगट श्रीकंता॥
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उदर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै।
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत विधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुतप्रेम लहै॥
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै शिशुलीला अति प्रियशीला यह सुख परम अनूपा।
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥

(मा. १.१९२)

अयोध्या रामललाकी जय हो! अयोध्या भरतललाकी जय हो! अयोध्या लक्ष्मणललाकी जय हो! अयोध्या शत्रुघ्नललाकी जय हो! जय जय श्रीसीताराम। आनन्द कर दिया भगवान्ने। एक ही ध्वनि—

अवधमें आनन्द भयो जय कौशल्या लाल की।
हाथी दिया घोड़ा दिया और दिया पालकी॥
ब्राह्मणको दान दिया जय कौशल्या लाल की।
अवधमें आनन्द भयो जय कौशल्या लाल की॥

॥ बोलिये कौशल्यालालकी जय ॥

अब बधाई—

अरे! प्रगटे हैं आज रघुरैया अवधपुर बाजे बधैया॥
चैत शुक्ल नवमी दिन मंगल अभिजित नखत सुखदैया।
प्रगटे हैं श्रीरघुरैया अवध आज बाजे बधैया॥
नाचहिं गावहिं अवध लुगाई आनन्द उर न समैया।
प्रगटे हैं श्रीरघुरैया अवध आज बाजे बधैया॥
राजा दशरथ रत्न लुटावें धेनु लुटावें तीनों मैया।
प्रगटे हैं श्रीरघुरैया अवध आज बाजे बधैया॥
***रामभद्राचार्य* आज बधाई गावत देहू भगति रघुरैया।**
अरे! प्रगटे हैं श्रीरघुरैया अवध आज बाजे बधैया॥

बधाई हो कौशल्या कुमारकी! बधाई हो कैकेयी कुमारकी!! बधाई हो सुमित्रा कुमारकी!!! बधाई हो!

अब आरतीका आनन्द लेंगे। आज दानका दिन है खूब दान लुटायें। हो...चलो सब तैयार हो जाओ नाचनेके लिए जरा।

बधैया बाजे आँगने में बधैया बाजे आँगने में॥
आज अवधपुर राघव प्रगटे लोग मगन अनुरागने में॥ बधैया ...
राम लखन अरु भरत शत्रुहन झूलत कंचन पालने में॥ बधैया ...
कौशल्या कैकेयी सुमित्रा मंगल मंगल साजने में॥ बधैया ...
नाचहिं गावहीं अवध लुगाई नाचहिं गावहिं अवध लुगाई॥ बधैया ...
नाचहिं गावहिं नगर लुगाई मंगल मंगल बाजने में॥ बधैया ...
राजा दशरथ रत्न लुटावे नहि कोउ लाजै माँगने में॥ बधैया ...
***गिरधर* मुदित बधाई गावत नित नवल रस पागने में॥ बधैया ...**

बधाई हो कौशल्याकुमारकी! बधाई हो रामलला सरकारकी! बधाई हो भरतलला सरकारकी! बधाई हो लक्ष्मणलाल सरकारकी! बधाई हो शत्रुघ्नलला सरकारकी! आज सबको

बधाई और जितने लोग हमारे कलाकार हैं सबको बधाई। मैं तो आज यही कहूँगा—**लुटा दो आज सर्वस तुम, लुटौने बनके आये हैं।**

अब चलो आरती करेंगे—

आरती शिशु राघवकी कीजै तन-मन प्राण निछावर कीजै॥
रानी कौशल्याके बारे नृप दशरथके राज दुलारे।
संतनकी अँखियनके तारे अब इनको अपनो कर लीजै॥ आरती ...
श्यामल तन कर तीर धनुहिया पद पंकज लस ललित पनहिया।
मुख लखि लाजत शरद जनुहिया अब इनके चरणन चित दीजै॥ आरती ...
भरत लखन रिपुहनके भैया राघव कहि कहि बोलती मैया।
***गिरधर*को आनन्द लुटैया शोभा नयन भर भर कीजै॥ आरती ...**

चतुर्थ पुष्प

॥ नमो राघवाय॥

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥
नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥
मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि॥
जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी।
सुजनचकोरकदम्बो यत्कविताकौमुदीं पिबति॥
(श्री)सीतानाथसमारम्भां (श्री)रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे (श्री)गुरुपरम्पराम्॥
श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर-बिमल-जस जो दायक फल चारि॥

सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय।

(श्री)रामचरितमानस बिमल कथा करौं चित चाइ।
आसन आइ विराजिये (श्री)पवनपुत्र हरषाइ॥

पवनसुत हनुमान्‌जी महाराजकी जय।

॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥

॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥

रामकथा सुंदर करतारी। संशय बिहग उड़ावनहारी॥

(मा. १.११४.१)

रामकथा कलि पन्नग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहँ अरनी॥

(मा. १.३१.६)

॥ श्रीसीताराम भगवान्‌की जय ॥

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा मर्यादा-पुरुषोत्तम जगत्पिता परमेश्वर परब्रह्म भगवान् श्रीसीतारामजीकी कृपासे मोदीनगरमें, श्रीराघव-सेवा-समितिके तत्त्वावधानमें समायोजित, अपनी १२५१वीं रामकथाके चतुर्थ सत्रमें समवेत सभी बन्धुओं-बान्धवियोंका मैं हृदयसे बहुत स्वागत

करता हूँ। मैं प्रथम दिन ही यह बात कह चुका हूँ कि गोस्वामीजीने बहुत सोच-समझकर हमारे महीनेके तीसों दिनोंके लिए (एक महीनेमें तीस दिन ही होते हैं, अत:) रामचरितमानसमें कुल तीस कथाएँ कहीं—यह जानते रहिये। और हमारे सात ही दिन तो होते हैं (रविवारसे लेकर शनिवारतक), तो सातों दिनोंके लिए गोस्वामीजीने मानसरामायणजीमें सात काण्ड ही लिखे। इतनी सुन्दर व्यवस्थाकी है। हमारे शरीरके नवद्वार होते हैं और यज्ञोपवीतके नौ तन्तु होते हैं, इसलिए उन्होंने अपनी कथाके नौ विश्राम भी कहे। आज आठवीं कथासे हम अपना वक्तव्य प्रारम्भ करेंगे। मेरा प्रयास रहेगा कि शनिवारसे प्रारम्भ हुए मेरे इस नवदिवसीय सत्रमें (जिसका विश्राम रविवारको होगा) तीसों कथाएँ संक्षित-रूपसे प्रस्तुत कर दी जाएँ। कल मेरे मित्र कह रहे थे (मेरे बहुत अच्छे परिकर हैं) कि गुरुजी! इस बार आप कथा तो क्या कह रहे हैं, इस बार पढ़ा रहे है लोगोंको। तो हमने कहा कि जैसी आपकी धारणा। यदि पढ़ा रहा हूँ तो भी तो बहुत अच्छी बात है। अरे! साधारण टीचर (शिक्षक)के लोग विद्यार्थी बनते हैं, यदि जगद्गुरुके विद्यार्थी बन जाओ तो जीवन ही धन्य हो जायेगा।

तो बहुत अच्छी बात यह कि रामायणजीकी आठवीं कथा बहुत अच्छी है। सातवीं कथामें हम श्रीरामजन्मकी चर्चा कर चुके हैं। **रामकथा कलि कलुष बिभंजनि** (मा. १.३१.५)—गोस्वामीजीने कहा कि देखिये! श्रीरामजन्मकी कथा कलियुगके कलुषको नष्ट करेगी। कलुष माने दोष, यह ध्यान रखिये। गोस्वामीजीसे पूछा गया—"पहले आप हमको बता दीजिये कि कलियुगमें कितने दोष होते हैं?" गोस्वामीजीने कहा—"ठीक है! बालकाण्डका ३२वाँ दोहा 'क' पढ़ लीजिये। कलियुगमें सात दोष होते हैं।" फिर बीचमें कह रहा हूँ, मुझपर आरोप लगता रहा है कि मेरी कथाको लोग समझते नहीं। पर यह आरोप कितना झूठा है, अब आप लोग अनुभव कर लीजिये। मैंने भी कह दिया है कि जिनका मानस भारतीय होगा, वे मेरी कथा अवश्य समझ जायेंगे। जो रहते हैं भारतमें और जन्म लिया है किसी विदेशी संक्रमणसे तो वे मेरी कथा नहीं समझेंगे। जो रहते तो हैं भारतमें, नमक खाते हैं भारतका, पानी पीते हैं भारतका, अन्न खाते हैं भारतका, पर चर्चा करते हैं विधर्मी देशोंकी; उन्हें मेरी कथा अवश्य समझमें नहीं आयेगी और उन्हें मुझे समझाना भी नहीं हैं। उन्हें समझाकर क्या करूँगा! वो तो वही हाल है, इनका वही दोगला चरित्र है—

खायें पीयें भतार के, गुण गावें यार के।
खायें पीयें खसम के, गुण गावें लसम के॥

जिनका कोई चरित्र ही नहीं हैं, उनको क्या समझाना? मैं तो भारतीय हूँ, भारतीय था, भारतीय ही रहूँगा। मुझे दोगले चरित्रवालोंको कथा न ही सुनानी है और न ही समझानी है। क्योंकि श्रीरामकथासे मैं नमक-रोटी तो नहीं खाता, श्रीरामकथा तो मेरा साध्य है। यह सभी लोग जानते हैं कि श्रीरामकथाका एक भी पैसा मैं अपने लिए नहीं लेता। मैंने बार-बार कहा है कि श्रीराम-कृष्णकथाका एक भी पैसा खानेपर मुझे उतना ही पाप लगेगा, जितना वैदिक-आस्तिक हिन्दूको गोमांस छूनेपर पाप लगता है। इसलिए मेरी कथा तो वे सुनेंगे, जिनके माँ-बाप भारतीय होंगे। और उन्हींको मैं समझाऊँगा भी।

तो पहले मैं बताऊँ, कलियुगके कितने दोष मैंने कहे? सात। उन सातों दोषोंकी चर्चा

गोस्वामीजी कर रहे हैं—

कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाखंड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड॥

(मा. १.३२क)

गोस्वामीजी कहते हैं कि कलियुगने कहा कि मैं सात दोषोंसे प्राणियोंको तितर-बितर करूँगा। (१) **कुपथ**—वेदविरुद्ध मार्ग, (२) **कुतरक**—वेदविरुद्ध तर्क करना, (३) **कुचालि**—बुरी चाल चलना, (४) **कलि**—सबसे झगड़ा करना, (५) **कपट**, (६) **दंभ**—जैसे हैं वैसे नहीं, उसके विपरीत अपनेको प्रस्तुत करना, और (७) **पाखंड**—विधर्मका आचरण करना। ये सात दोष कलियुगके हैं। इन सातों दोषोंको भगवान् श्रीरामके गुणग्राम उसी प्रकार जला डालते हैं, जैसे प्रचण्ड अग्नि इन्धनको जला डालती है। तो रामजीने जन्म लिया सातवीं कथामें। यह कथा सातों दोषोंको नष्ट करेगी।

बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष बिभंजनि॥

(मा. १.३१.५)

रावणके अत्याचारसे त्रस्त हुई गोरूपधारिणी पृथ्वीजीने ब्रह्माजीके समक्ष आकर अपनी व्यथा कही, तब ब्रह्माजी शङ्करजीके पास आये। शिवजीने कहा कि भगवान् तो प्रेमसे प्रकट होते हैं—**प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना** (मा. १.१८५.५)। तब ब्रह्माजीने **जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता** (मा. १.१८६.१)—बहुत सुन्दर स्तवन है रामायणजीका—भगवान् रामकी स्तुतिकी और भगवान् रामने आकाशवाणी की। ध्यान रखिये—**कलि कलुष बिभंजनि** (मा. १.३१.५)। इसीलिए आकाशवाणीमें भगवान् श्रीराम सात ही पङ्क्तियाँ पढ़ रहे हैं और दोहा भी बहुत प्यारा है। सुनकर नाच उठेंगे, बहुत-बहुत प्यारा दोहा है। देखिये!—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेशा। तुमहिं लागि धरिहउँ नरबेशा॥

(मा. १.१८७.१)

यहाँसे प्रारम्भ करते हैं भगवान् और,

हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥

(मा. १.१८७.७)

यहाँ श्रीरघुनाथजीने सात ही पङ्क्तियाँ पढ़ी हैं और वे सूचना दे रहे हैं कि तुम्हें हम सातों दोषोंसे मुक्त करेंगे। यह कथा सातों दोषोंसे मुक्त करेगी—

(१) **कुपथ**—यह पङ्क्ति कुपथसे मुक्त करेगी—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेशा। तुमहिं लागि धरिहउँ नरबेशा॥

(मा. १.१८७.१)

(२) **कुतरक**—यह पङ्क्ति कुतर्कसे मुक्त करेगी—

अंशन सहित मनुज अवतारा। लैहउँ दिनकर बंश उदारा॥

(मा. १.१८७.२)

(३) **कुचालि**—यह पङ्क्ति कुचालिसे मुक्त करेगी—

कश्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन कहँ मैं पूरब बर दीन्हा॥

(मा. १.१८७.३)

(४) **कलि**—यह पङ्क्ति कलि माने झगड़ेसे मुक्त करेगी—

ते दशरथ कौशल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नरभूपा॥

(मा. १.१८७.४)

(५) **कपट**—यह पङ्क्ति कपटसे मुक्त करेगी—

तिनके गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥

(मा. १.१८७.५)

(६) **दंभ**—यह पङ्क्ति दम्भसे मुक्त करेगी—

नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम शक्ति समेत अवतरिहउँ॥

(मा. १.१८७.६)

(७) **पाखंड**—यह पङ्क्ति पाखण्डसे मुक्त करेगी—

हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥

(मा. १.१८७.७)

तो भगवान् राम प्रकट हो चुके हैं। इस कथाने कलि-कलुषसे जीवको मुक्त किया। इतना आनन्द आया कि गोस्वामीजीने कहा कि क्या बतायें आपको, यहाँ तो—

जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भये अनुकूल।
चर अरु अचर हरषजुत रामजन्म सुखमूल॥

(मा. १.१९०)

चतुष्पाद-विभूतिके रूपमें भगवान् प्रकट हो रहे हैं। मेरे वाक्यपर बहुत ध्यान दीजिये। अबतक ऐसा नहीं होता था—**त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः** (ऋ.वे. १०.९०.४), **पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि** (ऋ.वे. १०.९०.३)। अबतक तो त्रिपाद स्वर्गमें रहते थे और एक पादसे भगवान् संसारकी व्यवस्था करते थे। परंतु आज भगवान् चतुष्पाद विभूतिके साथ प्रकट हो रहे हैं—**रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई** (मा. १.१८७.५)। गोस्वामीजीके एक-एक वाक्यपर बहुत गम्भीरतासे सोचनेकी आवश्यकता है। अब भगवान् बाललीला प्रारम्भ करेंगे। माताजी कह चुकी हैं कि आप विराट् बनकर मुझे चकमा मत दीजिये—

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।

(मा. १.१९२.४)

मैंने निर्णय लिया है कि इस बार मुझे आपको रामचरितमानसजीकी सुन्दर-सुन्दर चौपाइयोंसे परिचय कराना है। सुन्दर-सुन्दर चौपाइयोंका स्वाद आपको देना है। माताजी कह रही हैं—**तजहु तात यह रूपा** (मा. १.१९२.४) अर्थात् हे तात! हे बेटे! आप यह रूप छोड़ दीजिये। तो क्या करूँ?

कीजै शिशुलीला अति प्रियशीला यह सुख परम अनूपा॥

(मा. १.१९२.४)

अर्थात् आप शिशुलीला कीजिये, मेरी आँखें तरस रही हैं शिशुलीला देखनेके लिए। *शिशु*का

पाणिनिजी निरुक्त करते हैं— *स्यति खण्डयति अनर्थान् य: स: शिशु:* अर्थात् जो परिवारमें आकर परिवारके सारे अनर्थोंको नष्ट कर देता है, उसे शिशु कहते हैं। अथवा *श्यति तनूकरोति इति शिशु:*। आप शिशुलीला कीजिये, क्योंकि—

तेरी मन्द-मन्द मुस्कनियाँ पे बलिहार राघवजू बलिहार राघवजू॥
क्या श्याम शरीरकी शोभा लख कोटी मनोभव लोभा।
तेरी चपल-चपल चितवनियाँ पे बलिहार राघवजू॥ तेरी मन्द-मन्द ...
मुख कुटिल अलकिया लटके मनु पाटल पे मधुकर भटके।
तेरी कुटिल-कुटिल अलकनिया पे बलिहार राघवजू॥ तेरी मन्द-मन्द ...
जब दुई-दुई दमके दतुरियाँ मनु बदरामें चमके बिजुरिया।
तेरे मधुर-मधुर किलकरियाँ पे बलिहार राघवजू॥ तेरी मन्द-मन्द ...
जब गुलूजी कहीके बुलावे जब गुलूजी कहीके बुलावे।
जब गुलूजी कहीके बुलावे तब *गिरिधर* को ललचावे।
तेरी तोतरी मधुर वचनियाँ पे बलिहार राघवजू॥ तेरी मन्द-मन्द ...

देखिये! रामजी तोतले बोलते हैं न, तो *गुरुजी* नहीं बोलते *गुलूजी* बोलते हैं।

क्या सुन्दर! उनका नाम आप सुन चुके न! हमारे छगन-मगनका नाम आप जानते हैं? मुन्ना-सरकार! बहुत सुन्दर नाम है। *शिशु* हैं। शिशु वो होता है जो कभी सुसू नहीं करता। संसारके सारे बच्चे सुसू करते हैं, केवल राघवजी ही सुसू नहीं करते।

सुनि शिशुरुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी॥
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनँद मगन सकल पुर बासी॥

(मा. १.१९३.१–२)

देखिये, झूमनेका अभ्यास कीजिये। भगवान्‌की कथामें वही झूम सकता है, जिसके मनमें अहंकार नहीं होता। जिसके मनमें ईगो (ego) होगी, वह क्या झूमेगा? अरे! हम इतने बड़े हो गये! हम इस पदपर हैं! हम क्यों झूमें? जगद्गुरुको झूमते बने तो झूमें। अरे यार! बड़े-बड़े पद मैंने देखे हैं! और बड़ी-बड़ी qualifications देखी हैं!! मैं आज बहुत विनम्रतासे कह रहा हूँ कि यहाँ जितने लोग बैठे हैं, क्या मेरे जैसा कोई well-qualified है यहाँ?

कथा ८: रामकथा कलि पन्नग भरनी (मा. १.३१.६)

रामकथा कलि पन्नग भरनी—पन्नग माने सर्प। **भरनी** माने—(१) साँपको झाड़ने वाले मन्त्र, कुछ टीकाकार कहते हैं। (२) और कुछ टीकाकार कहते हैं कि **भरनी** माने भरणी नक्षत्र। भरणी नक्षत्रमें साँप मर जाते हैं। परंतु मुझे ये दोनों पक्ष अच्छे नहीं लग रहे हैं। यहाँ अर्थ क्या है? (३) **भरनी** माने होता है—मयूरपत्नी, **भरणी मयूरपत्नी स्यात्** (मोरकी पत्नी अथवा मोरनी)। सर्पको मारनेके लिए मोरसे भी अधिक क्रूर मोरनी होती है। मोर तो संकोच भी करता है, पर मोरनी कोई संकोच नहीं करती। साँपको देखा तो सीधा आक्रमण करके गला घोंट देती है। तो यह आठवीं कथा **रामकथा कलि पन्नग भरनी** (मा. १.३१.६) है। यह दस दोहोंकी कथा है,

जो बालकाण्डके १९३से प्रारम्भ होती है और २०२तक विराजती है। दस दोहोंसे इसका संकेत यह है कि कलियुगरूपी साँप दसों दिशाओंमें जहाँ भी रहेगा, यह श्रीरामकथा खदेड़-खदेड़कर (हमारी भाषामें दौड़ा-दौड़ाकर) मारेगी—**रामकथा कलि पन्नग भरनी।**

दशरथ पुत्रजन्म सुनि काना (हो)।
(ललना) मानहुँ ब्रह्मानंद समाना माने (हो)॥
(जय जय) परम प्रेम मन पुलक शरीरा (हो)।
(ललना) चाहत उठन करत मति धीरा (हो)॥
(जय जय) जाकर नाम सुनत शुभ होई (हो)।
(ललना) मोरे गृह आवा प्रभु सोई (हो)॥
(जय जय) परमानंद पूरि मन राजा (हो)।
(ललना) कहा बोलाइ बजावहु बाजा (हो)॥

अब आप बताइये! क्या रामायणजीकी चौपाई हम-आप नहीं गा पा रहे हैं? क्या हम रामायणजीकी चौपाइयोंमें सोहर-जैसा आनन्द नहीं ले पा रहे हैं? परंतु इसके लिए हृदय होना चाहिए और श्रीअवधकी माटीसे संपर्क होना चाहिए। तो सबको बहुत आनन्द आ रहा है।

सुनि शिशुरुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी॥

(मा. १.१९३.१)

यहाँ चारों भक्तोंका आनन्द है—

(१) **आर्त**—रानियाँ आर्त हैं। आगे गोस्वामीजी कहेंगे—**अति आरति सब पूँछहिं रानी** (मा. २.१४८.१), **आरत जननी जानि जियँ** (मा. २.१८६)। तो **संभ्रम चलि आईं सब रानी**—यह आर्त प्रसंग है।

(२) **जिज्ञासु—हरषित जहँ तहँ धाईं दासी** (मा. १.१९३.२)—दासियाँ दौड़ीं, ये जिज्ञासु प्रसन्न हैं कि बालक है कैसा?

(३) **अर्थार्थी—आनँद मगन सकल पुर बासी** (मा. १.१९३.२) ये सभी पुरवासी अर्थार्थी हैं जो आनन्दमें डूब गये, अर्थात् इनको रामरूप रत्न मिल गया। **पायोजी मैंने राम रतन धन पायो।**

(४) **ज्ञानी**—और **दशरथ पुत्रजन्म सुनि काना** (मा. १.१९३.३)—ये ज्ञानी हैं, क्योंकि दशरथजीके लिए कह चुके हैं—**धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी** (मा. १.१८८.८)।

सब आनन्द ले रहे हैं। वसिष्ठजीको बुलाया—

गुरु बसिष्ठ कहँ गऔउ हँकारा। आये द्विजन सहित नृप द्वारा॥

(मा. १.१९३.७)

यहाँ टीकाकारोंने गलतीकी है। यहाँ **नृप** कर्ता है। **गुरु बसिष्ठ कहँ नृप हँकारा गऔउ**, अर्थात् गुरु वसिष्ठजीके लिए महाराज दशरथजीने स्वयं बुलाते-बुलाते **हँकारा**—"गुरुजी! गुरुजी!! गुरुदेव! गुरुदेव!!" कहते-कहते उनके समीप गये। "क्या हो गया महाराज आपको?" दशरथजीने कहा—"आपका आशीर्वाद फलीभूत हो गया महाराज, बड़ी महारानीने बहुत सुन्दर बालकको जन्म दिया है। मुझको सुनन्दा माताजी बता रही थीं महाराज, जो मेरी माता इन्दुमतीके

साथ आयीं थीं। जब इन्दुमतीजी स्वर्ग जाने लगीं थीं, इन्हींको मेरा लालन-पालन सौंप गयीं थीं। वे सुनन्दा-मौसीजी बता रहीं थीं कि राजन्! बालक तो आपका बहुत सुन्दर है। ऐसा बालक तो नहीं देखा गया आजतक। जन्म लेनेपर कौशल्याके शरीरसे एक भी गन्दा द्रव नहीं निकला"—**सैकताम्भोजबलिना जाह्नवीव शरत्कृशा** (र.वं. १०.६९)। "इतनी सुन्दर कौशल्याजी सुशोभित हो रही हैं कि मानो किसीने गङ्गाजीकी गोदमें नीला कमल पधरा दिया है। महाराज! सुनन्दाजीने बताया—"

अंखियाँ तो बाटई दिलीप जैसन नकिया तो रघु जैसन हो राजन।
लालन छतियाँ तो बाटई राजा अज जैसन बहियाँ तोहारे जैसन हो राजन॥

"महाराज! सुनन्दाजी बता रही थीं—इस बालकके नेत्र तो महाराज दिलीप-जैसे हैं"—**कामं कर्णान्तविश्रान्ते विशाले तस्य लोचने** (र.वं. ४.१३), "नाक महाराज रघु-जैसी, छाती महाराज अज-जैसी, और उसकी भुजाएँ तो आप जैसी हैं भगवन्! इस प्रकार बालकमें चार महापुरुषोंके प्रतिबिम्ब दिख रहे हैं।" तो,

(राजन) अनुपम बालक देखेनि जाई (हो)।
(राजन) रूप राशि गुन कहि न सिराई (हो)॥

(मा. १.१९३.८)

वसिष्ठजीने जाकर देखा—"आहा! क्या सुन्दर बालक है यह।" गोदमें ले लिया।

गिरिधर प्रभु प्रथमहिं कौशिलाकी गोद
पुनि मुनि तिलक वसिष्ठजीको गोद भो।

रामकथा कलि पन्नग भरनी (मा. १.३१.६)—यह मयूरपत्नी इस सारे कलियुगको ही नष्ट करेगी। यहाँ कलियुग कैसे आयेगा? यहाँ तो त्रेताको आना है, गोदमें ले लिया।

तब नंदीमुख श्राद्ध करि जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन कहँ दीन्ह॥

(मा. १.१९३)

गोदमें ले लिया, वसिष्ठजीको यह संकोच नहीं लगा कि बड़ी रानी क्या कहेंगीं? गोदमें ले लिया। कहा—"महारानीजी! मुझे इस बालकको देखनेका मन है।" तो कौशल्याजीने कहा—"महाराज! आपके ही तो हैं लालाजी। मेरे भाग्यमें तो ये थे ही नहीं, आप ही इसे लाये। आपको प्रथम अधिकार है महाराज गोदमें लेनेके लिए।" गोदमें लिया। तब कविने एक भावना की। और कोई दूसरा कवि नहीं, उन्हींके वंशमें उत्पन्न हुए किसी कविने भावना की—

व्यापक हो व्याप्य भो निरंजन हो सांजन भो
अगुन सगुन अविनोद सविनोद भो।
अजहूँ जनम लियो अकृत सुकृत कियो
अचल सचल अप्रमोद-सप्रमोद भो॥
नूतन पुरातन भो सगुण सनातन भो
अमल पयोधिहुँ विमल सुपयोद भो।

***गिरिधर* प्रभु प्रथमहिं कौशिलाकी गोद**
पुनि मुनितिलक वसिष्ठजूकी गोद भो।

गोदमें लेकर नाचने लगे, बुढ़ऊ बाबा ठुमका लगाने लगे! सबसे कहने लगे—

गुरुजीके गोद खिलौना हो कहुँ नजर न लागे॥
नजर न लागे कहुँ टोनवा न लागे गुरुजीके गोद …॥
नील सरोरुह श्याम सुभगतन अरुण नयन कर टोना हो।
कहुँ नजर न लागे गुरुजीके गोद खिलौना हो …॥
कुटिल अलक लटकत मुख ऊपर लरत मनहुँ अलि छौना हो।
कहुँ नजर न लागे गुरुजीके गोद खिलौना हो …॥
मिथिलाकी सब नारी टोनहियाँ लावे जनी वो टोना हो।
कहुँ नजर न लागे गुरुजीके गोद खिलौना हो …॥
***रामभद्राचार्य* यह झाँकी निहारत होइगा जवन रहा हो।**
कहुँ नजर न लागे गुरुजीके गोद खिलौना हो …॥
नजर न लागे कहुँ टोनवा न लागे गुरुजीके गोद …॥

॥ बोलिये गुरुजीके गोद खिलौना सरकारकी जय हो ॥

जातकर्म किया गया। **रामकथा कलि पन्नग भरनी** (मा. १.३१.६)। सरस्वतीजी धगरिन बनकर आयीं और सोनेकी नहरनी लायी हैं। ठनगन कर रही हैं—"हम बिना नेग लिए राघवक नार न कटबई।" अवधकी नारियाँ कहती हैं—"तु नार न कटिबू, त तोहे गारी देबइ।" कहा—"कौनो बात नाहीं।" बड़ी भयंकर गारी दी। हम लोग अवधके हैं, हम जानते हैं, बहुत भयंकर गाली देना।

धगरिन बड़ी हरजाई ललनजूको नारो न काटे॥
कोठा न लेबै अटारी न लेबै लेबै न अन्न धन गायी।
ललनजूको नारो न काटे धगरिन बड़ी हरजाई ….॥
रानी कौशल्याकी साड़ी हम लेबै जहाँ प्रकटे प्रथम रघुराई।
ललनजूको नारो न काट धगरिन बड़ी हरजाई ….॥

अब **हरजाई** शब्दमें हम लोगोंको जो आनन्द आ सकता है, वह आपको नहीं आ सकता। सरस्वतीजीने कहा—"मुझे हरजाई कहती हो?" अवधकी नारियाँ कहती हैं—"तुम हरजाई तो हो ही। किसीको बेटा बना लेती हो, किसीको पति भी बना लेती हो। क्या करें? पुराणोंने तुमको ब्रह्माकी पत्नी भी कहा, विष्णुकी पत्नी भी कहा। क्या करें? अब तुम्हारे कर्म ही ऐसे हैं। हरजाई ही ठीक है।" सरस्वतीजीने कहा—"मैं तो कौशल्याजीकी वो साड़ी लूँगी, जिस साड़ीपर प्रथम बार भगवान् बालरूपमें आकर खेले।" और कौशल्याजीसे ले ली। आज भी उस साड़ीको बदला नहीं सरस्वती माताजीने। **या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता**—यह शुभ्रवस्त्र वही है। कभी अशुद्ध ही नहीं होती। जातकर्म किया।

बृंद बृंद मिलि चलीं लुगाई। सहज सिंगार किये उठि धाई॥
कनक कलश मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा॥

(मा. १.१९४.३–४)

समूहके समूह श्रीअवधकी माताएँ स्वाभाविक शृङ्गार किये हुए दौड़ीं। १२ बजे कौन शृङ्गार करेगा? स्वर्णका कलश, मङ्गल-थाल लिए गाते-गाते प्रवेश कर रही हैं।

करि आरति नेवछावरि करहीं। बार बार शिशु चरननि परहीं॥

(मा. १.१९४.५)

आरती कर रही हैं राघवजीकी और बार-बार भगवान्‌के चरणोंको देख रही हैं—

हिमकर बदन निहारिके लोचन फल लीजै।
कौशल्याके लालकी शुभ आरती कीजै॥
कौशल्याके लालकी सखी आरती कीजै॥
श्याम शरीर सुहावना तनु भूषण राजै।
श्रवण सुभग मनभावना कल कुंडल भाजै।
तन-मन-धन सब वारिके जीवन सुख लीजै॥
कौशल्याके लालकी शुभ आरती कीजै॥
खंजन कमल विलोकना लखि मुनिमन मोहे।
अरुण अधर भवमोचना विधु-आनन सोहे।
मुस्कनि मधुर सम्हारिके सब पातक छीजै॥
कौशल्याके लालकी शुभ आरती कीजै॥
कमल करन कंकन लसै बघनाह उर राजै।
मुक्तामाल हृदय बसै झिंगुली तन साजै।
नख सिख सुभग सँवारिके मन प्रेम पसीजै॥
कौशल्याके लालकी शुभ आरती कीजै॥
विधु मुखकमल निहारिके लोचन भर लीजै।
कौशल्याके लालकी शुभ आरती कीजै॥
बालक रूप अनूप है मानव तनुधारी।
रघुकुल सुकृतस्वरूप है नृप-अजिरबिहारी।
***गिरिधर* प्रभु मनुहारिके जीवन रस लीजै।**
कौशल्याके लालकी शुभ आरती कीजै॥

आज भगवान्‌की आरती कर रहीं हैं माताएँ।

सर्बस दान दीन्ह सब काहू। जेहिं पावा राखा नहिं ताहू॥

(मा. १.१९४.७)

रामकथा कलि पन्नग भरनी (मा. १.३१.६)—यह श्रीरामकथा दसों दिशाओंसे कलिको समाप्त कर रही है। इसीलिए यहाँ दस दोहे कहे गये हैं। हमारे जीवनकी दस इन्द्रियोंमें जो कलिकाल है, उसको यह कथा नष्ट करेगी। चारों ओर बधाइयाँ बज रही हैं—

गृह गृह बाज बधाव शुभ प्रगटे सुषमाकंद।

(मा. १.१९४)

शङ्करजीसे रहा नहीं गया। शिवजीने कहा—"अवधमें बधाइयाँ बज रही हैं, मुझे भी जाना है।" और—**काकभुशुण्डि संग हम दोऊ** (मा. १.१९६.४)। शिवजी पार्वतीजीसे कहते हैं—"देखो मैं तुमसे चोरी कह रहा हूँ। जहाँ-जहाँ जाता हूँ, तुम्हें लेकर जाता हूँ। पर आज मैं तुम्हें लेकर नहीं गया। क्योंकि, पत्नीको ले जाओ तो उसको सँभालो भी। कहाँ पानी पीयेगी, कहाँ विश्राम करेगी, क्या करेगी, कहाँ उसके केश गड़बड़ होंगे, कहाँ उसकी साड़ीका पल्लू इधर-उधर होगा ... बहुत झंझट होता है। इतना झंझट आज मुझे मोल नहीं लेना है। आधा मन तो मेरा तुम्हारेमें लगा रहेगा, वहाँ तो परमानन्द हैं।" तो बहुत अच्छा कहते हैं—

औरउ एक कहउँ निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी॥
काकभुशुण्डि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ॥

(मा. १.१९६.३–४)

आज दोनोंने मनुष्यरूप धारण किया है। मनुष्यरूप धारण करके आ रहे हैं—

परमानंद प्रेमसुख फूले। बीथिन फिरहिं मगन मन भूले॥

(मा. १.१९६.५)

भूल गये हैं। वास्तवमें अबतक तो लोग इनको भोलेबाबा कहते थे, पर सहीमें ये भोलेबाबा नहीं हैं। ये तो भूलेबाबा हैं। कौन हैं? भूले बाबा। परमानन्दमें डूब गये। यही है—**रामकथा कलि पन्नग भरनी** (मा. १.३१.६)। यही पन्नगभूषण भूले बाबा हैं—**वन्दे पन्नगभूषणम्**—पन्नगभूषण भी आज मनुष्य बन गये। तरंगमें आ गये, आनन्द कर दिया। हमारे यहाँ अवधी और भोजपुरीमें एक गीत गाया जाता है। अब तो लचारी कहते हैं, लचारी नहीं उसका नाम है नचारी। इसीको गाकर माताएँ नाचती हैं। बहुत सुन्दर गीत है यह। स्वर बहुत अच्छा होता है इसका। शिवजी भूल गये।

परमानंद सुख फूले अवध आज फिरे शिव भूले, परमानंद सुख ...॥
पार्वती मईयाको संग नहीं लाये काकभुशुंडिके संग मन हरषाये।
प्रेमरस झूला पे झूले अवध आज फिरे शिव भूले, परमानंद सुख ...॥
मनुज-शरीर धरे भोला भंडारी नाच रहे काग संग भवभयहारी।
गाई रहे चैता अनुकूले अवध आज फिरे शिव भूले, परमानंद सुख ...॥
अवधके लरिकनके बहुत चिढ़ायें हाथनसे छीनी-छीनी लड्डू शिव खायें।
पानी पिये सरजूके कूले अवध आज फिरे शिव भूले, परमानंद सुख ...॥
डमरु बजाये गावे रामकै बधैया चिरजीव *गिरिधर*के ईश चारों भैया॥
भोलेबाबा बने बाबा भूले अवध आज फिरे शिव भूले, परमानंद सुख ...॥

बोलिये भोले बाबाकी जय! बोलिये भूले बाबाकी जय!!

बहुत आनन्द करते हैं शिवजी। इतना आनन्द कि कहते हैं—**मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ** (मा. १.१९६.४) किसीको मैंने पता नहीं बताया। ये तो गोस्वामीजी जान गये। ये जान गये, और कौन जानेगा?

सूर्यनारायणने ब्रह्माजीको प्रार्थना पत्र दिया—"मेरे कुलमें एक बहुत होनहार बालकने जन्म लिया है। मुझे उस बालकके जन्ममहोत्सवमें सम्मलित होना है, तो मुझे आपसे छुट्टी चाहिए।" ब्रह्माजीने पूछा—"कितने दिनकी?" सूर्यनारायणने कहा—"कमसे कम एक दिनकी।" ब्रह्माजीने कहा—"एक दिनके लिए आप चले जायेंगे, तो बिजलीकी supply कौन करेगा? तीनों लोकोंमें अँधेरा छा जायेगा। नारायण मुझे मार डालेंगे कि ब्रह्माजी! आपने क्या किया?" सूर्यनारायणने कहा—"कुछ भी करो! मुझे जाना तो है ही। ब्रह्माजी CL दे दो।" ब्रह्माजीने सूर्यनारायणसे कहा—"नहीं! आज CL इत्यादि सब छुट्टियाँ निरस्त (cancel) हो गयीं हैं। आज तो और प्रकाश चाहिए।"

रामजन्मके दिन हमारे यहाँ तो यह होता है कि हिन्दूओंके त्यौहारमें बिजली नहीं रहेगी और लोगोंके त्यौहारोंमें अवश्य बिजली रहती है। क्या हमारा दुर्भाग्य है! अब हमारे अच्छे दिन कहाँ आयेंगे? हम तो चिन्तामें हैं। हम तो मोदीजीसे कहे कि भैया सबके अच्छे दिन हैं तो हिन्दुओंने कौन-सा पाप किया है? हमारे भी अच्छे दिन आने चाहिए। ये जो अट्ठारह जवान मारे गये हैं हमारे, जबतक हम अट्ठारह हजार नहीं मारेंगे तबतक हमें संतोष नहीं होगा। ये कोई बात हुई? सारा अन्याय हम ही पर? सबके त्यौहारोंमें बिजली रहेगी, हमारे त्यौहारोंमें कट जाती है। हमारे ही लोग गद्दार हैं, तो हम क्या करें? अब पहले तो एक जयचन्द्र था, तो हम सँभाल रहे थे; अब तो लाखों जयचन्द्र जन्म ले लिए हैं। हम क्या करें? पहले एक मानसिंह था, अब तो घर-घरमें जयचन्द्र और मानसिंह ही जन्म ले रहे हैं। हमारी महिलाओंमें भी स्वाभिमान नहीं रह गया है। लव-जिहादके नामपर क्या अनर्थ हो रहे हैं आज! हिन्दुओंकी लड़कियोंको हिन्दू होनेका स्वाभिमान नहीं धूमकेतुओंको। इन्हें और कोई वर पसंद ही नहीं आता। उन्हीं विश्वासघातियोंको वरण कर लेती हैं धूमकेतू। क्या करें हम? हमको तो एक बार फिर लक्ष्मीबाई चाहिए, एक बार फिर हमें जीजाबाई चाहिए जो शिवाजी-जैसे संतानको उत्पन्न कर सकें। हमें एक बार फिर रानी कर्मवती चाहिए। हमारी बड़ी आशाएँ हैं।

तो मित्रो! सूर्यनारायणको ब्रह्माजीने कहा—"हम आपको छुट्टी तो नहीं दे सकते क्योंकि यह हिन्दुओंका सबसे बड़ा पर्व, रामजीका जन्मोत्सव (रामनवमी) है। यहाँ मुझे बिल्कुल प्रकाश चाहिए-ही-चाहिए क्योंकि **जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू** (मा. १.११७.७)। हम आपको छुट्टी नहीं देंगे। क्योंकि हम मानते हैं कि यदि रामनवमीके दिन अँधेरा हुआ तो हिन्दुओंका बहुत बड़ा अपमान होगा। इतिहास मुझ ब्रह्माको माफ नहीं कर सकेगा।" सूर्यनारायणने कहा—"यहाँके आकाशमें मेरा रथ खड़ा रहेगा और मैं आपको वचन देता हूँ कि आजका दिन एक महीनेका होगा। एक महीनेतक मैं अस्त नहीं होऊँगा। प्रकाश चकाचक, झमाझम, चमाचम चमकेगा।" "ठीक है!" ब्रह्माजीने सूर्यनारायणका यह उपाय मान लिया—

कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेहि जात न जाना॥

(मा. १.१९५.८)

एक महीना बीत गया, उनको पता नहीं चला—

मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रबि थाकेउ निशा कवन बिधि होइ॥

(मा. १.१९५)

एक महीनेतक सूर्यनारायण अस्त नहीं हुए, दिव्य आनन्द कर दिया। अबतक चौबीस घण्टेका दिन होता था, आज तो आनन्द कर दिया। आज सात सौ बीस घण्टेका दिन हो गया, चकाचक है। और सब लोग नाचते-गाते रहे, बधाइयाँ गाते रहे, धन लुटाते रहे। इतना लम्बा महोत्सव किसी अवतारमें नहीं हुआ, पर **यह रहस्य काहूँ नहिं जाना** (मा. १.१९६.१)। उत्सव पूरा हुआ तो ब्रह्माजीने कहा—"भगवन्! अब तो पधारो।" तो सूर्यनारायणने कहा—"हाँ ठीक है।"

यह रहस्य काहूँ नहीं जाना। दिनमनि चले करत गुनगाना॥

(मा. १.१९६.१)

आज **दिनमनि** कह रहे हैं। जैसे मणि कभी बुझती नहीं, उसी प्रकार सूर्यनारायण एक महीने पर्यन्त अस्त नहीं हुए; मध्याह्न ही बना रह गया चकाचक। बहुत आनन्द आया, सबके मन संतुष्ट हुए। सब आशीर्वाद दे रहे हैं—

मन संतोषे सबनि के जहँ तहँ देहिं अशीश।
सकल तनय चिर जीवहु तुलसिदास के ईश॥

(मा. १.१९६)

अब छः दिन बीत गये, तो गोस्वामीजी अब छः दिन कैसे कहें? तो ऐसी चौपाईका प्रयोग कर रहे हैं जिसमें छः अक्षर आ जायेंगे, पहले छः अक्षर—

कछुक दिवस बीते येहि भाँती। जात न जानिय दिन अरु राती॥

(मा. १.१९७.१)

कछुक दिवस। कितने अक्षर हो गये? गिनिए—**क, छु, क, दि, व, स**—यह संकेत है मानसकारका। इसे अक्षर-ध्वनि या वर्णक-ध्वनि कहते हैं। छठी आयी। छठा दिन, जागरण हो रहा है। आनन्द कर दिया। चैत्रकी शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी—**तिनकी छठी मंगलमठी**। दिव्य आनन्द कर दिया, छठीके दिन सबने जागरण किया। आगे बारहवाँ दिन आ गया। अब रघुनाथजीका नामकरण होगा—**नामकरन कर अवसर जानी** (मा. १.१९७.२)। वसिष्ठजी महाराजको बुलाया—**भूप बोलि पठये मुनि ग्यानी** (मा. १.१९७.२)। पूजा तैयार। "भगवन्! आप नामकरण करें।" वसिष्ठजीने देखा—"अरे! **इनके नाम अनेक अनूपा** (मा. १.१९७.४)। फिर कहूँगा।" "क्या कहेंगे?"

जो आनंद सिंधु सुखरासी (सुखरासी हो)।
(ललना) सीकर ते त्रैलोक सुपासी (सुपासी हो)॥
सो सुख धाम राम अस नामा (अस नामा हो)।
(ललना) अखिल लोक दायक बिश्रामा (बिश्रामा हो)॥

(मा. १.१९७.५–६)

कितना सुन्दर! इसका अर्थ थोड़ा विवेकसे समझना पड़ेगा। **जो आनंद सिंधु सुखरासी सीकर**—यहाँ **सुखरासी** शब्द स्वतन्त्र नहीं है, वह **सीकर**के साथ जुड़ा हुआ है। अब

अर्थ क्या करेंगे? जो आनन्दके सागर हैं और अपनी सुखकी राशिके एक **सीकर ते**—एक बूँदसे—**त्रैलोक सुपासी** तीनों लोकोंको जो आनन्द करते हैं, **सो**—वे ही सुखके धाम, अखिल लोकके विश्रामदायक प्रभु, *राम अस नामा*—राम नामसे प्रसिद्ध हैं। यहाँ **नामा** माने प्रसिद्ध—**इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः** (वा.रा. १.१.८)।

"राजन्! बालक तो बहुत अच्छा है। महाराज! इनका *राम* नाम दे दीजिये।"

(१) "राजन्! मेरा मन है कि इनके नाममें थोड़ा-सा एक अक्षर इनके बाबाका भी नाम आ जाए, इनके परबाबाका भी नाम आ जाए और आपका भी नाम आ जाए। **र**से महाराज रघु और आप राजा दशरथ और **अ**से अज—इन तीनोंको जो **म** अर्थात् सुख देता है, उसका नाम है—*राम*।"

(२) "हे राजन्! और बताऊँ?" "जी और बता दीजिये।" "राजन्! यहाँ **रा**का अर्थ है राक्षस और **म**का अर्थ है मरण। यहाँ बहुव्रीहि समास होगा—**राक्षसानां मरणं येन** अर्थात् जिनसे सारे राक्षसोंका मरण हो जायेगा, वो हैं *राम*।" "अच्छा!" "हाँ राजन्! आपका जो जन्मजात शत्रु है—रावण...!" "हाँ! हाँ!!" "राजन्! उस रावणका मरण इन्हींसे होगा।" "हैं?" "हाँ महाराज। किसीसे बताइये नहीं, आप ही समझिये।" "अच्छा!"

(३) "राजन्! **र** माने ऋग्वेद, **आ** माने आहुति प्रधान यजुर्वेद, **म** माने माधुर्य प्रदान सामवेद, और **अ** माने अथर्ववेद—राम कहनेसे चारों वेदोंके पाठका फल मिल जाता है राजन्।" "अच्छा!"

(४) "राजन्! आपका यह बेटा ऐतिहासिक है। हमारे यहाँ भारतमें दो इतिहास हैं। क्या? दो इतिहास हैं—रामायण और महाभारत। तो **रा**से रामायण और **म**से महाभारत अर्थात् राम। राजन्! रामायण और महाभारत इन दोनोंमें इनका वर्चस्व रहेगा। रामायणमें तो इनका वर्चस्व है ही, और महाभारतमें इन्हींके सेवक हनुमान्‌जीके कारण अर्जुन जीत पायेंगे महाभारतको।" "अच्छा!" "हाँ राजन्!"

(५) "राजन्! **र** माने राष्ट्र और **म** माने मङ्गल, इन्हींसे इस भारत राष्ट्रका मङ्गल होगा राजन्!"

बिश्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥

(मा. १.१९७.७)

विश्वका भरण-पोषण करते हैं—**भरतीति भरतः**। यहाँ कर्तामें *क* प्रत्यय हुआ वर्तमानकालमें। "राजन्! ये विश्वका भरण-पोषण करेंगे।" **बिश्व भरन पोषन कर जोई, ताकर नाम भरत अस होई**।

"राजन्!"

जाके सुमिरन ते रिपु नाशा। नाम शत्रुहन बेद प्रकाशा॥

(मा. १.१९७.८)

"इनके स्मरणसे शत्रुओंका नाश हो जाता है। ये शत्रुघ्न हैं तीसरे। हैं चौथे पुत्र, पर जानकर मैं तीसरे क्रममें दे रहा हूँ राजन्, क्रम तोड़ रहा हूँ क्योंकि भरतके साथ शत्रुघ्नको रहना है।"

और अब—

लच्छनधाम रामप्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बशिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥

(मा. १.१९७)

"मैं क्या करूँ राजन्! मैं जानता हूँ कि लक्ष्मणका नाम तीसरे क्रममें रखना चाहिए था। पर मुझे एक सिद्धान्त समझाना था राजन्! गणितका एक सिद्धान्त है राजन् कि भाग-गणितमें चार वस्तुएँ होती हैं—(१) भाज्य, (२) भाजक, (३) भजनफल और (४) शेष। जैसे—हमने संख्या लिखी १७, यह भाज्य है; हमने ४से भाग दिया तो ४ भाजक है; जो भाग गया ४ वही भजनफल है और जो कटनेसे बच गया वही शेष १ है। तो क्या करूँ शेष तो अन्तमें ही होता है, उसको कोई काट नहीं पाता राजन्! इसी प्रकार आपके इन लक्ष्मणलालको विश्वकी कोई शक्ति काट नहीं सकेगी। राजन्! यह बहुत बढ़िया बालक है आपका लक्ष्मणवा, बहुत प्यारा है!"

लालनजोग लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने।
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रानपियारे॥

(मा. २.२००.१–२)

ये तो **पितु मातु दुलारे** हैं न!

कौशल्याजीने और दशरथजीने सुन लिया—"क्या कह रहें हैं गुरुदेव? अन्तमें लक्ष्मणका नाम रखनेका गुरुजीका क्या अभिप्राय है?" बताया कि यही अभिप्राय है कि शेष अन्तमें ही होता है और शेषको कोई काट नहीं पाता। इसीलिए जब परशुरामजी फरसा उठाते हैं, तो लक्ष्मणजी बहुत हँसते हैं। परशुरामजी लक्ष्मणजीसे पूछते हैं—"अच्छा यह बताओ कि तुम मेरे फरसे उठानेपर हँसते क्यों हो? क्या तुमने मुझे चिढ़ानेकी ठान ली है?" लक्ष्मणजीने कहा—"नहीं गुरुदेव! पर जब आप फरसा उठाते हैं, तो मुझे यही लगता है कि आपको तो प्राथमिक गणित भी नहीं आती। यदि आपको भाग गणित आ गयी होती गुरुदेव तो आप जान जाते कि जिस संख्याको गणित नहीं काट पा रही है, शेष कह रही है, उसीको आप फरसेसे काटना चाह रहे हैं। इसीलिए मुझे हँसी आती है।" नामकरण हो गया। पङ्क्ति याद रखिये—**रामकथा कलि पन्नग भरनी** (मा. १.३१.६)।

धरे नाम गुरु हृदय बिचारी (मा. १.१९८.१)—हृदयमें विचारकर। इस पङ्क्तिका अर्थ और गम्भीरतासे समझिये। **नाम बिचारी, गुरु हृदय धरे**—चारों भाइयोंके नामोंका विचार करके गुरुदेवने इन चारों भ्राताओंको अपने हृदयमें धारण कर लिया। कहा—"राजन्! आपके पुत्र तो वेदके तत्त्व हैं।" **बेद तत्त्व नृप तव सुत चारी** (मा. १.१९८.१)। अकार लक्ष्मणजी हैं, उकार शत्रुघ्नजी हैं, मकार भरतजी हैं, और अर्धमात्रात्मक भगवान् राम हैं। ये अवधेशके चारों बालक हैं—

तनकी दुति स्याम सरोरुह लोचन कंच की मंजुलताई हरैं।
अति सुंदर सोहत धूरि भरे छबि भूरि अनंगकी दूरि धरैं॥
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि-ज्यौं किलकैं कल बाल-बिनोद करैं।
अवधेसके बालक चारि सदा तुलसी-मन-मंदिर में बिहरैं॥

(क. १.३)

रामकथा कलि पन्नग भरनी (मा. १.३१.६)। अब घुटनोंसे चल रहे हैं। हमारी अवधीमें कहते हैं कि जब रामजी खेलते हैं न तो देखकर मन आनन्दित हो जाता है। माताएँ गाती हैं हमारी—

जियरा अनन्द होई जाई रे, जब राम खेले अंगनवा।
श्याम गौर सुंदर दोउ जोरी। निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी॥

(मा. १.१९८.५)

जियरा अधिक ललचाए रे, जब राम खेले अंगनवा।
कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना। मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना॥

(मा. १.१९८.८)

जियरा अधिक सरसाये रे, जबे राम खेले अंगनवा।

आनन्द हो रहा है। **रामकथा कलि पन्नग भरनी** (मा. १.३१.६)—यहाँ कलियुग नहीं रहेगा, रामजी रहेंगे और जहाँ रामजी रहेंगे, वहाँ त्रेता होगा। वहाँ कलियुग हो ही नहीं सकता। अभी मोदीनगरके इस पंडालमें यहाँ कलियुग नहीं है, यहाँ तो त्रेता है त्रेता। शतरूपा माताजीने वरदान माँगे थे भगवान् से। माँगे थे न! कितने वरदान माँगे थे? आपको स्मरण है न? छः वरदान माँगे थे। और मनुजीने कितने वरदान माँगे थे? दस। दसों वरदानोंको पाना था, इसीलिए ये दशरथ बन गये। आज दशरथजीको दसों वरदान सुलभ हो रहे हैं। शतरूपाजीने छः वरदान माँगे—

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहिं कृपा करि देहु॥

(मा. १.१५०)

"हे नाथ! जो आपके निजी भक्त हैं, वे आपसे जो सुख पाते हैं और जो गति प्राप्त करते हैं, (१) **सोइ सुख**, (२) **सोइ गति**, (३) **सोइ भगति**, (४) **सोइ निज चरन सनेहु**, (५) **सोइ बिबेक**, और (६) **सोइ रहनि** प्रदान कीजिये।"

अब इन छः वरदानोंकी पूर्ति भगवान् इस दोहेमें कर रहे हैं—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बश कौशल्या के गोद॥

(मा. १.१९८)

कौसल्याके गोद (मा. १.१९८)—यहाँ छः अक्षर हैं, देखिये दोहेको! कहीं **कौशल्या के गोद** लिखा रहता है तो कहीं **कौशल्या की गोद**, पर हैं छः अक्षर। एक ही दोहेमें भगवान्ने कौशल्याजीको छः वरदान पूर्णतयासे दे दिये। (१) **ब्यापक**—जो व्यापक हैं, वही आज व्याप्त बनकर **कौशल्या के गोद**में आ गये। **सोइ सुख** (मा. १.१५०) भक्तका सुख दे दिया माताजी को। (२) **ब्रह्म**—जो ब्रह्म हैं, वे भी **कौशल्या के गोद**में आ गये। **सोइ गति** (मा. १.१५०) दे दी बालक बनकर। (३) **निरंजन**—निरञ्जन हैं, पर **कौशल्या के गोद**में आ गये और साञ्जन हो गये। अञ्जन लगा दिया माताजीने—

तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे॥

(क. १.१)

सोइ भगति (मा. १.१५०), भक्ति दे दी। (४) **निर्गुन**—निर्गुण हैं, पर **कौशल्या के गोद**में आ गये। जो निर्गुण थे, वे सगुण बन गये। सगुण बन गये तो उनके चरण मिल गये और चरणोंमें कौशल्याजीका स्नेह हो गया—**सोइ निज चरन सनेहु** (मा. १.१५०)। (५) **बिगत बिनोद**—विनोद-रहित थे, पर **कौशल्या के गोद**में आ गये। विनोद किया तो विवेक दे दिया, **सोइ बिबेक** (मा. १.१५०)। (६) **सो अज**—अजन्मा थे, पर जन्म लेकर **कौशल्या के गोद**में हैं, **सोइ रहनि** (मा. १.१५०)।

॥ बोलिये कौशल्याके गोदविहारी सरकारकी जय हो ॥

हम तो यही कहेंगे—

आज कौशल्याकी गोदमें श्रीराम प्रगटे आज अवधमें राम अभिराम प्रगटे॥
बनके बालक अवध अभिराम प्रगटे जगके पालक अवध अभिराम प्रगटे।
आज कौशल्याकी गोदमें श्रीराम प्रगटे आज अवधमें राम अभिराम प्रगटे॥
आज कौशल्याकी गोदमें श्रीराम बिलसे बनके बालक नयन अभिराम बिलसे॥
नील घनश्याम तन शीश पे कुलहिया मुखकी निहार शोभा लाजती जुनहिया।
आज कौशल्याकी गोद सुखधाम बिलसे बनके बालक नयन अभिराम बिलसे॥
कुंडल स्त्रवण सोहे कमल नयनवा आनन शशांक सर्व सुषमा अनयवा।
आज कौशल्याकी गोद छविधाम बिलसे बनके बालक सुमन अभिराम बिलसे॥
अरुण अधर सोहे दुई दुई दसनवा साँवरी शरीर राजे शीशुरदी बसनवा।
आज कौशल्याकी गोद गुनधाम बिलसे बनके बालक मदन अभिराम बिलसे॥
करतल लघु लघु तीर औ धनुहिया *गिरिधर* प्रभु चले बिनहि पनहिया।
आज कौशल्याकी गोद बलधाम बिलसे बनके बालक सदन अभिराम बिलसे॥

आज धन्य कर दिया, छहों सुख दे दिये माताजीको। **रामकथा कलि पन्नग भरनी** (मा. १.३१.६)।

बड़ा सुन्दर स्वरूप है, बड़ा सुन्दर स्वरूप! कह रहे हैं कि इस आनन्दको माता कौशल्याजीने एक वर्ष पर्यन्त निहारा। बहुत अच्छा वर्णन कर रहे हैं अब! हमारे यहाँ बारह महीने होते हैं, अब एक-एक महीनेकी झाँकी देखिये! इतनी सुन्दर व्यवस्थित वर्णनना हमने कहीं देखी नहीं। आइये देखते हैं! इस वर्णननासे आप बोर मत होइयेगा बस।

॥ बोलिये भक्तवत्सल भगवान्की जय ॥

तो मित्रो! श्रीरामकथा संसारकी सारी समस्याओंको दूर कर सकती है और कर देगी। औरोंकी श्रीरामकथाके संबन्धमें तो मैं नहीं कह सकता पर मेरी श्रीरामकथा—डेंगू, चिकनगुनियाकी बात छोड़ो ये तो दूर करेगी ही—मेरे शासकोंको सद्बुद्धि देगी, सैनिकोंको बाहुबल देगी। अब हम तबतक विश्राम नहीं लेंगे, जब तब अपना कश्मीर पूराका पूरा अपने हाथमें नहीं ले लेंगे। जबतक कश्मीरसे इन पाजियोंको खदेड़ नहीं देंगे, तबतक हम विश्राम नहीं लेंगे। आइये, अब देखें आज

रामचन्द्रजीकी बारह झाँकियाँ! खोल लीजिये, रामायणजी खोल लीजिये!

(१) चैत्रकी प्रथम झाँकी—

काम कोटि छबि श्याम शरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥

(मा. १.१९९.१)

यह है प्रथम झाँकी।

हम तो हमारे राघवजू के, राघवजू हमारे हैं।
काम कोटि छबि श्याम शरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥ राघवजू हमारे हैं।
हम तो हमारे राघवजूके राघवजू हमारे हैं।

प्रथम महीनेकी झाँकी है। भगवान्‌का श्याम शरीर; इतना सुन्दर, करोड़ों कामदेवोंकी शोभा वहाँ विराज रही है! कौशल्याजीने नीली साड़ी धारणकी है, और रामजी बादलके समान हैं। गोदमें लिया है तो **नील कंज बारिद गंभीरा** (मा. १.१९९.१)। ऐसा लग रहा है मानो नीले कमलपर गम्भीर बादल विराजमान हो रहा है। यह प्रथम मास चैत्रमें भगवान्‌की झाँकी है।

(२) अब द्वितीय मास वैशाखकी झाँकी—

अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलनि बैठे जनु मोती॥

(मा. १.१९९.२)

अब रामलला थोड़े बड़े हो रहे हैं। लाल चरण हैं, नखकी ज्योति इतनी सुन्दर है जैसे कमलके दलोंपर दस-दस मोती विराज रहे हों! यह वैशाखकी झाँकी है।

(३) अब रामलला और बड़े होंगे तीसरे महीने ज्येष्ठमें—

रेख कुलिश ध्वज अंकुश सोहै। नूपुरधुनि सुनि मुनिमन मोहै॥

(मा. १.१९९.३)

कमल नहीं दिख रहा, चरण भी कमल जैसे हैं; तो अलगसे कमल नहीं दिख रहा है। और तीन रेखाएँ—**कुलिश** अर्थात् वज्र, **ध्वज** अर्थात् ध्वजा, और **अंकुश** यानी बरछी—ये तीन रेखाएँ दिख रही हैं। यह तीसरे महीनेकी शोभा है। और थोड़ा-थोड़ा हाथ-चरण चलाने लगे हैं। बच्चे नहीं देखते हो तीन महीनेके चरण, पाँव उठाकर पटकते रहते हैं! तो रामजीके नूपुरकी धुन सुनकर मुनियोंका भी मन मोहित हो जाता है। वसिष्ठजी भी चुपके-चुपके आकर सुनते हैं। रामलला कितने सुन्दर चरण चला रहे हैं! यह है ज्येष्ठकी झाँकी।

(४) अब आषाढ़की झाँकी है—

कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जिहि देखा॥

(मा. १.१९९.४)

कटिमें किङ्किणी है। आषाढ़में बहुत गर्मी लगती है तो वस्त्र नहीं धारण कराया है ठीक से, बहुत पतला। उदरपर तीन रेखाएँ हैं। नाभि इतनी गम्भीर कि भई हम नहीं जानते! वह तो जिसने देखा वो जाने! ब्रह्माजीने देखा था, उन्हींसे पूछ लीजिये कितनी गम्भीर नाभि है!

(५) अब श्रावणकी झाँकी—

भुज बिशाल भूषन जुत भूरी। हिय हरिनख अति शोभा रूरी॥

(मा. १.१९९.५)

यह श्रावणकी झाँकी है। झूलेके लिए रामललाको तैयार किया है माताजीने। विशाल भुजाएँ, बड़े सुन्दर-सुन्दर अलङ्कार, हृदयपर बघनखा धारण कराया है। **हिय हरिनख अति शोभा रूरी**—बहुत सुन्दर शोभा है! नृसिंह भगवान्‌ने ही अपने नख बघनखाके लिए दे दिये हैं कि माताजी! ये राघवजीको धारण करवाइये क्योंकि हिरण्यकशिपुका वक्ष:स्थल विदीर्ण करनेसे मेरे नख खूनी हो गये थे। आज उन्हींको काटकर दे रहा हूँ। भगवान्‌का बघनखा बना दीजिये। हे हरि! मेरा सौभाग्य! नहीं तो **हिय बघनख** लिख देते, तो क्या बिगड़ जाता?

(६) अब भादोंकी शोभा—

उर मनिहार पदिक की शोभा। बिप्रचरन देखत मन लोभा॥

(मा. १.१९९.६)

भगवान्‌के हृदयपर मणिका हार, हीरा चमक रहा है। पदिक माने हीरा। और वसिष्ठजीके चरण माताजीने रखवा दिए थे, जिससे नजर न लगे। तो विप्रचरण देखकर मन मुग्ध होता जा रहा है, लुब्ध हो रहा है। बहुत सुन्दर!

(७) अब आया आश्विन मास, जिसको हम आजकल क्या बोलते हैं? क्वार। इसकी झाँकी देखिये—

कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदनछबि छाई॥

(मा. १.१९९.७)

शङ्खके समान भगवान्‌का गला है, बहुत सुन्दर चिबुक (ठोढ़ी) है, भगवान्‌के बहुत सुन्दर मुख। अब प्रभु धीरे-धीरे मुस्कुराने लगे हैं। तो भगवान्‌के मुखपर अनेक मदनों अनेक कामदेवोंकी छवि छा गयी है। आहाहा!

(८) अब आठवें महीने कार्त्तिकका वर्णन देखिये—अब ध्यानसे सुनिये। बहुत अच्छा है! सातवें महीनेमें भगवान्‌के दाँत निकल आये है, और आठवें महीनेमें अब दिखने लगे हैं—

दुइ दुइ दशन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनइ पारे॥

(मा. १.१९९.८)

भगवान् श्रीकृष्णके आठवें महीनेमें दाँत निकले थे। जिस बालकके दाँत आठवें महीनेमें निकलते हैं, वह मामाको खा जाता है। परंतु राघवजीके दाँत सातवें महीनेमें निकल चुके थे, अब **दुइ दुइ दशन** दिख रहे हैं चमाचम। लाल अधर, नासा भगवान्‌की बड़ी सुन्दर, तिलक और माताजीने नजरके डरसे नाकपर भी थोड़ा तिलक लगा दिया है तो—**नासा तिलक को बरनइ पारे**। अथवा भगवान्‌की नासिकापर एक तिल है, इतना सुन्दर तिल कि उसका कौन वर्णन करेगा! क्या आनन्द हो रहा है! **नासा तिलक को बरनइ पारे**।

(९) अब आया मार्गशीर्ष यानि अगहन—तो अगहनका क्या वर्णन कर रहे हो? बहुत सुन्दर है!

सुन्दर स्त्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥

(मा. १.१९९.९)

भगवान्‌के श्रवण बड़े सुन्दर हैं। नौ महीनेका बालक सुन्दर होता ही हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि नौवें महीनेमें रामजी बोलने लगे हैं। बड़ा सुन्दर स्वरूप—मईया, बाबा, भलत, लच्छमन,

छत्रुहन—ऐसे बोलते हैं, गुलुजी ऐसे बोलते हैं। मार्गशीर्षमें भगवान्‌का इतना सुन्दर व्यवस्थित वर्णन तो हमने कहीं नहीं देखा।

(१०) अब पौषका महीना बड़ा सुन्दर है—अब भगवान्‌के नेत्रोंके बारेमें सुनिये—

नील कमल दॊउ नयन बिशाला। बिकट भृकुटि लटकनि बर भाला॥

(मा. १.१९९.१०)

यह चौपाई गीताप्रेसने नहीं दी है, हमने दी है और बहुत प्रामाणिक चौपाई है। **नील कमल दॊउ नयन बिशाला**, नीलेकमलके समान भगवान्‌के सुन्दर नेत्र हैं, टेढ़ी भौंहें है, और मस्तक पर लटकती हुई घुँघराली लटों की लटकन श्रेष्ठता के साथ सुशोभित हो रही है। यह भगवान्‌की पौषकी झाँकी है।

(११) अब माघका दर्शन देखिये—

चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥

(मा. १.१९९.११)

भगवान्‌के बाल हैं, अभी इनका मुण्डन नहीं हुआ है। मुण्डन तीसरे वर्षमें होगा। माँने बहुत सजाया है, सुन्दर-सुन्दर फूल पीले-पीले, लाल-लाल सुन्दर पुष्प गुच्छेमें बनाये हैं और केशमें लगाये हैं। तो भगवान्‌के मस्तकपर लटक रहे हैं ये गुच्छे।

(१२) अब फाल्गुनका महीना—तो फाल्गुन और होलीका अवसर आने जा रहा है। राघवकी भाभियाँ भी उनको मिलेंगीं। यदि राघव वस्त्र धारण नहीं करेंगे तो गरियायेंगीं—"ये तो नंगे हैं नंगे।" इसलिए शैशवावस्थामें भी धारण करायी है पीली झगुलिया—

पीत झगुलिया तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मॊहि भाई॥

(मा. १.१९९.१२)

अब घुटनोंसे, झगुलिया धारण करायी है और वह चरणतक जा रही है। कहते हैं—**जानु पानि बिचरनि मॊहि भाई** अब घुटनोंसे चलना मुझे बहुत भा रहा है भगवान्‌का।

रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति शेषा। सो जानइ सपनॆहुँ जेहिं देखा॥

(मा. १.१९९.१३)

जिसने सपनेमें भी देखा है वही उस रूपको जानता है। गोस्वामीजी संकेत करते हैं कि मैंने आज ही रात्रिमें सपनेमें ये बारह झाँकियाँ देखीं। और ये मैंने जैसा देखा, वैसा लिख दिया।

॥ बोलिये गोस्वामीतुलसीदासजी महाराजकी जय ॥

सुखसंदोह मोहपर ग्यान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम बश कर शिशुचरित पुनीत॥

(मा. १.१९९)

अद्भुत आनन्द कर रहे हैं। माँ गोदमें लेती हैं, अब अवधवासी भी गोदमें ले रहे हैं। यहाँ एक पङ्क्ति बड़ी सुन्दर कही गयी। गोस्वामीजी कहते हैं कि अरे जीवो! भगवान् तो कृपा करनेको तरस रहे हैं, पर हम ही अपनी चालाकी नहीं छोड़ रहे हैं—

मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहैं रघुराई॥

(मा. १.२००.६)

बहुत आनन्द कर रहे हैं। अब इस कथाकी विश्राम झाँकी। आ गयी चैत्रकी रामनवमी और भगवान्‌का दूसरा जन्मदिन और प्रथम वर्षगाँठ। चारों ओरसे बधाइयाँ, सभी लोग गा रहे हैं—

बधाई रघुराई जन्मदिनकी तुमको। बधाई रघुराई जन्मदिनकी तुमको॥
अमित बार आये जन्मदिन तुम्हारा। सदा हम मनाएँ जन्मदिन तुम्हारा॥
बधाई चारों भाई जन्मदिनकी तुमको। बधाई हो बधाई जन्मदिनकी तुमको॥
एक बार जननी अन्हवाए। करि श्रृंगार पलना पौढ़ाए॥
बधाई रघुराई जन्मदिनकी तुमको॥

अद्भुत आनन्द हो रहा है। आज माताजीने प्रभुको स्नान कराया, शृङ्गार करके पलनेपर पौढ़ाया—"राघव! आज आपका जन्मदिन है। आज आप एक वर्षके हो गये हैं। आज रङ्गनाथको भोग लगेगा। आज हम आपका अन्नप्राशन करायेंगे।" भगवान्‌को पौढ़ा दिया, पूजा की, नैवेद्य चढ़ाया; माताजी स्वयं चली गयीं देखने जहाँ भोजन बन रहा था। कैसी व्यवस्था है, सबको भोजन कराना है आज। छप्पन करोड़ देवियाँ और तैंतीस करोड़ देवता आयेंगे। इधर पट बंद हुए और राघवजी चले गये। किवाड़ बंदका बंद! कहा—"ऐ रङ्गनाथ! क्या कर रहे हो?" रङ्गनाथजीने कहा—"तुम क्यों आ गये?" राघवजीने कहा—"तुम्हारा मस्तिष्क गड़बड़ हो गया है क्या? तुमको किसने बुलाया?" रङ्गनाथजीने कहा—"तुम्हारी माँने।" राघवजीने कहा—"तुमको मेरी माँने बुलाया है और मुझको मेरी माँने जन्माया है, अधिकार किसका है बताओ?" रङ्गनाथजीने कहा—"अच्छा, क्या करें?" राघवजीने कहा—"छो जाओ रङ्गनाथ! छो जाओ यार! छो जाओ। जन्मदिन मेरा और (ससुर) भकोसोगे तुम? यह कैसे चलेगा? मुझे भोजन करना है, तुम्हें नहीं। क्या नाम है तुम्हारा?" उन्होंने कहा—"मेरा नाम है रङ्गनाथ। तुम्हारा क्या नाम है?" भगवान्‌ने कहा—"पहले mind your language. (अपनी भाषापर विचार करो)। मुझे **तुम्हारा** मत बोलो। मैं तो तुम्हारे बापका भी बाप हूँ। तुम विष्णु हो और तुम्हारे बाप हैं महाविष्णु, मैं उनका भी बाप हूँ—रामजी हूँ। घबराओ मत! तुम्हारा बाप हूँ मैं। तुम विष्णु हो, मैं महाविष्णु हूँ।" रङ्गनाथजीने कहा—"अच्छा भाई। आप कौन?" भगवान्‌ने कहा—"तुम्हारा नाम रङ्गनाथ, तो मेरा नाम उछंगनाथ।" रङ्गनाथजीने कहा—"अच्छा! किसने रखा?" भगवान् बोले—"मेरी माँने।" रङ्गनाथजीने कहा—"क्या कहा?" भगवान्‌ने कहा—

कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना (खेलें राम ललना)।
मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना (खेलें राम ललना)॥

(मा. १.१९८.८)

"अच्छा! तुम सो जाओ, मैं खाऊँगा।" अरे महाराज! प्रारम्भ कर दिया, सौ थाली पूरी कर डालीं। छोटे-से बालक, बड़े सुन्दर, खीर पा रहे हैं। अब हाथ छोटा है तो थालीमें पसर कर बैठ गये हैं। कटोरेमें खीर है, झुककर पा रहे हैं। और आगेवाले बाल कटोरेमें डूब गये। इतना सुन्दर लग रहा है जैसे गङ्गाजीमें यमुनाजीकी धारा बह रही है। माताजी आयीं, देखा—अरे! ये मेरे राघव यहाँ कैसे आ गये?—

गइ जननी शिशु पहँ भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता॥
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन बिशेषा॥

(मा. १.२०१.५, ७)

हे राम! यहाँ भी राघव वहाँ भी राघव!! अरे राम!!!

राम ललना मेरे राघव ललना॥
आज मंदिरमें जीम रहे राम ललना॥
आज पलनेमें झूल रहे राम ललना॥
इहाँ मंदिरमें जीम रहे राम ललना॥
ऊँहा पलनेमें झूल रहे राम ललना॥
राम ललना मेरे राम ललना॥
मेरे मंदिरमें जीम रहे राम ललना॥
राम ललना मेरे राघव ललना॥
मेरे मंदिरमें जीम रहे राम ललना॥
आज पलनेमें झूल रहे राम ललना॥

देखा माताजीने। पच्चीसों चक्कर लगाये माताजीने। भगवान्‌ने देखा ये तो थक गयीं हैं, तो **प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी** (मा. १.२०१.८) मुस्कुराये भगवान्। और वहीं बदल गया बालक रूप, अद्भुत रूप देखा माताजीने—**हरषित महतारी मुनिमनहारी अद्भुत रूप निहारी** (मा. १.१९२.१)।

देखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥

(मा. १.२०१)

हे राम! एक-एक रोममें करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्ड दिखा दिए। छोटा-सा मन्दिर इतना बड़ा हो गया भगवान्‌का। अनेक सूर्य, अनेक चन्द्रमा, अनेक ब्रह्मा, अनेक विष्णु, अनेक शङ्कर। देखा कि माया हाथ जोड़कर खड़ी है। जीवको देखा जो इसे नचाती है, भक्तिके दर्शन किये जो उन्हें छोड़ती है। अरे राम! माताजी भयभीत, प्रणाम किया भगवान्‌को। अरे! जगत्‌के पिताको मैंने अपना बेटा मान लिया! हे माँ! क्या होगा? अन्तमें भगवान्‌ने सोचा कि माताजी विस्मित हो गयीं हैं, अत: फिर बालक बन गये। माताजीने कहा—"ऐसी लीला करके आपने मुझे क्यों सताया?" भगवान्‌ने कहा—"आपने थोड़ी गलती कर दी। आपका विवेक शिथिल हो रहा था। आपने रङ्गनाथजीको मुझसे बड़ा मान लिया था। आपका यह भ्रम दूर करनेके लिए मैंने ऐसा किया, अद्भुतरूप दिखाया। आपने जन्मके समय देखा था पर इतना विस्तृत नहीं देखा था—रोम-रोममें ब्रह्माण्ड। आपने तो कहा था—**रोम रोम प्रति बेद कहै** (मा. १.१९२ छ. ३)। मैंने कहा कि जो वेद कहते हैं वे सत्य कहते हैं, झूठ नहिं बोलते वेद, यह देख लीजिये।" फिर माताजीको भगवान्‌ने बहुत समझाया और कहा—"यह बात किसीसे मत कहियेगा।" माताजीने कहा—"मैं भी आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आजके पश्चात् आपकी यह माया मुझपर कभी न व्यापे।"

रामकथा कलि पन्नग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहँ अरनी॥

(मा. १.३१.६)

कथा ९: पुनि बिबेक पावक कहँ अरनी (मा. १.३१.६)

अब नौवीं कथा। विलम्ब तो हो गया पर थोड़ा-सा और सुनिये। अरे! क्या विलम्ब हो गया! क्या करेंगे आप जाकर? अब बाल-लीला। इस कथाके लिए कहते हैं कि यह कथा विवेक रूप अग्निके लिए अरणी है। जैसे यज्ञमें अरणीका मन्थन होता है तब अग्नि निकलती है; उसी प्रकार यहाँ भी यज्ञ हो चुका है, अरणीका मन्थन हो रहा है। बड़े-बड़े संस्कारोंमें यज्ञ होंगे। अन्नप्राशन हो गया, अब **चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई** (मा. १.२०३.३)—गुरुदेवने चूडाकरण किया। नाईको नहीं बुलाना पड़ा। केवल प्रतिज्ञा कर ली, बाल सिमट गये, मुण्डन हो गया। बहुत आनन्द आया। बच्चोंके साथ खेल रहे हैं भगवान्—

भोजन करत बुलावत राजा। नहिं आवत तजि बालसमाजा॥

(मा. १.२०३.६)

नहीं आ रहे हैं। राजा बुला रहे हैं। कहा—"राजा होकर बुलाइयेगा तब मैं नहीं आऊँगा।"

कौशल्या जब बोलन जाई। ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलहिं परायी॥

(मा. १.२०३.७)

कौशल्या गयीं बुलाने, **कोसलानां राज्ञी कौशल्या**, तो भगवान्ने कहा—"रानी अपने घरकी रहिये; नहीं आऊँगा।" पर जब रानीका अभिमान छूटा—"नहीं! नहीं!! मैं रानी नहीं हूँ बेटे! मैं तुम्हारी माँ हूँ।" तब—

निगम नेति शिव अंत न पावा। ताहि धरइ जननी हठि धावा॥

(मा. १.२०३.८)

वेदोंने कहा हम पकड़ेंगे। एक लाख वेदमन्त्र बालक बने, पकड़ना चाहे पर नहीं पकड़ पाये। शङ्करजीने कहा—"मैं पकडूँगा", नहीं पकड़ पाये। शङ्करजी गिर पड़े, पूरे शरीरकी राख आँगनमें लग गयी, वही **धूरि** बन गयी, तब—

धूसर धूरि भरे तनु आये। भूपति बिहँसि गोद बैठाये॥

(मा. १.२०३.९)

स्वयं तो **धूसर** अर्थात् धूलसे भरे भगवान् ही हैं, तो फिर **धूरि भरे** क्यों लिख दिया? इसका अर्थ यह है कि स्वयं तो धूलसे भरे ही हैं और माताजी जब पकड़ने लगीं तो उनपर भी दो-तीन मुट्ठी धूल डाल दी—**धूरि भरे तनु**। अब जब दोनोंको देखा महाराजने तो हँसने लगे और कहा—"क्यों बेटे? आज अपनी माताजीके साथ होली खेल ली तुमने?" गोदमें बैठा लिया, भोजन कराने लगे—

भोजन करत चपल चित इत उत अवसर पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ॥

(मा. १.२०३)

किलक रहे हैं। जैसे ही मुखसे दही भात गिरा, वही जूठन भुशुण्डिजीने पा ली—**जूठन परइ जों अजिर महँ सो उठाइ करि खाउँ** (मा. ७.७५क)। अब बड़े हो रहे हैं।

बालचरित अति सरल सुहाये। शारद शेष शंभु श्रुति गाये॥

(मा. १.२०४.१)

प्रभुका बाल चरित बहुत सुन्दर है। इसे सरस्वती, शेष, शङ्कर, और वेदोंने गाया। सरस्वतीजी पट्टी लेकर आयीं, शेषजी पृथ्वीसे खड़िया लेकर आये, पहले पट्टीपर उसीसे लिखते थे। शङ्करजीने चौदह सूत्रोंका उच्चारण कराया, श्रुतियोंने देवनागरी लिपि बतायी। और भगवान्‌का यज्ञोपवीत हुआ—

भये कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥

(मा. १.२०४.३)

भगवान्‌को यज्ञोपवीत धारण कराया गया। यज्ञोपवीतके नौ धागे, नौ देवताओंका एक-एक धागेमें आह्वान होता है—(१) ॐकार, (२) अग्निदेव, (३) सर्प, (४) सोम, (५) प्रजापति, (६) पितर, (७) वायु, (८) यम और (९) विश्वेदेव का। नौ देवताओंके भगवान् आश्रय हैं। भगवान्‌ने यज्ञोपवीत धारण किया।

गुरुगृह गये पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

(मा. १.२०४.४)

यह है—**बिद्या बिनु बिबेक उपजाये** (मा. ३.२१.९)। **पुनि बिबेक पावक कहँ अरनी** (मा. १.३१.६)। गुरुदेवके यहाँ गये भगवान् पढ़ने, थोड़े ही कालमें सारी विद्याएँ आ गयीं **बिद्या बिनय निपुन गुनशीला** (मा. १.२०४.६)। दीक्षान्त समारोह हुआ, भगवान्‌ने वसिष्ठजीको गुरुदक्षिणा दी—"गुरुदेव! जबतक भारतसे आतङ्कवादको समाप्त नहीं कर दूँगा, तबतक मैं धनुष नीचे नहीं रखूँगा—यही मेरी गुरुदक्षिणा है।" और भगवान् पधार गये।

बहुत सुन्दर दिनचर्या है। प्रात:काल उठकर माता-पिता, गुरुदेवको प्रणाम करते हैं। जिस प्रकार लोग सुखी रहते हैं, ऐसा संयोग करते हैं। वनमें मृगया करते हैं, जो शापित लोग मृग बन गये हैं, उनको बाणसे मारकर साकेतलोक भेज रहे हैं। इस प्रकार नौवीं कथा पूर्ण।

ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगतहेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप॥

(मा. १.२०५)

॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥
॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥
सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय हो!
पवनपुत्र हनुमान्‌जीमहाराजकी जय हो!
गोस्वामी तुलसीदासजीकी जय हो!
जय-जय श्रीसीताराम!!!

पञ्चम पुष्प

॥ नमो राघवाय॥

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥

श्रीरामचन्द्र रघुपुङ्गव राजवर्य
राजेन्द्र राम रघुनायक राघवेश।
राजाधिराज रघुनन्दन रामभद्र
दासोऽहमद्य भवतः शरणागतोऽस्मि॥

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी।
सुजनचकोरकदम्बो यत्कविताकौमुदीं पिबति॥

(श्री)सीतानाथसमारम्भां (श्री)रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे (श्री)गुरुपरम्पराम्॥

श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर-बिमल-जस जो दायक फल चारि॥

सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय।

(श्री)रामचरितमानस बिमल कथा करौं चित चाइ।
आसन आइ विराजिये (श्री)पवनपुत्र हरषाइ॥

सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय। पवनसुत हनुमान्‌जी महाराजकी जय हो। गोस्वामी तुलीदासजी महाराजकी जय हो। प्रेमसे बोलिये श्रीसीताराम भगवान्‌की जय हो।

॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥
॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥

तुलसी सीताराम कहो हृदय राखि बिस्वास।
कबहूँ बिगड़त ना सुने (श्री)सीतारामके दास॥

सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय।

रामकथा सुंदर करतारी। संशय बिहग उड़ावनहारी॥

(मा. १.११४.१)

रामकथा कलि पन्नग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहँ अरनी॥

(मा. १.३१.६)

पुनि बिबेक पावक कहँ अरनी। भगवान्‌की बाललीला-युक्त यह नौवीं कथा मात्र तीन दोहोंमें है। बालकाण्डके २०३से २०५—इन तीन दोहोंमें और मध्यकी केवल २५ चौपाइयोंमें अर्थात् २८ पदोंमें यह कथा कही गयी है। यहाँ क्या विवेक देखा होगा आपने? कौन-सी घटना घट रही है, जो यह बता रही है कि विवेक-पावकके लिए अरणी है? जैसे अरणीका मन्थन करनेसे यज्ञके अग्निदेव प्रकट होते हैं, उसी प्रकार इस कथाका चिन्तन करनेसे हमारे जीवनमें विवेक प्रकट हो जाता है। कौन-सा चिन्तन? घटनाएँ तो बहुत कम हैं इस कथामें। पहली घटना यही है कि भगवान् दशरथजीके अजिरमें भ्रमण कर रहे हैं—

मन क्रम बचन अगोचर जोई। दशरथ अजिर बिचर प्रभु सोई॥

(मा. १.२०३.५)

अर्थात् जो प्रभु मनके अगोचर है, मनके विषय नहीं बन पाते, मनमें जल्दी नहीं आ पाते, क्रममें नहीं आ पाते, वचनमें नहीं आते; वही प्रभु आज दशरथजीके **अजिर** अर्थात् आँगनमें विचर रहे हैं। इसका अर्थ यही है कि जब जीवनमें विवेक आता है, तो मोह चला जाता है। तब व्यक्तिको भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम हो जाता है और जब प्रेम हो जाता है तो व्यक्तिको भगवान् मिल जाते हैं—

होइ बिबेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥

(मा. २.९३.५)

आज तीनों माताओंको कोई मोह नहीं हैं। दशरथजीको मोह नहीं, विवेक ही विवेक है। और भगवान् भ्रमण कर रहे हैं दशरथजीके आगे आँगनमें।

दूसरी घटना बहुत अच्छी है—

भोजन करत बुलावत राजा। नहिं आवत तजि बालसमाजा॥

(मा. १.२०३.६)

चक्रवर्तीजी भोजन कर रहे हैं और भोजन करते समय भगवान् रामको बुला रहे हैं। यहाँ यही विवेक है कि हमको प्रत्येक समयमें भगवान्‌का स्मरण रखना चाहिए। भोजनके समय भी भगवान्‌का स्मरण अवश्य करना चाहिए। जब भगवान्‌का स्मरण करेंगे तभी तो भोजन होगा और भगवान्‌का स्मरण नहीं करेंगे, तो खाना बन जायेगा; तब भोजन कहाँ रहा? राजा बुला रहे हैं, और भगवान् बालक-समाजको छोड़कर नहीं आ रहे हैं। यहाँ क्या विवेक है? क्यों नहीं आये पिताजीकी बात सुनकर भी? भगवान्‌ने कहा—"यदि पिताजी बुलाते तो दौड़कर आ जाता। परंतु यदि राजा बुला रहे हैं, तो मैं तो राजाधिराज हूँ; मैं क्यों आऊँ? नहीं आऊँगा।" और जब नहीं आये तब, **कौशल्या जब बोलन जाई** (मा. १.२०३.७)—कौशल्याजी बुलाने गयीं, तो भी भगवान् नहीं आये। क्यों नहीं आये? क्योंकि संस्कृतमें कौशल्याका अर्थ होता है—**कोशलानां राज्ञी कौशल्या** अर्थात् कोशलदेशकी महारानीको कौशल्या कहते हैं। **कोशलस्य**

पुत्री कौशल्या वे एक राजाकी बेटी हैं। दक्षिण कोशलकी बेटी हैं, उत्तरकोशलकी महारानी हैं। भगवान्‌ने कहा—"राजपुत्री और राजरानीके बुलानेसे मैं थोड़े ही आऊँगा! नहीं आऊँगा। जाओ!" **ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलहिं पराई** (मा. १.२०३.७)। ठुमुक-ठुमुक—ठुमुकना माने होता है रुक जाना, रुकते हैं। रानी सोचती हैं कि मैं पकड़ लूँगी, तो भाग जाते हैं। इसलिए भगवान्‌को बुलाते समय किसी पदका अभिमान नहीं रखना चाहिए—यह यहाँ विवेक है।

निगम नेति शिव अंत न पावा (मा. १.२०३.८)—वेद जिनको **नेति-नेति** कहते हैं, शङ्करजी जिनका अन्त नहीं पाये; उन्हींको—**ताहि धरै जननी हठि धावा** (मा. १.२०३.८)। उन्हींको हठपूर्वक पकड़नेके लिए आज माताजी दौड़ीं। यहाँ बहुत विलक्षण प्रयोग है। **जननी**के साथ **धाई** होना चाहिए, क्योंकि **जननी** स्त्रीलिङ्ग है। पर **धाई** न लिखकर **धावा** लिख रहे हैं? इसका तात्पर्य यह है कि आज माताजीने पुरुषार्थका प्रयोग किया। ठीकसे साड़ी कसकर बाँधी और दौड़ पड़ीं कि मैं पकडूँगी दौड़कर। भगवान्‌ने कहा—"दौड़कर पकड़ोगी?" **तद्धावतोऽन्यानत्येति** (ई.उ. ४) दौड़कर पकड़ने वालोंसे भगवान् पकड़में नहीं आते। इसलिए भगवान्‌को दौड़कर मत पकड़ो। उनसे तेज कौन दौड़ सकता है? पर जननी हैं अब, न तो दक्षिणकोशलकी राजपुत्री हैं और न उत्तरकोशलकी रानी। अब तो वे माँ हैं। जब माँ हैं, तब भगवान् स्वयं आ गये; पकड़में तो नहीं आये।

धूसर धूरि भरे तनु आये। भूपति बिहँसि गोद बैठाये॥

(मा. १.२०३.९)

भगवान् माँकी गोदमें आ गये—"क्यों दौड़ रहीं हैं आप मेरे लिए?" माँका विवेक जगा, माँने भगवान्‌की धूल पोंछी नहीं और उसी प्रकार ले आयीं। स्वयं भी भगवान् धूलमें भरे हैं, माताजीके ऊपर भी दो-तीन मुट्ठी धूल फेंक दी। बालक तो बालक ही है। **धूसर** माने होता है धूलसे भरा हुआ। फिर **धूरि भरे तनु**का क्या अर्थ है? स्वयं तो धूलसे धूसरित ही हैं, और माताजीके तनको भी धूलसे भर दिया। माताजीने बुरा नहीं माना कि मेरी सुन्दर-सुन्दर साड़ी गन्दी कर दी। "कुछ नहीं!" माताजी जानती हैं कि यह तो मुझ कौशल्याको धूल मिल रही है; इसी धूलका एक कण अहल्याका उद्धार करेगा। इसलिए **भूपति बिहँसि गोद बैठाये**। यह सब विवेक-ही-विवेक है। विवेक और क्या है?

भोजन करत चपल चित इत उत अवसर पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ॥

(मा. १.२०३)

बहुत विवेक है। गोदमें बैठा लिया भगवान्‌को और चक्रवर्तीजी कौशल्याजीसे कुछ बात करने लगे—"देखती हो? रामललाने आज कितना आनन्द कर दिया!" जब महारानीजीसे बात करनेमें वे व्यस्त हो गये तो, **इत उत अवसर पाइ** अर्थात् इधर पिताजीके यहाँसे भी अवसर मिल गया और उधर माताजीके यहाँसे भी अवसर मिल गया। तब भगवान् भाग चले। इसका अर्थ यह है कि भगवान्‌को प्राप्त करनेके बाद किसी औरसे बातचीत नहीं करनी चाहिए, नहीं तो भगवान् चले जायेंगे। यह भी एक विवेक है।

भोजन करत चपल चित इत उत अवसर पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ॥

पुनि बिबेक पावक कहँ अरनी। प्रारम्भ हुई विद्या। विवेक आता कहाँसे है? विद्यासे विवेक आता है। तो सोचिये! यह बात कौन कह रहा है? रामचरितमानसजीकी खलनायिका कह रही है। और खलनायिका कौन है? खलनायककी पत्नीको खलनायिका नहीं कहते। वास्तवमें जो नायक और नायिकाके बिछुड़नेमें कारण बनती है, उनके वियोगमें कारण बनती है, उसे खलनायिका कहते हैं। मन्दोदरी खलनायिका नहीं है, खलनायिका शूर्पणखा है। तो शूर्पणखा कहती है—

बिद्या बिनु बिवेक उपजाये। श्रम फल पढ़े किये अरु पाये॥

(मा. ३.२१.९)

विद्या तो विवेकको उत्पन्न करती है। इसीलिए—

गुरुगृह गये पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

(मा. १.२०४.४)

गुरुदेवके यहाँ भगवान् राम उपवीतके पश्चात् गये।

भये कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥

(मा. १.२०४.३)

विवेकका नियम है कि विवेक तो उसीको मिलेगा, जो वर्णाश्रमपर विश्वास करेगा। जो चारों वर्णों व चारों आश्रमोंपर विश्वास नहीं करता, उसे विवेक कहाँसे मिलेगा? यज्ञोपवीत धारण कर लिया है भगवान्ने। कल हम बता रहे थे न आपको कि यज्ञोपवीत माने जनेऊ। इसे साधारण नहीं समझना चाहिए। नौ तागे होते हैं यज्ञोपवीतमें और इसके तन्तुओंमें क्रमशः (१) प्रणव (ॐकार), (२) अग्नि, (३) सर्प, (४) सोम (चन्द्रमा), (५) प्रजापति, (६) पितर, (७) अनिल (वायु), (८) यम, और (९) विश्वदेवताका आह्वान होता है। इसमें तीन ग्रन्थियाँ होती हैं—(१) ब्रह्म-ग्रन्थि, (२) विष्णु-ग्रन्थि और (३) रुद्र-ग्रन्थि। जिसके तीन प्रवर होंगे उसके जनेऊमें तीन फेरे और जिनके पाँच प्रवर होंगे उनके पाँच फेरे। अब तो लोग शिखा-सूत्र भी भूल गये, प्रवर भी लोग नहीं जानते हैं। एक बार मैंने एक बहुत बड़े कर्मकाण्डीसे पूछा, पर उसको प्रवर नहीं आता था। मेरे तीन प्रवर हैं। मैं अपनी बात तो आपको बता ही दूँ, आपको अच्छा लगेगा। हमारे वसिष्ठगोत्रीय ब्राह्मण भी पश्चिममें बहुत हैं। मुझे व्यक्तिगत वसिष्ठ गोत्रपर बहुत गौरव है। मैं अपनी बात कह रहा हूँ। आप लोग बुरा मत मानना। हमारे ही यहाँ तो रामजी विद्यार्थी बनकर आये थे—

गुरुगृह गये पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

(मा. १.२०४.४)

यह बहुत अच्छी चौपाई है रामायणजीकी। जब मैं प्रथम बार १९७१की जन्माष्टमीको स्वामी करपात्रीजीसे मिला संस्कृत विश्वविद्यालयमें तब हमारे विश्वविद्यालयका नाम वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय था। इसके पश्चात् इसका नाम बदलकर हो गया सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय। करपात्री स्वामी प्रत्येक जन्माष्टमीको हमारे विश्वविद्यालयमें आते थे भाषण करने। मैं अपने समयका बहुत अच्छा छात्र था और अपने आदर्श गौरीशङ्कर संस्कृत महाविद्यालयसे उत्तरमध्यमा पर्यन्त पढ़कर आया था। कठोर-से-कठोर संस्कृत मैं समझ लेता था, परंतु जब करपात्री स्वामीने

इतना सुन्दर भाषण संस्कृतमें किया तो मैंने, मुझ-जैसे विद्यार्थीने भी, मात्र ७५ प्रतिशत समझा। मैं झूठ नहीं बोलता। आजकलके लड़के स्वयंके लिए कह देते हैं कि मैं शुकाचार्य हूँ। मैं क्या बताऊँ? एक लड़का मुझको हरिद्वारमें मिला। **जन्माद्यस्य** (भा.पु. १.१.१) पढ़ना उसको आता नहीं था और बालशुकाचार्य अपनेको लिखता था। जिनकी आँखें चञ्चल हों, भिन्न-भिन्न कन्याओंपर जिनकी आँखें जायें, वे आज बालशुकाचार्य बन बैठे! सोचिये? तो मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि मैं बहुत विद्वान् हूँ। मुझे केवल ७५ प्रतिशत समझमें आया, पर मेरे मनमें बात हो गयी कि मुझे ऐसी तैयारी करनी है कि मुझे शत-प्रतिशत समझमें आना चाहिए। फिर तीन महीने मैंने बहुत कठोर परिश्रम किया, घनघोर परिश्रम किया। उसी दिन जब मैं करपात्रीजीसे मिला, उनके भाषणके पश्चात्, तो वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने पूछा—"कितना प्रतिशत तुमने मेरा वक्तव्य समझा?" तो हमारे संस्कृतके सभी विद्यार्थियोंमेंसे किसीने कहा ५ प्रतिशत, किसीने कहा १० प्रतिशत। मैंने कहा—"आपका वक्तव्य मैंने ७५ प्रतिशत समझा।" "अरे!" वे बोले—"तुम बड़े योग्य हो बेटे! अच्छा, एक काम करो। रामायणकी चौपाई कुछ जानते हो?" मैंने कहा—"मैंने पूरी कण्ठस्थ कर ली महाराज। सात वर्षकी अवस्थामें मैंने रामायणजी कण्ठस्थ कर ली थी।" कहा—"एक काम करो।

गुरुगृह गये पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

(मा. १.२०४.४)

इसीका संपुट लगाकर तुम अब प्रतिदिन रामायणजीका एक नवाहपारायण करो। देखना फिर यह चौपाई रङ्ग ला देगी।" फिर मैंने दूसरे दिनसे प्रारम्भ कर दिया और ३० अप्रैल १९७६को जब मैंने अन्तिम परीक्षा दे ली तो जाकर स्वामीजीको प्रणाम किया। उन्होंने कहा—"अरे! अब तो हो गया, अब तो तुमने शास्त्री भी टॉप किया, आचार्य भी टॉप किया, अब बंद कर दो।" मैंने कहा—"नहीं! थोड़ी देर और पढ़ने दीजिये। जबतक पी.एच.डी. न कर लूँ तबतक।" उन्होंने कहा—"अच्छा, ठीक है!" फिर १४ अक्टूबर १९८१को जब मेरा पी.एच.डी.का viva हो गया। तब उन्होंने कहा—"अच्छा! अब मत पढ़ना। नहीं तो झगड़ा हो जायेगा।" यह इतनी महत्त्वपूर्ण चौपाई है। मुझको तो यही लगता है कि जो प्रतिभा मिली है, यह करपात्रीजीकी प्रेरणा, गुरुजनोंका आशीर्वाद और इसी चौपाईसे रामायणजीके पाठ करनेका फल मिला मुझको।

गुरुगृह गये पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

(मा. १.२०४.४)

क्या करें! तुम लोग पढ़ना ही नहीं चाहते, व्यर्थकी गप्पें लगाओगे। अब आज पूछा मैंने—**रूप राशि नृप अजिर बिहारी** (मा. ७.७७.८), तो इतना भी नहीं आया। मैं झूठ नहीं बोलूँगा, मुझे उस समय बहुत क्रोध आया। आँखें लेकर, बटन-जैसी, बैठे हो यार! क्यों नहीं आया, क्यों नहीं आता? इसका अर्थ है कि तुम शास्त्रके लिए समर्पित ही नहीं होना चाहते। जिस किसी भी विद्यार्थीको प्रतिभावान् बनना है, वह इसी चौपाईसे कम-से-कम नवाहपारायण या मासपारायण करना प्रारम्भ करो। देखो! रङ्ग ला देगी! और श्रीकरपात्रीजीका वचन झूठा नहीं जायेगा। बहुत अच्छे थे। मैं बहुत गौरवसे कहने जा रहा हूँ कि बीसवीं सदीके उत्तरार्धमें श्रीकरपात्र स्वामीजी अभिनव शङ्कराचार्य ही थे।

देखिये! यह बात सब लोग भूल जाओ और आजसे अपने मनसे निकाल दो कि भगवान् नहीं मिलेंगे। आज भी भगवान् मिलते हैं। दूसरी बात भी अपने मनसे निकाल दो कि पढ़ने-लिखनेका सम्मान नहीं है। आज भी विद्याका सम्मान है और रहेगा। हाँ! डिग्रीका सम्मान नहीं है। डिग्री पाकर तुम आचार्य बन जाओ। एक अक्षर संस्कृत बोलना तुमको नहीं आता। क्या कर लोगे आचार्य बनकर तुम? वही बस सेठोंका **ॐ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे** (ऋ.वे. २.२३.१) करते रहो और सेठोंसे अरे-तूरेकी भाषा सुनते रहो और क्या करोगे? आजतक की स्थितिमें मैंने किसीके यहाँ कभी कर्मकाण्ड नहीं किया, किसीके भंडारेमें भोजन नहीं किया, श्राद्धमें भोजन नहीं किया। कुछ नहीं। क्योंकि मैंने पढ़ा अपने आनन्दके लिए, पैसेके लिए नहीं पढ़ा था। नहीं तो आप बताइये! यूनिवर्सिटी टॉप करनेके बाद कोई प्रोफेसर बने रह सकता है क्या? परंतु मैंने नौकरी नहीं की। देखिये! पढ़नेका फल जीविका नहीं है, संस्कृतभाषाके अध्ययनका फल है भगवान्‌की प्राप्ति। जीवनमें कभी किसीको मैंने सत्यनारायण कथा नहीं सुनायी, किसीसे चरण नहीं धुलवाया। सब लोग यही सोचते हैं कि बाबा हैं, पढ़े-लिखे ज्ञानी हैं, इनसे पूजा कराओ, कर्मकाण्ड कराओ, श्राद्ध कराओ। यह ब्राह्मणका फल थोड़े ही है! हमको गर्व है अपनी विद्यापर! तो मित्रो! आज भी विद्याका परिणाम मिलता है। आज भी विद्याका सम्मान होता है, परंतु उसके लिए पहले त्याग करना पड़ता है। और पहलेसे ही तुम सोचो कि हमको हरे-हरे नोट मिलने लगें, मोबाइल मिलने लगे, तब तो विद्या आने वाली नहीं। यह भी बहुत विचित्र है।

जाकी सहज श्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥
बिद्या बिनय निपुन गुन शीला।

(मा. १.२०४.५–६)

भगवान् पढ़कर आये। **सर्वविद्याव्रतस्नातः** (वा.रा. १.१.२०)। वसिष्ठ-विश्वविद्यालयमें पढ़कर आये। भगवान् सामान्य विद्यार्थी नहीं हैं, पी.एच.डी., डी.लिट., ... चकाचक, जो कुछ कहना चाहो कहो। एम.ए. कहो, एम.एस.सी.कहो, एम.एस.सी. (ए.जी.) कहो, एम.कॉम. कहो, एम.सी.ए., एम.बी.ए. जितना कहते बने उतना कहो। सबमें जहाँ एम लगा होता है वहाँ मास्टर होता है—M.A. (Master of Arts), M.Sc. (Master of Science), M.Com. (Master of Commerce) सबमें एम हैं। क्या बात करते हैं!

दीक्षान्त हुआ। वसिष्ठजीको भगवान्‌ने दक्षिणा दे दी—"गुरुदेव! मैं आपको वचन देता हूँ कि जबतक भारतवर्षसे आतङ्कवादका सफाया नहीं हो जायेगा, तबतक मैं धनुष-बाण नीचे नहीं रखूँगा।" इसीलिए **बन मृगया नित खेलहिं जाई** (मा. १.२०५.१)। मृगया खेलने क्यों जाते थे? जानते थे कि किसी भी वेषमें आतङ्कवादी आये तो उसे खदेड़-खदेड़कर मारो, उसके घरमें घुसकर मारो, होगा जो कुछ होना होगा। हम यही निर्णय करने जा रहे हैं। हम १८ सैनिकोंके बलिदानका उत्तर उधरके १८ हजार नरमुण्डोंके बलिदानसे लेंगे। इस बार मेरी मोदीनगरकी कथाका कुछ दूसरा ही आनन्द है। पहले नवीं कथाका उपसंहार। मृगोंका उद्धार करनेके लिए उन्हें ढूँढते रहते थे रामजी—

जे मृग रामबान के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे॥

(मा. १.२०५.३)

मांस खानेके लिए थोड़े वो शिकार करते थे—

न मांसं राघवो भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते

(वा.रा. ५.३६.४१)

अर्थात् रघुवंशका कोई बालक मांसाहार नहीं करता और औषधिके रूपमें भी ऍल्कोहॉल (alcohol) नहीं लेता—**न चैव मधु सेवते**।

अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता आग्या अनुसरहीं॥

(मा. १.२०५.४)

मित्रों और भ्राताओंके साथ भोजन करते हैं, माता-पिताकी आज्ञाका पालन करते हैं।

बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहँहिं अनुजन समुझाई॥

(मा. १.२०५.६)

आजकल पढ़नेके बाद बच्चा नास्तिक बन जाता है। और वे नास्तिक नहीं बन रहे हैं। इतनी अच्छी रामकथा! मैं क्या बताऊँ! अब तो मनको चिन्ता हो रही है कि मैंने यहाँ नौ दिनका समय दिया, किस प्रकार पूरा करूँगा? इस प्रकार—

ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगतहेतु नानाविधि करत चरित्र अनूप॥

(मा. १.२०५)

कथा १०: रामकथा कलि कामद गाई (मा. १.३१.७)

मानसकी तीस कथाओंकी बात मैंने कही। गोस्वामीजीने मानसजीमें तीस कथाएँ कही हैं। अब दशम कथा—

रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई॥

(मा. १.३१.७)

श्रीरामकथा कलियुगमें कामधेनु गायके समान है। सुरभि समुद्रके मन्थनसे प्रकट हुई थी। यह कथा भी वेदरूप समुद्रके मन्थनसे प्रकट हो रही है। ऋग्वेदका मन्त्र है—

महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात्सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः।
विश्वामित्रो यदवहत्सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः॥

(ऋ.वे. ३.५३.९)

इस वेदमन्त्रसे इस कथाका संबन्ध है। विश्वामित्रजी अब चक्रवर्तीजीके यहाँ आ रहे हैं। **कलि कामद गाई** (मा. १.३१.७)—यह कथा कामधेनु है। गायके पास कितने थन होते हैं? गाय चार थनोंसे दूध देती है। इस कथाके भी चार खण्ड हैं—(१) विश्वामित्रजीका विचार, (२) अवधजीमें प्रवेश कर रामजीको माँगकर लेकर आना, (३) चक्रवर्तीजीका प्रेम, और (४) विश्वामित्रजीके यहाँ रामजीका समर्पण और यज्ञकी रक्षा।

यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिलि कथा सुनहु मन लाई॥

(मा. १.२०६.१)

कहते हैं कि अगली कथा मन लगाकर सुनियेगा। रावणने यज्ञके विध्वंसके लिए अपने आतङ्कवादियोंको भेज रखा है। पूरा भारत आतङ्कवादसे भर गया है। दक्षिणमें इसने नासिकमें छावनी बनायी और वहाँ शूर्पणखाको लेफ्टिनेंट बना दिया। और इधर पूर्वमें सारे भारतको वशमें करके उत्तरप्रदेशकी सीमाके पहले बक्सरमें छावनी बनायी, वहाँ लेफ्टिनेंट बनाया ताटकाको। इधर योग-जपमें बाधाएँ पड़ने लगीं। दशरथजी चारों पुत्रोंको दुलारनेमें मस्त हो गये और जनकजी चारों बेटियोंको दुलारनेमें मस्त हो गये। थोड़ी-थोड़ी इनकी उपेक्षा हो गयी। जब राजतन्त्रकी उपेक्षा हो गयी, तो आतङ्कवाद बढ़ने लगा। तो विश्वामित्रने कहा—"क्या करूँ अब?"

बिश्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन शुभ आश्रम जानी॥
तहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहिं डरहीं॥

(मा. १.२०६.२–३)

बहुत चिन्तित हुए—

गाधितनय मन चिंता ब्यापी। हरि बिनु मरहिं न निशिचर पापी॥

(मा. १.२०६.५)

गाधितनय माने गाधिके बेटे। विश्वामित्रजीके मनमें चिन्ता होने लगी—"क्या किया जाए। श्रीहरिके बिना ये पापी राक्षस नहीं मरेंगे।" **तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा** (मा. १.२०६.६)—तब विचार किया कि अरे! जिस गायत्रीजीके मैंने दर्शन किये—**ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्**, जो **सवितुः देवस्य वरेण्यं भर्गः** हैं, जो सूर्यके देवता हैं ... मैंने पहले दिन कह दिया था कि **सवितुः**में संबन्ध षष्ठी है और **देवस्य**में भी संबन्ध षष्ठी है। अतः जो सूर्यके भी देवता हैं, ऐसे भगवान् रामके उस **वरेण्यं भर्गः**का हम ध्यान करें, **धीमहि** माने ध्यानमें लायें। जो भगवान्, जो सविताके देवता हैं, **नः धियो यो प्रचोदयात्** वे हमारी बुद्धियोंको असुर कर्मोंसे हटाकर सत्कर्मोंको करनेके लिए प्रेरित करें। चिन्तन किया कि अरे! वे तो अवतार ले चुके हैं—

तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा॥

(मा. १.२०६.६)

वे तो श्रीअवधमें अवतार ले चुके हैं। चलो विश्वामित्र! चलते हैं!!—**ऐहि मिस देखौं प्रभुपद जाई** (मा. १.२०६.७)। मैं आपको कह रहा हूँ न कि मेरी पुस्तक लीजिये, पर आप लोग मान नहीं रहे हैं। बहुत प्रामाणिक संस्करण है मेरा! अब गीताप्रेसमें लिखा है—**एहूँ मिस देखौं पद जाई** (मा.गी.प्रे.)। क्या **एहूँ मिस**! इसी बहाने भगवान्के चरणोंको जाकर देखूँ और **करि बिनती आनउँ दोउ भाई** (मा. १.२०६.७)। यह कथा कामधेनु है। अतः जिसने भी मनोरथ किया, उसके मनोरथ पूरे हुए—

बहु विधि करत मनोरथ जात लागि नहिं बार।
करि मज्जन सरजूसलिल गये भूपदरबार॥

(मा. १.२०६)

भगवान्के पास आ गये। चक्रवर्तीजीने सम्मान किया और **पुनि चरननि मेले सुत चारी** (मा. १.२०७.५) चारों पुत्रोंको चरणोंमें डाल दिया। सब मिल गया विश्वामित्रजी को, चारों फल

मिल गये—(१) **अर्थ**—शत्रुघ्नलालको देखकर अर्थ मिला, (२) **धर्म**—लक्ष्मणजीको देखकर धर्म मिला, (३) **काम**—भरतजीको निहारकर सारी कामनाओंकी पूर्ति हो गयी, और (४) **मोक्ष**—रामचन्द्रजीको निहारकर मोक्षका फल पूरा-पूरा मिल गया।

राम देखि मुनि देह बिसारी (मा. १.२०७.५)—एकटक निर्निमेष नयनोंसे प्रभुको निहारने लगे। चक्रवर्तीजीने कहा—"आपका आगमन किसलिए हुआ है—**केहि कारन आगमन तुम्हारा** (मा. १.२०७.८)।" विश्वामित्रजीने कहा कि राजन्! असुर-समूह मुझे बहुत सता रहे हैं। मैं आया हूँ आपसे **...जाचन नृप तोही** (मा. १.२०७.९) नृपको माँगने, **नृन् पातीति नृपः**। मैं मनुष्योंके रक्षक श्रीरामको आपसे माँगने आया हूँ—

अनुज समेत देहु रघुनाथा। निशिचरबध मैं होब सनाथा॥

(मा. १.२०७.१०)

अनुज शब्द लक्ष्मणजीके लिए रूढ है। **अनुज** माने छोटा भाई होता है, पर लक्ष्मणजीका एक प्रकारसे **अनुज** नाम ही पड़ गया। राजन्! मुझे **अनुज** माने लक्ष्मणजीके सहित रघुनाथजीको दे दीजिये क्योंकि राक्षसोंका वध होनेसे मैं सनाथ हो जाऊँगा, अभी अनाथ हूँ राजन्!

जेकर नाथ रघुनाथ ऊ अनाथ कैसे।
जवन सब ओर झुकेला ऊ माथ कैसे। जेकर नाथ रघुनाथ ऊ अनाथ कैसे॥
करतल सोहे लघु तीर औ धनुहिया। मुख लखी लाज रही शरद जुनहिया॥
जवन बीचवेमें छोड़ेला ऊ साथ कैसे। जेकर नाथ रघुनाथ ऊ अनाथ कैसे॥
करुणा समुद्र राम भक्त सुखदाई। भरत लखन रिपुहन छोट भाई॥
जवन सब ओर पसरे ऊ हाथ कैसे। जेकर नाथ रघुनाथ ऊ अनाथ कैसे॥
दशरथ पूज्य पिता कौशल्याजी माता। सीता जैसी धर्मपत्नी जन सुखदाता।
जवन शरणागतके पाले ना ऊ नाथ कैसे। जेकर नाथ रघुनाथ ऊ अनाथ कैसे॥
रामचन्द्र भगवान् प्रभु अन्तर्यामी। समरथ शक्तिमान गिरिधरके स्वामी।
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निशिचरबध मैं होब सनाथा॥
जवन रामके न भजे ऊ सनाथ कैसे। जेकर नाथ रघुनाथ ऊ अनाथ कैसे॥

॥ बोलिये रघुनाथ भगवान्की जय हो ॥

यह है श्रीरामकथा! और बताओ तुम लोगोंको समझमें आ रहा है या नहीं? बता देना! समझमें आये, ताली बजाना और न समझमें आये तो संकोच छोड़कर कहना मैं फिर समझाऊँगा। परंतु निश्चित रूपसे इस कथाकी कभी तुलना नहीं होगी। हाँ, यदि मैं ही कथा दोबारा कहने आऊँगा तो तुलना हो जाए।

विश्वामित्रजीने रघुनाथजीको माँगा—**अनुज समेत देहु रघुनाथा**। चक्रवर्तीजीने कहा—"आप रघुनाथजीको ही क्यों माँग रहे हैं?" विश्वामित्र बोले—"राजन्! इससे पहले एक बात कही गयी है—"

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥

(मा. १.२०५.७)

"इनको इसलिए **रघुनाथ** कहा जाता है कि ये प्रात: काल उठकर माता-पिता और गुरुको

प्रणाम करते हैं। राजन्! मनुजी कहते हैं—"

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्॥

(म.स्मृ. २.१२१)

अर्थात् जो माता-पिताको स्वभावतः प्रणाम करते हैं (बनावटी नहीं), उनकी आयु, विद्या, यश, और बलकी वृद्धि होती है।" कुछ लोग होते हैं कि एकान्तमें तो माता-पिताको एक कप चाय भी नहीं देते और सबके सामने प्रणाम करने चले जाते हैं। आजकी बहुएँ होती हैं। सासुको तो एक घूँट पानीके लिए तरसा देती हैं और पार्वतीजीके सिरपर लोटा टरकाती हैं। जबकि शास्त्र कहते हैं कि प्रातःकाल जो बहू अपनी सासुको श्रद्धासे प्रणाम कर लेती है, उसको करोड़ों पार्वतीकी पूजाका फल मिल जाता है। तो हम लोग अपने माता-पिताका क्या सम्मान कर रहे हैं आज? उनको वृद्धाश्रममें डाल दिया। हमको और देवताओंके पास जानेकी आवश्यकता है ही नहीं। माता-पिता ही सर्वदेवमय हैं। "राजन्! मैंने देख ली इनकी कुण्डली। इनकी आयुको कोई नहीं नष्ट कर सकता, इनकी विद्याको कोई नहीं नष्ट कर सकता, इनके बलको कोई नहीं नष्ट कर सकता। इसलिए रघुनाथजीको दे दीजिये।" चक्रवर्तीजी व्याकुल हो गये—"अरे! क्या करूँ? इनके विकल्पमें कुछ वस्तु नहीं है क्या?"

माँगहु भूमि धेनु धन कोषा। सर्बस देउँ आजु सहरोषा॥
देह प्रान ते प्रिय कछु नाहीं। सॊउ मुनि देउँ निमिष ऎक माही॥
सब सुत प्रिय मॊहि प्रानकी नाईं। राम देत नहिं बनइ गॊसाईं॥

(मा. १.२०८.३–५)

"महाराज! इनको छोड़कर तीन सुत, सब दे दूँगा।" यहाँ **सहरोषा**का अर्थ है सहर्ष। कितनी वस्तुएँ देनेके लिए कह दिया? नौ—(१) भूमि, (२) धेनु, (३) धन, (४) कोष, (५) देह, (६) प्राण, और (७–९) तीन सुत—ये ९ वस्तुएँ दे दूँगा, पर रामजीको नहीं दूँगा—**राम देत नहिं बनइ गॊसाईं** क्योंकि **दशमस्त्वमसि**—उपनिषद्के अनुसार ये दशम हैं। इन्हें नहीं दूँगा। इन्हें देनेपर मेरे प्राण चले जायेंगे। यही है चक्रवर्तीजीका प्रेम, यही है **रामकथा कलि कामद गाई** (मा. १.३१.७)। सब कुछ देनेके लिए कह दिया, पर *राघवको मैं न दूँगा*। "क्यों नहीं दोगे?" इस गीतको बहुत श्रद्धासे सुनिये। एक बार मैंने रैवासामें अनुष्ठान किया था इक्कीस दिनतक केवल नारियलका जल लेकर। उस अनुष्ठानमें मैंने इस गीतकी रचना की थी।

राघवको मैं न दूँगा मुनिनाथ मरते-मरते॥
मेरे प्राण ना रहेंगे यह दान करते-करते॥
जलके बिना कदाचित् मछली शरीर धारे।
पर मैं न जी सकूँगा इनको बिना निहारे॥
कौशिक सिहर रहे हैं मेरे अंग डरते-डरते।
राघवको मैं न दूँगा मुनिनाथ मरते-मरते॥
कर यत्न चौथेपनमें सुत चार मैंने पाया।
पितु-मातु-पुरजनोंको रघुचन्द्रने जिलाया॥

लोचन चकोर तन्मय सुधापान करते-करते।
राघवको मैं न दूँगा मुनिनाथ मरते-मरते॥
चलते बिलोक प्रभुको होगा श्मशान कोसल।
मंगलभवनके जाते संभव कहाँ है मंगल॥
सींचें कृपालु तरुवर सब पात झरते-झरते।
राघवको मैं न दूँगा मुनिनाथ मरते-मरते॥
लड़के हैं राम-लछिमन कैसे करें लड़ाई।
***गिरिधर* प्रभुको देते बनता नहीं गुसाईं॥**
कह यों पड़े चरणमें दृगनीर झरते-झरते।
राघवको मैं न दूँगा मुनिनाथ मरते-मरते॥

मैं अपने पुत्र राघवको नहीं दूँगा, इतना प्यारा बालक कैसे दे दूँ?—

कहँ निशिचर अति घोर कठोरा। कहँ सुंदर सुत परम किशोरा॥
सुनि नृपगिरा प्रेमरस सानी। हृदय हरष माना मुनि ग्यानी॥

(मा. १.२०८.६–७)

विलक्षण प्रस्तुति है गोस्वामीजीकी! हम-आप किसीसे छोटी वस्तु माँगने जाएँ और वह सीधा दो टूक उत्तर दे दे कि मैं नहीं दूँगा, तो क्या हमें प्रसन्नता होगी? निश्चित रूपसे हमें क्रोध आयेगा। पर यहाँ विश्वामित्रजी राष्ट्रके लिए माँग रहे हैं और दशरथजीने दो टूक उत्तर दे दिया—**राम देत नहिं बनइ गोसाईं** (मा. १.२०८.५)। **नैव दास्यामि राघवम्**। राघवको नहीं दूँगा। फिर भी विश्वामित्रजीको क्रोध नहीं आ रहा है, प्रसन्नता हो रही है—

सुनि नृपगिरा प्रेमरस सानी। हृदय हरष माना मुनि ग्यानी॥

इसका तात्पर्य क्या है? विश्वामित्रजीको आज बहुत बड़ी उपलब्धि हुई। वे सोचते थे कि क्या इस राजपरिवारमें आ गये राघवजी! परंतु आज जब देखा चक्रवर्तीजीका प्रेम, तब तो दाँतों तले अँगुली दबा ली—"हे राम! इतना प्रेम तो करोड़ों बार जन्म लेकर भी योगी-मुनि-यति कर ही नहीं सकेंगे, जो प्रेम चक्रवर्तीजीका है!" चक्रवर्तीजी कह रहे हैं कि महर्षे! आप मेरे प्राण ले लीजिये, पर मैं राघवको नहीं दूँगा। इतना प्रेम! तो भगवान्‌का तो वहीं प्राकट्य होगा, वे वहीं प्रकट होंगे जहाँ प्रेम होगा—

अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥

(मा. १.१८५.७)

निश्चित रूपसे आज मैं कहने जा रहा हूँ—"दशरथजीकी गृहस्थी पर विरक्ति कोटि वारिये।" विश्वामित्रजी कहते हैं—"हे चक्रवर्तीजी! अब मैं अपना पक्ष छोड़ रहा हूँ। मैं आपसे राघवजीको माँगकर नहीं ले जाऊँगा। यज्ञ पूरा हो या न हो, मेरा यज्ञ तो पूर्ण हो गया। यज्ञका फल है भगवान्‌का दर्शन। अन्य लोग यज्ञके बाद यज्ञनारायणके दर्शन करते हैं, मैंने तो यज्ञनारायणके भी नारायणके दर्शन कर लिए। अब मैं नहीं जाऊँगा। अब तो जैसे वसिष्ठजीके लिए आपने कुटिया बनवाई है, वैसी ही एक कुटिया सरयूजीके किनारे बनवा दीजिये। मैं आपके पास आऊँगा भी

नहीं। जब प्रात:काल रामचन्द्रजी श्रीसरयूजीमें स्नान करने पधारेंगे, वहीं दूरसे निहारकर अपनी आँखोंको संतुष्ट कर लिया करूँगा।" यह है **रामकथा कलि कामद गाई** (मा. १.३१.७)। प्रेमके साक्षात् दर्शन कर लिए चक्रवर्तीजीने।

तब वसिष्ठ बहुविधि समुझावा। नृपसंदेह नाश कहँ पावा॥

(मा. १.२०८.८)

तब वसिष्ठजीने बहुत प्रकारसे समझाया और महाराजका संदेह दूर हो गया—"आप चिन्ता न करिये! ये तो भगवान् हैं महाराज्! विश्वामित्रजी कोई अतिरिक्त वस्तु नहीं माँग रहे हैं। आपने अपनी जो दूसरी तालिका प्रस्तुतकी है—"

माँगहु भूमि धेनु धन कोषा। सर्बस देउँ आजु सहरोषा॥
देह प्रान ते प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं॥
सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥

(मा. १.२०८.३–५)

"(१) **भूमि**—महाराज! ये भूमि नहीं माँग रहे हैं, ये तो भूमिभारहारीको माँग रहे हैं, (२) **धेनु**—ये धेनु नहीं चाहते, पर धेनुके रक्षकको चाहते हैं, (३) **धन**—ये आपका धन नहीं चाहते महाराज! आपने विश्वामित्रको **मुनि** कहा न! तो रामजी मुनियोंके धन हैं—**मुनि धन** (मा. १.१९८.२), अपना ही धन तो माँग रहे हैं, (४) **कोष**—ये आपका कोष नहीं चाहते। रामचन्द्रजी सर्वत्र सभी सद्गुणोंके कोष हैं, उनको चाहते हैं। यहाँ **सर्बस** का अन्वय उपरोक्त चारों अर्थात् भूमि, धेनु, धन, तथा कोषके साथ होगा। तात्पर्य यह कि ये आपकी सर्वस्व भूमि नहीं चाहते हैं, ये आपकी सर्वस्व धेनु नहीं चाहते हैं, न ही ये आपका सर्वस्व धन चाहते हैं, और सर्वस्व कोष भी आपका नहीं चाहते हैं महाराज! (५) **देह**—ये आपकी देह नहीं चाहते, ये चिदानन्दमय देहको चाहते हैं, **चिदानंदमय देह तुम्हारी** (मा. २.१२७.५), (६) **प्राण**—ये आपके प्राण नहीं चाहते महाराज! ये शिवके प्राणको चाहते हैं, **मुनिधन जनसरबस शिवप्राना** (मा. १.१९८.२)। (७–९) **सब सुत**—ये सभी सुतोंको नहीं चाहते महाराज! ये तो **चाहउँ तुमहि समान सुत** (मा. १.१४९) दे दीजिये महाराज! **तब वसिष्ठ बहुविधि समुझावा** (मा. १.२०८.८)—वसिष्ठजीने बहुविधि समझाया। ये तो वहीं हैं विश्वामित्र! आज बहुत बड़ा प्रायश्चित कर रहे हैं। जब ये महाराज हरिश्चन्द्रके समय आये थे, तो उन्हें उनकी पत्नीसे अलग कर दिया था। आज उस पापका प्रायश्चित्त रामचन्द्रको सीतारानीसे मिलाकर करेंगे।"

"ठीक है! दे दीजिये महाराज!" **अति आदर दोउ तनय बुलाये।** (मा. १.२०८.९)—बहुत आदरसे दोनों बालकोंको बुलाया। भगवद्बुद्धि हो गयी न! दे दिया महाराज ने—"ये दोनों बेटे मेरे प्राण हैं, अब आप ही इनके पिता हैं। जाओ बेटा! गुरुदेव जो कहें, वही करना।" कौशल्या माता यहाँ आयीं, माताजीको प्रणाम किया। माता बोलीं—"मेरे दूधकी लाज रखना बेटा!" चल पड़े—

पुरुषसिंह दोउ बीर हरषि चले मुनिभय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिश्व कारन करन॥

(मा. १.२०८ख)

ये दोनों पुरुष-सिंह हैं। वनमें सिंह जाता है तो डरता थोड़े ही है? सिंह हाथियोंको फाड़कर फेंक देता है। आ रहे हैं प्रभु। विश्वामित्रजीको महानिधि मिल गयी। **रामकथा कलि कामद गाई** (रा.च.मा १.३१.७)। यह कथा सबको कुछ न कुछ देगी। ताटका दौड़ी।

चले जात मुनि दीन्ह देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा।

(मा. १.२०९.५–६)

एक ही बाणमें भगवान्‌ने उसके प्राण ले लिए। प्राण तो लिए पर दिया क्या? **दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा** (मा. १.२०९.६)। बताओ कहाँ जाना चाहती हो ताटका? ताटकाने कहा—"मैं एक बार अभी थोड़ा और आपको देखना चाहती हूँ, फिर बताऊँगी मैं कहा जाना चाहती हूँ।"

तनिक मुस्कुराओ राम शुभेच्छा यही है। अभी हमनेजी भरके देखा नहीं है॥
तुम्हारी यह शोभा अनुपम निराली। इसीसे मैं भर लूँ विलोचनकी प्याली॥
तनिक पास आओ राम शुभेच्छा यही है। अभी हमनेजी भरके देखा नहीं है॥
लिए कंज हाथोंमें सायक धनुहियाँ। पधारे हैं वनमें बिना ही पनहिया॥
तनिक छवि दिखाओ राम शुभेच्छा यही है। अभी हमनेजी भरके देखा नहीं है॥
नृपतिके दुलारे कौशल्याके बारे। प्रभु दास *गिरिधर* के नयनोंके तारे॥
तनिक दृग चलाओ राम शुभेच्छा यही है। अभी हमनेजी भरके देखा नहीं है॥
तनिक मुस्कुराओ राम शुभेच्छा यही है। अभी हमनेजी भरके देखा नहीं है॥

ताटकाने देखा और भगवान्‌को और कहा—"अब तो मुझे इन्हीं चरणोंमें स्थान दे दीजिये।"

एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥

(मा. १.२०९.६)

रामकथा कलि कामद गाई (मा. १.३१.७)। देखिये! वैकुण्ठ तो सब जीव जाते ही रहते हैं, पर ताटकाको अपना **पद** माने चरण दे दिया। इसके पश्चात् विश्वामित्रजीने भगवान्‌को बला-अतिबला विद्या दी, सम्पूर्ण शस्त्र समर्पित किये, कन्द-मूल फल भोजन दिया। प्रातःकाल भगवान्‌ने कहा—

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम जाई॥

(मा. १.२१०.१)

आप निर्भीक होकर यज्ञ कीजिये। निर्भीक होकर यज्ञ करने लगे—

होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख की रखवारी॥

(मा. १.२१०.२)

मुनिलोग गाने लगे—

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च।
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै होमात्मने नमः॥

(म.भा. १२.४७.४४)

पाँच प्रकारसे होम करना प्रारम्भ किया। पहले **चतुर्भिः** चार अक्षरसे—**ॐ आश्रावय**

स्वाहा। चार अक्षर हो गये न! फिर **चतुर्भिः—ॐ अस्तु श्रौषट्**—चार अक्षर हो गये। द्वाभ्यां—**ॐ यज**, पञ्चभिः—**ये यजामहे**, पुनर्द्वाभ्यां—फिर दो अक्षरोंसे **वषट्**, कुछ लोग **वौषट्** भी कहते हैं।

होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख की रखवारी॥
सुनि मारीच निशाचर कोही। लै सहाय धावा मुनिद्रोही॥

(मा. १.२१०.२–३)

मारीच दौड़ा। उसको बिना फरके बाणसे भगवान्ने मार दिया। अर्द्धचन्द्र बाणसे फेंका था भगवान्ने, अतः *वक्रशर* बिगड़कर बन गया बक्सर। अब लोग जानते नहीं। बक्सरसे भगवान्ने फेंका मारीचको और जाकर अफ्रीकाके टापू मॉरीशसमें गिरा वह। उसका पहलेका नाम *मारीचशीर्ष*, अब बिगड़कर हो गया मॉरीशस। फेंक दिया उठाकर। देवता प्रसन्न होकर चारों ओरसे फूलोंकी बरसात करने लगे। **पावक शर सुबाहु पुनि जारा** (मा. १.२१०.५)—अपने एक बाणसे सुबाहुको जला दिया और **अनुज निशाचर कटक सँघारा** (मा. १.२१०.५)—शेष राक्षसी सेनाका संहार लक्ष्मणजीने कर दिया।

कथा ११: सुजन सजीवनि मूरि सुहाई (मा. १.३१.७)

अब ग्यारहवीं कथा बहुत विलक्षण है। भगवान्ने आतङ्कवादको पूर्वसे समाप्त कर दिया।

रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई॥

(मा. १.३१.७)

बहुत व्यवस्थित चर्चा कर रहा हूँ मैं। मुझे प्रसन्नता है कि श्रीरामकथाके साठ वर्ष पूर्ण हो रहे हैं १४ जनवरीको। इतनी व्यवस्थित चर्चा कभी नहीं की होगी। इस बार कुछ भगवान्की इच्छा है। **सुजन सजीवनि मूरि सुहाई** (मा. १.३१.७)—गोस्वामीजी कहते हैं कि यह कथा **सुजन** माने भगवान्के भक्तोंके लिए **सजीवनि मूरि**की भूमिका निभायेगी। जब व्यक्ति मर रहा होता है, तो उसको संजीवनी बूटी दी जाती है। यह कथा अहल्योद्धारकी अद्भुत कथा है।

यज्ञकी रक्षाके पश्चात् विश्वामित्रने कहा—"भगवन्! अब आपको एक और यज्ञकी रक्षा करनी है। जनकजी धर्नुयज्ञ कर रहे हैं भगवन्। यहाँ तो केवल रावणके सैनिक आये थे विघ्न डालने, वहाँ तो स्वयं रावणके आनेकी संभावना है भगवन्! इसलिए वहाँ भी आपको चलना चाहिए प्रभु!"

धनुषजग्य सुनि रघुकुलनाथा। हरषि चले मुनिवरके साथा॥
आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं॥

(मा. १.२१०.१०–११)

हमारी कथाकी झाँकी यही है कि आज भगवान् मार्गमें एक आश्रम देख रहे हैं, यह एक साधारण अर्थ है। हमने बताया था कि एकके द्वारा *ए* माने विष्णुमें भी जिससे *क* माने सुख है, *ए कं सुखं यस्मात्*, अर्थात् विष्णुको भी जिससे सुखकी प्राप्ति होती है—ऐसे उन *एक* परमात्मा श्रीराघवेन्द्रके द्वारा मार्गमें आश्रम देखा गया।

अब पक्ष यह है कि गौतमजीने श्राप दिया है—

वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी।
अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन्वसिष्यसि॥

(वा.रा. १.४८.३०)

गौतमने कहा है—अहल्या **वातभक्षा**—केवल वायुका आहार करके अर्थात् अन्य आहारोंको न करती हुईं; **तप्यन्ती**; **भस्मशायिनी**, भस्मशायिनी होकर—भस्म माने राख होता है अर्थात् अग्नि जिसको जलाकर छोड़ दे उसे भस्म कहते हैं; तथा **अदृश्या सर्वभूतानाम्** अर्थात् सभी जीवोंसे अदृश्य होकर यहाँ निवास कर रही हैं। तो क्या अहल्याजी भस्ममें शयन कर रही थीं? इसका कुछ और दूसरा अर्थ कहना चाहते हैं। देखिये, संस्कृतमें पत्थरको अश्म कहते हैं। हमारे उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेशमें *श* का कोई बहुत अधिक महत्त्व नहीं है, पर हम लोगोंके यहाँ महत्त्व है। इस प्रकार *अश्म* माने पत्थर। और प्रभासे युक्त अश्मको *भश्म* कहेंगे तथा **पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्** (पा.सू. ६.३.१०९) हमारे यहाँ संस्कृतका एक सूत्र है, उससे तालव्य *श*को दन्त्य *स* बन गया और पररूप हो गया। इस प्रकार *भश्म*से बन गया *भस्म*। इसका अर्थ हो गया प्रकाशसे युक्त शिलामें शयन करने वाली। *भया युक्तः यः पाषाणः तस्मिन् शेते तच्छीला इति भस्मशायिनी*। वाल्मीकिजी यह कह रहे हैं कि अहल्याकी आत्मा एक प्रकाशवान शिलामें सो रही है परन्तु **अदृश्या सर्वभूतानाम्** उनको कोई देख नहीं रहा है। जब किसीने नहीं देखा तो रामजीने कैसे देख लिया?

आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं॥

आश्रमको रामजीने कैसे देख लिया? (१) इसके उत्तरमें पहली बात यह है कि गौतमजीने कहा था—**अदृश्या सर्वभूतानाम्**। सर्वभूतानाम् अर्थात् ब्रह्माजीके द्वारा रचे गये प्राणियोंसे तुम अदृश्य रहोगी अर्थात् सर्वभूतोंसे अदृश्य रहोगी। परन्तु भगवान् तो सम्पूर्ण भूतोंके आधार हैं—**भूतानां भूतसत्तमः** (वा.रा. २.४४.१६)। वे सर्वभूतोंमें नहीं आते। वो सर्वभूतात्मभूतात्मा हैं, इसलिए उनपर यह नियम नहीं लगता।

(२) अब दूसरा उत्तर देखिये—**सर्वभूतानाम्** शब्दमें बहुव्रीहि समास किया है और गौतम कह रहे हैं कि उनको तुम नहीं दिखायी पड़ोगी, जिनमें सभी भूत रहते हैं *सर्वाणि भूतानि येषु ते सर्वभूतास्तेषाम्* अर्थात् जिनमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और आकाश रहता है, जो इन पाँचोंसे बना हुआ है—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम शरीरा॥

(मा. ४.११.६)

इन पाँचोंसे जिसका शरीर बना हुआ है, तुम उसको नहीं दिखायी पड़ोगी। हर्षकी बात है कि हमारे आपके शरीरोंमें पाँचों हैं—पृथ्वी भी है, जल भी है, अग्नि भी है, वायु भी है, और आकाश भी है; परन्तु भगवान् रामका शरीर इन पाँचों भूतोंसे ऊपर है। इसलिए रामजीमें यह नियम नहीं लगेगा। क्योंकि—

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥

(मा. १.१९२)

पहले इस पदका अर्थ समझिये। देखिये, **बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार** पङ्क्ति बहुत मधुर है। टीकाकारोंने इस पङ्क्तिका सीधा-सा अर्थ लिखा है कि भगवान्‌ने अपनी इच्छासे शरीरका निर्माण किया। **निज इच्छा** अर्थात् स्वेच्छा और निर्मित माने निर्माण किया; पर यहाँ अनर्थ यह होगा कि जिसका निर्माण होता है उसका नाश होता है, यह शाश्वत नियम है। **यद्यत्कार्यं तत्तदनित्यं कार्यत्वाद्घटवत्** यह सिद्धान्त है। जो-जो कार्य है वह अनित्य होता है। कार्यत्व होनेसे घटवत् कहा क्योंकि जैसे घड़ेका निर्माण किया गया तो फूटेगा ही, उसे कोई नहीं रोक सकता। उसे तो फूटना है ही। यदि यह सिद्धान्त है कि जिसका निर्माण होता है उसका विनाश होगा, तो वह सिद्धान्त यहाँ क्यों नहीं लगेगा? क्योंकि यदि **निज इच्छा निर्मित तनु** कहा गया तब तो बहुत अनर्थ हो जायेगा क्योंकि गोस्वामीजी बारम्बार कह रहे हैं कि रामजी तो नित्य हैं—

निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा॥

(मा. ७.७२.६)

अब इस पदार्थका कैसे लापन किया जाए? हमारे एक बड़े अच्छे परिकर हैं और बड़े अच्छे मानसके रसिक हैं, अधिवक्ता हैं श्रीत्रिवेणीशङ्करजी पाण्डेय। उनसे मेरी आज चर्चा हो रही थी। उन्होंने कहा—"गुरुजी, *मानस-पीयूष* पचास वर्ष पहलेका हो गया। अब बहुत पुराना पड़ गया।" तब उन्होंने पूछा—"क्या शास्त्र भी पुराना पड़ जाता है?" मैंने कहा कि नहीं, शास्त्र पुराने नहीं पड़ते; पर चिन्तन निरन्तर विकासवादी रहा है, ह्रासवादी चिन्तन कभी नहीं रहा। अब एक *मानस-पीयूष* नहीं, हजारों *मानस-पीयूष* ले आओ। सबमें यही अर्थ लिखा है—**निज इच्छा निर्मित तनु** अर्थात् अपनी इच्छासे भगवान्‌ने अपने शरीरका निर्माण किया।

(१) इसमें पहला दोष मैं यह बता रहा हूँ कि जिसका निर्माण होता है उसका नाश भी होता है। जैसे—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

(भ.गी. २.२७)

यह अपरिहार्य अर्थ है। भगवान् भी इसका परिहार नहीं कर सकते। जो जन्म लेगा उसे मरना है और जो मरा है उसे जन्म लेना ही है। जन्म वो नहीं लेगा जो मरेगा नहीं अर्थात् जो तर जाए। अब इसका कैसे समाधान किया जाए?

(२) दूसरा प्रश्न है—**निज इच्छा निर्मित तनु** अपनी इच्छासे भगवान्‌ने शरीर बनाया। तो प्रश्न यह है कि भगवान्‌के पास इच्छा ही नहीं होती क्योंकि इच्छादि धर्म बुद्धिके हैं और भगवान् बुद्धि नहीं, बुद्धिसे परे हैं। वास्तव में बुद्धिसे परे जीवात्मा है, जीवात्मासे परे माया है, और मायासे परे परमात्मा हैं। स्वयं जीवात्मा बुद्धिसे परे है—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः पर तस्तु सः॥

(भ.गी. ३.४२)

अब इतनी कठिन कथा सुननेके लिए कौन आयेगा? जिसका बहुत बड़ा सौभाग्य होगा, वही आयेगा। यह कोई गड़ेरियोंका गीत तो है नहीं कि कोई *चनई* या *बिरहा* है, और मुझे कोई आवश्यकता भी नहीं है। मुझे तो जनार्दनके सामने हीरो बनना है, जनताके सामने हीरो बननेकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं। जनताके सामने हीरो वह बनता है, जो नंगा नाचता है और मुझे नंगा नाचना नहीं है।

देखिये, इन दो दोषोंके परिहारके लिये पहला उत्तर यह है कि यहाँ **निज इच्छा**का अर्थ अपनी इच्छा नहीं है। यहाँ षष्ठी तत्पुरुष करो—*निजानामिच्छा*। भगवान्‌के पास कोई इच्छा नहीं, भगवान्‌के जो निजी भक्त हैं उनकी इच्छासे भगवान्‌के शरीरका निर्माण हुआ। यह है—**निज इच्छा** अर्थात् निजोंकी इच्छा। यहाँ अर्थ निजी इच्छा न होकर, निजोंकी इच्छा अर्थात् भगवान्‌के जो अपने हैं; जिनको भगवान् अपना मानते हैं, उनकी इच्छा है।

हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिनहिं राम जानत करि मोरे॥

(मा. २.२७४.८)

अयोध्यावासी कहते हैं कि हमारे समान संसारमें बहुत कम लोग होंगे, जिनको रामजी अपना करके जानते हैं। अवधी भाषा बोलनेवालोंको भगवान् अपना करके मानते हैं। हम लोग अवधी भाषामें बोलते हैं तो याद आ जाती है कि ऐसे ही हमारे रामजी बोलते हैं। हमारे अवधमें कोई महिला मिले और वो भौजाई लग रही हो, तो 'भाभी' न कहकर 'पाँय लागी भौजी' इस प्रकार कहते हैं। इससे तात्पर्य यह है कि इसी भाषामें भगवान् भी किसी न किसीको 'भौजी' कहते होंगे। जिसके साथ भगवान्‌का जो संबन्ध हो, जिस भाषामें भगवान्, परब्रह्म, परमात्मा बोल रहे हों; जिस भाषामें, अकारण-करुण, करुणा-वरुणालय, कोटि-कोटि-कन्दर्प-दर्पदलन, स्वाभिराम-रमणीय, सौन्दर्य-सुषमा-सागर, करुणानिधान, सच्चिदानन्दघन, परब्रह्म, परमात्मा, जगदीश्वर बोल रहे हों उसमें बोलनेसे निश्चित भगवान्‌के साथ तादात्म्य होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

इस प्रकार निजोंकी इच्छा अर्थात् भगवान्‌के अपने भक्तोंकी इच्छा। और पहले यहाँ **निर्मित तनु** समझ लें। *तनु* शब्दके दो अर्थ होते हैं—(क) एक तो *तनु* माने शरीर और (ख) *तनु* शब्दका दूसरा अर्थ होता है सूक्ष्मता। जैसे हम कहते हैं *तन्वङ्गी* जिसका अर्थ है सूक्ष्म अर्थात् पतले शरीरवाली। सूक्ष्मताका अर्थ करेंगे तो इसका अर्थ यह होगा कि यों तो भगवान् विराट् हैं, पर **निज इच्छा निर्मित तनु**—कौशल्याजीकी इच्छासे। *निजाया: कौशल्याया: इच्छया निर्मितं तनु सूक्ष्मता येन*। भगवान्‌ने अपनी सूक्ष्मता बना ली, विराट्से छोटे बन गये, और छोटेसे बालक बन गये, यह है **निज इच्छा निर्मित तनु**। शरीरको बनाया नहीं। अपनी माँ कौशल्याजीकी इच्छासे, अपने भक्तजनोंकी इच्छासे निर्मित तन है। **निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गोपार**।

अब प्रश्न करो कि उनका शरीर किसका है? तो कहते हैं—

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुजतनु सुनत मिटहिं जगजाल॥

(मा. २.९३)

श्रीभागवतजीमें भी—

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।

(भा.पु. १०.१४.२)

भगवान्‌का शरीर स्वेच्छामय है। भक्तोंकी इच्छासे प्रकट होता है, भूतमय नहीं है। लगता है कि उसमें पृथ्वी है, पर भगवान्‌के शरीरमें माटी नहीं है, लगता है जल है पर जल वहाँ बिल्कुल नहीं है। न मिट्टी है, न जल है, न अग्नि है, न वायु है, और न आकाश है—इन सबसे वे ऊपर हैं।

किसीने पूछा—"भगवान्‌का जन्म नवमीको क्यों होता है?" हमने कहा कि नवमीको इसलिए होता है कि भगवान् आठों प्रकृतियोंसे परे हैं तो **नवानां पूर्णा नवमी**; आठ जहाँ नहीं रहे तो नवमी हो जाती है। भगवान् (१) भूमि, (२) जल, (३) अग्नि, (४) वायु, (५) आकाश, (६) मन, (७) बुद्धि, और (८) अहंकार—इन आठोंसे ऊपर हैं, वे दिव्य हैं। इसलिए—**अदृश्या सर्वभूतानाम्**।

एक बात और बताऊँ कि पूरा प्रकरण आप देख जाइये, कहीं ऐसा शरीर आपने देखा है? बड़ा-बड़ा सौन्दर्य आपने देखा होगा, सफेद, लाल और काला सौन्दर्य भी आपने देखा, पर कहीं किसीने नीला सौन्दर्य (blue beauty) देखा? और यहाँ तो—

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर श्याम।
लाजहिं तन शोभा निरखि कोटि कोटि शत काम॥

(मा. १.१४६)

जब आद्य शङ्कराचार्यजीने यह बात गीताभाष्यकी भूमिकामें कही—**भौमस्य ब्रह्मणो ब्राह्मणत्वस्य रक्षणार्थं देवक्यां वसुदेवादंशेन कृष्णः किल संबभूव** (भ.गी.शा.भा. उपोद्घत)। मानो देहवान् जैसे लगते हैं। मानो उनका यह शरीर ऐन्द्रजालिक है। और तो कोई नहीं बोला उनसे। बड़े लोगोंसे बोलना भी ठीक नहीं होता और वह भी अपने आचार्यसे कौन बोले? परन्तु जिस महापुरुषने भगवान्‌के शरीरको अपनी आँखोंसे निहार लिया, एक ऐसा ही महापुरुष हुआ जिसने अट्ठारह बार छः-छः महीनेका अनुष्ठान करनेके पश्चात्, श्यामसुन्दर, आनन्दकन्द, मदनमोहन, ब्रजेन्द्रनन्दन कृष्णचन्द्रको अपनी आँखोंसे निहारा और वह स्वरूप निहारकर जब ब्राह्मणने गीताकी टीका लिखी और तब *गीतागूढार्थदीपिका* टीकाके अन्तमें लिखा—

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

तो उनसे लोगोंने पूछा—"एक ओर आप **वंशीविभूषितकरात्** लिख रहे हैं, **नवनीरदाभात्** लिख रहे हैं और आपके आचार्य कहते हैं कि **देहवानिव प्रतीयते** देह ऐन्द्रजालिक है।" तब उन्होंने कहा—"भगवत्पाद बड़े हैं, चाहे जो कुछ लिख दें। वस्तुतस्तु **आकाशशरीरं ब्रह्म** (तै.उ. १.६.२), भगवान् आकाश-शरीर हैं।" श्रुतिने आकाशशरीर कहकर क्या कहा होगा?

आप लोग अन्यथा मत मानियेगा, भारतीय संस्कृतिमें होता यह है कि जब कोई भी बहू पहली बार अपने पतिके यहाँसे अपने पीहरको आती है तो उसकी सखी-सहेलियाँ, भिन्न-भिन्न बातें उस संबन्धमें उससे पूछती हैं। उसकी सखियाँ पूछती हैं कि तुम्हारे पति कैसे हैं? उनका कैसा रङ्ग रूप है? इसी प्रकार श्रुतिसे भी किसीने पूछा—"तुम्हारे पति कैसे होंगे? सही-सही बता दो।" तब श्रुतिने कहा—**आकाशशरीरं ब्रह्म**। श्रुतिने कहा—"तुमने आकाश देखा है?" उसने कहा—"बिल्कुल देखा है।" श्रुतिने कहा—"जैसे आकाश नीला होता है, उसी प्रकार मेरे पतिका रङ्ग नीला है; जैसे आकाश व्यापक होता है, उसी प्रकार मेरे पतिका शरीर व्यापक है; जैसे आकाशमें पीली-पीली बिजली चमकती है उसी प्रकार मेरे प्रभुके श्रीविग्रहपर विद्युद्दामिनि-द्युति-विनिन्दक पीताम्बर चमकता रहता है; जैसे आकाशसे जल बरसता है उसी प्रकार मेरे प्रभुके श्रीविग्रहसे करुणाजल बरसता रहता है।"

आकाशशरीरं ब्रह्मका क्या तात्पर्य है? इसका तात्पर्य यह है कि भगवत्पाद शङ्कराचार्यका व्याख्यान पूर्णत: गलत है। भगवान्‌का शरीर होता है पर इतना अन्तर है कि हमारा शरीर विकार सहित होता है और परमात्माका शरीर विकार रहित होता है। इसीका समर्थन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥

(मा. २.१२७.५)

गोस्वामीजीने कह दिया कि ये तो अधिकारी ही जानते हैं। सूरदासजीने शङ्कराचार्यसे कह दिया—"यह बताओ कि यदि भगवान्‌के पास शरीर न होता तो तीन दिनतक कुएँमें गिरे हुए मुझ जैसे अन्धेको कौन निकालता? तुम निकालने आये थे या तुम्हारा बाप निकालने आया था? दिमाग ठीक नहीं है तुम्हारा। हे प्रच्छन्न बौद्ध! मैं साक्षी हूँ, भगवान्‌के पास शरीर होता है।" सूरदासजी कहते हैं—"उनका शरीर मायावी नहीं होता।" इसी वृन्दावनकी गलीमें भ्रमण करते-करते सूरदासजी कुएँमें गिर पड़ते हैं। सबने निकालना चाहा तो कह दिया कि अभी नहीं निकलूँगा, जब मुझे निकालने वाला आयेगा तब निकलूँगा क्योंकि तुलसीदासजीकी श्रीरामचरितमानस बन चुकी है और उसमें यह लिखा है—**यह चरित जे गावहिं हरि पद पावहिं ते न परहिं भवकूपा** (मा. १.१९२.४) भवकूपसे निकालने वाला आये, तब निकलूँगा। और आ गया भवकूपसे निकालने वाला वो दिव्य-दिव्य, भव्य-भव्य, नव्य-नव्य, मृदुल-मृदुल, अरुण-अरुण, तरुण-तरुण, चरणकमल, मन्द-मन्द मुस्कुरानसे उभरे हुए कपोलोंपर लटकती हुईं काली-काली वो घुँघराली कोटि-कोटि रोलम्ब-कदम्ब-निकुरम्बको लज्जित करने वाली सुन्दर-सुन्दर वो लटें, और दामिनि-द्युति-विनिन्दक कोटि-कोटि स्वर्ण किञ्जल्क कमलमञ्जरीको भी मञ्जिष्ठ करने वाला वह मङ्गलमय पीताम्बर, और सुन्दर-सुन्दर कोटि-कोटि गुलाबकी पंखुड़ियोंसे भी कोमल वो श्रीहस्तकमलवाले प्रभुने आकर हाथ बढ़ाया और सूरदासजीको बाहर निकाला। कितना सुन्दर अनुभव रहा होगा! प्रभुने उनको निकालकर थोड़ी दूरतक पहुँचाया, फिर जाने लगे तो सूरदासजीने पकड़ लिया हाथ। तब प्रभुने हाथ झटकाया। सूरदासजीने कहा—"ठीक है, झटक दो—"

बाँह छुड़ाये जात हो निबल जानि के मोहि।
हिरदय ते जब जाहुगे सबल बदौंगो तोहि॥

"हमें कमजोर और निर्बल जानकर हमारा हाथ छुड़ाकर चले जा रहे हो क्योंकि मैं साधारण जीवात्मा हूँ, तुम्हें पकड़ नहीं पा रहा हूँ पर यदि तुम मेरे हृदयसे चले जाओ तो मैं तुमको वीर कह दूँ। परन्तु तुम हृदयसे जा ही नहीं सकते क्योंकि श्रुति कहती है—"

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषष्वजाते

(ऋ.वे. १.१६४.२०, मु.उ. ३.१.१)

"तुम सब कुछ कर सकते हो पर वेदकी मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं कर सकते। जाकर देखो तो छठीका दूध याद आ जायेगा, चच्चू! अरे, हमको निर्बल जानकर हमारा हाथ छुड़ा रहे हो? जाकर देखो। श्रुतिका अपमान करोगे तो हम तो कहेंगे कि तुम भगवान् ही नहीं हो। जाओ अपने घर बैठो। जाओ जापानमें चले जाओ, जर्मनी जाओ, चीन जाओ, जाओ हॉङ्ग कॉङ्गमें, पाँच मन सोनेका मन्दिर बनवाओ। यहाँ तुम नहीं रह सकते! यहाँ तो वही भगवान् रह सकता है, जो वेदकी मर्यादाका पालन करता है—"

अतुलित महिमा बेद की तुलसी किएँ बिचार।
जो निंदत निंदित भयो बिदित बुद्ध अवतार॥

(दो. ४६४)

और एक बात समझ लो, तुलसीदासजीने कह दिया—"शङ्कराचार्य क्या जानें? मैं जानता हूँ भगवान् को। अरे! तोतेके रूपमें हनुमान्जी महाराजने मेरे पास आकर कहा था—"

चित्रकूटके घाट पर भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसें तिलक देत रघुबीर॥

यदि भगवान् न होते, उनके पास हाथ नहीं होते तो तुलसीदासके माथेपर तिलक कौन लगाता? तो जैसा कि ऊपर कहा कि भगवान् राम भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, और अहंकार—इन आठों भूतोंसे ऊपर है; वो दिव्य हैं। क्या इतना सुन्दर रूप पाँचों भूतोंसे बनाया जा सकता है?

(१) **पृथ्वी**—पृथ्वीकी क्या बात की जाए, क्या सामान्य पृथ्वी इस रूपको बनायेगी? सिद्ध कर दिया पूरे चरित्रमें कि पृथ्वीकी बेटी ही उनकी पत्नी बनीं—

बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरज उर अवनिकुमारी॥

(मा. २.६४.४)

पृथ्वीकी बेटी ही उनकी पत्नी हैं, इसलिए वे पृथ्वी तत्त्वसे परे हैं।

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला॥

(मा. ७.२२.१)

देखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥

(मा. १.२०१)

क्या बात करते हो! हमारा राघव कोई ऐसी वस्तु है क्या। वही हीरो है। My Raghava is

hero and others are zero. वही हीरो है, और कोई हीरो नहीं हो सकता।

(२) **जल**—अब रही बात जल तत्त्व की। भगवान् राम जल तत्त्वसे ऊपर हैं। देखिये, समुद्रका निग्रह किसने किया? **समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम्** (भा.पु. १.३.२२)। उनको कुछ नहीं करना पड़ता।

सन्धानेउ प्रभु बिशिष कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला॥

(मा. ५.५८.६)

समुद्रका निग्रह किया, पहले तीन दिनतक विनय की—

बिनय न मानत जलधि जड़ गये तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति॥

(मा. ५.५७)

फिर तो राघवको क्रोध आया क्योंकि तीन दिनतक प्रार्थना करनेपर समुद्र नहीं माना। उसको लगा कि रामजी हमसे अतिरिक्त नहीं होंगे। **समुद्रस्य ततः क्रुद्धो रामो रक्तान्तलोचनः** (वा.रा. ६.२१.१३)। राघवको क्रोध आया और कहा—"लक्ष्मण!"

चापमानय सौमित्रे शरांश्चाशीविषोपमान्।
समुद्रं शोषयिष्यामि पद्भ्यां यान्तु प्लवङ्गमाः॥

(वा.रा. ६.२१.२२)

"लक्ष्मण! लाओ मेरा धनुष-बाण।" लक्ष्मणने कहा—"सरकार क्षमा कर दीजिये।" रामजीने कहा—"क्यों?" लक्ष्मणजीने कहा—"**क्षमा बड़नको चाहिए छोटनको उत्पात**।" रामजीने कहा—"चुप रहो लक्ष्मण! **क्षमा बड़नको चाहिए छोटनको दस लात**।" क्षमाकी परिभाषामें जब नपुंसकताका आभास हो जाए, तब क्षमा नहीं करना चाहिए। लक्ष्मणने कहा—"सरकार, **जो तोको काँटा बुवै ताहि बोय तो फूल**।" रामजीने कहा—"नहीं लक्ष्मण! **जो तोको काँटा बुवै ताहि बोय तू भाला, वो भी मूरख तो समझे कि पड़ा किसीसे पाला**। लक्ष्मण—"

क्षमया हि समायुक्तं मामयं मकरालयः॥
असमर्थं विजानाति धिक्क्षमामीदृशे जने।

(वा.रा. ६.२०–२१)

लछिमन बान शरासन आनू। सोषौं बारिधि बिशिष कृशानू॥

(मा. ५.५८.१)

"मैंने जबतक क्षमा किया, समुद्रने मुझे असमर्थ माना। लाओ, अभी बाण लाओ!" गोस्वामीजी कहते हैं कि लक्ष्मणजीने इतनी द्रुत गतिसे दिया कि मैंने देखा ही नहीं, सीधे **अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा** (मा. ५.५८.५) लक्ष्मणजीने कहा—"मैं तो चाह ही रहा था सरकार! आपने ही विभीषणकी नीति अपना ली। मैं तो कह ही रहा था—**नाथ दैव कर कवन भरोसा** (मा. ५.५१.३)। पर आपने ही कहा कि अभी नया-नया कैबिनेट में आया है; गठबन्धनकी सरकार चल रही है, टूट जायेगी तो गड़बड़ हो जायेगा। परन्तु अन्तमें मेरी नीति ही सफल रही!" इस प्रकार, भगवान् राम जल तत्त्वसे भी ऊपर हैं।

(३) **अग्नि**—अब देखिये कि श्रीराम अग्नि तत्त्वसे कितने ऊपर हैं! एक बार किसीने मुझसे

विनोद किया और कहा—"सीताजीकी रामजीने लङ्कामें अग्निपरीक्षा की; तो क्या रामजीकी भी अग्निपरीक्षा हुई थी?" मैंने कहा—"हाँ, रामजीकी मिथिलामें ही अग्निपरीक्षा हुई थी!" उन्होंने पूछा—"कैसे?" तो मैंने कहा कि देखिये, काम और राममें यही तो अन्तर है। शङ्कर भगवान्‌के नेत्र दोनों ओर खुल रहे हैं—कामके सामने भी नेत्र खुला था और रामजीके सामने भी। कामके सामने तो केवल शङ्करजीके तीसरे नेत्रका थोड़ा-सा कोना ही भर खुला था—

तब शिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा॥

(मा. १.८७.६)

उस तीसरे नेत्रकी अग्निसे काम जलकर खाक हो गया और वहीं भगवान् शङ्कर मिथिलामें पञ्चमुख बने और उनके जब एक मुखमें तीन नेत्र हैं तो पञ्चमुख होनेसे उनके पन्द्रह (१५) नेत्र हो गये।

शंकर रामरूप अनुरागे। नयन पंचदश अति प्रिय लागे॥

(मा. १.३१७.२)

भगवान् शङ्कर जब अनुरक्त हुए तो वे यह भूल गये कि पन्द्रहों नेत्र नहीं खोलने चाहिए। उनका तीसरा नेत्र कभी नहीं खुलता, केवल दो ही नेत्र खुलते हैं। तीसरा नेत्र खुले तो बस मञ्जुल ही मञ्जुल, महाप्रलय हो जाए। पर आज हमारे भोले बाबा, भूले बाबा बन गये। भोला बाबा माने जिसको देश, काल, परिस्थितिका स्मरण न रह जाए। तो भोले बाबाके फटाफट पन्द्रहों नेत्र खुल गये। पन्द्रह नेत्रोंमें पाँच नेत्र सूर्यके, पाँच नेत्र चन्द्रके और पाँच नेत्र अग्निके। अब आप बताइये कि कामके ऊपर एक नेत्र खोला था तो वह मञ्जुल-मञ्जुल हो गया, ऐसी-की-तैसी हो गयी उस नालायक की, खाक हो गया बेचारा धूमकेतु और हमारे राघवके ऊपर पन्द्रह नेत्र खुले—सूर्य नेत्र, चन्द्र नेत्र और आग्नेय-नेत्र। दो बटा तीन (२/३) गर्मी और एक बटा तीन (१/३) शीतलता। सूर्यकी वह गर्मी कि जिसमें सम्पातीके पंख जल गये थे और यहाँ हमारा राघव घोड़ेपर चमाचम आभूषणोंसे सज्जित, मौरिया धारण किये हुए, चकाचक है। राघवकी मौरिया भी सामान्य मौरिया नहीं, वह मिथिलासे थोड़े ही आयी थी। वह तो अयोध्यासे बनकर आयी थी। बड़ी सुन्दर मौरिया है, ये तो वही मलिनियाँ वाली मौरिया है—

मलिया जे सूतल ऊँची अटरिया हे।
मालिन सूतेली पुलवारि हे मलिनियाँ, मालिन।
जागो जागो आहे मलिनियाँ मलिया जगावे ले।
जागो मालिन भइलइ भिनुसार हे मलिनियाँ।
जागो ... मलिया जे ... मालिन ...।

पूरा गीत नहीं कहना है। मलिनियाँको प्रभु जगायेंगे, फिर चर्चा करेंगे। मलिनियाँसे राघवजीने यही कहा था कि मुझे *आरसी मौरिया* चाहिए। आरसी मौर नहीं, वह *आर्षी* शब्दका अपभ्रंश है—*ऋषीणामियमार्षी*। राघवजीने मलिनियाँसे कहा—

बाबा घर आहे मलिनियाँ, हमरौ सगुनवा उठे।
अरसी मौरिया रचि देहु हे, मलिनियाँ अरसी मौरिया रचि देहु हे।

आजकलके लड़कोंका चेहरा देखो। मौरियामें बड़ी-बड़ी लाइटें लगी रहती हैं क्योंकि उनके

चेहरेपर अपना तो प्रकाश होता नहीं हैं, कपोल खोपड़ी जैसा बैठा रहता है धूमकेतुओंका। सोचते हैं कि जब अन्धकार ही अन्धकार है, तो थोड़ी लाइट कर देते हैं। पर वहाँ तो अन्धकार है ही नहीं। वो तो—

राम सच्चिदानन्द दिनेशा। नहिं तहँ मोह निशा लवलेशा॥
सहज प्रकाश रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि विज्ञान बिहाना॥

(मा. १.११६.५–६)

एतावता, ये पन्द्रहों नेत्र भगवान्‌के ऊपर खुले और आप आश्चर्य करेंगे कि जिस नेत्रके कोनेने कामको जला दिया था; ऐसे पन्द्रहों नेत्र, जिनसे अङ्गार बरसता था, उनसे जलधार बरसने लगी। ऐसा लगता है मानो यूनिवर्सल हीटरका फ्यूज ही गड़बड़ हो गया। जहाँसे आग बरसी थी, पानी बरसने लग गया। आग्नेय नेत्रोंसे पानी बरस रहा है—

रामरूप नख शिख सुभग बारहिं बार निहारि।
पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि॥

(मा. १.३१५)

जो अबतक *लोचन अनल* था, अब **लोचन सजल** हो गया। अग्निपरीक्षा हो गयी। एतावता, अग्नि उसे नहीं जला सकी। जब उसकी विभूतिको अग्नि नहीं जला सकी तो उसे अग्नि कैसे जलायेगी?

भगवान्‌से अर्जुनने कहा—"जीवात्माका निर्वचन करिये।" भगवान्‌ने कहा—"अर्जुन!

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

(भ.गी. २.२३)

जब भगवान्‌की विभूति जीवात्माके लिये कहा गया कि इसे शस्त्र नहीं काट सकते, इसे आग नहीं जला सकती, इसे जल नहीं गीला कर सकता, इसे वायु नहीं सुखा सकता तो जब जीवात्माको नहीं तो फिर—

परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहिं रघुकुल भूषन भूपा॥

(मा. ७.४८.८)

*वाल्मीकि रामायण*में कहा गया—

व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः

(वा.रा. ६.१११.११)

उनका ऐसा व्यक्तित्व है। इसलिए सुन्दरकाण्डमें एक बार शङ्कर भगवान्‌को पार्वतीजीपर क्रोध आ गया। शङ्करजी पति हैं कोई *हसबैण्ड* तो हैं नहीं, हसबैण्ड होते तो शायद क्रोध न आता। हँसते हुए बैण्डको क्या क्रोध आयेगा? पिटाई होती रहती है, बेचारा हँसता रहता है। घरवाली बरसती रहती है और पति ही-ही करके हँसता रहता है बेचारा! अरे, वह पति कैसा कि एक बार जिसकी भौंहें चढ़नेपर पत्नी काँप न जाए। ये आजकलके लोग, नपुंसक, ही-ही करके हँसते रहते हैं धूमकेतु! परन्तु शङ्कर भगवान् ऐसे पति नहीं हैं। वे ऐश्वर्यवान् पति हैं, वर्चस्वी पति हैं, महापुरुष हैं। जब लङ्का जली तो पार्वतीजी थोड़ा दुःखी हो गयीं।

शिवजीने कहा—"क्यों दु:खी हो रही हैं, हर्ष होना चाहिए।" पार्वतीजीने कहा—"सरकार! यह बतलाइये कि पूरी लङ्का हनुमान्‌जीने जलायी पर हनुमान्‌जी क्यों नहीं जले?" तब शङ्कर भगवान्‌को क्रोध आ गया और सीधे उनके बापको गाली दी—"हो तुम पत्थरकी ही बेटी! इतना भी तुमको ज्ञान नहीं है।"

ताकर दूत अनल जेंहि सिरिजा। जरा न सो तेंहि कारन गिरिजा॥

(मा. ५.२६.७)

ताकर दूत, हनुमान्‌जी उनके दूत हैं; **अनल जेंहिं सिरिजा**, जिन्होंने अग्निका निर्माण किया है—**मुखादग्निरजायत** (शु.य.वे. ३१.१२)। पगली, इतना भी नहीं समझतीं, बड़ी आयी हो कथा सुनने वाली।" **जरा न सो तेंहि कारन**—इसी कारणसे नहीं जला। शङ्कर भगवान् बोले—"**गिरिजा**! अरे पत्थरकी ही तो बेटी ठहरीं। तभी तो इतना सामान्य ज्ञान (कॉमनसेंस) भी नहीं है।" सीधे गरियाया भगवान्‌ने उनके पिता को! हमार बुढ़ऊ कभी-कभी गुस्सा भी हो जाते हैं। "O daughter of mountains!! तुमको इतना भी ज्ञान नहीं है।" यहाँ भवानी या उमा विशेषण नहीं दिया क्योंकि क्रोध आ गया उनको। इसका तात्पर्य यह है कि जब भगवान्‌के दूतपर भी अग्निका नियन्त्रण नहीं है तो भगवान्‌पर काहेको नियन्त्रण रहेगा!

(४) **वायु**—वायुकी क्या बात करूँ, वायु तो भगवान्‌का श्वास ही है—**श्रवन दिशा दश बेद बखानी, मारुत श्वास निगम निज बानी** (मा. ६.१५.४)। और वायुका पुत्र तो उनकी सेवामें ही है। हनुमान्‌जी वायुके पुत्र हैं—**अंजनि पुत्र पवनसुत नामा** (ह.चा. २), **जात पवनसुत देवन देखा, जानै चह बल बुद्धि विशेषा** (मा. ५.२.१)। पवनके पुत्र उनकी सेवामें हैं और पवन भी उनके प्रति समर्पित हैं।

(५) **आकाश**—आकाशकी बात तो बिल्कुल छोड़ दो। आकाशकी गति उन्होंने कम की। आकाश व्यापक है, उसकी गति कोई कम नहीं कर पाता। जितना है उतना रहेगा, परन्तु अयोध्या जाते समय कम किया—

यथाविधो मे मनसोऽभिलाषः प्रवर्तते पश्य तथा विमानम्॥

(र.वं. १३.१९)

चलत बिमान कोलाहल होई। जय रघुबीर कहैं सब कोई॥

(मा. ६.११९.३)

आकाशको कम किया भगवान्‌ने और गोस्वामीजीने कहा—**नभ शत कोटि सरिस अवकाशा** (मा. ७.९१.८), इसलिए भगवान् पाँचों महाभूतोंसे परे हैं। अब यदि भगवान् पाँचों महाभूतोंसे परे हैं तो वो यदि अहल्याको देखें तो कोई आपत्ति नहीं—

आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं॥

(मा. १.२१०.११)

राघवेन्द्रजी अब अहल्याजीको देख रहे हैं, आश्रमको देख रहे हैं। वह निर्जन है। इन चारोंमेंसे कोई नहीं है—(१) **खग**—खग नहीं है अर्थात् *खमाकाशं गच्छति, खं ब्रह्म गच्छति* ज्ञानी भक्त भी वहाँ नहीं है। (२) **मृग**—*मृगयति इति मृग:*, जो ढूँढता है, अर्थात् जिज्ञासु, वह भी वहाँ नहीं है। (३) **जीव**—अर्थात् अर्थार्थी भी वहाँ नहीं है। (४) **जंतु**—अर्थात् आर्त भी वहाँ नहीं है। ये

चारों ही नहीं हैं। **खग** अर्थात् ज्ञानवादी नहीं है, **मृग** अर्थात् कर्मवादी भी नहीं है, **जीव** अर्थात् उपासक भी नहीं हैं, और **जंतु** अर्थात् दीन, कोई भी वहाँ नहीं है। एकदम निराश्रित है वह महिला—**खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं** आज अहल्याका व्यक्तित्व बिल्कुल अकेला पड़ गया है और भगवान् राम आज देख रहे हैं। क्योंकि भगवान् **खग** भी नहीं हैं, **मृग** भी नहीं हैं, **जीव** भी नहीं हैं, और **जंतु** भी नहीं हैं। सर्वभूतोंसे ऊपर हैं भगवान्! **सर्वभूतात्मभूतस्थं सर्वाधारं सनातनम्** (रा.स्त.स्तो. ४६)।

अब राजीवलोचन भगवान् रामने अहल्याको देखा। **अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन्वसिष्यसि**। कोई नहीं देखेगा तुमको और किसीने नहीं देखा। पर देखा किसने? क्या बात है!—

पूछा मुनिहि शिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कही बिशेषी॥

(मा. १.२१०.१२)

एक बार किसीने मुझसे पूछा—"गुरुजी, आप चित्रकूटमें बहुत मस्ती लेते हैं क्यों? और किसको सुनाते हैं?" मैंने कहा कि मैं चित्रकूटमें अपनेको सुनाता हूँ और किसीको नहीं सुनाता हूँ। जो हमारे अपने हैं उनको और स्वयं को—आत्माको और आत्मीयको। चित्रकूटमें मैं अपनी आत्माको ही सुनाता हूँ क्योंकि उसको कभी कथा सुननेको नहीं मिलती और आत्मीयोंको, जो हमारे हैं, जिनको कुछ उपासनासे लेना देना है। यह कथा उनके लिये नहीं है जो भगवान्‌से विमुख होकर इतस्ततः मटरगश्ती करते हैं। यहाँका कितना बढ़िया, कितना प्यारा वातावरण है, लगता है पी जाओ इस वातावरणको! चारों ओर सन्त बैठे मुस्कुरा रहे हैं, भगवती मन्दाकिनी आनन्द कर रही हैं, भगवान् कामदेश्वरकी शिखरें झूम रही हैं और कामदेश्वरपर बैठे हुए श्रीसीतारामजी बिल्कुल आनन्दमें हैं और एक-दूसरेको निहार रहे हैं। कितना प्यारा वातावरण है! ध्यान रखिये—**पूछा मुनिहि शिला प्रभु देखी**। अबतक विश्वामित्रजी भगवान् रामको ले जा रहे थे पर आज कुछ अन्तर पड़ा। **हरषि चले मुनिबरके साथा** (मा. १.२१०.१०)—यहाँतक तो ठीक है कि मुनिवरके साथ चले थे तो पीछे रहे होंगे राम जी। जब रामजी पीछे हैं और विश्वामित्रजी आगे हैं, तो रामजीने अहल्याको कैसे देख लिया?

इसमें पहला उत्तर तो मैंने दे ही दिया। इसका रोचक उत्तर यह है कि अब रामजी अहल्याजीका उद्धार करना चाहते हैं। रामजीने सोचा कि मैं यदि सामने रहूँगा, तभी कल्याण होगा क्योंकि—

जायमानं हि पुरुषं यं पश्येन्मधुसूदनः।
सात्त्विकस्तु स विज्ञेयो भवेन्मोक्षे च निश्चितः॥

(म.भा. १२.३४८.७३)

भगवान्‌ने सोचा कि अहल्या तो जड़ हो गयी हैं। ये मेरी चरण-रजको कैसे चाहेंगीं? तो पहले देख लूँ। भगवान्‌ने तीन काम किये, ध्यान रखियेगा। ये तीन वस्तुएँ नष्ट कीं—(१) **पाप**—अपनी दृष्टिसे अहल्याके पापको नष्ट कर दिया। (२) **श्राप**—अपनी चरणकी धूलिसे अहल्याका श्राप नष्ट कर दिया। (३) **ताप**—अपने चरणका स्पर्श कर अहल्याका ताप नष्ट कर दिया। पाप, श्राप, और ताप तीनोंको नष्ट किया, इसीलिए **परसत पद पावन ...** (मा. १.२११.१) इसमें त्रिभङ्गी छन्द है। तीन वस्तुओंका भङ्ग हुआ—*त्रयाणां भङ्गानां समाहारस्त्रिभङ्गी*। पापका भङ्ग, श्रापका

भङ्ग, और तापका भङ्ग।

भगवान् आज पापका भङ्ग कर रहे हैं देखकर। आज अहल्याको भगवान् देख रहे हैं। भगवान्‌को देखनेका कितना महत्त्व है! भीष्मने कहा था कि एक बार मुझे देख लीजिये—

स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम्।
प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसन्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः॥

(भा.पु. १.९.२४)

कहते हैं—माधव, एक बार मुझे देख तो लो—**तनिक हँसि हेरहु नन्दकिशोर**। नारदजीकहते हैं—**मामवलोकय पङ्कजलोचन** (मा. ७.५१.१) एक बार मुझे देख लो और आज **पूछा मुनिहि शिला प्रभु देखी**। राघवजीने सोचा कि मुझे अहल्याका उद्धार तो करना ही है। अब रामजी विश्वामित्रजीपर प्रभावी हो चुके हैं। अब तो वो जैसे नाच नचायेंगे, विश्वामित्रजी वैसे ही नाचेंगे।

राघवजीने कहा—"गुरुजी, वसिष्ठ गुरुजीने मुझे भूगोल पढ़ाया है और मैं मानचित्र बनाना जानता हूँ। ऐसा करते हैं गुरुजी कि मैं आपको मिथिलाके नक्शेसे ले चलता हूँ।" विश्वामित्रजीने कहा—"राघव, तुम पढ़े लिखे हो भैया! हम तो बाबा हैं, उसी ढंगसे ले चलो।" इसलिए अब विश्वामित्रजी पीछे और राघवेन्द्रजी आगे हैं। और करुणा करके उसी रास्तेसे ले जा रहे हैं जहाँ अहल्याजी पड़ी हुई हैं, नहीं तो दूसरा रास्ता भी तो हो सकता था। यही तो भगवान्‌का वात्सल्य है कि **गृहते गमनि परसि पद पंकज घोर श्राप ते तारी**। **गृहते गमनि** अपने आप जा रहे हैं, उसी रास्तेसे ले जा रहे हैं। लक्ष्मणजीने कहा—"सरकार! एक बात मुझे समझमें नहीं आयी कि आपने चरणोंमें पनहीं क्यों नहीं पहनीं, इसका क्या कारण है?" रामजीने कहा—"चुप रहो।" लक्ष्मणजीने कहा—"नहीं सरकार! इसका उत्तर तो बताइये।" रामजीने कहा—"पनही पहननेमें बड़ी हानि होगी लक्ष्मण। यदि पनही पहन लूँगा तो मिथिलाकी पुरोहितानीका क्या होगा? वे तो मेरे चरणकी रज चाहती हैं। पनही पहननेसे चरण-रज उन्हें नहीं मिल सकेगी।" लक्ष्मणने कहा—"सरकार! एक बात पूछूँ? आप अहल्याके उद्धारमें इतनी अभिरुचि क्यों रख रहे हैं?" रामजीने कहा—"मेरी माताका नाम बताओ तो लक्ष्मण!" लक्ष्मणजीने कहा—"सरकार! आपकी माताका नाम कौन नहीं जानता? कौशल्या अम्बाजीको कौन नहीं जानता?" रामजीने कहा—"लक्ष्मण, मेरी माताजीका नाम कौशल्या है और इनका नाम अहल्या है। लक्ष्मण, यदि अहल्याका उद्धार नहीं करूँगा तो मेरी माताके नामके अन्तिम खण्ड *ल्या* का अपमान हो जायेगा। इसलिए मुझे अपनी माताके अन्तिम खण्डका सम्मान करनेके लिए अहल्याका उद्धार करना है।" लक्ष्मणजीने कहा—"आप धन्य हैं सरकार! अहल्याको रौरव मिलना चाहिए और आप गौरव दे रहे हैं।"

पूछा मुनिहिं शिला प्रभु देखी (मा. १.२१०.१२)। आप प्रश्न करें कि **शिला प्रभु देखी** भगवान्‌ने शिलाको देखा, पर वे परनारीको देखते नहीं—**जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी** (मा. १.२३१.६)—तो कैसे देख लिया? तो कहते हैं कि विश्वामित्रजीने कहा—"यह तो शिला है।" रामजीने कहा—"शिला है, तो देहातमें मेरी माताजीको कौसिला कहते हैं। तो *शिला* शब्द सुनकर मुझे माँ कौशल्या जी याद आ गयी।" अथवा, शिलाको भी देखा और **शिला प्रभु देखी** अर्थात् शिलाके प्रभुको भी देखा अर्थात् गौतमको भी सामने खड़े हुए देखा। उद्धारका समय

जानकर गौतम भी आ गये थे।

पूछा मुनिहिं। आज भगवान् सर्वज्ञ होते हुए भी अल्पज्ञकी भाँति विश्वामित्रजीसे पूछ रहे हैं—"सरकार! हेतु बतायें कि ऐसा क्यों हो रहा है?" यहाँ पूछनेके दो कारण हैं—

(१) पहला कारण यह है कि यहाँ भगवान् अपनेको प्रकट नहीं करना चाहते हैं कि मैं भगवान् हूँ। उनको यही प्रकट करना है कि मैं दशरथजीका राजकुमार, एक बालक हूँ, एक क्षत्रिय कुमार हूँ, एक कर्मनिष्ठ बालक हूँ।

(२) दूसरा कारण यह है कि जब विश्वामित्रजीसे पूछेंगे तो विश्वामित्र इनकी कथा कहेंगे तो उनके कथा कहते-कहते ही इनका आधा पाप दूर हो जायेगा। विश्वामित्र जैसा महर्षि जिसकी चर्चा करे, तो वह धन्य हो जायेगा। सन्त जिसकी चर्चा करते हैं, वह धन्य हो ही जाता है। भगवान् कहते हैं कि पहले इनको सन्तसे अनुग्रह दिलवा लूँ क्योंकि सन्त जिसपर अनुग्रह करते हैं, वह धन्य हो जाता है।

एतावता, विश्वामित्र जैसे परम भागवतसे अहल्याजीको अनुगृहीत बनवाना था भगवान्‌को, इसलिए उनसे पूछा। और विश्वामित्र अहल्याकी कथा क्यों कहने लगे? पापीकी कथा तो कभी नहीं कहनी चाहिए—**कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः** (शि.व. २.४०)। आज तो पुण्यात्माकी कथा कोई उतने प्रेमसे नहीं कहता, पापीकी कथा अधिक प्रेमसे कहते हैं। अच्छी चर्चा कभी नहीं आती। समाचार पत्रोंमें अच्छे समाचार तो बहुत कम ही छपते हैं, गन्दे समाचार बारम्बार छपा करते हैं। आज अच्छी चर्चा करनेको कोई तैयार नहीं होता। जब दो लोग बैठेंगे तो दूसरोंकी निन्दा करेंगे, आलोचना करेंगे। अच्छे-अच्छे लोगोंको हमने देखा है। जब बैठेंगे तो किसी न किसीकी बुराई या शिकायत करते रहेंगे। पुरुष तो करते ही हैं, पर बहिनोंमें यह विशेष आदत हमने देखी है। मैं तो निरन्तर यह बात कहता हूँ कि कभी भी वैष्णवको किसीकी भी निन्दा नहीं करनी चाहिए। जब हम, जहाँ भी बैठें तो—

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहइ सिखावहिं॥

(मा. ७.३०.१)

देखिये दूसरोंकी निन्दा करनेसे बहुत बड़ा पाप लगता है। गरुडजीने भुशुण्डिजीसे पूछा कि सबसे बड़ा धर्म क्या है? तब भुशुण्डिजीने कहा—

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गिरीसा॥

(मा. ७.१२१.२२)

अहिंसा जैसा कोई धर्म नहीं और परनिन्दा जैसा कोई पाप नहीं। इसलिए प्रयास करना चाहिए कि किसीकी बुराई न करें। एक बार एक बड़े अच्छे व्यक्ति कह रहे थे—प्रियजनकी व्याख्या क्या है? क्या प्रमाण है कि आप हमसे प्रेम करते हैं? क्या हम किसीको रुपया-पैसा दे दें तो हमारा प्रेम सिद्ध हो जायेगा? क्या हमारा प्रेम किसीको खिलाने-पिलानेसे सिद्ध हो जायेगा? कब प्रमाणित होगा कि हम बहुत प्रेम करते हैं? प्रेमका सच्चा प्रमाण यह है और प्रेमकी सच्ची परिभाषा यह है कि जिसपर भी हम सच्चा प्रेम करते हैं, उसको संसारसे हटाकर भगवान्‌में लगा दें। जिसको हम दुलार करते हैं, जिसको हम प्रेम करते हैं, जिसपर हमारी ममता है, उसे भगवान्‌में लगा दें! यह नियम होता है कि जो जिस प्रकृतिका होता है, वह अपने प्रिय व्यक्तिको

उसी प्रकृतिमें ले जाता है, जैसे चोर अपने मित्रको चोरी ही सिखाता है, शरारती अपने मित्रको शरारत सिखायेगा। इसी प्रकार एक वैष्णवको अपने प्रेमास्पद व्यक्तिको परमात्माके ही चरणोंमें लगाना चाहिए।

आज भगवान् जानते हैं, पर जानकर भी विश्वामित्रजीसे क्यों कहलवा रहे हैं? पापीकी कथा नहीं कहनी चाहिए, पर विश्वामित्रजी क्यों कह रहे हैं? विश्वामित्रजी भी यह जान गये हैं कि अब अहल्याजीमें पाप नहीं रह गया है। जिसको राजीवलोचनने अपने राजीवनयनोंसे निहार लिया, वह तो अब निष्पाप हो गया। अब तो—

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

(मा. ५.४४.२)

अहल्याजी प्रभुके सम्मुख चली आयी हैं और इसलिए उनमें अब कोई पाप नहीं रह गया और दूसरी बात यह भी है कि राजीवलोचन प्रभुने उनको निहार लिया है—

जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितये प्रभु जिन प्रभु हेरे॥
ते सब भये परमपद जोगू। भरतदरश मेटा भव रोगू॥

(मा. २.२१७.१–२)

तो (१) **जे चितये प्रभु**—जिनको प्रभुने देखा वह भी पवित्र हो गये और (२) **जिन प्रभु हेरे**—जिन्होंने प्रभुको देखा वह भी पवित्र हो गये।

आज हमारे एक बहुत अच्छे स्नेही मित्र विनोदमें ही कह रहे थे—"गुरुजी, गोस्वामीजीने तो बहुत सरल लिखा है और आप उसे कठिन कर डालते हैं!" मैंने कहा कि ऐसा नहीं है। मैं कठिन क्यों करने लगा? गोस्वामीजीने सरल लिखा है यही समझना हमारी भूल है। गोस्वामीजीने सरल नहीं लिखा है। गोस्वामीजीने सरल भाषामें लिखा है, पर भाष्य सरल बिल्कुल नहीं है। उनकी तो प्रतिज्ञा ही यही है—

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा भाषा निबन्धमतिमञ्जुलमातनोति॥

(मा. १ म.श्लो. ७)

एक बार सूरदासजी महाराजसे अकबरने पूछा—"इस समय महाकवि कौन है?" सूरदासजीने कहा—"महाकवि तो मैं हूँ।" अकबरने कहा—"इस समय सर्वश्रेष्ठ कविता किसकी है?" सूरदासजीने कहा—"मेरी।" अकबरने कहा—"तुम्हारा दिमाग तो नहीं खराब हो गया?" सूरदासजीने पूछा—"क्यों?" अकबरने कहा—"फिर तुलसीदासजी कौन हैं?" सूरदासजीने कहा—"मेरा दिमाग तो नहीं खराब है, पर तेरा दिमाग अवश्य खराब है!" अकबरने पूछा—"क्यों?" सूरदासजीने कहा—"बेवकूफ, तुलसीदासजीको तुम कवि मानते हो और तुलसीदासजीकी कविताको तुम कविता मानते हो? अरे पगले, तुलसीदासजी कवि नहीं, वे तो ऋषि हैं और उनकी कविता नहीं है वह मन्त्र है मन्त्र!"

अब आप ही बताइये कि मन्त्र सरल होता है या कठिन होता है। मन्त्र उसे कहते हैं जिसका मनन किया जाए, जो सीधे-सीधे न समझमें आये। मन्त्रका जबतक मनन नहीं करोगे, तबतक समझमें नहीं आयेगा। **मननात्त्रायते यस्मात्तस्मान्मन्त्र इतीर्यते**, अर्थात् जो मनन करनेसे जीवको

भवबन्धनसे छुड़ाता है, उसे मन्त्र कहते हैं। श्रीरामचरितमानसजीका मनन करो, तब नमन अपने आप हो जायेगा। गोस्वामीजी स्वयं कहते हैं—

सुनि अवलोकि सुचित चख चाही। भगति मोरि मति स्वामि सराही॥

(मा. १.२९.३)

कैसे मनन करें? गोस्वामीजीने कहा कि सावधान! चश्मेकी आँखसे बिल्कुल समझमें नहीं आयेगा। इस चश्मेका कोई लाभ या प्रयोजन भी नहीं है। राम-प्रेमका चश्मा लग जाए तब अक्षर दिखायी पड़ जायेगा। इस चश्मेसे कुछ नहीं होगा। इस चश्मेको लगाकर प्रोफेसर बन जाओगे, परन्तु राम-प्रेमका चश्मा लग जाना चाहिए।

अब यहीं आप देखिये! भगवान् आनन्दकन्द प्रभु अहल्याको निहार चुके—**पूछा मुनिहि** (मा. १.२१०.१२)। क्या पूछा? **शिला प्रभु देखी**। यहाँ **देखी** शब्द क्त्वा प्रत्ययान्त है। शिलाको देखकर भगवान्ने पूछा। पहले देखा फिर पूछा। तो प्रश्न है कि क्यों पूछा? एक नियम है। लोग कहते हैं कि *वाल्मीकीय रामायण*में भगवान् रामको भगवान् नहीं माना गया। परन्तु यदि ठीक-ठीकसे विचार किया जाए तो ऐसा नहीं है। पूरी *वाल्मीकीय रामायण* पढ़नेका आपके पास समय नहीं है—और मुझे तो लगता है कि पूरी *वाल्मीकीय रामायण* पढ़नेकी आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि आप चौबीस हजार श्लोक कहाँतक पढ़ियेगा? वो तो हम लोगोंके ऊपर छोड़ दीजिये। परन्तु मेरी राय मानकर, मेरा अनुरोध मानकर, मेरी विनय मानकर, मेरी प्रार्थना मानकर, मेरी आज्ञा मानकर, मेरा आदेश मानकर, मेरा निर्देश मानकर, और मेरा उपदेश मानकर *वाल्मीकीय रामायण*के अयोध्याकाण्डके सत्रहवें सर्गका केवल चौदहवाँ श्लोक पढ़ लीजिये। इसीमें आपका जीवन चकाचक हो जायेगा। कितना सुन्दर श्लोक है! कैसे लोग यह कहते हैं कि *वाल्मीकीय रामायण*में रामजीको भगवान् नहीं माना गया है? झाँकी बहुत मधुर है! श्रीरामचन्द्रजी प्रभु कनकभवनमें श्रीसीताजीके साथ विराजमान हैं। वनवासका समय है। कैकेयी अम्बाजीने सुमन्त्रजीको भगवान् रामको बुलाकर लानेको भेजा है और भगवान् श्रीराम सुमन्त्रजीके साथ मार्गमें आ रहे हैं। उस समय एक बात भगवान् वाल्मीकि बहुत सुन्दर कहते हैं—

यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति।
निन्दितः सर्वलोकेषु स्वात्माऽप्येनं विगर्हते॥

(वा. रा. २.१७.१४)

पूरे भक्ति सिद्धान्तका सार है यह श्लोक। **यश्च रामं न पश्येत्तु**, यहाँपर सम्भावनामें लिङ् है—**शकि लिङ् च** (पा.सू. ३.३.१७२)। अब **यश्च रामं न पश्येत्तु** इसकी हिन्दी होगी—जो रामजीको नहीं देख सकता, यहाँ शक्यार्थमें लिङ् लकार है। जैसे आपको यह कहना है कि मैं अकेले नहीं जा सकता। तो जबतक आप बोलेंगे कि *अहमेकाकी न गन्तुं शक्नोमि*—इतना लम्बा! तो उसके स्थानपर बोलेंगे—*अहमेकाकी न गच्छेयम्*। इसी प्रकार यहाँ शक्यार्थमें लिङ् लकार है। **यश्च रामं न पश्येत्तु** जो रामजीको नहीं देख सकता और **यं च रामो न पश्यति** और जिसको भगवान् राम नहीं देखते, वह **निन्दितः सर्वलोकेषु** सारे संसारमें निन्दित होता है, सारे लोकोंमें उसकी निन्दा होती है और **स्वात्माऽप्येनं विगर्हते** उसकी आत्मा भी उसे फटकारती है कि अरे नीच! मानव शरीर पाकर भी तुम कौशल्याकुमार राघवेन्द्र सरकारको नहीं देख पाये?

क्या आवश्यकता है तुमको जीने की? तुम मर जाओ! जीवात्मा कहती है—

पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि मंजु बनी मनिमाल हिएँ।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकैं पुलकैं नृप गोद लिएँ।
अरबिंदु सो आननु रूप मरंदु अनंदित लोचन भृंग पिएँ।
मनमो न बस्यौ अस बालकु जौं तुलसी जगमें फलु कौन जिएँ॥

(क. १.२)

इतना सुन्दर बालक यदि मनमें नहीं बसा तो बताइये जीनेका क्या फल है? जगत्में रोटी खानेके लिए जीना चाहिए क्या? जगत्में भार बनकर जीनेसे क्या लाभ? और संख्या बढ़ा रहे हो धूमकेतु! जीनेका फल तो यही है कि—

यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति।
निन्दितः सर्वलोकेषु स्वात्माऽप्येनं विगर्हते॥

एक बात और बता रहा हूँ कि इन आँखोंसे तुम रामजीको देखनेकी आशा छोड़ दो, इन आँखोंसे रामजी नहीं दिख सकते, वो तो—

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥

(भ.गी. ११.८)

उनके लिए तो—

मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना॥

(मा. १.११५.४)

जब **मुकुर** अर्थात् मन ही मलिन है और नेत्र विहीन अर्थात् ज्ञान विहीन और वैराग्य विहीन—**ज्ञान बिराग नयन उरगारी** (मा. ७.१२०.१४)—हों तो रामजीका रूप किस प्रकार देख पायेंगे? पहले तो मन रूप मुकुरसे विषयकी काई समाप्त हो जाए—**काई मुकुर विषय मन लागी** (मा. ७.११५.१)। और यह कैसे समाप्त होगी? तो कहते हैं—**श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि** (मा. २ म.दो. १)। यहाँ *सद्गुरु* नहीं **श्रीगुरु** कहा। **श्रीगुरु** यहाँपर क्यों कहा? इसके माने—**श्रीर्मस्तके यस्य स श्रीगुरुः**, ऐसे गुरुके चरण सरोजकी धूलिसे मन रूप मुकुर सुधरेगा, जिसके मस्तकपर श्री लगी हुई हो।

और तिलक सब ऐसी तैसी रामानन्दी ठीक।
दूरसे ही दिख पड़ती ज्यों रेलवेकी लीक॥

श्रीगुरु जिसके मस्तकपर श्री लगी हुई हो। **श्रीसम्प्रदायानुमोदितोगुरुः श्रीगुरुः**—जो श्री सम्प्रदायसे अनुमोदित हो, वे श्रीगुरु हैं। तो—**श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि**। ऐसे गुरुकी सरोज-रजसे मन रूप मुकुर सुधर जायेगा। **बरनउँ रघुबर बिमल जस जो दायक फल चारि** (मा. २ म.दो. १)।

एतावता, जिसको रामजी देख लेते हैं, वह सारे पापोंसे मुक्त हो जाता है, धन्य हो जाता है, परमपदके योग्य हो जाता है। इसलिए विश्वामित्रजी आज जानते हैं कि अहल्याजीको रघुनाथजीने निहार लिया है।

पूछा मुनिहि शिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कही बिशेषी॥

(मा. १.२१०.१२)

देखिये, अब विश्वामित्रजीको ज्ञान हो गया कि अहल्या तो अब बहुत पवित्र हो गयी हैं। आपको बताऊँ कि जैसे भगवान्‌के छः गुण हैं, उसी प्रकार भगवान्‌के यशके भी छः गुण हैं। भगवान्‌के छः गुण आप लोग जानते हैं या नहीं? किसे भगवान् कहते हैं—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

(वि.पु. ६.५.७४)

उसको भगवान् कहते हैं, जिसमें (१) समग्र ऐश्वर्य, (२) समग्र धर्म, (३) समग्र यश, (४) समग्रश्री, (५) समग्र ज्ञान, और (६) समग्र वैराग्य विराजमान रहता है। तो जिस प्रकार भगवान्‌में छः गुण हैं, उसी प्रकार भगवान्‌के यशमें भी छः गुण हैं। कौनसे छः गुण हैं, तो कहते हैं—

गई बहोर गरीब निवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥

(मा. १.१३.७)

देखिये, विशेषता यह है कि भगवान् जितनी भी लीला करेंगे, प्रत्येक लीलामें आपको ये छहों विशेषताएँ मिल जायेंगीं। (१) **गई बहोर**—यह भगवान्‌की सबसे बड़ी विशेषता है। यह गोस्वामीजीने भगवान्‌का नया नाम रखा है। किसी शब्दकोशमें यह नाम है क्या—**गई बहोर**। गजबका नाम रखा है। ऐसन नाम रक्खे चाही का? **गई बहोर** माने होता है—गयी हुई वस्तुको लौटाकर ले आने वाले। (२) **गरीब निवाजू**—गरीबको, दीनको नेवाजने अर्थात् पुरस्कृत करने वाले। (३) **सरल**—बहुत सीधे, सारल्य गुणसे युक्त और (४) **सबल**—अर्थात् बहुत बड़े बलवान्, (५) **साहिब**—अर्थात् स्वामी, और (६) **रघुराजू**—**रघु** माने जीव और **राजू** माने विराजमान होने वाले, अर्थात् जीवोंके हृदयोंमें विराजमान होने वाले, जीवोंके हृदयको दीप्त करने वाले, प्रकाशित करने वाले—ये भगवान्‌के छः गुण हैं।

यह बात मैं स्पष्ट रूपसे कह रहा हूँ कि श्रीरामचरितमानसजीमें प्रतीकवाद सम्भव ही नहीं हैं। जिनको अक्षरसे भेंट नहीं उनके लिये क्या है, वे कुछ भी कहें। एक बात बता रहा हूँ कि एक बड़ा अच्छा यादव था बेचारा! वह अपनी ससुराल गया। पढ़ा-लिखा था नहीं। पहले यह नियम होता था कि जब भी कोई मेहमान आता था, उससे कोई धर्मग्रन्थ पहले सुना जाता था। सासू रानीने सोचा कि हमारे दामाद बहुत पढ़े-लिखे हैं, इनसे कुछ सुनै चाही। अब सासजी ले आयीं बड़की पोथन्नी। कहने लगीं—"जरा सुनावा तो कुछ।" और ई बचारे एकउ अच्छर पढ़े-लिखे नहीं। लड़कपनमें केवल *क* पढ़े रहिन। अब सोचने लगे—"हमारा *क* कहीं ढूँढनेसे मिल जाए।" एक घण्टेतक पोथी उलटते रहे। सासू रानीने सोचा कि कोई बढ़िया प्रसङ्ग ढूँढ रहे हैं, बढ़िया प्रसङ्ग सुनावेंगे। ढूँढते-ढूँढते उनको एक घण्टेमें *क* मिल गया और जब *क* मिला तो लगे जोर-जोरसे रोने। सबने कहा—"क्यों रो रहे हो?" तो कहने लगे—"लड़कपनमें मेरा *क* इतना मोटा ताजा था, अब इतना दुर्बल काहेको हो गया?" पहले स्लेट-पट्टीपर एक *क*को उन्होंने मोटा-मोटा लगभग दस अंगुलकी चौड़ानमें लिखा था और इसमें छपा था तो बहुत छोटा। अब लगे फूट-फूटकर रोने—"अरे हमार *क*! तू इतना दुबराय गयउ। काहेका दुबराय गयउ

तू। तोहे के दुबरवाइस। तोहे खायेका नाहीं मिला।" तो जिनको अक्षरका इतना भी ज्ञान नहीं, उनको क्या बताया जाए?

यह सिद्धान्त है कि मानसमें प्रतीकवादकी कल्पना उतना ही बड़ा पाप है जितना कि गोहत्याका पाप होता है। अब मैं प्रमाण देकर बात करूँगा। पहले मैं यह चर्चा कर लूँ कि प्रतीक होता कहाँपर है? कहा जाता है कि यह इसका प्रतीक है, जैसे किसी बड़े वृद्धको देखकर कहा कि ये हमारे पिताजीके प्रतीक हैं। इसका अर्थ यह है कि **अनुपस्थित उपस्थितिकल्पनं प्रतीकः**, अर्थात् अनुपस्थितिमें उपस्थितिकी कल्पनाको प्रतीक कहते हैं। जैसे हमारे यहाँ अशोकका चक्र है, जो हमारी अहिंसाका प्रतीक है। यदि आप रामजीको ज्ञानका प्रतीक मानेंगे तो इसका यह अर्थ होगा कि पहले आप रामजीको अनुपस्थित कह रहे हैं अर्थात् रामजी उपस्थित नहीं हैं। तभी तो ज्ञानका प्रतीक बनेगा। अब आप बताइये कि क्या मानसके रामचन्द्रजी अनुपस्थित हैं। यदि रामचन्द्रजी अनुपस्थित हैं, उपस्थित नहीं हैं, तो **राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना** (मा. १.११६.८) और **अग जगमय सब रहित बिरागी, प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी** (मा. १.१८५.७) कैसे बनेगा। इसलिए निश्चित यह है कि रामजी त्रिकालमें भी अनुपस्थित नहीं हैं और जब वे अनुपस्थित ही नहीं तो उनका प्रतीक काहेको होगा? अनुपस्थितिमें प्रतीककी कल्पना की जाती है, उपस्थितिमें कभी प्रतीककी कल्पना नहीं की जाती। आप कहें कि हमको रामजी नहीं दिख रहे हैं। अरे भाई, आपको रामजी न दिखें पर रामजी उपस्थित हैं। कोई उल्लू कहे कि हमको सूर्यनारायण नहीं दिख रहे हैं तो उसके कहनेसे क्या हम सूर्यार्घ्य देना बन्द कर देंगे? अरे! उस धूमकेतुको दिनमें सूर्यनारायण नहीं दिखायी देते। सांख्यशास्त्रने ऐसे आठ कारण बताये, जहाँ उपस्थितिमें भी हम नहीं देख सकते—

अतिदूरात्सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।
सौक्ष्म्याद्व्यवधानादभिभवात्समानाभिहाराच्च ॥

(सां.का. १.५.७)

(१) **अतिदूरात्**—कोई वस्तु यदि बहुत दूर हो, तो नहीं दिखती। अब जैसे यहाँ बैठे-बैठे कोई कहे कि हम उधर जानकी कुण्डकी मैथिली गली देखें, तो देख सकते हैं क्या? इसलिए नहीं देख सकते क्योंकि वह हमसे दूर है। अब आप सोचिये कि वो हमको नहीं दिखायी पड़ी तो क्या हम यह कहेंगे कि मैथिली गली नहीं है। मैथिली गली है, पर वह हमें दिखायी नहीं पड़ रही है।

(२) **सामीप्यात्**—अर्थात् जो वस्तु अत्यधिक निकट होती है, वह भी हमको नहीं दिखायी पड़ती। जैसे हमको हमारी आँखें नहीं दिखायी पड़तीं क्योंकि वो हमसे बहुत निकट हैं।

(३) **इन्द्रियघातात्**—इसका अर्थ है कि इन्द्रिय जब नहीं हो तो नहीं दिखायी पड़ेगा। दृष्टिहीनको सामनेवाली वस्तु नहीं दिखायी पड़ेगी क्योंकि उसके पास दर्शनेन्द्रिय नहीं हैं।

(४) **मनोऽनवस्थानात्**—हमारा मन ठीक न होनेपर भी वस्तु नहीं दिखायी पड़ती। कभी-कभी आप देखते हैं, जब हमारा मन ठीक न हो, तो सामने पड़ी वस्तु भी हमको समझमें नहीं आती। क्या वहाँ वस्तु नहीं है? वस्तु तो है, पर हमारी मनकी स्थिति ठीक न होनेसे हमें दिखायी नहीं देती।

(५) **सौक्ष्म्यात्**—अत्यन्त सूक्ष्म वस्तु भी हमको दिखायी नहीं देती। दूरबीनसे दिखायी दे जाती है।

(६) **व्यवधानात्**—व्यवधानके कारण भी वस्तु हमें नहीं दिखायी पड़ती, जैसे हमने आँखके पास हाथ लगाकर व्यवधान कर लिया तो हमें सामनेकी वस्तु नहीं दिखायी पड़ेगी।

(७) **अभिभवात्**—प्रकाशके कारण दब जानेपर भी वस्तु हमें दिखायी नहीं पड़ती, जैसे दिनमें तारे रहते हैं पर दिखायी नहीं देते क्योंकि सूर्यनारायणकी किरणें उन्हें ढँक देती हैं।

(८) **समानाभिहारात्**—समान आकारकी वस्तु हो तो भी समझमें नहीं आयेगी, जैसे पचास सरसोंके दाने हाथमें ले लो और एक दाना दूसरे हाथसे लेकर उसीमें डाल दो, तो तुम उस दानेको पहचान नहीं सकोगे।

एतावता, भगवान् राम हमको यदि दिखलायी नहीं पड़ते, इसलिए हम उनका प्रतीक मानें कि भगवान् राम ज्ञानका प्रतीक हैं, सीताजी भक्तिकी प्रतीक हैं तो यह तो अपलाप ही होगा। अरे भैया रे! वे प्रतीक नहीं हैं, स्वरूप कह दो तो अच्छा लगेगा। **न प्रतीके न हि सः** (ब्र.सू. ४.१.४), प्रतीकमें कभी भगवान्‌की उपासना नहीं होती। स्वयं वेदव्यासजीने *ब्रह्मसूत्र*में सिद्ध किया। एतावता, सिद्धान्त यह है कि भगवान् राम केवल त्रेतामें ही नहीं। भगवान् राम (१) देश, (२) काल, और (३) परिस्थिति—तीनों बन्धनोंसे निरवच्छिन्न हैं। वे त्रेतामें भी थे, द्वापरमें भी थे, अब भी हैं, और पश्चात् भी रहेंगे। भक्त जिस रूपमें उन्हें जब बुलाता है, वे उस रूपमें उसे दिखायी पड़ जाते हैं। भक्तकी भावनाके अनुसार ही आते हैं। वही चित्रकूट है, कोई बदल नहीं गया है। उसी चित्रकूटमें **तुलसिदास चन्दन घिसें और तिलक देत रघुबीर** छोटे-से बालकके रूपमें राघवजी आये। तुलसीदासजी तिलक लगा रहे थे। राघवजीने कहा—"बाबा, जरा हम भी तिलक लगा लें।" अपने भी तिलक लगाया और तुलसीदासजीको ऊर्ध्वपुण्ड्र लगा दिया और इतना बढ़िया ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाया कि कभी मिटा ही नहीं, जीवन भर लगा रहा। मानो तिलक करके रामजीने कह दिया—"मैं तुमको सन्तकुलका तिलक बना रहा हूँ।" वही चित्रकूट है मित्रो, जो न कभी बदला है और न कभी बदलेगा। जब सब कुछ वही है, तो भगवान् भी वही हैं। उसी चित्रकूटमें जब गोस्वामीजी *गीतावली*की रचना कर रहे थे। *गीतावली*की रचनामें वे इतना व्यस्त रहते थे कि उन्हें भोजन बनानेका समय ही नहीं मिलता था और किसी भण्डारेमें जानेका उनका स्वभाव नहीं था। छोटे-छोटे बालकके रूपमें रामजी और लक्ष्मणजी उनको रोटी लाकर खिलाते थे। एक दिन गोस्वामीजीने उनसे कहा—"लाला, ये रोटी कहाँसे मिलती है? कौन बनाकर देता है आपको?" जान तो गये ही थे कि इतनी अच्छी, मनसे कोई रोटी बना ही नहीं सकता। तो राघवजीने कहा—"बाबा, जब आप बढ़िया-बढ़िया पद सुनाते हैं, तो उन्हींको हम माताओंको सुना देते हैं। माताएँ प्रसन्न होकर हमको रोटी दे देती हैं और हम आपको खिला देते हैं।" तुलसीदासजीने कहा कि ये तो राघवजी हैं। इस बार उन्होंने इतना बढ़िया और लम्बा पद बनाया, जिसके आरोहमें ही दो अन्तराएँ, और एक और भी अन्तरा बनाया, जिसको एक बालक अकेले नहीं गा सकता। बालक कितना ऊँचा ले जायेगा बेचारा! वो तो—

कनक रतन मणि पालना रच मनहु मार सुत हार।
विविध खिलौना किंकिणी लागे मंजुल मुक्ता हार॥

दशरथ नन्दन राम लला।

जब यह पद सुनाया तुलसीदासजीने तो भगवान् विवश हो गये और तब रामजी, लक्ष्मणजीको भी ले आये। तब राम-लक्ष्मण दोनोंने ही गोस्वामीजीको दर्शन दिये। इसका तात्पर्य यह है कि भगवान् कभी अनुपस्थित नहीं होते। वे तो सर्वत्र उपस्थित हैं—

देश काल दिशि बिदिशिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥

(मा. १.१८५.६)

भगवान् सर्वत्र हैं। स्वयं गीताजीमें भगवान् बहुत अच्छा कह रहे हैं। जब भगवान्ने पहले उपदेशका प्रारम्भ किया तो पहले तो अर्जुनके विषादका खण्डन किया—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

(भ.गी. २.११)

फिर कहा—

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥

(भ.गी. २.१२)

भगवान्ने कहा कि देखो यह सम्भव नहीं है कि मैं पहले नहीं था, तुम पहले नहीं थे अथवा ये लोग पहले नहीं थे। हम सब पहले भी थे और **न त्वं नेमे जनाधिपाः**—और यह भी सम्भव नहीं कि अब हम नहीं हैं, हम सभी तो हैं ही तथा यह भी नहीं कि **न चैव न भविष्यामः** हम सब बादमें भी नहीं रहेंगे। जीवात्माएँ भी रहेंगी, हम भी रहेंगे। अन्तर केवल इतना पड़ता है कि मेरे शरीरमें कभी परिवर्तन नहीं आता और जीवात्माके शरीरमें परिवर्तन आता जाता है। मेरा शरीर नहीं बदला करता और जीवात्माके शरीर बदला करते हैं। इसलिए जब यह त्रिकालसत्य है—पहले भी सत्य था, आज भी सत्य है और पश्चात् भी सत्य रहेगा—तो प्रतीकवादकी कल्पना बिल्कुल निर्मूल और अशास्त्रीय है। यह प्रतीकवादकी कल्पना तो बिल्कुल धानकी भूँसी जैसी है, जिसका कोई शास्त्रीय आधार ही नहीं है। सीधी-सी बात करो, अहल्याजीका उद्धार पहले भी हो रहा था, आज भी हो रहा है, और पश्चात् भी होता रहेगा। जब रामजीने विश्वामित्रजीसे अहल्याजीके संबन्धमें पूछा, तब विश्वामित्र प्रसन्न हुए—

पूछा मुनिहिं शिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कही बिशेषी॥

(मा. १.२१०.१२)

विश्वामित्रजीने कहा—राघव, आप सर्वज्ञ होकर मुझसे पूछना चाहते हैं तो आप सारी कथा सुनिये। गौतमजी बहुत बड़े महर्षि हैं, जो ब्रह्माजीके पुत्र हैं। उनके ब्रह्मचर्यसे सन्तुष्ट होकर स्वयं ब्रह्माजीने अपने द्वारा निर्माणकी गयी कन्या उन्हें दी और उसका उनके साथ विवाह करवाया। उस कन्याका नाम था अहल्या। संस्कृतमें *हल्य*का अर्थ होता है कुरूप। *न विद्यते हल्यं यस्याः सा अहल्या,* जिसके जीवनमें कोई कुरूपता नहीं है—इतनी सुन्दर कि देवताओंकी पत्नियाँ भी उसके समान सुन्दर नहीं—वह अहल्या है। अद्भुत सौन्दर्यवती कन्या थी। गौतमजी अहल्याके साथ रह रहे थे। संयोग बना और इन्द्रको गौतमकी तपस्यामें विघ्न करना था। इन्द्र

अहल्याके रूपपर मोहित हुआ। इन्द्र किसी प्रकार यह अवसर ढूँढ रहा था कि अहल्याको सतीत्वसे च्युत किया जाए। संयोग बन गया और उन्होंने चन्द्रमाको यह काम सौंपा। पहले मुर्गा बोलनेपर ही लोग उठते थे, वह एक अलार्म था हमारा, हम हिन्दुओं का। इसीलिए तो हम लोग उसको बहुत पवित्र मानते थे और इसीलिए उसको काटकर आज समाप्त किया जा रहा है। इन्द्रने चन्द्रमासे कहा—"तुम मुर्गा जैसा बोलकर कुछ करो" और मुर्गा जैसा बोलकर उन्होंने गौतमजीको जल्दीसे उठा दिया। तब गौतमके आश्रमसे चले जाने पर, गौतमके वेषमें ही इन्द्रने उनके आश्रममें प्रवेश किया। अहल्याजी जान गयीं। ऐसा नहीं है कि वे जान नहीं पायीं। इसीलिए अहल्याजीको अधिक दण्ड भोगना पड़ा। अहल्याजीने देखा और समझ भी गयीं। इन्द्रने कहा—"मैं वास्तवमें गौतम नहीं हूँ। मैं तो तुम्हारे सौन्दर्यका भिक्षुक हूँ, गौतमके वेषमें आया हूँ।" *वाल्मीकि रामायण*में एक वाक्य आया है—

मुनिवेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन।
मतिं चकार दुर्मेधा देवराजकुतूहलात्॥

(वा.रा. १.४८.१९)

अहल्याको कौतूहल हो रहा है कि मेरे सौन्दर्यका भिक्षुक बनकर देवराज आ गया और जानकर भी अहल्याने इन्द्रकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। वास्तवमें इन्द्रके द्वारा अहल्याका सतीत्व नष्ट हुआ और वे प्रसन्न हुईं। अहल्या कहती हैं—**कृतार्थास्मि सुरश्रेष्ठ गच्छ शीघ्रमितः प्रभो** (वा.रा. १.४८.२०) मैं बहुत कृतार्थ हो गयी हूँ। सोचिये आप! अहल्याने कितनी बड़ी गलतीकी है! जबकि अञ्जना जैसी पुत्री उनके यहाँ है, जो आगे चलकर हनुमानजीकी माँ बनेंगी, और शतानन्द जैसा उनके यहाँ पुत्र है। परन्तु जीवका क्या स्वभाव होता है! मनका कभी भरोसा नहीं किया जा सकता। कभी न कभी वह गलती कर बैठता है। जो भजन नहीं करता, वो गलत करता है। गलतियोंसे केवल भजन बचाता है, भोजन करने वाला व्यक्ति गलत करेगा ही करेगा। यही हुआ, अहल्याने गलती की और अन्तमें गौतमने देख लिया। चन्द्रमाको तो मृगचर्मसे मार दिया, जो आज भी काला पड़ा है और इन्द्रको श्राप दिया—**योनिलम्पट दुष्टात्मन् सहस्रभगवान् भव** (अ.रा. १.५.२६) अर्थात् एक सहस्र गुप्ताङ्ग-सम्पन्न हो जाओ। इसके अनन्तर जब गौतमजीने अहल्याको देखा तो उन्हें बहुत क्रोध आया। पद्मपुराणमें इसका वर्णन आया है। क्रोधके कारण पहले तो अहल्याको जला डाला। पूरा शरीर अहल्याका जल गया और गौतमने कहा—"अहल्ये! तुमने मेरे साथ विश्वासघात किया है—**शैली भव सुदुर्मते**। जाओ! पत्थरकी शिला बन जाओ!" और अहल्या शिला बन गयी। इसपर भगवान् वेदव्यास पद्मपुराणमें कहते हैं—

शापदग्धा पुरा भर्त्रा राम शक्रापराधतः।
अहल्याख्या शिला जज्ञे शतलिङ्गः कृतः स्वराट्॥

(प.पु.)

अहल्या शापसे जल गयीं। गौतमजीने अहल्याको जला दिया और फिर पत्थरकी शिला बनकर अहल्या जन्म लेती हैं। गौतमजीने कहा—अहल्ये, मैं तुम्हें श्राप देता हूँ—**इह वर्षसहस्राणि बहूनि निवसिष्यसि** (वा. रा. १.४८.२९)—बहुत वर्षोंतक, पुराणोंमें तो लिखा है कि दस हजार वर्षोंतक, पर इन्होंने कहा नहीं-नहीं, अनन्त-अनन्त सहस्र वर्षोंतक इस आश्रममें

रहोगी—**वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी** (वा. रा. १.४८.३०)। केवल तुमको वायु पीकर रहना पड़ेगा, आहार तुमको नहीं मिलेगा। भूख लगेगी पर भोजन नहीं मिलेगा; प्यास लगेगी, पानी मूसलाधार बरसेगा पर तुम्हारे गलेमें पानी नहीं जायेगा। कितना कठोर दण्ड है यह! ऐसे देवताओंके दस हजार वर्ष तुम्हें भोगने पड़ेंगे। भूखसे छटपटाओगी पर रोटीका एक टुकड़ा भी तुम्हारे मुखमें नहीं जायेगा, पानीके लिए तुम्हारे होंठ सूखेंगे, पानी बरसता रहेगा पर तुम्हारे होंठके अन्दर पानी नहीं जायेगा। इतना कठिन श्राप किसीको दिया गया है क्या? **तप्यन्ती भस्मशायिनी** गर्मी लगेगी, लूसे तुम्हारा शरीर जलता रहेगा पर उसके लिये तुमको कोई ठण्डे उपकरण नहीं मिल पायेंगे, पेड़की छायातक तुमको नहीं मिलेगी। सभी कष्टोंका अनुभव तुम्हें होगा पर कष्टोंका समाधान तुमको नहीं मिलेगा। लोग आयेंगे, ठोकरें लगेंगी, जूतोंसे लोग मारेंगे। भले ही तुम्हारा पत्थरका शरीर हो; पर पीड़ाका अनुभव तुमको होगा। जूतोंकी मार लगेगी, पर तुम यह कह नहीं सकोगी कि तुम लोग मुझे क्यों मार रहे हो? लोग थूकेंगे, भिन्न-भिन्न मल-मूत्र विसर्जन करेंगे; पर तुम उसको धोनेका कोई उपाय नहीं कर सकोगी, तुम्हारा हाथ बिल्कुल चलेगा ही नहीं, बिल्कुल जड़ रहोगी। कड़ाकेकी ठण्डीमें तुमको ठण्ड लगेगी, काँपती रहोगी पर तुमको रजाई नहीं मिलेगी। इतना कठिन श्राप गौतमजीने दिया। विश्वामित्रजीने कहा कि महाशिला बनकर उत्पन्न हुई है सरकार! हे राघव! हे दीनानाथ! **सकल कथा मुनि कही बिशेषी** (मा. १.२१०.१२) विश्वामित्रजीने सारी कथा भगवान् रामसे कही और कहा कि गौतमजीने एक वाक्य कहा था—**अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन्वसिष्यसि** (वा.रा. १.४८.३०)—तुमको कोई नहीं देख सकेगा। परन्तु—

यदा त्वेतद्वनं घोरं रामो दशरथात्मजः।
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा पूता भविष्यसि॥

(वा.रा. १.४८.३१)

गौतमने कहा था कि तुमको और कोई तार नहीं सकता। तुम इतनी पतित हो चुकी हो, इतना बड़ा पाप तुम कर चुकी हो कि इस पापको केवल राघवेन्द्र सरकार ही दूर कर सकते हैं और कोई दूर कर नहीं सकता। किसी और अवतारमें इतने बड़े पापको दूर करनेका सामर्थ्य नहीं है। श्रीहरि पाप दूर कर सकते हैं, वो भी **रामाख्यमीशं हरिम्** (मा. १ म.श्लो. ६)। श्रीरामाभिधान हरि ही इस पापको दूर कर सकते हैं। अतः घोर वनमें दशरथनन्दन दुर्धर्ष श्रीराम आयेंगे—**तदा पूता भविष्यसि**—तब तुम पवित्र हो जाओगी। अब कैसे पवित्र होगी? तो कहते हैं—**तदा पूता भविष्यसि**। *तनोति इति तत्*। *तेन तदा*। *तनोति गतिविस्तारं करोति इति तत्*। *तेन तदा*। अर्थात् गति विस्तार करने वाले भगवान् रामके चरणारविन्दसे पवित्र हो जाओगी, *वाल्मीकि रामायण*में यह स्पष्ट कहा है। *तदा* माने *चरणेन*। इसके रूप चलेंगे *तद् तदौ तदः, तदं तदौ तदः*। *तदा*में तृतीया है। भगवान् रामके गतिविस्तार श्रीमच्चरणारविन्दसे पवित्र हो जाओगी—**तदा पूता भविष्यसि**। केवल भगवान् रामके चरणकमलोंसे तुम पवित्र हो सकती हो। उनके चरणकमल ही तुमको पवित्र कर सकते हैं, क्योंकि उनके चरणकमल सब लायक हैं और तुम नालायक हो और नालायकको तो सब लायक ही पवित्र कर सकते हैं। **पुनि मन बचन कर्म रघुनायक, चरन कमल बंदउँ सब लायक** (मा. १.१८.९) भगवान्‌के चरणकमल ही तुम्हें

पवित्र कर सकते हैं और अन्य किसीमें सामर्थ्य नहीं है। उनमें क्यों सामर्थ्य है? तो बोले कि इसलिए सामर्थ्य है क्योंकि उन्हीं चरणकमलोंने ऋङ्गतुङ्गतरंगा गङ्गाको प्रकट किया है। गङ्गाजी पापको नष्ट करती हैं। यदि गङ्गाजी पापको नष्ट कर सकती हैं तो गङ्गाजीको जन्म देने वाले वे चरण पापको नष्ट नहीं कर सकते क्या? इसलिए **तदा पूता भविष्यसि** तब तुम पवित्र हो जाओगी।

विश्वामित्रजीने बहुत विनम्रताके साथ कहा—

गौतमनारि श्रापवश उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहती कृपा करहु रघुबीर॥

(मा. १.२१०)

आज गायत्रीके मन्त्रद्दष्टा भगवान्से प्रार्थना कर रहे हैं। **तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्** देखिये, गायत्रीके तीन चरण हैं—(१) **तत्सवितुर्वरेण्यम्** (२) **भर्गो देवस्य धीमहि** (३) **धियो यो नः प्रचोदयात्**। क्योंकि **ॐ** तो प्रणव है और **भूर्भुवः स्वः** ये तीन व्याहृतियाँ हैं। चरण इसके तीन ही हैं। और ये ही हैं चौबीस अक्षर—**तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्** अबतक विश्वामित्रजीने गायत्री मन्त्रके दर्शन किये थे, आज गायत्री मन्त्रार्थके दर्शन कर रहे हैं। इसका अर्थ क्या है? **सवितुः देवस्य तद्वरेण्यं भर्गः धीमहि, यः नः धियः प्रचोदयात्**—अन्वय यही है। **सवितुः देवस्य** सबके प्रेरक देवाधिदेव परमात्माके **तद्वरेण्यं भर्गः धीमहि** उस श्रेष्ठ तेजका हम ध्यान करें। **यः** माने जो परमात्मा **नः धियः** हमारी बुद्धियों को, **प्रचोदयात्** माने गलत कर्मोंसे हटाकर अच्छे कर्मोंकी ओर प्रेरित करें।

यहाँ यह ध्यान रखिये, चौबीस अक्षर हैं इसके। **तत्सवितुर्वरेण्यम्**। एक-एक-एक चरणमें गायत्रीके आठ-आठ अक्षर होते हैं। **भर्गो देवस्य धीमहि**। **धियो यो नः प्रचोदयात्**—ये देखिये, चौबीस अक्षर हो गये। **वरेणियं** में जो लोग नहीं समझ पाते, वही लीप देते हैं। और मन्त्रमें ऐसे ही पढ़ा भी जाता है। जैसे लोग कहते हैं—*भद्रम्* तो हम लोग कहेंगे *भदरम्*। यह हमारे यहाँकी परम्परा है। आजकलके हिप्पीकट धूमकेतु लड़के, ये वेद क्या जानें? इनको वेद पढ़नेका अधिकार ही कहाँ है? जबतक थप्पड़ोंसे गाल लाल नहीं होते, तबतक वेद नहीं आया करते।

आज विश्वामित्रजी देख रहे हैं कि अबतक तो **सवितुः देवस्य वरेण्यं भर्गः धीमहि**, सूर्य देवताके वरेण्य भर्ग, आज सूर्यकुलके सूर्य रघुनाथजीके वरेण्य भर्गका विश्वामित्रजी ध्यान कर रहे हैं। अहा! धन्य हो गया विश्वामित्रजीका जीवन! आज रघुनाथजीको निहार रहे हैं, सूर्यकुलके सूर्यको, और उनके उस वरेण्य तेज को। वरेण्य तेजको जानते हो? वास्तवमें यह तेज आज वरेण्य है। वरेण्य माने वरणीय। आगे यह सीताजीके द्वारा वरणीय होगा और सीताजी इनका वरण करेंगी, क्योंकि—

पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग वर माँगा॥

(मा. १.२२८.६)

वरेण्यके आधारपर सीताजीने पार्वतीजीसे अपने अनुरूप और सुन्दर यह वर माँगा—

सिया माँग रहीं अवधको राज सरजू नहाने को॥
रानी कौशल्या जैसी सासु सिया माँगें ससुर चक्रवर्ती महाराज। सरजू ...
सिया माँग रहीं अवधको राज सरजू नहाने को॥
देवर भरत लखन रिपुसूदन माँगें स्वामी राम रघुराज। सरजू ...
सिया माँग रहीं अवधको राज सरजू नहाने को॥
पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा निज अनुरूप सुभग वर माँगा।
सिया माँग रहीं अवधको राज सरजू नहाने को॥
रामायण गानेको सिया माँगें माँगे तुलसीसे सन्त समाज। सरजू ...
सिया माँग रहीं अवधको राज सरजू नहाने को॥

॥ बोलिये भक्तवत्सल भगवान्‌की जय ॥

वरितुं योग्यं वरेण्यम्। जो सीताजीके वरणके योग्य है *तद्वरेण्यं तेज:*। **भर्ग:** माने *तेज:*; उस भर्गका विश्वामित्रजी ध्यान कर रहे हैं। **भर्गं वरेण्यं विश्वेशं रघुनाथं जगद्गुरुम्** (रा.स्त.स्तो. २८)। उस वरेण्य भर्गका विश्वामित्रजी ध्यान कर रहे हैं। गायत्रीमें चौबीस अक्षर हैं और एक-एक अक्षरपर महर्षि वाल्मीकिने एक-एक हजार श्लोक बनाये अर्थात् चौबीस अक्षरोंकी व्याख्याके लिये महर्षि वाल्मीकिने चौबीस हजार श्लोक बनाये। यह चौबीसकी संख्या बड़े कामकी है। हमारे एक दिनमें भी चौबीस घण्टे होते हैं। इसका अर्थ यह है कि वह वरेण्य भर्ग, वह वरणीय तेज, हमारे जीवनके चौबीसों घण्टे हमारी सहायता करता है। एक भी क्षण हमारे लिये ऐसा नहीं है, जब रघुनाथजी हमारी सहायता न करते हों।

हम देखते हैं कि हम पैसे रखते हैं तो लोग चुरा लेते हैं। तो पैसा तो लोग चुरा लेंगे। क्यों न ऐसी वस्तु रखें, जिसे कोई न चुरा सके। कोई कितना भी चोरी करने आये, हमारा शास्त्र कौन चुरायेगा? बताओ! यह तो—

न चौरहार्यं न च राजहार्यं न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं विद्याधनं सर्वधनं प्रधानम्॥

इस धनको भाई नहीं बाँट सकते, कोई नहीं बाँट सकता। हमारे सम्प्रदाय में, हमारे बहुतसे गुरुभाई होंगे, पर कोई गुरुभाई इसको बाँट लेगा क्या? इसे कोई चोर चुरा भी नहीं सकता क्योंकि यह एक लॉकरमें पड़ी हुई है। एक चोर नहीं; सबकी बात छोड़ दीजिये, विश्वका सबसे बड़ा चोर कौन है? तो बोले **बिश्व बिलोचन चोर** (मा. १.२४२) रामजी सबसे बड़े चोर हैं। और रामजी लोचन ही नहीं चुराते, वे तो **लोचन सुखद बिश्व चित चोरा** (मा. १.२१५.५) चित्तको भी चुराते हैं। सबसे बड़े चोर, भगवान् राम हैं। कृष्णचन्द्र बेचारोंको तो केवल बदनाम कर दिया गया—**चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि** पर ईमानदारीसे जो चोरी जिसने की, उसको कोई नहीं पहचान पाया और बड़ोंको कोई कहता नहीं है। यह धन इतनी सुन्दर अल्मारीमें रखा है, इतने अच्छे लॉकरमें रखा है कि स्वयं राघवेन्द्र भी चाहें तो उसको नहीं चुरा सकते। इतना सुन्दर व्यक्तित्व है यह और इसलिए एक ऐसा वरेण्य तेज जो हमारे चौबीस अक्षर गायत्रीका प्रतिपाद्य है, चौबीस हजार *वाल्मीकि रामायण*के श्लोकोंका प्रतिपाद्य है। और मुख्य अवतार भी चौबीस होते हैं—(१) सनकादि, (२) वाराह, (३) नर-नारायण, (४) नारद, (५) कपिल, (६) दत्तात्रेय,

(७) यज्ञ, (८) ऋषभ, (९) पृथु, (१०) मत्स्य, (११) कच्छप, (१२) धन्वन्तरि, (१३) मोहिनी, (१४) नृसिंह, (१५) वामन, (१६) परशुराम, (१७) व्यास, (१८) राम, (१९) बलराम, (२०) कृष्ण, (२१) हंस, (२२) हयग्रीव, (२३) बुद्ध, और (२४) कल्कि अवतार।

एक बात और बताऊँ कि सबसे बढ़िया और सबसे शुद्ध सोना कौन सा होता है, जानते हो? चौबीस कैरेटका सोना सबसे शुद्ध होता है। जैसे स्वर्णमें जब चौबीस कैरेट होते हैं तब वह शुद्ध होता है, उसी प्रकार चौबीस अवतारवाले शुद्ध ब्रह्म परात्पर राम हैं। आज कथा सुना रहा हूँ। देखूँ, किसको नहीं समझमें आती है। **शुद्ध सच्चिदानन्दमय राम भानुकुल केतु** (मा. २.८७.१)—रामजी शुद्ध ब्रह्म हैं। जैसे शुद्ध सोना चौबीस कैरेटका होता है उसी प्रकार भगवान् रामके शुद्ध चौबीस अवतार हैं। इसलिए कहा जाता है—

अवधधाम धामाधिपति अवतारण पति राम।
सकल सिद्धि श्री जानकी दासनपति हनुमान॥

अतः आज विश्वामित्रजी देख रहे हैं कि ये मेरे सामने कौन खड़ा है? यही तो गायत्रीके चौबीस अक्षरोंका अर्थ है, यही *वाल्मीकीय रामायण*के चौबीस हजार श्लोकोंका महातात्पर्य है, यही चौबीस अवतारोंका बीजभूत अवतारी है। भगवान् राम अवतार नहीं, अवतारी हैं। भगवान् रामसे सब अवतार होते हैं। एतावता, विश्वामित्रजीने सोचा कि आज गायत्रीके तीनों चरणोंका प्रयोग कर लेता हूँ **धियो यो नः प्रचोदयात्** । गायत्रीका प्रयोग होता है बुद्धिकी शुद्धिके लिये। हमारी बुद्धि अशुद्ध हो चुकी है। **विद्या परिश्रमाधीना बुद्धिः कर्मानुसारिणी**। बुद्धिके तीन भेद गीताजीमें कहे गये—(१) सात्त्विकी, (२) राजसी, और (३) तामसी।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥

(भ.गी. १८.३०)

सात्त्विकी बुद्धि अब हमारे पास नहीं रह गयी। हम प्रवृत्ति नहीं समझ पाते, निवृत्ति नहीं समझ पाते, कार्य नहीं समझ पाते, अकार्य नहीं समझ पाते, भयको नहीं समझते, अभयको नहीं समझते, बन्धन नहीं जानते, और मोक्ष नहीं जानते। आज हम अपने अनुशासनको बन्धन मान बैठे हैं। निश्चित हमारी बुद्धि सात्त्विकी नहीं है, अतः कहा—**धियो यो नः प्रचोदयात्** हमारी बुद्धिको भगवान् प्रचोदित करें, प्रेरित करें। बुरे कर्मोंसे हटाकर सत्कर्मोंके लिये प्रेरणा दें क्योंकि—

सुनु खगेश नहिं कछु ऋषिदूषन। उरप्रेरक रघुबंशविभूषन॥

(मा. ७.११३.१)

हृदयके भगवान् प्रेरक होते हैं परन्तु सबके हृदयके नहीं। एक बार किसीने रामकृष्ण परमहंसजीसे पूछा—“महाराज, भगवान् तो सबके हृदयमें रहते होंगे।” उन्होंने कहा—“हाँ रहते तो हैं परन्तु जो पुण्यात्मा होते हैं, जो भगवान्का भजन करते हैं, उनके हृदयमें रहने वाले भगवान् जागृत होते हैं और जब व्यक्ति गलत काम करता है तो उसको हड़काते हैं कि गलत काम मत करो। परन्तु जो भगवान्का भजन नहीं करता, भगवान्का नाम नहीं लेता, भगवान्के रूपका चिन्तन नहीं करता, भगवान्की लीलाका चिन्तन नहीं करता, भगवान्के धाममें नहीं रहता; उसके हृदयके भगवान्, उसी व्यक्तिके पापकी कमली ओढ़कर खर्राटे भरकर सो जाते

हैं।" इसका अर्थ यह है कि भगवान्‌को जगाना होगा। भगवान् गीत गानेसे तो जगेंगे नहीं कि "प्रभु आप जगो संसार जगे।" एक सम्प्रदाय ऐसा भी चला, परन्तु ऐसे भगवान् नहीं जगेंगे। उनकी प्रेमसे आराधना करनी होगी, उनका नाम लेना होगा, प्रयास करके बुरे कर्म नहीं करने होंगे। कथाका फल यही है कि बुरे कर्म मत करो, अच्छे कर्म करो, प्रतिदिन कोई न कोई बुरी आदत छोड़ो। एक-एक बुरी आदत छोड़नेका प्रयास करो तो तीन सौ पैंसठ दिनमें कितनी ही बुरी आदतें छूट जायेंगीं। जब गुरुजीके चरणोंमें आओ तो निश्चित कर लो कि कुछ दक्षिणा देनी है, खाली हाथ कभी नहीं जाना चाहिए। तो, कौन सी दक्षिणा दोगे? पैसा दोगे? उनको और कुछ मत दो, केवल कोई गन्दी आदत छोड़ दो और वही उनको दक्षिणामें दे दो।

धियो यो नः प्रचोदयात्। यह अहल्या क्या है? यह प्रतीक नहीं स्वरूप है। जीवात्माकी बुद्धि ही अहल्या है। और अहल्या पत्नी हैं महर्षि गौतमकी। और बुद्धि जीवात्माकी पत्नी है। इन्द्र कौन है? इन्द्र कर्मोंका देवता है। इन्द्रके आनेसे गड़बड़ क्या हुई? इन्द्रने अहल्याका सतीत्व भङ्ग कैसे किया? बुद्धि आत्मासे अलग कब होती है? जब बुद्धिमें वासना आ जाती है, तब बुद्धि आत्मासे अलग हो जाती है। इसलिए विभीषणजी कहते हैं—

उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभुपद प्रीति सरित सो बही॥

(मा. ५.४९.६)

"हे राघवेन्द्र, मेरे हृदयमें पहले कुछ वासना थी, परन्तु वो आपके प्रेमकी सरितामें बह गयी—**प्रभुपद प्रीति सरित सो बही**। प्रभुके श्रीचरणकमलकी प्रीति-सरितामें वो बह गयी।" अच्छा अब आपको वासनाका अर्थ समझाऊँ कि वासना कहते किसे हैं? देखो, सीधी-सी बात है कि एक डलियामें गुलाबके फूल रख दो और थोड़ी देर बाद उन फूलोंको निकाल लो। तब देखोगे कि डलियामें फूल तो नहीं हैं, पर फूलकी बास उसमें है और यही है वासना। गन्दी वस्तु हो या अच्छी वस्तु। दुर्गन्धित वस्तुकी जो दुर्गन्ध होगी, वह भी वासना है और सुगन्धित वस्तुकी सुगन्ध भी वासना है। कुछ ऐसी भी वस्तुएँ होती हैं जो जानेके पश्चात् भी अपनी बास छोड़ जाती हैं, उसमें दुर्गन्धित पदार्थ तो बहुतसे ऐसे होते हैं। इस प्रकार, वासनाका सीधा सा अर्थ है कि भोगे हुए विषयोंको याद करना। **भुक्तविषयाणां स्मृतिर्वासना**—भोगे हुए विषयोंकी स्मृति करना ही वासना है। इसीलिए, सबको सुधारना सरल होता है पर बुड्ढोंको सुधारना बहुत कठिन होता है क्योंकि उनको भोगे हुए विषयोंकी स्मृति आती रहती है। अब भोग भोगनेकी क्षमता नहीं है, पर भोग याद आते रहते हैं। किसी रिटायर्ड ऑफिसरको आप देखिये, आनन्द आ जायेगा और बिल्कुल मेरी व्याख्या समझमें आ जायेगी। जबतक सेवामें थे, चकाचक घूस लिया और रिटायर होनेके बाद घूस तो मिलनी नहीं है और बेटे बहूने भी कह दिया है—"पापाजी, आप पधार जाएँ। फ्लैट खाली कर दीजिये।" तब पापाजी हम लोगोंके सिरके भार बन जाते हैं। आश्रमों में, वृद्धाश्रमोंमें आते हैं। जबतक स्वस्थ थे, तबतक तो बेटे बहूकी सेवामें रहे और अब वृद्धाश्रममें आकर आनन्द कर रहे हैं। पहले तो घूस लेकर जनताका खून पिया और जब बुड्ढे हो गये, आश्रमोंमें आये, तो हम लोगोंका खून पीते हैं माने उनको तो पीना ही पीना है। आप आश्चर्य करेंगे, कभी-कभी बुड्ढोंको मैं इतना अश्लील गाना सुनते देखता हूँ कि मुझे ही शरम आ जाती है, पर उन्हें शरम नहीं आती। बड़ा आश्चर्य लगता है। वो तो कहते हैं—"भर फागुन

बुढ़ऊ देवर लागें।" इसलिए वृद्धोंको समझाना बहुत कठिन है। एक तो उनका पूर्वाग्रह होता है। वो जो समझ चुके, वही ठीक है और शेष सब ठीक नहीं हैं। उनको बदलेकी भावना होती है, प्रतिशोध होता है। उनमें प्रमाद भी होता है और उनमें प्रतिक्रिया भी रहती है। ऐसा मत समझो कि हम वृद्धोंकी निन्दा कर रहे हैं, हम भी वृद्ध होंगे। अब तो प्रारम्भ हो ही गया है, तो होंगे ही। एक बात बताऊँ कि वृद्धतामें गृहस्थ और सन्तमें इतना ही अन्तर है कि गृहस्थ बुड्ढा होता है तो उसका अपमान होता है और जब सन्त बुड्ढा होता है तो उसका सम्मान होता है। हम तो ज्यों-ज्यों बुड्ढे होंगे, त्यों-त्यों हमारी जवानी उमगेगी, चकाचक रहेगा। एतावता, हमारे मानसमें एक पाठ है, यद्यपि गीताप्रेसमें इसे नहीं दिया गया है। बाँदाकी बड़ी सुन्दर शब्दावलीका प्रयोग इसमें किया गया हैं—

कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। जिमि न नवइ फिरि उकठि कुकाठू॥

(मा. २.२०.४)

उकठा हुआ कुकाठ नहीं झुकेगा। इसलिए देखिये, जब गृहस्थ बुड्ढा होता है, तो विषयोंके निवृत्त होनेपर उसे पश्चाताप होता है और जब सन्त बुड्ढे होते हैं तो विषयोंके निवृत्त होनेपर और सुखी होते हैं कि कमसे कम अब और भजन करनेका समय मिलेगा। गृहस्थ भोजन छूटनेपर तलफलाता है और सन्त भोजन छूटनेपर झूम जाता है। सामान्य व्यक्ति तब दु:खी होता है, जब उसे भोजन ठीकसे नहीं मिलता। जब भोजनमें स्वाद नहीं आता तो साधारण व्यक्ति दु:खी होता है और जब भजनमें स्वाद नहीं आता तो हम सन्त लोग दु:खी होते हैं। साधारण व्यक्तिको भोजनका स्वाद चाहिए और हम लोगोंको भजनका स्वाद चाहिए। वासना आती कहाँसे है? वासना आती है कर्मसे। इन्द्र कर्मके देवता हैं। जब बुद्धिमें वासना आ जाती है, तब बुद्धिको जीवात्मा श्राप दे देती है। जब हमारी बुद्धि उपासनाको छोड़कर वासनाका चिन्तन करती है, जब राघवेन्द्रजीके चरणारविन्दको छोड़कर अपने पूर्व भोगे हुए विषयोंका बुद्धि चिन्तन करने लगती है, जब माला हाथमें है और बुद्धि चिन्तन कर रही है समोसे और पकौड़ीका, या माला हाथमें है और बुद्धि सोच रही है कि पहले हम कैसे थे? पहले हमारी कैसे गृहस्थी चलती थी? इस प्रकारसे बुद्धि जब सोचने लगती है तो जीवात्मा उसको श्राप देती है। जिस प्रकार आज अहल्या इन्द्रसे दूषित हुई, उसी प्रकार बुद्धि कर्मसे दूषित हुई। जब **बुद्धिः कर्मानुसारिणी**—बुद्धि कर्मका अनुसरण करेगी—तब भ्रष्ट हो जायेगी और जब बुद्धि कर्मका चिन्तन न करके ब्रह्मका चिन्तन करेगी, तो कल्याण होगा। अहल्यामें गड़बड़ यही थी। जबतक अहल्या इन्द्रका चिन्तन करती रही, तबतक उसे श्राप मिलता रहा और जब इन्द्रका चिन्तन छोड़कर कोसलेन्द्रका चिन्तन कर लिया, तो अहल्या धन्य हो गयी। उसी प्रकार हमारी बुद्धि सकाम कर्मका चिन्तन करती है। इन्द्रका चिन्तन करना तब अच्छा है जब वह निष्काम हो और जब इन्द्र सकाम हुआ और अहल्याने चिन्तन किया, तब उसका पतन हो गया। उसी प्रकार जब हम सकाम कर्मका चिन्तन करेंगे तब हमारा पतन होगा और जब हम निष्काम कर्मका चिन्तन करेंगे तो हमारा कल्याण होगा। आशा है आप अब ठीक-ठीक समझ रहे होंगे। इसका तात्पर्य यह है कि हम कोई भी योजना जब बना रहे हों तो उस योजनाके पीछे यदि हमने अपने नामका चिन्तन किया कि इसमें हमारा नाम होना चाहिए, हमारी छवि होनी चाहिए, हमारी प्रतिष्ठा होनी चाहिए, हमारे अहंकारका पोषण

होना चाहिए, तब आप कर्म नहीं कर सकेंगे, तब बुद्धि अवश्य भ्रष्ट होगी और उसे भ्रष्ट होना भी चाहिए। भ्रष्ट होना माने अपने मार्गसे गिरना। बुद्धि मार्ग क्या है? देखो बताऊँ। हमारे शास्त्रोंने कहा है कि बुद्धिवादी मत बनो, बुद्धियोगी बनो। जब जीव भगवान्‌का चिन्तन करता है, तब उसे भगवान् बुद्धियोग देते हैं—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(भ.गी. १०.१०)

भगवान् कहते हैं कि मैं उन्हें बुद्धियोग देता हूँ जो हमारा भजन करते हैं। **तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि** जब उस वरेण्य तेजका ध्यान करेंगे, तब हमें बुद्धि योग मिलेगा—**धियो यो नः प्रचोदयात्**।

अहल्याको शिला क्यों होना पड़ा? जड़ता क्यों आयी? अहल्यामें जड़ता इसलिए आयी क्योंकि अहल्याने कर्मका अनुगमन किया, ब्रह्मका अनुगमन नहीं किया। और, जब कर्मका अनुगमन किया तो निश्चित उसमें वासना आयी। जब वासना आयी तो भोगकी इच्छा जगी और भोगकी इच्छा जगते ही अहल्या पतित हो गयी, अर्थात् भ्रष्ट हो गयी। फिर जीवात्मा रूप गौतमने उसको श्राप दे दिया—"जाओ तुम्हारा पतन होगा और रामजीके चरणकमलके स्पर्शसे तुम पवित्र होगी।" रामजीके चरणकमलके स्पर्शका क्या अर्थ है? जब हमारी बुद्धिकी वृत्तिमें परमात्मा आ जाते हैं, तब हमारे मनका रजोगुण चला जाता है और इस रजोगुणके पाँच दोष हैं—(१) लोभ, (२) प्रवृत्ति, (३) आरम्भ, (४) कर्मोंकी असमता और (५) स्पृहा—**लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा, रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ** (भ.गी. १४.१२) जब हमारे जीवनमें रजोगुण आता है तो हमको लोभ होता है और सबसे दुष्ट है यह लोभ—**लोभः पापस्य कारणम्** (हि. २७) काम इतना क्रूर नहीं है, वह भी बुढ़ाई अवस्थामें समाप्त हो जाता है। क्रोध इतना नालायक नहीं है, वह भी समाप्त हो जाता है। पर लोभ तो ज्यों-ज्यों बुढ़ाई आती है, त्यों-त्यों और जवान होता है। शरीर बूढ़ा होता है तो लालच और जवान होता है। लोग पैसा बचा-बचाकर रखते हैं। एक व्यक्तिने पूछा कि गुरुजी आप नोट नहीं गिनते? तो मैंने कहा कि मैं क्यों गिनूँ नोट? जितना समय मेरा रुपया गिननेमें लगेगा, उतने समयमें हम भगवान्‌का नाम गिना करेंगे। इस प्रकार, जब जीवनमें रजोगुण आता है, तब लोभ बढ़ जाता है। तब भगवत्संबन्धी कर्मोंको छोड़कर भिन्न कर्मोंमें हमारी प्रवृत्ति बढ़ती है। तब हम सकाम कर्मका आरम्भण करते हैं। तब कर्मोंमें असमता और स्पृहा आती है। यहाँ तो—

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा

(मा. ५. म.श्लो. २)

एक बार तुलसीदासजी महाराजको बहुत भूख लगी और तब उन्होंने रामजीका दरवाजा खटखटाया। रामजी आये और पूछा—"कबसे तुम दरवाजा खटखटा रहे हो?" तुलसीदासजीने कहा—**द्वार हौं भोर ही को आजु** (वि.प. २१९.१)। "आज मैं सबेरेसे ही आपके दरवाजेपर खड़ा हूँ।" रामजीने कहा—"क्यों खड़े हो?" तो कहा—**रटत रिरिहा आरि और न कौर ही तें काजु, द्वार हौं ...** (वि.प. २१९.१)। तुलसीदासजीने कहा—"मैं क्या करूँ? केवल एक

रोटीका टुकड़ा मुझे चाहिए।" रामजीने कहा—"तुम्हारा पेट भरा नहीं है क्या?" तुलसीदासजीने कहा—नहीं! **जनमको भूखो भिखारी हौं गरीबनिवाजु** (वि.प. २१९.५)। जबसे जन्म लिया मेरी माताजी मर गयीं, पिताजीने मुझे छोड़ दिया, फेंक दिया। मेरा कभी कुछ नहीं हुआ।

मातु पिता जग जाइ तज्यो विधि हू न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकन लागि ललाई।
राम सुभाव सुन्यो तुलसी प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथको परमारथको रघुनाथ सो साहिब खोरि न लाई॥

(क. ७.५७)

रामजीने कहा—"क्या खाओगे? बताओ। पूड़ी खीर खाओगे या समोसा? पकौड़ी खाओगे या रसगुल्ला? राजभोग खाओगे?" तुलसीदासजीने कहा—"नहीं, यह सब नहीं खाना।" रामजीने कहा—"बताओ फिर क्या खाओगे?" तुलसीदासजीने कहा—**पेट भरि तुलसिहि जेंवाइय** (वि.प. २१९.५) पेट भरकर खिला दीजिये सरकार! रामजीने कहा—"खिला तो रहा हूँ, खाओ न!" तुलसीदासजीने कहा—"नहीं सरकार, यह आज खाऊँगा तो कल फिर आपका सिर दर्द बन जाऊँगा। ऐसी वस्तु खिलाइये कि जो एक बार खाऊँ और फिर कभी भूख न लगे। हमारा भी झंझट समाप्त हो और आपका भी। दुहाई सरकार की।" भगवान्ने कहा—"हैं! ये क्या कह रहे हो?" तब तुलसीदासजीने कहा—"एक बार सरकार मोहे खियाय दो, मोरौ झंझट खतम होय और तुम्हरौ झंझट खतम होय जाए। खवाय दे एक बार सरकार! मैं तुमसे बार-बार कहि रहे हौं।"

रामजीने कहा—"क्यों?" तुलसीदासजीने कहा—"सरकार! ये भोजन खायेंगे तो फिर भूख लगेगी, क्योंकि—

नित रितवत प्रतिदिन भरत जिमि चुवना कण्डाल।
कहि न जाइ अति अजब गति पेट गजब चण्डाल॥

पेटका हाल तो चुवना कण्डालकी भाँति है। जैसे काण्डाल—पानीकी टंकी—लीक करती हो तो सुबहको भर दो तो शामको फिर जय श्रीसीताराम, वही हाल हमारे नालायक पेटका है। कितना ही पूड़ी खीर खिलाओ पर सुबह फिर खाली।" तुलसीदासजीने कहा—"सरकार! ऐसी चीज खिलाओ कि फिर कभी भूख न लगे—**पेट भरि तुलसिहि जेंवाइय**। "क्या खिलाऊँ, बताओ तो सही," तो कहते हैं—**पेट भरि तुलसिहि जेंवाइय भगति-सुधा सुनाजु** (वि.प. २१९.५)। अर्थात् भक्ति रूप, भजन रूप भोजन करवा दीजिये, चकाचक हो जाए। प्रेमका रसगुल्ला खिला दीजिये फिर मैं कभी आपके आगे नहीं आऊँगा सरकार! आऊँ तो सरकार, कोड़ोंसे मार-मारकर मेरी खाल निकलवा दीजियेगा सरकार!" रामजीने कहा—"खाओगे तो कुछ दक्षिणा भी लोगे?" तुलसीदासजीने कहा—"हाँ, सरकार! जब सन्तको जिमायेंगे तो भण्डारेकी कुछ दक्षिणा तो देना ही पड़ेगी, सरकार! बिना दक्षिणाके थोड़े ही जायेंगे। चित्रकूटके साधु हैं, बिना दक्षिणाके झगड़ा हो जायेगा सरकार!" रामजीने कहा—"अच्छा। क्या दक्षिणा लोगे? सही बता दो।" तुलसीदासजीने कहा—**नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा** (मा. ५ म.श्लो. २) मेरे हृदयमें और कोई स्पृहा नहीं है। भगवान्ने

कहा—"झूठ बोल रहे हो।" तो तुलसीदासजीने कहा—"नहीं! **सत्यं वदामि**—सच कह रहा हूँ।" भगवान्‌ने कहा—"क्या प्रमाण है?" तो कहा—**च भवान्** "आप ही प्रमाण हैं कि मैं झूठ बोल रहा हूँ या सही बोल रहा हूँ।" भगवान्‌ने कहा—"यह तो गजबका साधु है, मुझसे ही प्रमाण पूछता है।" उन्होंने कहा—"मैं क्यों बताऊँ?" तब तुलसीदासजीने कहा—**अखिलान्तरात्मा** "आप सबके हृदयमें रहते हैं। आप बताइये कि मैं झूठ बोल रहा हूँ या सच बोल रहा हूँ।" भगवान्‌ने कहा—"हाँ, ठीक बोल रहे हो!" "तो ठीक है—**भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे**—हे रघुपुङ्गव, मुझे निर्भरा भक्ति दीजिये। *निर्गतः भरः यस्याः*—आप अपने चरणोंमें ऐसा प्रेम दीजिये जिसके प्रवाहमें संसारका सारा भार बह जाए।" रामजीने कहा—"अच्छा, यह तो तुम्हारा भोजन हो गया, अब दक्षिणा बताओ।" तुलसीदासजीने कहा—"सरकार आप देंगे?" रामजीने कहा—"हाँ, देनी तो पड़ेगी क्योंकि बिना दक्षिणाके भोजन पूरा नहीं होता है।" तब तुलसीदासजीने कहा—**कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च**—"मेरे मनको कामादि दोषोंसे रहित कर दीजिये, यह दक्षिणा है।" रामजीने कहा—"यह तो भक्तिके आनेसे हो ही गया।" तुलसीदासजीने कहा—"हे सरकार! तो जो मैं श्रीरामचरितमानसकी रचना कर रहा हूँ, उसको कामादि दोषोंसे रहित कर दीजिये। देखिये, मेरे मुखसे रामचरितमानसमें कामादिका वर्णन न हो जाए! यहाँ हमने आपको *मानस* शब्दके दो अर्थ बताये। एक *मानस* माने मन और दूसरा *मानस* माने *श्रीरामचरितमानस*। "मेरे श्रीरामचरितमानसको कामादि दोषोंसे रहित कर दीजिये सरकार! कहीं कविताकी तरंगमें किसीका नखशिख वर्णन करने लग जाऊँ सरकार! क्योंकि सुन्दरकाण्डमें वाल्मीकिजीने चार-चार सर्गोंमें राक्षसियोंका वर्णन किया है, तो मुझे बचाइये सरकार! दुहाई सरकार की!" रामजीने कहा—"ठीक है, बचा लेंगे।" और बचा ही लिया। जब हनुमान्‌जी **गयउ दशाननमन्दिर माहीं** (मा. ५.५.६), तो तुलसीदासजीने बस यही लिखा कि **अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं** (मा. ५.५.६)। अब जाओ *वाल्मीकि रामायण*में देखो, हम नहीं जानते। **शयन किए देखा कपि तेही** (मा. ५.५.)। अब वहाँ भामिनियोंका नख-शिख वर्णन किया है, पर यहाँ चौपाईको पूरा कर दिया—**मंदिर महँ न दीख बैदेही** (मा. ५.५.७)। आगे लिखा—

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरिमन्दिर तहँ भिन्न बनावा॥

(मा. ५.५.८)

मैंने यह निवेदन किया कि बुद्धिका पतन तब होता है जब वह सकाम कर्मका पीछा करती है, सकाम कर्मसे जुड़ती है। जैसे अहल्याका पतन तब हुआ, जब वह सकाम इन्द्रके साथ जुड़ी। इतना ध्यान रखो कि जब कर्ममें भोगकी वासना हो, तब उससे कभी नहीं जुड़ना चाहिए। जब बुभुक्षा हो तब नहीं जुड़ना चाहिए; जब मुमुक्षा हो तब जुड़ना चाहिए। वही इन्द्र जब रामजीके विवाहमें आये तो—

रामहिं चितव सुरेश सुजाना। गौतमश्राप परम हित माना॥

(मा. १.३१७.६)

इन्द्र कोई बहुत खराब नहीं है। वही इन्द्र रावणके वधके लिये अपना रथ भेज रहा है—

सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लै आवा॥
चंचल तुरग मनोहर चारी। अजर अमर मन सम गतिधारी॥

तेजपुंज रथ दिव्य अनूपा। बिहँसि चढ़े कोसलपुरभूपा॥

(मा. ६.८९.२–४)

वही इन्द्र तो है, जिसके सम्पर्कसे अहल्या दूषित हो रही है और इसी इन्द्रके रथपर चढ़कर रामजी भूषित हो रहे हैं। इसका कारण यह है कि अहल्याका दुर्भाग्य यह है कि इन्द्र जब उसके सामने आता है तो उसको वासना समर्पित कर रहा है और रामजीका सौभाग्य यह है कि वहाँ जब इन्द्र आता है तो उन्हें उपासना समर्पित कर रहा है। श्रीरामके सामने इन्द्र उपासक बनकर आया और अहल्याके सामने इन्द्र भोगी बनकर आया। अहल्याके सामने इन्द्र बुभुक्षु और रामजीके सामने इन्द्र मुमुक्षु है। **मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये** (श्वे.उ. ६.१८)।

देखिये, क्या दिव्य दृश्य है। श्रीरामके यहाँ इन्द्र दिनमें आता है और अहल्याके यहाँ रात्रिमें आता है। यह बात ध्यान रखिये कि ब्राह्म-मुहूर्तमें इन्द्र नहीं आया क्योंकि ब्राह्म-मुहूर्तमें इन्द्र आ ही नहीं सकता। ब्राह्म-मुहूर्त ब्रह्मका चिन्तन करनेका मुहूर्त है। उस समय जब ब्रह्मका मुहूर्त आया तो गौतमजी जगे और गङ्गाजी चले गये। विषय बहुत गम्भीर और अच्छा है तथा उससे हमको-आपको शिक्षा भी मिलेगी। ब्राह्ममूहूर्तमें दोनों जग रहे हैं, अहल्या भी जग रही हैं और गौतम भी जग रहे हैं। परन्तु गौतमको पापहारिणी गङ्गा मिलीं और अहल्याको गङ्गा नहीं बल्कि कर्मनाशा मिल गयी। इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है कि *जो जागे सो पावे* और *जो सोवे सो खोवे*। अहल्याकी गलती इतनी है कि अहल्या ब्राह्म-मुहूर्तमें सोती रही। इसलिए, हम और आप जब ब्राह्म-मुहूर्तमें सोयेंगे तो हमारा सर्वनाश होगा और जब हम ब्राह्म-मुहूर्तमें जगकर भगवान्‌का भजन करेंगे तो हमारा विकास भी होगा। यदि अहल्या बिस्तरसे उठ करके भगवद्भजन करती, तो ऐसा कदापि न होता। आज इन्द्र अहल्याके पास क्यों आ गया? इन्द्रका अहल्याके पास आनेका साहस क्यों हो गया? क्योंकि यहाँ अहल्याकी गलती है। पत्नीको पतिका अनुगमन करना चाहिए। अहल्या वाइफ़ (wife) नहीं है। वाइफ़ और पत्नीमें बहुत अन्तर होता है। **पतनात्त्रायते यस्मात्तस्मात्पत्नीत्युदीर्यते**—पतिको पतनसे जो बचाती है उसे पत्नी कहते हैं। अहल्याको चाहिए था कि जब गौतमजी नहाने जा रहे थे, तो उसको उनके पीछे-पीछे जाना चाहिए था। उनका कमण्डलु लेकर जाना चाहिए, सेवा करनी चाहिए थी। अहल्या अपने धर्मसे च्युत हुई। इन्द्रने देख लिया कि अब धर्मपत्नी नहीं रह गयी है, नहीं तो इन्द्र क्यों जाता अहल्याके पास? अनसूयाके पास क्यों नहीं गया इन्द्र? और किसीके पास क्यों नहीं गया इन्द्र क्योंकि अहल्या आधुनिक स्त्री (modern lady)की भाँति हो गयी। उसने सोचा कि पति तो जा रहे हैं, चलो थोड़ा सो लेते हैं। इतनी रातको कौन उठे! जब अहल्या सोयी, तो इन्द्रके द्वारा उसका पतन कर दिया गया। गौतम जब ब्राह्म मुहूर्तमें जगे तो गङ्गाजी गये और ये गङ्गाजी रामायणके अनुसार कौन हैं?

रामभगति जहँ सुरसरिधारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा॥

(मा. १.२.८)

तो—

पूछा मुनिहिं शिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कही बिशेषी॥

(मा. १.२१०.१२)

यह कौन सा बाबा शिलाके पास हाथ जोड़कर खड़ा है? तब विश्वामित्रजीने कहा इसकी कथा सुनो—**सकल कथा मुनि कही बिशेषी**। विश्वामित्रजीने कहा—इसका नाम है अहल्या। पतितका अर्थ होता है गिरा हुआ। देखिये, सब गिरनेको पतित नहीं कहते। उसको पतित कहते हैं, जो जहाँसे गिरा हो वहाँ पुन: न जा सके। जैसे पेड़से जो पत्ता गिरता है, वह उसमें जुड़ता है क्या? कभी नहीं जुड़ पाता। अहल्या पतित माने गिरी हुई तो है ही, पर **पतिता पत्युः इता** अर्थात् अपने पतिसे भी दूर चली गयी है—पति + इता। अहल्याजीके जीवनमें कोई सम्भावना ही नहीं है कि वह अपने पति गौतमजीसे फिर मिल सकेगी, क्योंकि—**शुध्यन्ति सर्व पापानि योनिभ्रष्टा न शुध्यति** अर्थात्, सभी पापोंका प्रायश्चित हो जाता है पर जिसका शरीर अपवित्र हो जाता है, वह कभी शुद्ध नहीं होता। सभी पाप शुद्ध हो सकते हैं पर यदि कोई स्त्री परपतिसे प्रेम करती है तो वह शुद्ध नहीं हो सकती; कोई पुरुष यदि परपत्नीसे प्रेम करता है तो वह शुद्ध नहीं हो सकता। उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं हो पाता। परन्तु भगवान् तो असम्भवको भी सम्भव करते हैं। जो किसीसे सम्भव न हो और जो कोई न कर सके, वो करने वालेका नाम ही तो भगवान् है। इसीलिए तो उन्हें भगवान् कहते हैं—**भगवत्त्वं नाम एकधर्मावच्छेदेन एकसंसर्गावच्छेदेन एककालावच्छेदेन सकलविरुद्धधर्माश्रयतावच्छेदकत्वम्**। एक साथ, एक संबन्धसे, एकाधिकरणतावच्छेदेन, एक स्थानपर, एक ही समय जहाँ सारे-सारे विरुद्ध धर्म रह जायें उन्हींको तो भगवान् कहते हैं।

अहल्या रूपवती है। इन्द्रने गौतमका वेष बनाया और अहल्याजीसे प्रणयकी याचना की। अहल्याजीकी गलती यह है कि वे जान तो गयीं थीं कि इन्द्र है यह—

मुनिवेशं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन।
मतिं चकार दुर्मेधा देवराजकुतूहलात्॥

(वा.रा. १.४८.१९)

अहल्याने जान-बूझकर इन्द्रसे प्रेम किया। उनको लगा कि मेरा इतना अद्भुत सौन्दर्य है कि स्वर्गका देवराज भी इस सौन्दर्यका पिपासु हो गया। अहल्याने इन्द्रका प्रणय-प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फिर गौतमजीने अहल्याजीको पहले क्रोधमें भस्म किया, फिर पत्थरकी शिला बनायी, कहा—"जाइये! दस हजार वर्षतक आपकी आत्मा इस शिलामें रहेगी। आपको प्यास लगेगी, पर एक घूँट पानी नहीं मिलेगा। भूख लगेगी, पर एक अन्न आपके मुखमें नहीं जायेगा। ठण्ड लगेगी, पर एक सूत भी कम्बलका आपको नहीं मिलेगा और बरसातमें छातेका एक टुकड़ा भी नहीं मिलेगा। गर्मी होगी, पर एक भी वायुका झोंका आपको नहीं मिलेगा।" बहुत कठिन शाप दिया। गोस्वामीजी मानसमें कहते हैं—

गौतमनारी श्रापबश उपलदेह धरि धीर।
चरनकमल रज चाहती कृपा करहु रघुबीर॥

(मा. १.२१०)

श्रापबश उपलदेह कह रहे हैं विश्वामित्रजी। क्या गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज व्याकरण नहीं जानते थे? शाप कहनेमें क्या बिगड़ जा रहा था? श्राप क्यों कहा? देखिये, शाप और श्रापमें अन्तर है। शाप माने किसीको गाली देना—शपति। और श्राप—*श्रा पाके* माने ऐसा दण्ड देना

जो कर्मके परिपाकके रूपमें सामने आ जाए। इन्होंने श्राप दिया है, शाप नहीं। *श्रा पाके* अर्थात् अपने क्रोधकी अग्निमें गौतमने अहल्याको पका दिया है। श्रापके कारण इनको उपल देह मिला। यहाँ व्यञ्जना है कि सरकार, श्राप तो दोनोंको मिला, विष्णुको भी तथा अहल्याको भी। और दोनों ही पत्थर बने। पर सरकार, दोनोंके करमका फेर है। विष्णु जब पत्थर बने तो उनको शालग्राम शिला बना लिया गया, सोनेके सम्पुटमें उनकी पूजा होती है; पर अहल्या जब पत्थर बनीं तो उनका इतना बड़ा अपमान हो रहा है। यहाँ व्यङ्ग्य है कि विष्णुको अनुग्रह इसलिए मिला क्योंकि वे आपके अंश हैं और आपके कारण शालग्रामकी पूजा हो गयी। वे आपसे जुड़े, इसलिए पत्थर बननेपर भी उन्हें सोनेके सम्पुटमें रखा जाता है तथा तुलसी चढ़ती रहती हैं। जो पुरुषोत्तमसे जुड़े उसको इतना बड़ा सम्मान! और अहल्या गौतमसे अलग हुईं तो इनको इतना बड़ा दण्ड! इतना जब राघवजीने सुना तो उनकी आँखोंमें आँसू आ गये। तब विश्वामित्रजीने कहा कि राघव! आप दु:खी क्यों हो रहे हैं? भगवन्! आप अधीर मत होइये। हे धीर रघुबीर! यहाँ **धीर** रघुबीरका विशेषण है। हे धीर शिरोमणि प्रभु! गौतमकी नारी श्रापवश होकर—**उपलदेह धरि**—पत्थरका शरीर धारणकर—**चरनकमल रज चाहती**—आपके चरणकमलकी रज चाहतीं हैं। **धीर** विशेषण गौतम नारी (अहल्या)के लिए नहीं है, भगवान् श्रीरामके लिए है। उन्होंने कहा कि आप तो धीर हैं। अहल्याके दु:खसे द्रवित न हों। उसके उद्धारकी बात सोचें। सरकार! आज आपको अपने पतितपावनत्व गुणके प्रयोग करनेका वास्तविक अवसर मिला है। आज आप पतितपावन बनेंगे भगवन्!

गौतमनारी श्रापबश उपलदेह धरि धीर।
चरनकमल रज चाहती कृपा करहु रघुबीर॥

कृपा करहु रघुबीर—आज प्रथम बार विश्वामित्रजी भगवान् रामको रघुवीर कह रहे हैं, क्योंकि पाँच वीरताएँ जिसमें हों, वही उस कुलका वीर होता है। और ये पाँचों वीरताएँ—

त्यागवीरो दयावीरो विद्यावीरो विचक्षणः।
दानवीरो रणवीरो पञ्चैते वीरलक्षणाः॥

आपमें हैं। *भगवद्गुणदर्पणकार*ने कहा कि रामजीको इसीलिए रघुवीर कहा जाता है क्योंकि उनमें पाँचों वीरताएँ हैं। ये त्यागमें वीर हैं क्योंकि इतना बड़ा त्यागी नहीं देखा—

त्यागी भी देखे महात्यागी भी देखे।
मेरे राम जैसा कोई त्यागी न देखा मेरे राम जैसा॥
सुर दुर्लभ तज राज पिताका कानन किसको भाया।
केवट कोल किरात जनोंको किसने गले लगाया।
त्यागी भी देखे महात्यागी भी देखे।
मेरे राम जैसा कोई त्यागी न देखा मेरे राम जैसा॥
राजे भी देखे महाराजे भी देखे।
मेरे राम जैसा कोई राजा न देखा मेरे राम जैसा॥
दीनदयालु उदार शिरोमणि कौन भगत-भयहारी।
पदपंकज रज परसि अहल्या कौन देवने तारी।

देवता भी देखे महादेवता भी देखे।
मेरे राम जैसा कोई देवता न देखा मेरे राम जैसा॥

बोलिये भक्तवत्सल भगवान्‌की जय।

मैं यह निवेदन कर रहा था—

गौतमनारी श्रापबश उपलदेह धरि धीर।
चरनकमल रज चाहती कृपा करहु रघुबीर॥

हे सरकार! आपमें पाँचों वीरताएँ हैं—आप (१) त्यागवीर, (२) दयावीर, (३) विद्यावीर, (४) पराक्रमवीर और (५) धर्मवीर हैं।

(१) **त्यागवीर**—आप जैसा त्यागी नहीं। वाल्मीकिजीने कहा—**धनदेनसमस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः** (वा.रा. १.१.१९) जो लोग नहीं जानते वे तो यही कहेंगे—**धनदेन समस्त्यागे** अर्थात् भगवान् त्यागमें कुबेरके समान हैं। जितना कुबेर दान करते हैं, उतना ही भगवान् करते हैं। तो हमने कहा कि ऐसा थोड़े ही है। ऐसी व्याख्या करोगे धूमकेतु! अरे कुबेर तो दरिद्र हो चुके थे, रावणने सब लूट लिया था। पर हमारे रामजन्ममें अयोध्यामें जितना बँटा, अयोध्यामें जितनी उनकी न्यौछावर हुई, उसी न्यौछावरको लेकर कुबेरका बैंक फिर चलने लगा, और वे चकाचक हो गये, नहीं तो वे तो दिवालिया हो गये थे। **राम निछावर लेनको सब होहिं भिखारी, बहुरि देत तिमि देखिये मानहुँ धनधारी**। कुबेर कहाँ सदावर्ती बन बैठे? पहले अपना भोजन कर लेते, तब दान देते। फिर **धनदेन समस्त्यागे**का क्या अर्थ है? तो भैया, यहाँ **धनदेन**में तृतीया नहीं है। **धनदेनसमः** एक शब्द है। **धनदस्य कुबेरस्य इनः स्वामी इति धनदेनः शङ्करः** और **धनदेनः शङ्कर एव समो यस्य स धनदेनसमः**, दानमें केवल शङ्कर भगवान् रामजीकी कुछ समता कर सकते हैं और कोई नहीं कर सकता। धनदका *इन* माने स्वामी अर्थात् शङ्कर ही जिनकी कुछ समानता कर सकते हैं, और कोई नहीं कर सकता है। यहाँपर बहुव्रीहि हुआ है। इतना बड़ा दानी कौन होगा भला सरकार! आप बहुत बड़े त्यागी हैं। भुशुण्डिजीको यही तो सन्देह हुआ था—

किलकत मोहि धरन जब धावहिं। चलौं भागि तब पूप देखावहिं॥

(मा. ७.७७.१०)

भगवान् पकड़ने दौड़ते हैं और जब मैं भागता हूँ तो मालपुआ दिखाते हैं कि आओ यार! चकाचक पालपुआ मिलेगा। भुशुण्डिजी खाना चाहते हैं पर रामजी नहीं देते। तब भुशुण्डिजी कहते हैं—"ये कैसे भगवान्? रामजीतो बहुत बड़े दानी हैं और ये तो छोटा-सा मालपुआ भी नहीं देते।" **प्राकृत शिशु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह** (मा. ७.७७ख)। भगवान्‌ने कहा—"मेरे दानमें कोई कमी नहीं, पर एक समस्या है। धर्मसंकट है कि तुम योनितः कौआ नहीं हो, तुम जन्मना ब्राह्मण हो। श्रापके कारण तुम्हारा शरीर कौएका है पर हो तुम जन्मना ब्राह्मण और मैंने क्षत्रिय कुलमें जन्म लिया है। इसलिए क्षत्रिय कुमार होकर ब्राह्मणको कैसे जूठन दूँ? यह मेरा धर्मसंकट है।" इसलिए जब वे चरण पकड़ने जाते हैं तो भगवान् भाग जाते हैं—"अभी तुम ब्राह्मण हो और मैं क्षत्रिय हूँ। यदि चरण छुआऊँगा तो वर्णाश्रम व्यवस्था टूट जायेगी। **चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम्** (भ.गी. ४.१३)—चातुर्वर्ण्यकी व्यवस्था मैंने की है।"

भुशुण्डिजीने कहा—"मुझे तो दोनों ही करना है आपके चरण भी छूने हैं और आपकी जूठन भी लेनी है।" भगवान्‌ने कहा—"फिर तो तुम्हें क्षत्रिय बनना पड़ेगा।" "एक बार श्राप दिया था तो कौआ बना, अब कैसे क्षत्रिय बनूँ?" भगवान्‌ने कहा—"इसका एक उपाय है। क्षत्रिय बननेकी परिभाषा है कि जो क्षत्रियके पेटसे जन्म लेगा, वह क्षत्रिय हो जायेगा।" भुशुण्डिजीने कहा—"क्षत्राणी कहाँसे पाऊँ?" तो भगवान्‌ने कहा—"चलो तुम्हारे लिये मैं ही माता बन जाता हूँ।" **त्वमेव माता च पिता त्वमेव**—भगवान् ही माता, भगवान् ही पिता हैं। "जैसे मैयाके पेटसे बालक जन्म लेता है, वैसे ही तुम्हारे लिये मैं माता बन जाता हूँ।" **बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं** (मा. ७.८२.२)—भुशुण्डिजी भगवान्‌के मुखमें और फिर पेटमें चले गये। दो घड़ीतक पेटमें रहे और फिर निकल आये। भगवान्‌ने कहा—"अब तुम क्षत्रिय हो गये। अब तुम मेरी जूठन खा सकते हो और अब मेरे चरण छुओ।"

बोलिये भक्तवत्सल भगवान्‌की जय।

मेरे इस कथनसे कोई यह अर्थ न लगाये कि जगद्गुरु ब्राह्मणवादी हैं। मैं ब्राह्मणवादी कदापि नहीं हूँ, परन्तु पहले मैं ब्राह्मण हूँ फिर चाहे जो कुछ रहूँ। ब्राह्मण माने क्या होता है? **ब्रह्म वेदमधीते तज्जातीय इति ब्राह्मणः** जिसकी वंश परम्परामें वेदका अध्ययन हो, उसको ब्राह्मण कहते हैं। वैदिक अध्ययन हमारे रक्तमें प्रवाहित हो रहा है।

एतावता, मैं यह निवेदन कर रहा था कि **कृपा करहु रघुबीर** (मा. १.२१०) आप जैसा कोई त्यागी नहीं हो सकता सरकार! आप सबसे बड़े त्यागी हैं। आपके बापने आपके जन्मपर गजदान किया—

गज रथ तुरग हेम गो हीरा। दीन्हे नृप नानाविधि चीरा॥

(मा. १.१९६.८)

और ये तो **चरनकमल रज चाहती**। यहाँपर यह एक व्यङ्ग्य है कि आपके बाप तो गजका दान करते रहे और आप उनके कुलमें जन्म लेकर इतने कंजूस कि ब्राह्मणीको रज भी नहीं दे रहे हैं? भगवान्‌ने कहा—"महाराज! आप एक बात बताइये कि अहल्या मेरे चरणकमलकी रज क्यों चाह रही हैं?" विश्वामित्रजीने कहा—"इसका बड़ा सटीक उत्तर है कि अहल्या अब समझ गयी हैं कि उनके पतनका कारण क्या है? उनको अब पूर्ण बोध हो गया है।" यह हमें और आपको स्पष्ट हो गया है कि जब भी बुद्धि सकाम कर्ममें फँसती है तो उसका पतन हो जाता है। इन्द्र और कुछ नहीं है, सकाम कर्म ही तो है। सकाम कर्मका एक रूप ही इन्द्र हो गया। और काम उत्पन्न होता कहाँसे है? कामके बापका नाम है रजोगुण। श्रीमद्भगवद्गीताके तृतीय अध्यायके उत्तरार्धमें अर्जुनने एक बड़ी सुन्दर जिज्ञासा की और उस जिज्ञासामें भगवान्‌को वार्ष्णेय कहा। **वृष्णिः पाण्डवचन्द्रयोः** मेदिनीमें लिखा है। "हे वार्ष्णेय!" *वृष्णाः पाण्डवास्तेषामयं वार्ष्णेयः*। "हे पाण्डवोंके हितैषी! एक बात बताइये—"

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

(भ.गी. ३.३६)

लगता है कि बलपूर्वक किसीके द्वारा लगाये जानेपर व्यक्ति पाप करता है, तो किससे प्रेरित

होता है? क्या पापकी प्रेरणा आप देते हैं? क्या आप पाप करवाते हैं?"

भगवान्‌ने कहा—"मुझे बदनाम मत करो। मैं आगे चलकर पाँचवें अध्यायमें कहूँगा—"

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥

(भ.गी. ५.१५)

"मैं किसीका पाप ग्रहण नहीं करता, मैं किसीका पुण्य ग्रहण नहीं करता।"

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पुण्य गुन दोषू॥

(मा. २.२१९.३)

"फिर कौन पाप करवाता है?" तब भगवान्‌ने कहा—**काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः** (भ.गी. ३.३७)। "रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही पाप करवाता है।" अहल्या समझ गयी हैं कि मैंने इतना बड़ा जो पाप किया है, इसका कारण है काम। इस कामका मेरे मनमें जन्म इसलिए हुआ है कि मुझमें रजोगुण आ गया है। इसी रजोगुणने मेरे अन्दर कामको जन्म दिया और इसीने पाप करवाया अर्थात् पाप रजोगुणका नाती या पोता (पौत्र) है। अतः अहल्या जानती हैं कि काँटेसे काँटेको निकाला जाता है, लोहेसे लोहेको काटा जाता है, विषकी औषधि विष ही बनती है—**विषस्य विषमौषधम्** । इसलिए अपने रजोगुणको निकालनेके लिये मुझे किसी रजको ही खोजना पड़ेगा। अहल्या अपने रजोगुणको नष्ट करनेके लिए आपके चरणकमलकी रजोराशि चाहती हैं—**चरन कमल रज चाहती कृपा करहु रघुबीर** (मा. १.२१०)।

एक बार रहीमजीसे अकबरने विनोद किया। विनोदमें प्रायशः अकबर हिन्दू धर्मको अपमानित करनेकी ही सोचा करता था। बीरबल तो उनको बहुत अच्छा-अच्छा उत्तर देते थे, वे तो आनन्द ही करवा देते थे। बीरबलके उत्तरसे तो बेचारे अकबर हैरान रह जाते थे, मुँहकी खानी पड़ती थी। एक बार उसने बीरबलसे पूछा—"बताओ दुनियामें कितने वर होते हैं?" बीरबलने सहजतासे कहा—"दो वर तो हमने सुने हैं—सीतावर और राधावर।" अकबरने कहा—"क्या अकबर नहीं सुने हो?" बीरबलने कहा—"यदि ऐसे ही बरोंकी गिरती करोगे तो 'गोबर' भी तो सुना है।" इस प्रकार बीरबल तो बड़े सुन्दर-सुन्दर उत्तर देकर आनन्द कर देते थे। पर रहीम ऐसा नहीं कर सकते थे क्योंकि वे अकबरके सेनापति थे; यद्यपि रहीमजी हिन्दू धर्मके प्रति बहुत आकर्षित थे। एक बार अकबरने कहा—"रहीम, देखो हिन्दू लोग कितने मूर्ख होते हैं कि इतने अशिष्ट जानवर हाथीको उन्होंने प्रथम पूज्य बना डाला। अरे धूमकेतुको चाहे कितना नहलाओ-धुलाओ, सूँड़से मिट्टी भरकर पूरे शरीरको गन्दा कर लेता है। इस मूर्खकी लोग गणपति जैसी पूजा करते हैं। द्वारचारपर पहले इसकी गणपति जैसी पूजा करते हैं। द्वारचारपर पहले इसका टीका होता है और यह मूर्ख क्षण भरमें पूरे शरीरको धूलसे भर देता है।" रहीमने कहा—"महाराज, हिन्दुओंका दर्शन बहुत गम्भीर है, इसको आप नहीं समझ पायेंगे।"

अकबरने कहा—

धूरि धरत निज सीसपर कहु रहीम केहि काज।

तब रहीमजीने कहा—

जेहि रज मुनि पतनी तरीं सोइ ढूँढत गजराज॥

"आप नहीं समझ पाये महाराज! गजराज अपने मस्तकपर इसलिए धूल फेंक रहा है क्योंकि वह सोचता है कि भारतमें वो धूल कहीं न कहीं होगी, जिस धूलका स्पर्श कर अहल्याजी तर गयीं। एक बार वही कण मुझे भी मिल जाता तो मैं भी तर जाता! अत: अपने तरनेके लिये, अपना उद्धार करनेके लिए वह उसी धूलकी खोजमें अपने सिरपर धूल फेंकता रहता है। अभीतक भले सफल नहीं हुआ, पर उसका उद्देश्य बहुत सुन्दर है। इसीलिए उसको प्रथम पूज्य माना जाता है।" एतावता, विश्वामित्रजीने कहा—"सरकार! **कृपा करहु रघुबीर**।"

(२) **दयावीर**—"आप दयामें भी वीर हैं। अहल्याका दु:ख देखकर आप दु:खी भी हो गये तो दया कीजिये सरकार! अपनी दयालुताका परिचय दीजिये और इसका पाप दूर कीजिये।"

(३) **विद्यावीर—विद्यावीरो विचक्षण:**—"सरकार आप विद्यावीर भी हैं और इसपर अविद्या आ गयी है।" **अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते** (ई.उ. ११)। "सरकार इसी लीलामें मैंने आपको दोनोंके साथ देखा। अविद्या भी देखी और विद्या भी देखी। ताटकाको आपने मारा वो साक्षात् अविद्या थी। ताटकाको मारकर आपने मेरा मरण-भय भी छुड़ा दिया और मेरी विद्या लेकर मुझे अमृत पीनेका अधिकारी बना डाला"—**बिद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्हीं** (मा. १.२०९.७)। "तो हे सरकार! आप अपनी ब्रह्मविद्यासे अहल्याकी अविद्या हर लीजिये।" **कृपा करहु रघुबीर**। "सरकार! इसमें पाँचों अविद्याएँ आ गयी हैं—इसमें तम भी है, तामिस्त्र भी है, अन्धतामिस्त्र भी है, मोह भी है और महामोह भी है। अत: इसपर कृपा करिये सरकार!" विश्वामित्रजीने कहा—"सरकार! आपके चरण कमलकी रज साधारण नहीं है। यह पराविद्या है, यह ब्रह्मविद्या है और यह ब्रह्मविद्या जब अहल्याके सिरपर पड़ेगी तो इसकी अविद्या समाप्त हो जायेगी।"

(४) **पराक्रमवीर**—"आप पराक्रममें महावीर हैं सरकार—**पराक्रममहावीर:**। इतना बड़ा पराक्रमी कोई नहीं हो सकता। अपने हाथसे सुबाहु और ताड़काको मारा। यदि आपके हाथ इतना बड़ा कार्य कर सकते हैं तो आपके चरण भी तो कुछ काम करेंगे। सरकार आप अपने चरणकमलसे अहल्याका कल्याण कीजिये।" भगवान् थोड़ी देरतक चुप रहे फिर बोले—"कैसे कल्याण करूँ? यह तो शिला है और यदि मैं शिलापर चरण रखूँगा तो हो सकता है कि मेरे चरणोंको पीड़ा हो?" विश्वामित्रजीने कहा—"हम आपके चरणोंके बारेमें जानते हैं। हमने आपके चरणोंमें चार रेखाएँ देखी हैं—"

सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दं वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम्।
उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवालज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम्॥

(भा.पु. ३.२८.२१)

"प्रभो! आपके चरणोंमें वज्रकी रेखा है और आप गीतामें कहते हैं कि **आयुधानामहं वज्रम्** (भ.गी. १०.२८) आयुधोंमें वज्र आप हैं। अत: आप आज पराक्रम दिखाइये और अहल्याकी पाप शिलाको समाप्त कर दीजिये। इस शिलाको इन्द्रका वज्र तो समाप्त कर नहीं सकता क्योंकि इन्द्रके ही कुकर्मसे यह शिला बनी है। इसलिए हे सरकार, आज एक काम करिये कि अपने चरणकमलका स्पर्श करके, अपने चरणके अँगूठेमें बनी हुई वज्रकी रेखासे

अहल्याकी पाप-शिलाको चूर-चूर कर दीजिये।" **कृपा, करहु** यहाँपर पाँच अक्षर हैं।

(५) **धर्मवीर**—"पाँचवीं बात सरकार आप धर्मवीर भी हैं। इतना बड़ा धार्मिक कोई नहीं हो सकता। मनुजी कहते हैं कि कोई धर्मको आहत करता है तो धर्म उसको मार डालता है, यदि कोई धर्मकी रक्षा करता है तो धर्म उसकी रक्षा करता है—**धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः** (म.स्मृ. ८.१५)। दयाके समान कोई धर्म नहीं हो सकता, आप दया कीजिये। बहुत बड़ा धर्म होगा सरकार!" भगवान्‌ने कहा—"और क्या धर्म करूँ?" विश्वामित्रजीने कहा—"सरकार! ये गौतमकी धर्मपत्नी हैं और गौतमने धर्मकी एक व्याख्या की है—**यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः** (वै.सू. १.१.२) अर्थात् धर्म उसे कहते हैं जिससे अभ्युदय भी हो और निःश्रेयस भी। धर्म उसे कहते हैं जिससे संसारमें सुख मिले और अन्तमें परलोक मिल जाए; जिससे दोनों लोक बन जाएँ। जिससे गृहस्थी भी बने और विरक्ति भी बने। कुछ लोग तो जब मेहरारू लात मारती है, तब बाबा बन जाते हैं और कुछ लोग बाबा बननेके बाद भी घरका मोह नहीं छोड़ पाते। वास्तवमें धर्म वह है, जिसका दोनों चकाचक हो। जब व्यक्ति गृहस्थ रहे तो उसकी मर्यादाका पालन करे और जब वह विरक्त हो जाए तो उसकी मर्यादाका पालन करे। दोनों लोकोंमें जो समन्वय करता है, वही धर्म होता है। सरकार! अहल्याको अब दोनों ही चाहिए—अभ्युदय भी चाहिए और निःश्रेयस् भी चाहिए।" इसलिए—**कृपा करहु रघुबीर**।

"हे सरकार! आप रघुवीर हैं न! ये तो **चरनकमल रज चाहती**।" यहाँ एक विनोद कर रहे हैं और कहते हैं—"सरकार! आगे चलकर आपका विवाह होने वाला है। अभी आपने संहार किया है, राक्षसोंको मारा है तो हो सकता है कुछ पाप लगा हो। आप एक पुण्य कर दीजिये। नियम यह है कि जो जैसा करता है, उसे वैसा ही मिल जाता है। सरकार! अहल्या हजारों वर्षोंसे गौतमसे बिछुड़ी हुई हैं तो बिछुड़ी हुई पत्नीको यदि आप उनके पतिसे मिला देंगे तो जो आप ग्यारह वर्षसे सीताजीसे बिछुड़े हुए हैं साकेतलोक से। इस पुण्यसे सीताजी आपको मिल जायेंगी। इसलिए—**कृपा करहु रघुबीर**। शास्त्रका नियम है कि जो किसीको भोजन खिलाता है, उसे भोजन मिल जाता है। तो सरकार आप बिछुड़े हुओंको मिला दीजिये, आप भी सीताजीसे बिछुड़े हुए हैं, तुरन्त फल मिलेगा—*साँझे देय सकारे पावे, पूत भतारके आगे आवे*। सरकार देर नहीं लगेगी। मानो विनोद कर रहे हैं कि आज आप बिछुड़ी हुई अहल्याको गौतमसे मिला दीजिये, कल ही आपको बिछुड़ी हुई सीताजी मिल जायेंगीं।"

॥ बोलिये भक्तवत्सल भगवान्‌की जय ॥

कितना करुण दृश्य है यहाँ का! "हे रघुवीर, अब आप कृपा कीजिये। आप रघुवीर हैं।" रघुवीर माने क्या होता है? संस्कृतमें रघु माने होता है जीव। **लङ्घन्ति पापपुण्यानि ये ते रघवः**—जो पाप और पुण्यका लङ्घन करते हैं उन्हें रघु कहते हैं। *रघुवीर*में रघु माने तो हो गया जीव। इसमें *वि* उपसर्ग लगा है और *ईर्* धातुका अर्थ है प्रेरणा अर्थात् *रघून् विशेषेण ईरयति इति रघुवीरः*—अर्थात् जो जीवोंको विशिष्ट प्रेरणा देते हैं। "इसलिए इसपर आप कृपा करें।" इसपर महर्षि वाल्मीकिने एक बहुत सुन्दर वाक्य कहा और लगता यह है कि *वाल्मीकीय रामायण*में पहली बार भगवत्त्वका प्रयोग भगवान्‌के लिये किया गया है, बहुत मधुर है।

तदागच्छ महातेज आश्रमं पुण्यकर्मणः।
तारयैनां महाभागामहल्यां देवरूपिणीम्॥

(वा.रा. १.४९.११)

अर्थात् भगवान् रामसे विश्वामित्रजी कह रहे हैं—**तदागच्छ महातेज**। यहाँ सम्बोधन है **महातेज**—*महत्तेजो यस्य स महातेजाः, तत्सम्बुद्धौ हे महातेजस्*। हे महातेजस्विन। **तदागच्छ** पुण्यकर्मा गौतमके आश्रममें आइये। भगवान् कहते हैं—"वहाँ क्या करूँ?" तो विश्वामित्रजीने कहा—**तारयैनाम्**। *एनां तारय,* इसको तारिये! कैसे कहते हैं कि *वाल्मीकीय रामायण* में भगवान् रामको ब्रह्म नहीं माना गया? क्या मनुष्य किसीको तार सकता है? क्या जीव किसीको तार सकता है? एक बात कहनेमें मैं बहुत अधिक प्रसन्न हो रहा हूँ और मैं कोई पक्षपात भी नहीं कर रहा हूँ कि पूरे मन्त्रोंमें किसी मन्त्रके साथ *तारक* नहीं जुड़ता—चाहे वह शैव हो, गाणपत्य हो, शाक्त हो, या चाहे सौर हो। इसका उत्तर किसीके पास नहीं है, परन्तु हमारे यहाँ उत्तर भारतमें अनपढ़ महिलासे भी पूछियेगा तो वह कहेगी कि हमको राम-तारक मन्त्र मिला है। *तारक* माने होता है तारने वाला और तारने वाले केवल भगवान् राम हैं। अतः कहते हैं—**तारयैनाम्**। कितना अच्छा वाक्य! हे नाथ, इसको आप तार दीजिये—*एनां तारय*। यह पतित हो चुकी है, नरकमें जा रही है अतः इसको तारिये सरकार! यहाँ **तारय** कहा है *पावय* नहीं कहा। **तारय** माने संसार-सागरसे इसको पार कर दीजिये। "यह पापके सागरमें पड़ी है सरकार!" भगवान् कहते हैं—"क्यों?" तो कहते हैं—**महाभागाम्**। यहाँ **महाभागाम्** शब्द बहुत मधुर है। भगवान् पूछ सकते हैं—"इनको मैं क्यों तारूँ?" कहते हैं—नहीं, यह है—**महाभागाम्**। यहाँ **महाभागाम्** का पहला अर्थ है—**महत् अभागं यस्याः**—यह बहुत अभागिनी है, अतः इसे तारना पड़ेगा सरकार! और दूसरा अर्थ तो और भी अच्छा है—*महीयते इति महा* जिनकी पूजाकी जाती है, उन सीताजीको महा कहते हैं; अथवा—*मही अस्ति माता अस्याः इति महा*—मही जिसकी माता है उसको महा कहते हैं। **अर्श आदिभ्यो अच्** (पा.सू. ५.२ १२७) और **यस्येति च** (पा.सू. ६.४.१४७)से लोप कर दिया तो बन गया *महा*। ऐसी पृथ्वी-कन्या सीता। *तां महां सीतां भजते इति महाभागा, तां महाभागाम्*। ऐसी पृथ्वी-कन्या सीताजीका जो भजन करती है, वह महाभागा है। यह सीताजीका भजन करती है सरकार! जब पतिसे तिरस्कृत हुई तो यह निरन्तर सीताजीके अष्टाक्षरका जप करती है—**श्रीसीता शरणं मम। श्रीसीता शरणं मम।** इति नवीना व्याख्या। *मही पृथ्वी माता अस्ति अस्याः इति महा अर्थात् महीतनया तां महां पृथ्वीपुत्रीं सीतां भजते इति महाभागा*। ये सीताजीका भजन करती हैं सरकार, इसलिए **तारयैनां महाभागाम्**।

देखिये, अब आपको सिद्धान्त समझाऊँ कि सीताजीका भजन करने वालेका तो कल्याण होगा ही होगा। उपासनाके सिद्धान्तोंपर जब चर्चा करते हैं तो हमारे सामने दो-तीन रहस्य बड़े स्पष्ट आते हैं। हमारे सामने रावणका भी इतिहास है और शूर्पणखाका भी इतिहास है। रावण सीताजीको चाहता है और शूर्पणखा चाहती है रामजीको और इधर अयोध्यावासी चाहते हैं सीताजीको और मिथिलावाले चाहते हैं रामजीको। पर अब आप देखिये कि इन दोनोंमें अन्तर क्या है? अयोध्यावासी सीताजीको चाहते हैं तो सीताजी उनके घरकी बहूरानी बनकर आ गयीं

और अयोध्यावासियोंने ललकार कर कहा—

आज मुदित अवध नर नारि सजनी।
चारों बहुओंमें सिया सुकुमारि सजनी॥

क्या कारण है कि अयोध्याको सीताजी मिलीं और सीताजीको तो अयोध्यावासी भी चाहते हैं और रावण भी चाहता है। कहाँ तो अयोध्यामें सीताजी बहूरानी बनकर चली आयीं और वहाँ—

कालराति निशिचर कुल केरी। तेहिं सीता पर प्रीति घनेरी॥

(मा. ५.४०.८)

और ऐसा भी नहीं है। यदि सीताजीको अयोध्यावासी प्रणाम करते हैं तो रावण भी प्रणाम करता है, ऐसा कुछ नहीं है, जैसे—

आवत देखि बरातिन सीता। रूपराशि सब भाँति पुनीता॥

(मा. १.३२३.२)

किन्तु—

सबहिं मनहिं मन किये प्रनामा। देखि राम भये पूरनकामा॥

(मा. १.३२३.३)

यदि बरातियोंने भी प्रणाम किया तो रावणने भी प्रणाम किया। यदि बरातियोंने मनमें प्रणाम किया तो रावणने भी मनमें प्रणाम किया। यदि **सबहिं मनहि मन किए प्रनामा** तो रावणने **मन महँ चरन बंदि सुख माना** (मा. ३.३०.८) फिर क्या कारण है, बरातियोंकी ही भाँति रावणने भी सीताजीको चाहा परन्तु अयोध्याको कितना सौभाग्य मिला कि यही सीता अयोध्याके लिए मङ्गलरात्रि बनकर आयीं और यही सीता रावणके लिए कालरात्रि बनीं। परिणाममें भेद क्यों आ रहा है? क्या आपने कभी इसपर विचार किया? सीताजीमें कोई अन्तर नहीं पड़ा है। उधर देखिये, मिथिलावाले भी रामजीको चाहते हैं; मिथिलानियाँ भी रामजीको चाहती हैं और शूर्पणखा भी रामजीको चाहती है। ठीक है तुलसीकृत रामायणमें मिथिलानियोंके मनमें रामजीके प्रति मधुर भाव नहीं है, परन्तु अन्य ग्रन्थोंमें उनका मधुर भाव है—

अनब्याही फूली फिरें ब्याही मींजत हाथ।
गौनेकी मौनी भईं रूप देखि रघुनाथ॥

मिथिलावाले अपने संबन्धी लगते हैं, इसलिए बहुत पोस्टमॉर्टम करना अच्छा नहीं लगता। पर करें क्या; उनकी करतूत ही ऐसी है तो कहना ही पड़ता है! जितनी अनब्याही थीं, सब फूली फिर रही थीं। क्या मेक-अप करके कि हमें स्वीकार लेंगे! पर हमारे राघवने सबको अँगूठा दिखा दिया और **ब्याही मींजत हाथ**—जिनका ब्याह हो गया वे तो हाथ मलती रह जाती हैं कि अब तो नहीं स्वीकारेंगे, पर शायद स्वीकार ही लें। और जिनका द्विरागमन हो गया, गौनेवाली, वे तो चुप ही रह गयीं; कुछ कहने योग्य ही नहीं रह गयीं। जो कुछ था सब चौपट ही हो गया। सारी मिथिलाकी नारियाँ भगवान् रामको चाहती हैं। सब सखी भावमें आनन्द करती हैं। सौन्दर्य वे भी चाहती हैं और सौन्दर्य शूर्पणखा भी चाहती है। मिथिलाकी नारियाँ भगवान् रामको चाहती हैं तो भगवान् रामने कालान्तरमें उन्हें गोपी बनाया। भगवान् ने कहा—"रामावतारमें तो कोई बात ही न करो, एकनारीव्रत हूँ मैं।" इसलिए मैं कभी-कभी विनोद करता हूँ कि—

राधा को रिझाना खेल भी है, (किन्तु) सीताको मनाना खेल नहीं।
गिरिवर को उठाना खेल भी है, गिरिधरको उठाना खेल नहीं॥

आलङ्कारिक वाक्य है। कन्हैया! यदि तुम गिरिवरको उठा सकते हो तो हमारे राघव तो *गिरिधर*को भी उठा लेते हैं। इसलिए राधाजीको मनाना सरल है। भगवान् जानते हैं—"राधाजी रूठेंगी तो दूसरी आ जायेगी। कहीं ललिता मिलेगी, कहीं विशाखा मिलेगी पर सीताजीको मनाना बहुत कठिन है।" रामजी यह बात जानते हैं कि यदि सीताजी रूठ जायेंगी तो फिर कोई विकल्प ही नहीं बचेगा। राघवके लिये सीताके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं। राधाका विकल्प है, पर सीताका कोई विकल्प नहीं। सीताजी निर्विकल्प हैं। देखिये, मिथिलानियाँ भी रामजीको चाहती हैं और शूर्पणखा भी चाहती है पर मिथिलानियाँ तो कमसे कम गोपी बनीं। पर शूर्पणखाकी नाक कटी और रावणका सिर कटा। मिथिलानियोंकी नाक ऊँची हुई और अयोध्यावासियोंका सिर ऊँचा हुआ। इसका क्या कारण है? इसका एक ही कारण है कि अयोध्यावासी सीताजीको चाहते हैं, परन्तु वे सीताजीको रामजीके माध्यमसे चाहते हैं और रावणने यही गलतीकी है कि रावण सीताजीको चाहता है पर रामजीका माध्यम नहीं लेता, इसीलिए उसका सर्वनाश हो गया। यदि सीताजीके चरणोंमें प्रेम चाहिए तो रामजीको माध्यम बनाना पड़ेगा। और यदि रामजीके चरणोंमें प्रेम चाहिए तो सीताजीको अनुकूल करना पड़ेगा। जबतक सीताजी कृपा नहीं करेंगीं तबतक रामजीकी कृपा जीवको प्राप्त नहीं होगी—यह सिद्धान्त है। देखिये, रावणने सीताजीको चाहा पर रामजीको माध्यम नहीं बनाया, उनसे विरोध करके रावणने सीताजीको चाहा, तो उसका सर्वनाश हो गया। और अयोध्यावासी रामजीका विरोध करके नहीं, प्रत्युत रामजीको अपना बालक बनाकर, रामजीकी कृपासे, सीताजीकी प्राप्ति मानते हैं, इसीलिए उन्हें सीताजी मिल गयीं। मिथिलावासी रामजीको किशोरीजीकी कृपासे चाहते हैं। वे तो कहते हैं—**लाडली कृपासे पइलौं ऐसन मेहमान हे**।

सीताजीकी कृपासे रामजी मिलते हैं। मिथिलानियोंने सीताजीकी कृपाको माध्यम बनाया और कहा—"हे जनकनन्दिनीजी! आप हमें रामजीको दिला दीजिये। आप कृपा कर दीजिये, जिससे हमें रामजी प्राप्त हो जाएँ!" और शूर्पणखाने यही गलती की कि सीताजीको खाने दौड़ी, सीताजीकी कृपाका उसने सहारा नहीं लिया, इसलिए शूर्पणखाके नाक-कान कट गये और मिथिलानियोंकी नाक ऊँची हो गयी। इसलिए यहाँ भी **तारयैनां महाभागामहल्यां देवरूपिणीम्** (वा.रा. १.४९.११) इसको तारना पड़ेगा क्योंकि ये हमारी सीताजीका भजन कर रही हैं। देखिये, हम लोग श्रीवैष्णव हैं। हम तो सीताजीके माध्यमसे भगवान्‌को चाहते हैं क्योंकि जबतक सीताजीकी कृपा नहीं होगी, तबतक जीव रामजीको प्राप्त कर ही नहीं सकता। सीताजी पुरुषकार हैं। घटक हैं सीताजी। ब्रह्म और जीवके बीच संबन्ध कराने वाली हैं—यह सिद्धान्त है। इसलिए हम पहले सीता फिर राम कहते हैं और जहाँ केवल राम कहते हैं, वहाँ भी सीताजी रहती हैं।

रकाराद्राघवो ज्ञेयो मकाराल्लक्ष्मणः स्वराट्।
तयोः संयोजनार्थाय सीता आकार उच्यते॥

र + आ + म = राम। *र* माने राम, *आ* माने सीताजी और *म* माने लक्ष्मण। तो राम और लक्ष्मणके बीचमें सीताजी *आ*कारके रूपमें विराजती हैं।

उभय बीच सिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥

(मा. २.१२३.२)

रामायणजीमें बारह बार *श्री* शब्दका प्रयोग है। इसपर फिर कभी चर्चा करूँगा, अभी नहीं। यह *अरण्यकाण्ड*का प्रयोग है। श्रीराम और श्रीलक्ष्मणके बीचमें सीताजी कैसी सुन्दर लग रही हैं? तो कहते हैं—**ब्रह्म जीव बिच माया जैसी**—जैसे ब्रह्म और जीवके बीचमें माया। माया माने भगवत्कृपा। **माया कृपायां लीलायां मूलाज्ञाने छले तथा** माया माने भगवान् की कृपा। जैसे ब्रह्म और जीवके बीचमें भगवान्‌की कृपा सुन्दर लगती है, उसी प्रकार श्रीराम और श्रीलक्ष्मणजीके बीचमें सीताजी शोभित होती हैं।

देखिये, **होनहार बिरवानके होत चीकने पात**—जो होनहार होते हैं, उनका प्रारम्भसे लक्षण पता चल जाता है। भगवान्‌के भक्तका व्यक्तित्व तो बचपनसे निखरता है। हम लोगोंको इतना संस्कार है। मैं पूरी चर्चा नहीं करूँगा। आप लोग *स्वर्णयात्रा*में पढ़ लीजियेगा कि मुझको तो आठ वर्षकी अवस्थामें पूरी रामायण कण्ठस्थ हो गयी। तो बताओ ये क्या है? भगवान् को कुछ कराना होगा, भगवान्‌की ही कृपा होगी। जब भगवान्‌की कथामें मन न लगे तो जानो कि अभी हमारा पाप शेष है। अभी बहुत भोगना पड़ेगा। एतावता, भगवान्‌की कृपाकी सबसे बड़ी भूमिका यही है कि वह जीवको परमात्मापर आकर्षित कर दे और परमात्माको जीवपर द्रवित कर दे, पिघला दे। कृपा तो माँका काम करती है। माँ बेटेसे कहती है कि पिताका आदर करो और पितासे कहती है कि बेटेको प्यार करो। बेटेको सत्कारकी प्रेरणा देती है और पिताको प्यारकी प्रेरणा देती है, यह है भूमिका माँकी। माँ स्वयं भले ही बेटेको मार दे, पर पापाजी मार दें तो महाभारत हो जायेगा। एक थप्पड़ पिताजी मारके देखें तो यही कहेगी—"तुम कौन होते हो मारने वाले?" माँ चाहे जितना मार ले, पर पिता नहीं मार सकता। माँका अपना एक व्यक्तित्व है। पिता का, बेचारेका, कोई व्यक्तित्व नहीं। बेटेपर दस बटा ग्यारह (१०/११) अधिकार तो माताका होता है और एक बटा ग्यारह (१/११) अधिकार पापाजीका होता है। बेचारोंका क्या होगा? माने कि पापा बेचारोंकी दुर्दशा देखो! मुझे तो बहुत दया आती है। दिन भर खटें बेचारे, कोल्हूके बैल जैसे काम करें, पैसा भी दें और अधिकारको जब चैलेंज करो तो श्रुति कहेगी कि तुम्हारा केवल १/११ अधिकार है—**पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते**।

आज हमारे यहाँ लोग बराबर वकालत कर रहे हैं कि महिलाओंको बराबरीका अधिकार दो। अरे! क्या बराबरीका अधिकार दें, हम तो पहले ही दस गुना अधिक अधिकार देकर बैठे हैं। एतावता, गोस्वामीजीने बहुत गरजकर कहा—

सिया स्वामिनी हैं मलकिन हमारी फिकर हमें काहे की॥
जाके ससुर नृपति श्रीदशरथ सासू कौशल्या महतारी।
फिकर हमें काहे की सिया स्वामिनी हैं मलकिन हमारी ...॥
देवर भरत लखन रिपुसूदन जाके स्वामी राम धनुधारी।
फिकर हमें काहे की सिया स्वामिनी हैं मलकिन हमारी ...॥
ऋद्धि सिद्धि चरणनकी दासी हनुमत हैं प्रेमके भण्डारी।
फिकर हमें काहे की सिया स्वामिनी हैं मलकिन हमारी ...॥

तुलसीदास कलिजुगका करिहै राखि लेहैं जनकदुलारी।
फिकर हमें काहे की सिया स्वामिनी हैं मलकिन हमारी ...॥
बहूरानी हैं मलकिन हमारी फिकर हमें काहेकी ही।
फिकर हमें काहे की, फिकर हमें काहे की॥

॥ बोलिये जनकनन्दिनीजूकी जय ॥

इसलिए, राजराजेश्वरी, त्रिपुरसुन्दरी, नित्य-निकुञ्जेश्वरी, श्रीचित्रकूट-विहारिणी, उद्भव-स्थिति-संहार-कारिणी, सकल-क्लेश-हारिणी श्रीरामचन्द्र-मुखचन्द्र-चारु-चञ्चल-चक्षुश्चकोरी श्रीमिथिलेश-किशोरी जनकनन्दिनी, जगज्जननी, जनकतनया, जनकाधिराजकन्या, परमवदान्या, धरणिधन्या, धारिणी, शैरध्वजी, मिथिलाधिराज-कीर्ति-वैजयन्ती, साक्षात् चञ्चल-चाकचिक्य-चकिती-कृतावलोचक-लोचन-निचया, परिकलित-रामप्रेमप्रणया, श्रीमन्माद्यन्मनोज्ञमधुव्रत-परमहंस-परिव्राजकाचार्य-निकुरम्ब-कदम्ब-चोचुम्ब्यमान-श्रीमच्चरणारविन्दा, भगवती जनकनन्दिनी यदि हमारी साक्षात् पुरुषकार रूपमें विराजमान हों तो हमको कुछ सोचनेकी आवश्यकता नहीं होती। अतः—**तारयैनां महाभागामहल्यां देवरूपिणीम्** (वा.रा. १.४९.११)। राघव! *एनां तारय*। इनको तारिये! कितना सुन्दर वाक्य है! हे राघवजी, इसको तारिये! यहाँ टीकाकार तो **देवरूपिणीम्** माने देवताके समान रूपवाली कहते हैं पर यदि वह देवताके समान रूपवाली है ही तो फिर उसको तारनेकी आवश्यकता ही क्या है? इसलिए, यहाँ टीकाकारोंकी गलत व्याख्या है। यहाँपर **देव** सम्बोधन भगवान् राम का है कि हे देव! हे सच्चिदानन्द आनन्दघन सरकार! *एनां महाभागां रूपिणीमहल्यां तारय*—इस रूपिणी अहल्याको तारिये। रूपिणी माने क्या? क्या रूपवतीको तारा जायेगा? अहल्या रूपवती नहीं है, फिर यहाँ रूपवतीका क्या अर्थ करोगे? यहाँ व्याकरणका सहारा लेना पड़ेगा। यहाँपर *इनि* प्रत्यय निन्दाके अर्थ में है—

भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायिने।
संसर्गेऽस्ति विवक्षायां भवन्ति मतुबादयः॥

(भा.पा.सू. ५.२.९४)

रूपिणी माने *निन्दितं रूपं यस्याः सा रूपिणी*। इसका रूप निन्दित हो गया है सरकार! यह है व्याकरण और यह है *वाल्मीकि रामायण*! **निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता** (कु.स. ५.१)। रूपकी निन्दा तब होती है, जब उसका पति उससे प्रसन्न नहीं होता। पार्वतीजीने अपने रूपकी निन्दा की। *दुल्हन वही जो पिया मन भाये*—दुल्हन वही होती है, जो पतिको सुन्दर लगे। पतिको ही जब सुन्दर नहीं लग रही तो फिर दुल्हन कैसी? इसलिए—

तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता॥

(कु.स. ५.१)

"अपने सामने कामदेवको जलाते हुए (**तथा समक्षं दहता मनोभवम्**) शिवजीके द्वारा (**पिनाकिना**) जब पार्वतीका मनोरथ भग्न कर दिया गया (**भग्नमनोरथा**) तब पार्वतीने अपने रूपकी निन्दा हृदयसे की (**निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती**)। धिक्कार है मेरे रूपको, जिससे मेरे प्राणधन प्रभु नहीं प्रसन्न हुए! (**प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता**) सुन्दरता जो होती है वो

प्रियेषु सौभाग्यफला अर्थात् यदि सुन्दरताका मूल्याङ्कन पति कर ले तब सुन्दरता, सुन्दरता होती है।"

इसलिए, हे सरकार! अहल्याजीका रूप तो है पर निन्दित रूप है। इस रूपसे क्या लाभ, जिस रूपसे अहल्याका चरित्र ही नष्ट कर दिया गया। एतावता—

गौतमनारी श्रापबश उपलदेह धरि धीर।
चरनकमल रज चाहती कृपा करहु रघुबीर॥

(मा. १.२१०)

हे सरकार! भक्तकी निन्दा नहीं होनी चाहिए। अब कृपा कीजिये। **तारयैनाम्** इनको तार दीजिये सरकार!

अब प्रभु अपने प्रभुत्व का प्रयोग कर रहे हैं। आहा! इतना प्रेम क्यों? प्रथमत: तो कि ये जनकपुर की पुरोहितानी हैं, इसलिए मेरी माँ हैं। और द्वितीयत:, जो सबसे प्रमुख है, यह है कि **एकसंबन्धिकज्ञानमपरसंबन्धिनं स्मारयति**—एक संबन्धी का ज्ञान दूसरे संबन्धी का स्मरण करा देता है। अहल्या मेरी माताके समान हैं। मेरी माताके नामके समान इनका भी नाम है। मेरी माताका नाम है कौशल्या और इनका नाम है अहल्या, तो मेरी माताके नामका अन्तिम खण्ड इनसे जुड़ा है। अत: इनका अपयश होगा तो मेरी माँके नामका अपमान हो जायेगा। इसलिए शिला समाप्त कर दीजिये। **सुजन सजीवनि मूरि सुहाई** (मा. १.३१.७)। अहल्याजीने संतका आश्रय लिया। कल्याण हो गया। विश्वामित्रजीने कह दिया कि कृपा कीजिये। धनुष-बाण लिए हुए रामजीको देखा—**देखत रघुनायक जनसुखदायक** (मा. १.२११.१)। सामने आ गयीं—**सनमुख हॊइ कर जोरि रही** (मा. १.२११.१)। सामने क्यों आ गयीं? इसलिए कि इसी बाणसे मेरी छातीपर प्रहार कर दीजिये। पर रामजीने कहा—"नहीं, यह धनुष-बाण इसलिए चढ़ाया है कि आज मैंने आपको पहलेकी अपेक्षा करोड़ोंगुनी सुन्दरी कर दिया है। अब यदि इन्द्रकी दृष्टि आपपर पड़ेगी, तो रावणका वध तो पश्चात् होगा इन्द्रका वध अभी कर दूँगा। जो कुछ होगा, होगा।" **सनमुख हॊइ कर जोरि रही** (मा. १.२११.१)। सामने जब आयीं अहल्याजी, तो उनके करोड़ों जन्मोंके पाप दूर हो गये—**सनमुख होइ जीव मॊहि जबहीं, जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं** (मा. ५.४४.२)। प्रेममें अधीर हो गयीं, शरीर पुलकित हो गया, भगवान्के चरणोंमें लिपट गयीं—

अतिशय बड़ भागी चरनन लागी जुगल नयन जलधार बही॥
परसत पद पावन शोकनसावन प्रगट भई तपपुंज सही।

(मा. १.२११.१)

जुगल नयन जलधार बही (मा. १.२११.१)—(१) अहल्याजीकी दोनों आँखोंसे आँसू बहने लगे। (२) जुगल माने अहल्याजी और गौतमजी दोनोंकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। गौतमजी इसलिए रोने लगे कि मैंने श्राप देनेमें कोई संकोच नहीं किया और भगवन्! आपने अनुग्रह करनेमें कोई संकोच नहीं किया। यही तो सामान्य पति और रघुपतिमें अन्तर होता है। (३) अहल्याजीकी भी आँखोंसे आँसू बह गये और रामजी भी रोने लगे—"माँ! भूल हो गयी मुझसे। भूलसे आपके सिरपर मेरे चरण चले गये। माँ! क्षमा कीजियेगा।" (४) अहल्याजी भगवान्के

चरणोंमें लिपट गयीं और रामजी तथा लक्ष्मणजीकी आँखोंसे आँसू बहने लगे।

धीरज मन कीन्हा प्रभु कहँ चीन्हा रघुपति कृपा भगति पाई।

(मा. १.२११.२)

आहाहा! मिल गयी भक्ति।

रघुपतिभगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥

(मा. ७.१२२.७)

सुजन सजीवनि मूरि सुहाई (मा. १.३१.७)। यह कथा बहुत ऐतिहासिक है मित्रो! अत: चलिये! **रघुपति कृपा भगति पाई** (मा. १.२११.२)। मन निर्मल हो गया, वाणी निर्मल हो गयी। अहल्याजी बोलीं—...... **पाहि पाहि शरनहिं आई** (मा. १.२११.२)। हे भगवन्! मेरी भी रक्षा कीजिये और मेरे पतिकी भी रक्षा कीजिये। लक्ष्मणजीने कहा—"आपके इतने क्रूर पति! माना कि दण्ड दिया जाता है, पर ऐसा दण्ड कोई नहीं देता। इतने क्रूर पति ये! फिर भी इनकी रक्षाके लिए आप प्रार्थना कर रही हैं?" अहल्याने कहा—"हाँ सरकार, यदि मेरे पति मुझे श्राप न दिए होते तो आप मुझे कैसे मिलते? बताइये? यदि नारायणके कहनेसे शङ्करजीने विष पीया तो उन्हें बालचन्द्र मिल गये और मैंने अपने पतिके श्रापका विष पिया तो मुझे रामचन्द्र पूर्णचन्द्र मिल गये—"

मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहइ लाभ शंकर जाना॥
बिनती प्रभु मोरी मैं मतिभोरी नाथ न माँगउँ बर आना।
पद पदुम परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना॥

(मा. १.२११.३)

धन्य कर दिया! बहुत सुन्दर प्रकरण है! **सुजन सजीवनि मूरि सुहाई** (मा. १.३१.७) भगवन्! आपके चरणकमलका जो पराग है, उसमें जो प्रेम रूप मकरंद है, मेरा मन उसका पान करे।" भगवान्ने कहा—"चलिये गङ्गा नहा लीजिये।" कहा—"नहीं! आप गङ्गा नहाने जाइये, मैं क्यों जाऊँ? अरे! जिन चरणोंसे गङ्गाजी प्रकट हुईं हैं, वे आपके चरण जब मेरे सिरपर पड़ गये तो मैं गङ्गाजी नहाने क्यों जाऊँ भैया?"

जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई शिव शीश धरी।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपालु हरि॥
ऐहि भाँति सिधारी गौतमनारी बार बार हरिचरन परी।
जो अति मन भावा सो वर पावा गइ पतिलोक अनंद भरी॥

(मा. १.२११.४)

आहा! इस प्रकार **ऐहि भाँति सिधारी** (मा. १.२११.४)—देखिये! यहाँ बताऊँ आपको। यहाँ हम लोग भ्रममें हैं। **ऐहि भाँति सिधारी**का अर्थ यदि किया जाए—*इस प्रकार चली गयी* तो फिर आगे जो **गइ पतिलोक ..** (मा. १.२११.४) कह रहे हैं। तो एक ही बातको दो क्रियाओंसे क्यों कहेंगे गोस्वामीजी? इसलिए **ऐहि भाँति सिधारी** अर्थात् इस प्रकारसे गौतमजीकी पत्नी सिद्ध हो गयीं। **सिधारी** माने सिद्ध हो गयीं। भगवान्ने सारे पाप नष्ट कर दिए अहल्याजीके।

भगवान्‌को बार-बार प्रणाम करके **जो अति मन भावा सो वर पावा** (मा. १.२११.४) जो उनको बहुत अच्छा लगा ऐसा वरदान प्राप्त किया अथवा **वर पावा**—वर माने पति। भगवान्‌से अहल्याजीने कहा—मैं हो गयी १६ वर्षकी और इनकी अवस्था लग रही है ९० वर्षकी; लोग मेरी हँसी उड़ायेंगे, थोड़ा कम कीजिये। भगवान्‌ने कहा—ठीक है ८० वर्षका? अहल्याजीने कहा—नहीं! थोड़ा कम। ७० वर्ष? अहल्याजीने कहा—थोड़ा और कम। ६० वर्ष? जब साठा तब पाठा! अहल्याजीने कहा—थोड़ा और कम। ५० वर्ष? अहल्याजीने कहा—नहीं! अभी दाँत हिल रहे हैं। ४०? अहल्याजीने कहा—नहीं! और कम। ३०? अहल्याजीने कहा—और कम। २०? अहल्याजीने कहा—अब ठीक है। मैं १६ की, ये २० के। अब चकाचक जोड़ी है। हा! हा!! हा!!!

जो अति मन भावा सो वर पावा गइ पतिलोक अनंद भरी॥

सुजन सजीवनि मूरि सुहाई (मा. १.३१.७)। देखिये! रामायणजी और महाभारतजीकी कथामें बहुत अन्तर है। एक ही बात कहकर जल्दी चलता हूँ। रामायणमें भी और महाभारतमें भी इन्द्रने दो महिलाओंसे प्रेम किया। एक महिलासे रामायणमें इन्द्रने प्रेम किया, सम्पर्क किया और एक महिलासे महाभारतमें भी संपर्क किया। आपको ध्यान आ ही गया होगा उस महिला का। पर महाभारतकी महिलाको दण्ड नहीं मिला और रामायणकी महिलाको दण्ड मिला। और अन्तर आ गया। रामायणकी महिलाको भगवान्‌ने अपनी माँ माना और महाभारतकी महिलाको भगवान्‌ने अपनी बुआ माना। अब आप समझ गये होंगे कि वे कौन सी महिला हैं? कुन्ती। कुन्तीसे भी इन्द्रका सम्पर्क हुआ था। रामायणकी महिलामें तो बल्कि गर्भाधान नहीं हुआ पर वहाँ (अर्थात् महाभारतमें) अर्जुन जैसा परम भागवत प्रकट होता है। इसका उत्तर यह है—

(१) पहली बात। रामायणकाल एक बहुत चरित्रप्रधान काल है, वहाँ किसी प्रकारकी क्षमाका कोई अवसर नहीं है। परन्तु महाभारतकालमें सब चल जाता है। जब एक ही पत्नी पाँच पतियोंकी पत्नी बन सकती है, द्रौपदी, तो वहाँ तो चलता है। पर यहाँ नहीं चलता।

(२) और दूसरी बात। रामायणकालमें अहल्याका जो संपर्क है, वह वासनात्मक है। और महाभारतकालमें कुन्तीजीका जो संपर्क है, वह उपासनात्मक है। इन्द्रके संपर्कसे, आशीर्वादसे, उनको अर्जुन जैसा पुत्र चाहिए और वहाँ पति पाण्डुका अनुमोदन है, इसलिए सब ठीक है।

कथा १२: सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि (मा. १.३१.८)

अब बारहवीं कथा—**सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि** (मा. १.३१.८)। गोस्वामीजी कहते हैं कि यह कथा तो इस वसुधातलपर, इस भूमण्डलपर, **सुधा तरंगिनी** है; अमृतकी नदीके समान है। वाह! क्या बात है! अमृतकी **तरंगिनी** माने नदी—**सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि** (मा. १.३१.८)। यह कथा १५१ दोहोंमें है, बालकाण्डके २१२वें दोहेकी पहली चौपाईसे प्रारम्भ होती है और ३६१वें दोहेके सोरठेतक जाती है। **चले राम लछिमन मुनि संगा** (मा. १.२१२.१)—यहाँसे प्रारम्भ हुई। और—

सिय रघुबीर बिबाह जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन कहँ सदा उछाह मंगलायतन रामजश॥

(मा. १.३६१)

यहाँतक जाती है। बहुत अद्भुत कथा है यह। यह अमृतकी नदी है। आहा! और यह बात बालकाण्डके अन्तिम प्रकरणमें ३३५वें दोहेकी ५वीं पङ्क्तिमें मिथिलाकी सखी भी बोलती है—

मरनशील जिमि पाव पियूषा। सुरतरु लहै जनम कर भूखा॥

(मा. १.३३५.५)

यह है ग्रन्थ! इसलिए मैं कहता हूँ कि रामायण लेकर बैठो! और कोई बात थोड़े ही है। मुझे तो आता ही है ग्रन्थ, पर मुझे तुम्हारे मनमें यह प्रसंग बैठाना है। भगवान्‌का दर्शन उसी प्रकारका है, जैसे मरणशीलको अमृत मिल जाए, मरने वालेको अमृत मिल जाए—

मरनशील जिमि पाव पियूषा। सुरतरु लहै जनम कर भूखा॥
पाव नारकी हरिपद जैसे। इन कर दरशन हम कहँ तैसे॥

(मा. १.३३५.५–६)

देखिये! कण्ठस्थीकरण वही है न, जो समयपर उठ जाए। समयपर नहीं उठा तो फिर क्या कण्ठस्थ करना, बताओ?

पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगतं धनम्।
कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम्॥

तो **मरनशील जिमि पाव पियूषा** (मा. १.३३५.५)। **सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि** (मा. १.३१.८)। अमृत सबको मिल रहा है। देखिये! बताऊँ। अमृतका अर्थ उस अमृतसे नहीं है जो सागरसे निकला है, यहाँ अमृतका अर्थ है भगवत्प्रेमामृत और मोक्ष—**सोऽमृतत्वाय कल्पते** (भ.गी. २.१५)। सभी लोग मर रहे हैं। रामजीने आज सबको अमृत दिया। अच्छा बताओ! नवग्रहोंमें रविसे लेकर केतु पर्यन्त कोई ऐसा ग्रह है जो अमृतकी वर्षा करता है? चन्द्र। और आज भगवान् राम चन्द्र बनकर मिथिलामें आ रहे हैं—

रामरूप राकेश निहारी। बढ़त बीचि पुलकावली भारी॥

(मा. १.२६२.३)

आज भगवान् आनन्द कर रहे हैं। सूर्यकी भी भूमिकामें आयेंगे धनुष तोड़नेके लिए, परंतु वैसे चन्द्रमाकी भूमिकामें ही भगवान् राम रहेंगे। विश्वामित्रसे यह भूमिका प्रारम्भ कर दी है। विश्वामित्रने देखा—

भये मगन देखत मुखशोभा। जनु चकोर पूरन शशि लोभा॥

(मा. १.२०७.६)

आहाहा! आज विश्वामित्रजी भी चकोर बने, उनको अमृत चाहिए। **सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि** (मा. १.३१.८)।

अब देखिये! मिथिलामें भगवान् राम पधार रहे हैं, आहाहा! सब लोग आ गये देखनेके लिए। अब दूसरा अमृत किसको पिलाया जाए? विश्वामित्रजीको तो पिला दिया। अब किसको पीना है? अब जनकजीको बुढ़ौतीमें अमृत मिल जाए तो चकाचक हो जायेगा। जनकजी! पियो

अमृत! विश्वामित्रजीने कहा कि मैं लाया हूँ अमृत! पियो! कौन पी रहा है? जनकजीका तन? नहीं नहीं मन—

सहज बिरागरूप मन मोरा। थकित होत जिमि चंद्र चकोरा॥

(मा. १.२१६.३)

जनकजीको अमृत मिल गया। उनके मनने अमृत पी लिया—

पुनि पुनि प्रभुहिं चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू॥

(मा. १.२१७.५)

सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि (मा. १.३१.८)। अहो! जनकजी नहा रहे हैं, पी रहे हैं—

प्रेम मगन मन जानि नृप करि बिबेक धरि धीर।
बोलेउ मुनिपद नाइ शिर गदगद गिरा गभीर॥

(मा. १.२१५)

आहाहा! पूरी सभा नहा रही है। यहाँ कमला, विमला ये नदियाँ हैं; पर अमृतकी धारा यहाँ नहीं बहती। अमृतकी धारा तो अवधमें बहती है, जब रामजी जन्म लेते हैं। चौपाई उठाओ—

बन कुसुमित गिरि गन मनियारा। स्त्रवहिं सकल सरिताऽमृतधारा॥

(मा. १.१९१.४)

बेटा! पढ़ लो चकाचक है अभी मेरा समय है बढ़िया! जबतक अन्तर्मुख नहीं होता, तबतक पढ़ लो। अभी तुम लोग पढ़ सकते हो। बूढ़ोंको क्या बताऊँ, इनकी थोड़ी-सी चाल ढल गयी है। इनको तो सुना रहा हूँ और विद्यार्थियोंको पढ़ा रहा हूँ।

अमृतकी धारा बही, जब जन्म ही हुआ है। और सुनिये! अच्छा बताओ, साधारणतः नदी कहाँ समाती है? सीधी-सी बात है, सारी नदियाँ सागरमें समाती हैं। रामचन्द्रजी मिथिलामें पधारे तो सभी राजाओंने देखा। तो जो अच्छे राजा थे, उन्होंने कहा—"यार! तुम लोग मूर्ख हो। ये रामचन्द्रजी कौन हैं जानते हो?" "कौन हैं?" उन्होंने कहा—"ये सुधाके सागर हैं, सुधाके समुद्र हैं—"

सुधासमुद्र समीप बिहाई। मृगजल निरखि मरहु कत धाई॥

(मा. १.२४६.५)

ये रामचन्द्रजी सुधाके सागर हैं। जब सुधाके समुद्र ही मिथिलामें आ रहे हैं, तो सुधाकी तरंगिनी नहीं बनेगी तो किसकी बनेगी? **सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि** (मा. १.३१.८)। यह कथा सुधाकी तरंगिनी है।

अच्छा आज सुना रहा हूँ मित्रो! समुद्रकी एक विडम्बना है कि समुद्र बेचारा सबको तो पानी पिलाता है, पर स्वयं नहीं पी पाता। कहाँ पीता है? अच्छा! परंतु यह **सुधा तरंगिनि** इतनी अच्छी है कि गोस्वामीजीने कहा कि इसमें तो सुधाके समुद्र रामजीको भी अमृत पीना पड़ेगा। इनको भी हम अमृत पिलायेंगे तभी हमें संतोष होगा। चलिये, देखते हैं! मिथिलामें भगवान् आ रहे हैं—

मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता। चले लोकलोचन सुखदाता॥

(मा. १.२१९.१)

आनन्द हो रहा है।

रामजी पहुनवा अइले मिथिला नगरिया हे॥
सुनि धाय नर नारी धाम काम सब बिसारी।
दरस लागी भीर भारी जनकपुर डगरिया हे॥
रामजी पहुनवा अइले मिथिला नगरिया हे॥
चलु सखी देखि लेहु लोचनको लाभ येहु।
रूप सुधा भरी लेहू नयनकी गगरिया हे॥
रामजी पहुनवा अइले मिथिला नगरिया हे॥
गिरिधर प्रभु निहारी सर्बस बारी बारी।
बिकी बिनु मोल सब जनकपुर गुजरिया हे
रामजी पहुनवा अइले मिथिला नगरिया हे॥

जुबती भवन झरोखनि लागी। निरखहिं राम रूप अनुरागी॥

(मा. १.२२०.४)

युवतियाँ भवनकी खिड़कियोंमें लग-लगकर रामजीको निहार रही हैं। कवितावली रामायणमें गोस्वामीजी कहते हैं—

तुलसी मुदित मन जनकनगर जन
झाँकतीं झरोखें लागीं सोभा रानीं पावतीं।
मनहुँ चकोरीं चारु बैठीं निज निज नीड
चंदकी किरिन पीवैं पलकौ न लावतीं॥

(क. १.१३)

आज ये सारी चकोरियाँ पी रही हैं अमृत क्योंकि—**सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि** (मा. १.३१.८)।

रामजीने कहा—"मैं सबको अमृत तो पिलाता हूँ। मैं अमृतस्वरूप भी हूँ। परंतु मुझको भी तो अमृत पीनेका मन करता है।" कहा—"बिल्कुल ठीक। चलिये मिथिलाकी फुलवारीमें आपको अमृत पिलायेंगे चकाचक।" अब गुरुदेवकी पूजाके लिए फूल उतारने हैं। अरे भैया! साठ हजार तो चेले हैं उनके मुस्टंडे सब लोग; किसीको भेज देते! पर काहेको भेजेंगे बबुआ? स्वयं अमृत पीना है न! तो गुरुदेवसे क्या बात बना ली! गुरुदेवने कहा—"मेरे बड़े चेले हैं, चले जायेंगे।" अरे कहा—"नहीं, भगवन्! **नेत्र तो आपके सुन्दर रूप विलोकत जीवनको फल लैहें**—आँखें आपको देखकर फल ले लेंगीं। **आनन पाई प्रसाद प्रमोदित कान कलान सुनई हरसैहें**—मुख आपका प्रसाद पा जायेंगे और कान आपकी बातें सुनकर प्रसन्न होंगे। **माथ सनाथ तबै मुनिनाथ जो आपके पायन पे परी जइहें**—और मस्तक तब सनाथ होंगे, जब आपके चरणोंमें पड़ जायेंगे। पर महाराज! **आनि बिना दल फूलनके मुनिनाथके हाथ कहाँ सुख पइहें**—प्रभु जबतक फूल नहीं लायेंगे, तबतक इन हाथोंको कहाँ सुख मिलेगा?"

"अच्छा! यह बात है। ठीक है। तब जाइये।" प्रभु फूल लेने आ रहे हैं—

चहुँ दिशि चितइ पूँछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन॥

(मा. १.२२८.१)

आनन्द कर दिया! चारों ओर निहार रहे हैं कि सीताजी कहाँ-से आयेंगीं। **मालीगन** मा आलीगण, माकी आलियों अर्थात् सीताजीकी सखियोंसे पूछा—"आपकी स्वामिनीजी कितनी देरमें पधारेंगीं?" आय हाय! उन्होंने कहा—"बस-बस अब पधारने वाली हैं भगवन्।" प्रसन्न होकर **दल फूल** (मा. १.२२८.१) लेने लगे। आ गयीं सीताजी—**तेहि अवसर सीता तहँ आई** (मा. १.२२८.२)। पूजा की, पार्वतीजीके मन्दिरमें वरदान माँगा। इधर **एक सखी सियसंग बिहाई** (मा. १.२२८.७), एक सखी सीताजीका साथ छोड़कर फुलवारी देखने गयी थी—

एक सखी सियसंग बिहाई। गयी रही देखन फुलवाई॥

(मा. १.२२८.७)

आनन्द कर दिया! **एक सखी** माने क्या? वह सखी और कोई नहीं थी, पार्वतीजी ही थीं। भगवान् रामका नाम है **एक**। यहाँ **एक** शब्द संख्यावाची नहीं है। देखिये, **एक** शब्द लुप्त सप्तमीक है। *अकारो वासुदेवः*—भगवान् विष्णुको *अ* कहते हैं। *अ*का रूप रामकी तरह चलता है और जब रामकी सप्तमी बनाओगे, तो बन जायेगा—*रामे*। इसी प्रकार *अ*की सप्तमी बनाओगे, तो बन जायेगा *ए*। संज्ञामें सप्तमीका लोप नहीं होता जैसे—*वनेचर*। इस प्रकार—*ए विष्णौ कं सुखं यस्मात् स एकः*। *एक* माने विष्णुको भी जिससे सुख मिलता है, उसे *एक* कहते हैं। यहाँ *कण्ठेकालः* की भाँति समास हुआ है। **अमूर्धमस्तकात्स्वाङ्गादकामे** (पा.सू. ६.३.९) तो **हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्** (पा.सू. ६.३.९)। तो यहाँ *ए*में अङ्गका आरोप कर लेना चाहिए, तो स्वाङ्ग बन जायेगा। व्यपदेशिवद्भावसे अङ्गी अङ्गमें दोनों एक हो जायेंगे। *ए विष्णोः अङ्गे कं सुखं यस्मात्*। **एक** माने भगवान् राम और एकके सखा कौन? शङ्करजी—**सेवक स्वामि सखा सिय पीके** (मा. १.१५.४)। और *सख्युः स्त्री*। सखाकी पत्नीको क्या बोलते हैं? *सखी*। **पपुंयोगादाख्यायाम्** (पा.सू. ४.१.४७) है यहाँ। सीताजीको समाचार दिया सखीने—

देखन बाग कुअँर दोउ आये। बय किशोर सब भाँति सुहाये॥

(मा. १.२२९.१)

चलिये सीताजी! उनके दर्शन किये जाएँ—**अवसि देखियहिं देखन जोगू** (मा. १.२२९.६)। पर रामजीने बाजी मार ली। अमृत तो दोनोंको पीना है, सीताजीको भी अमृत पीना है और रामजीको भी अमृत पीना है। प्यास दोनोंको लगी है, पर बाजी रामजी मार रहे हैं—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥

(मा. १.२३०.१)

भगवान् देख रहे हैं—

अस कहि फिरि चितये तेहि ओरा। सियमुख शशि भये नयन चकोरा॥

(मा. १.२३०.३)

ऐसी तरंगिनी है कि सुधाका समुद्र भी सुधा पी रहा है—**सियमुख शशि भये नयन चकोरा**। सब चकोर ही चकोर हो रहे हैं—

भये बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल॥
देखि सीयशोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचन न आवा॥

(मा. १.२३०.४–५)

अद्भुत आनन्द हो गया! भगवान् कहते हैं कि मुझे लोभ है—

जासु बिलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन लोभा॥

(मा. १.२३१.३)

यहाँ **लोभा** है, **छोभा** (मा.गी.प्रे.) नहीं।

करत बतकही अनुज सन मन सियरूप लोभान।
मुख सरोज मकरंद छबि करइ मधुप इव पान॥

(मा. १.२३१)

आनन्द कर दिया! अब इतनी सुन्दर तरंगिनी कि सीताजी भी अब सुधापान कर रही हैं—

अधिक सनेह देह भइ भोरी। शरदशशिहिं जनु चितव चकोरी॥

(मा. १.२३२.६)

शरदके चन्द्रमाको मानो चकोरी देख रही है। चकोरी अमृत पीती है, पी लिया, आनन्द हो गया। सखियोंने पिया—**देखि भानुकुलभूषनहिं बिसरा सखिन अपान** (मा. १.२३३)। आनन्द हो रहा है।

फिर सीताजी पार्वतीजीके भवनमें आयीं और उनसे कहा कि देखिये! आप तो मुझे रामजीको दे ही दीजिये—

कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेही। अस कहि चरन गहे बैदेही॥

(मा. १.२३६.४)

इतना कहते ही चरण पकड़ लिए वैदेहीजीने, और बोलीं—**बैदेही** अर्थात् **वै**—निश्चयेन, **देहि**—मुझे रामजीको दे दीजिये, दे दीजिये। **बिनय प्रेमबश भईं भवानी** (मा. १.२३६.५)—पार्वतीजी विनय और प्रेमके वशमें हो गयीं। **खसी माल** (मा. १.२३६.५)—पार्वतीजीने माला उठायी, सीताजीको माला पहनाना चाहती थीं, पर सीताजीके हृदयमें रामजीको देखा—"अरे! ये तो गड़बड़ा जायेगा। एक बार सीताजीका वेष बना लिया था तो शिवजीने मुझे छोड़ दिया था। अब यह माला सीताजीको पहनाऊँगी तो यदि सीताजीकी माला श्रीरामजीके गलेमें चली जायेगी, तो शङ्करजी मुझे सर्वदाके लिए छोड़ ही देंगे।" इसलिए सीताजीके गलेमें माला न पहनाकर **खसी माल** (मा. १.२३६.५) पार्वतीजीने अपने हाथोंसे माला नीचे गिरा दी और **मूरति मुसुकानी** (मा. १.२३६.५)। पार्वतीजीकी यह चतुरता देखकर जो रामजीकी मूर्ति सीताजीके हृदयमें है, **चली राखि उर श्यामल मूरति** (मा. १.२३५.१), वह मुस्काई—"वाह पार्वती! अब तुम चतुर हो गयी हो।" तब पार्वतीजीने आशीर्वाद दिया—

मन जाहिं राँचेउ मिलिहि सो वर सहज सुन्दर साँवरो।
करुनानिधान सुजान शील सनेह जानत रावरो॥

येहि भाँति गौरि अशीष सुनि सिय सहित हिय हरषीं अलीं।
तुलसी भवानिहिं पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चलीं॥

(मा. १.२३६.९)

सीताजी भी मन्दिरसे चलीं और रामचन्द्रजी भी **गुरु समीप गवने दोउ भाई** (मा. १.२३७.१)। रामजीने सब कुछ बता दिया—"गुरुदेव! ऐसा-ऐसा हो गया।" **सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही** (मा. १.२३७.३)—(१) **सुमन** अर्थात् सुन्दर पुष्प पाकर मुनिने पूजा की और (२) **सुमन** अर्थात् रामजीका सुन्दर मन देखकर भी पूजा की। **पुनि अशीष दुहु भाइन दीन्ही** (मा. १.२३७.३)—बेटा! तुम हमको सुमन दिये हो। मैं तुमको सुन्दर फल दे रहा हूँ—

सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे। राम लखन सुनि भये सुखारे॥

(मा. १.२३७.४)

तुम्हारे मनोरथ सफल हो जायेंगे।

आ रहे हैं सब लोग स्वयंवर में। देखिये! मिथिलावासियोंने तो भगवान्का रूप देखा, सबने अमृत पी लिया। पर राजा लोग? ये अमृत नहीं पी सके क्योंकि इनको तो हारना ही है। धनुर्भङ्गकी घोषणा की गयी। सब राजा शक्तिका प्रयोग करने लगे। परंतु—

डगइ न शंभुशरासन कैसे। कामीबचन सतीमन जैसे॥

(मा. १.२५१.२)

आहाहा! जनकजीने तो कह दिया कि तुम लोगोंसे धनुष नहीं टूटेगा, तुम अपनी-अपनी आशा छोड़कर चले जाओ—**तजहु आस निज निज गृह जाहू** (मा. १.२५२.४)। यदि मैं जानता कि पृथ्वी वीरोंसे विहीन है तो प्रतिज्ञा करके हँसीका पात्र न बनता। क्या करूँ, यदि प्रतिज्ञा करके छोड़ दूँगा तो सुकृत अर्थात् पुण्य चला जायेगा—**सुकृत जाइ जौ पन परिहरऊँ** (मा. १.२५२.५) और जब सुकृत चला जायेगा तो हमारी सीताजी ही छिप जायेंगीं क्योंकि—**जनक सुकृत मूरति बैदेही** (मा. १.३१०.१)। इसलिए सभाके विसर्जनकी घोषणा नहीं कर सकते। सभाके विसर्जनकी घोषणाका अधिकार अध्यक्षको होता है और अध्यक्ष विश्वामित्रजी हैं। उनकी घोषणाके बिना जनकजी विसर्जनकी घोषणा कैसे करेंगे, यह अवैध है। लक्ष्मणजीके क्रोधपर पृथ्वी डगमगा गयी। लक्ष्मणजीने कहा—"यदि आपकी आज्ञा हो तो इस ब्रह्माण्डको गेंदकी भाँति उठा लूँ। पटक दूँगा इसको कच्चे घड़ेके समान दूसरे ब्रह्माण्डमें। आपके रोम-रोममें करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं। एक ब्रह्माण्डके लिये आपसे आज्ञा ले लूँगा। पटक दूँगा इसको। मैं सुमेरु पर्वतको मूलीकी भाँति तोड़ सकता हूँ। पर जनकजी प्रतिज्ञामें संशोधन करें कि यदि मैं धनुष तोड़ूँगा तो भी सीताजीका विवाह भगवान् रामसे ही होगा, क्योंकि प्रथम दृष्टिमें मैंने सीताजीको माँ मान लिया है।" सीताजी बहुत प्रसन्न हुईं, कहा—"लक्ष्मण! यदि तुमने प्रथम दृष्टिमें मुझे माँ मान लिया है, तो मैंने भी प्रथम दृष्टिमें तुम्हें बेटा मान लिया है और मैं वचन देती हूँ कि मेरे यहाँ लव-कुश आयेंगे तो भी लव-कुशकी अपेक्षा सहस्रगुनी वात्सल्य-प्रेम तुम्हींपर मेरा होगा।" लक्ष्मणजीको रामजीने बैठाया। लक्ष्मणजीने कहा—"जनकजीने आपका अपमान किया है।" रामजीने कहा—"कहाँ अपमान किया है?" "उन्होंने **बीर बिहीन मही मैं जानी** (मा. १.२५२.३) कहा।" रामजीने कहा—"पागल! अरे **बीर बिहीन** कहा, **रघुबीर बिहीन**

तो नहीं कहा।" तब लक्ष्मणजी प्रसन्न। सब लोग आकुल-व्याकुल हो रहे हैं। रामजीने—

गुरुहिं प्रनाम मनहिं मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा॥

(मा. १.२६१.५)

अत्यंत शीघ्रतासे धनुषको उठाया—

तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥

(मा. १.२६१.८)

उसी क्षण मध्य धनुषको तोड़ा। बहुत घनघोर स्वर हुआ—

भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हे सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥

(मा. १.२६१.९)

बोलिये राजा रामचन्द्र भगवान्‌की जय हो! और—

शंकर चाप जहाज सागर रघुबर बाहु बल।
बूड़ सो सकल समाज चढ़ा जो प्रथमहिं मोहबश॥

(मा. १.२६१)

इस नदीमें सब अमृत पी रहे हैं, नहा भी रहे हैं। नदीका गुण होता है कि आप वहाँ नहा भी सकते हैं और नदीका जल भी पी सकते हैं। समुद्रमें नहा सकते हैं, पर जल नहीं पी सकते। तो **सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि** (मा. १.३१.८)।

अब देखिये! मिथिलाके लोगोंके साथ-साथ अब लक्ष्मणजीको भी अमृत पीनेका मन हो गया। अब आज लक्ष्मणजी भी पी रहे हैं—

रामहिं लखन बिलोकत कैसे। शशिहिं चकोरकिशोरक जैसे॥

(मा. १.२६३.७)

आनन्द कर दिया, बहुत आनन्द आया! अब लक्ष्मणजी अमृत पी रहे हैं। सीताजी श्रीरामजीके गलेमें जयमाला पधरा रही हैं—

सोहत जनु जुग जलज सनाला। शशिहिं सभीत देत जयमाला॥
गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली॥

(मा. १.२६४.७–८)

आनन्द हो गया! जय जयकार हो गयी।

रघुबर उर जयमाल देखि देव बरषहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल जनु बिलोकि रबि कुमुदगन॥

(मा. १.२६४)

अब ध्यानसे सुनिये! परशुराम जैसा व्यक्ति, जिनके गुरुदेव शङ्करजी हैं और शङ्करजीका भोजन क्या है? विष। जब गुरु बाबा विषका भोजन करते हैं तो चेलेको कहाँसे अमृत मिलेगा? अत: ये भी विष ही उगलते हैं। पर इनको भी अमृत पीना है। आये, रामजीपर पहली दृष्टि पड़ी।

जय! जय!!—

रामहिं चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन॥

(मा. १.२६९.८)

आहाहा! आनन्द कर दिया—**रूप अपार मार मद मोचन**।

बड़ी विचित्र चर्चा हुई। जैसे महाभारतमें गीताजीके १८ अध्याय हैं, उसी प्रकार रामायणजीमें परशुराम-लक्ष्मण संवादके १८ दोहे। संपूर्ण श्रीमद्भगवद्गीताका सारांश यहाँ प्रस्तुत हो रहा है। फिर कभी चर्चा करूँगा। धन्य-धन्य कर दिया बातचीत करते-करते! अन्तमें—

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू॥

(मा. १.२८४.७)

ले लीजिये धनुष; और—

देत चाप आपुहिं चढ़ि गयऊ। परशुराम मन बिसमय भयऊ॥

(मा. १.२८४.८)

अहो! अहो!! प्रेमामृत मिल गया—

जाना रामप्रभाव तब पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन हृदय न प्रेम समात॥

(मा. १.२८४)

आनन्द कर दिया। जय जयकार। नौ बार जय-जयकार किया।

जय रघुबंश बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृशानू॥

(मा. १.२८५.१)

देखिये! सबसे अधिक अमृत परशुरामजीने पिया। इस अमृतने परशुरामजीको चिरंजीवी कर दिया। हमारे यहाँ सात चिरंजीवियोंमें परशुरामजीका भी नाम है—

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥

अब विवाहका प्रारम्भ हुआ। लग्न-पत्रिका और तिलक लेकर मिथिलाके दूत अयोध्या आये। अयोध्यामें तिलक भगवान्‌का चढ़ाया और कहा माताओंने—

तिलकवाले सभी बड़े चोर निकले, रामचन्द्र मुखचन्द्रके चकोर निकले॥
निर्मल सनेहसे कृपालुको लुभाया, परब्रह्म परमात्मा पाहुन बनाया।
शुद्ध भाव भक्ति रसमें विभोर निकले, रामचन्द्र मुखचन्द्रके चकोर निकले॥
तिलकवाले सभी बड़े चोर निकले, रामचन्द्र मुखचन्द्रके चकोर निकले॥

आनन्द कर दिया। दूत पत्रिका लाये और अपनी भाषामें बोले। कहा कि राजन्—

हम तो पाति लेके आईल बानी पार से जनक-दरबारसे हो॥
राजा जनककी सुन्दर धीया उनकर नाम बाटे सीया।
उनकर विवाह होइहैं कौशल्या कुमार से जनक-दरबारसे हो॥
हम तो पाति लेके आईल बानी पार से जनक-दरबारसे हो॥

सीय स्वयंवर जनक रचाये देस देसके भूपति आये।
धनुहि तोरि न पाये बैभव बलके विचार से जनक-दरबारसे हो॥
हम तो पाति लेके आईल बानी पार से जनक-दरबारसे हो॥
तहवाँ राम धनुहियाँ तोरे राजन केर घमण्डको तोरे।
चौदह भुवन भरल राघव जय-जयकार से जनक-दरबारसे हो॥
हम तो पाति लेके आईल बानी पार से जनक-दरबारसे हो॥
राजन मिथिला चलिहिं बरतियाँ रामके देख जुड़ाई छतिया।
गिरिधर गीत गइहैं मंजुल मंगल चार से जनक-दरबारसे हो॥
हम तो पाति लेके आईल बानी पार से जनक-दरबारसे हो॥

श्रीसीताराम भगवान्‌की जय हो!

बारात चली, जनकपुर आयी। जनकजीने सुन्दर जनवासा दिया और विवाहकी तिथि निश्चितकी गयी—

मंगलमूल लगनदिन आवा। हिमऋतु अगहन मास सुहावा॥

(मा. १.३१२.५)

आनन्द हो गया। रामजीके विवाहमें जनकजीके द्वारपर पाँच देवता आ रहे हैं—(१) शिवजी, (२) विष्णुजी, (३) ब्रह्माजी, (४) कार्त्तिकेयजी और (५) इन्द्रजी। शिवजीने कहा—"आज मुझे भी अमृत पीना है, विष पीकर अब ऊब गया हूँ।" तो यह—**सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि** (मा. १.३१.८)।

रामरूप नख शिख सुभग बारहिं बार निहारि।
पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि॥

(मा. १.३१५)

जनकजीके द्वारपर अवधकी बारात आ गयी। रामजी सुन्दर घोड़ेपर तीनों भाइयोंके साथ हैं। सासुएँ परिछन कर रही हैं, निहार रही हैं भगवान्‌को। अब गोस्वामीजीने कहा—**सुधा तरंगिनि** (मा. १.३१.८) इतनी प्रबल हो गयी है कि अब एक साथ सबको पिला देते हैं अमृत। कौन बार-बार झंझट करे! एक साथ सबको! आहाहा!!! ३२१वें दोहेमें—

रामचंद्रमुख चंद्र छबि लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल प्रेम प्रमोद न थोर॥

(मा. १.३२१)

अब सभी घराती-बराती छकाछक पी रहे हैं चकाचक। क्योंकि—**सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि** (मा. १.३१.८)। विवाह सम्पन्न हो रहा है। एक मण्डपमें सीतारामजी विराज गये।

येहि बिधि सीय मंडपहिं आई। प्रमुदित शांति पढ़हिं मुनिराई॥

(मा. १.३२३.७)

शान्ति पाठ हो रहा है—

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

गौरी-गणपतिकी पूजा और हवन हो रहा है। जनकजीकी वाम दिशामें सुनयनाजी विराज रही हैं—**जनक बाम दिशि सोह सुनयना** (मा. १.३२४.४)—जनकजीकी वाम दिशामें सुनयना सोह रही हैं, **हिमगिरि संग बनी जनु मयना** (मा. १.३२४.४)। यहाँ प्रश्न यह है कि विवाह आदि अच्छे शुभ कार्योंमें पत्नी कभी पतिके बायें भागमें नहीं बैठती। नियम है ध्यानसे सुनियेगा। पत्नी पतिके दायें भागमें ही बैठती है इन कार्योंमें—**सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी तिष्ठति दक्षिणे** और यहाँ कहते हैं—**जनक बाम दिशि सोह सुनयना** (मा. १.३२४.४)। अब यह ग्रन्थ कैसे लगाया जाए? यही तो आनन्द है! तो हमने कहा कि बात ऐसी है—ईशान कोण आप जानते हैं किसको कहते हैं संस्कृतमें? हमारे यहाँ दस दिशाएँ हैं। उसमेंसे भगवान् राम आज पूर्वकी ओर मुख करके बैठे हैं, जनकजी पश्चिमकी ओर मुख करके बैठे हैं। पश्चिमसे दायीं ओर पड़ता है ईशान कोण। तो **जनक बाम दिशि**—वाम माने शङ्करजी, उनकी दिशा ईशान कोण है, उसमें सुनयनाजी बैठी हुई हैं। यह है यहाँका तात्पर्य। कन्यादान हो रहा है—

इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव॥
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना।

(वा.रा. १.७३.२६–२७)

सुखमूल दूलह देखि दंपति पुलक तनु हुलस्यो हियो।
करि लोक बेद बिधान कन्यादान नृपभूषन कियो॥

(मा. १.३२४.११)

कन्यादान हुआ। ग्रन्थिबन्धन हुआ और भाँवरी होने लगी। अद्भुत भाँवरी हो रही है—

राघव सिय संग देत भँवरिया हे।
भँवरिया भँवरिया भँवरिया हे, राघव सिय संग ...॥
मँडवाके बीच राजे दुलहा दुलहिनी।
जनु नभ रोहिणी अँजोरिया हे, राघव सिय संग ...॥
कनक कलश कर करत परिक्रमा।
सोहे जैसे जलद बिजुरिया हे, राघव सिय संग ...॥
आगे आगे दुल्ही दुल्हा पाछे पाछे सोहे।
नील तरु कनक बलरिया हे, राघव सिय संग ...॥
जोरी लसै गाँठि जोरि सीताकी चुनरिया।
रामजूकी पियरी पिछौरिया हे, राघव सिय संग ...॥
लोचनके लाभ लूटे सिगरे बरतिया।
अलिगन लखि तृन तोरिया हे, राघव सिय संग ...॥
इतहिं वसिष्ठ मुनि उतहिं शतानन्द।
वेदमन्त्र पढ़ैं दोउ ओरिया हे, राघव सिय संग ...॥
भाँवरि विधान करि कर लै सिंदुरवा।
सिया माँग भरत साँवरिया हए, राघव सिय संग ...॥

गिरिधर **निरखि हरषि यह जोरिया।**
गिरा लखि भई बाबरिया हे, राघव सिय संग ...॥

सिंदूरदान हो रहा है। अब सुनिये! सबने अमृत पी लिया है, पर इतनी सुन्दर अमृतकी यह नदी है कि रामजीकी भुजाको भी अमृत पीनेका मन हो गया। अब क्या किया जाए? कहा चलो, रामजीकी भुजा बन गयी सर्प, सीताजीका मुखमण्डल है चन्द्रमा, सिंदूरसे भरा हुआ करतल है कमल। अब कमलसे चन्द्रमाको सुशोभित किया सर्पने, तो चन्द्रमाने अमृत दे दिया—

अरुन पराग जलज भरि नीके। शशिहिं भूष अहि लोभ अमी के॥

(मा. १.३२५.९)

सबको अमृत मिल गया। और सीताजीका विवाह रामजी से, माण्डवीजीका विवाह भरतजीसे, उर्मिलाजीका विवाह लक्ष्मणजीसे, और श्रुतिकीर्तिजीका विवाह शत्रुघ्नजीसे हो गया।

जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुअँर ब्याहे तेहि करनी॥

(मा. १.३२६.१)

रामजीका जिस प्रकारसे विवाह हुआ, उसी प्रकार जितने अविवाहित लोग थे, सबका विवाह मिथिलामें हो गया। चकाचक हो गया! आनन्द हो गया! और भोजन—

जेंवत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी॥

(मा. १.३२९.६)

दिव्य आनन्द हो गया! इस प्रसंगपर नौगछियाके परमहंसजी एक बात कहते थे कि प्रतिदिन मिथिलाकी महिलाएँ गारी गाती थीं, पर लक्ष्मणजी चुप रहते थे। एक दिन लक्ष्मणजीने कहा—"राघवजी! मुझे धनुष-बाण उठानेका मन करता है। ये हमारी माँ बहनको गारी देती हैं।" रामजीने कहा—"ससुराल है। होने दे!" कहा—"नहीं! एक बार आपको ऐसी लीला करनी पड़ेगी कि इन्हींका हथियार इन्हींको मारे।" राघवजीने कहा—"ठीक है।" अबकी बार भोजन प्रारम्भ हुआ। मिथिलावाली माताएँ बैठ गयीं अट्टालिकापर गारी गानेके लिए। लक्ष्मणजीने कहा—"लीला कीजिये!" रामजीने मुखमण्डल ऊपर किया और मुस्कुराये। ज्यों मुस्कुराये त्यों मिथिलानियाँ बिल्कुल पागल हो गयीं। अब क्या हुआ? तो एक छन्द बोलते थे परमहंसजी—

काली क हाल सुनो सजनी मड़ए प्रगट्यो अति कौतुक भारी।
जेंवत जानी बरात सबै अवधेश लख्यो मिथिलेश अटारी।
रामको रूप निहारतही सुधी भूल गयीं जित गावनि हारी।

तो क्या किया? अबतक दशरथजीका नाम लेकर गा रही थीं—*ऊँचे चौतरे बैठे राजा दशरथ करे अपने बहिनी क मोल*। अब भूल गयीं—

भूल गयीं अवधेशको नाम वे

और

देन लगीं मिथिलेशको गारी॥

अब जनकजीको ही गारी देने लगीं—

ऊँचे चौतरे बैठे जनकराम करें अपनी बहिनी क मोल।
कमला क मांगे पाई दो पाई और विमला क मोल अनमोल॥

तूती बोलन दे।

अरे! आनन्द हो गया और दशरथजी हँसने लगे।

समय सुहावनि गारि बिराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा॥

(मा. १.३२९.७)

अरे! बुलाया जनकजीको—"अरे समधीजी! ये गानेवालियोंको किरायेपर ले आये हैं क्या आप? अरे! यह तो आपका हथियार आप ही पर वार कर रहा है।" उन्होंने कहा—"अरी मूर्खाओ! समधीजीको गरियाना चाहिए, हमें क्यों गरिया रही हो?" तो उन लोगोंने कहा—"क्या करें, जब रामजीको देखकर आप अपना वेदान्त भूल गये तो हम भी अपना सिद्धान्त भूल गये।" बोलिये युगल सरकारकी जय हो!

बारातके विदा होनेका समय आ गया। सीताजी एकान्तमें रो रही हैं। बहनो, बहुत ध्यानसे सुनिये। सीताजी एकान्तमें रो रही हैं। जनकजीने देखा, कहा—"बेटी! आप रो क्यों रही हैं?" पूछा—

किधौं बेटी कहे तोहे कटुक बचन कोउ, किधौं दो तोरे दाइज थोर रे।
किधौं बेटी तोर कहुँ साजन अवगुन काहे गिरावत लोर रे॥

आप रो क्यों रही हो बेटी बताओ? क्या तुमको किसीने कठोर वचन कह दिया? क्या हमने दहेज कम दे दिया? क्या हमने तुमको अच्छा वर नहीं दिया?" तब सीताजीने एक बात कही मित्रो जिससे सभीकी आँखोंमें आँसू आ जायेंगे—

नहीं कोउ बाबा रे कटुक वचन कहे नहीं मोर दाइज थोर रे।

"पर मैं पूछ रही हूँ।" "क्या पूछ रही हो?"

बेटा औ बेटी दोनों एक कोखि जन्मल काहे बेटा घर बेटी दूर रे।

"यह बताइये कि एक ही माँ-बापकी कोखसे बेटा-बेटी जन्म लेते हैं, पर बाप बेटेको घर क्यों रख लेता है और बेटीको दूर क्यों कर देता है?" इस प्रश्नका उत्तर जनकजी नहीं दे पाये। और कहते हैं—

सीयको गोदमें राखि बिदेहजू भावमें आपको खोवन लागे।
बारहिं बार दुलारी कुमारीहि आँसुन ते मुँह धोवन लागे।
चूमिके वूमिके भावमें झूमिके ज्ञान विराग बिगोवन लागे।
भूल गई सब ज्ञान कथा कहि जानकी जानकी रोवन लागे।

जनकजी स्वयं *जानकी! जानकी!!* कहकर रोने लगे—

सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी॥

(मा. १.३३८.५)

भूल गये! मन्त्रियोंने समझाया। बेटीको तो भेजना ही पड़ता है! क्या करेंगे? **अर्थो हि कन्या परकीय एव** (अ.शा. ४.२२)। वास्तवमें इतना प्रेम जनकजी सीताजीसे करते हैं, अयोध्याके लोग जानते हैं कि वहाँ उन्होंने एक नगर ही छोटा-सा बसा दिया था—*जनकौरा*। इतना प्रेम करते हैं सीताजीको। अयोध्यामें बारात आ गयी।

बीच बीच बर बास करि मगलोगन सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन पहुँची आइ जनेत॥

(मा. १.३४३)

बारातकी आगवानी करनेके लिए सारे अयोध्यावासी तैयार हैं। तीनों माताओंने आरती उतारी। अरे! अमृत वर्षा हो रही है, सब लोग आनन्द ले रहे हैं। सुन्दर सिंहासनपर वर-वधुओंको बैठाया गया। पूजा की—

लोकरीति जननीं करहिं वर दुलहिनि सकुचाहिं।
मोद बिनोद बिलोकि बड़ राम मनहिं मुसुकाहिं॥

(मा. १.३५०ख)

दिव्य आनन्द हो रहा है मित्रो! अच्छा संबन्ध है! एक ओर दशरथ-कौशल्याजी हैं, दूसरी ओर जनक-सुनयनाजी हैं। एक ओर रामजी, दूसरी ओर सीताजी। एक ओर राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और दूसरी ओर सीता, माण्डवी, उर्मिला, श्रुतिकीर्ति। संबन्ध बहुत अच्छा है। दोनों राज-परिवार! एक ओर भक्तिका प्रावधान, दूसरी ओर ज्ञानका। अच्छा संबन्ध! विवाहकी सारी रीतियाँ पूर्णकी गयीं। विश्वामित्रजी व वसिष्ठजी की पूजा की।

नेग माँगि मुनिनायक लीन्हा। आशिरबाद बहुत बिधि दीन्हा॥
उर धरि रामहिं सीय समेता। हरषि कीन्ह गुरु गमन निकेता॥

(मा. १.३५३.२–३)

उन्होंने नेगमें माँग लिया कि बस सीतारामजीको हम निरन्तर निहारते रहे, इन्हें निरन्तर दुलारते रहें।

चारों पुत्रोंको माताओंने शयन कराया। अन्तमें कौशल्याजीने कहा—

सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौशिक कृपा सुधारे॥

(मा. १.३५७.६)

आपके सभी कर्म अमानुष हैं, परंतु कौशिकको तो केवल आपकी कृपाने सुधार दिया—**केवल कौशिक कृपा सुधारे** (मा. १.३५७.६)। आनन्द हो गया! बहुत दिनतक विश्वामित्रजी श्रीअवधमें रहे और विदा ली तो चार बातोंका स्मरण कर रहे हैं—

राम रूप भूपति भगति ब्याह उछाह अनंद।
जात सराहत मनहिं मन मुदित गाधिकुलचंद॥

(मा. १.३६०)

(१) **राम रूप**—सीतारामजीके रूपकी प्रशंसा, (२) **भूपति भगति**—दोनों राजाओंकी भक्तिकी प्रशंसा, (३) **ब्याह उछाह**—विवाहका उत्साह, और (४) **ब्याह अनंद**—विवाहका आनन्द।

इस प्रकार गोस्वामीजी कहते हैं कि हमने अपनी वाणीको पवित्र करनेके लिए यह यश कहा—

निज गिरा पावनि करन कारन रामजश तुलसी कह्यो।
रघुबीरचरित अपार बारिधि पार कबि कौनें लह्यो।

उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं।
बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुख पावहीं॥

(मा. १.३६१.९)

सिय रघुबीर बिवाह जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन कहँ सदा उछाह मंगलायतन रामयश॥

(मा. १.३६१)

इस प्रकार **सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि** (मा. १.३१.८)।

देखिये! यह रामचरितमानसकी १२वीं कथा है, इसलिए इस विवाहमें १२ शकुन आये थे—

(१) **चारा चाष बाम दिशि लेई, मनहुँ सकल मंगल कहि देई** (मा. १.३०३.२)—नीलकण्ठने बायीं ओर दर्शन दिया।

(२) **दाहिन काग सुखेत सुहावा** (मा. १.३०३.३)—काकभुशुण्डिजीने दायीं ओर दर्शन दिये।

(३) **नकुल दरस सब काहू पावा** (मा. १.३०३.३)—नेवलेने दर्शन दिया।

(४) **सानुकूल बह त्रिबिध बयारी** (मा. १.३०३.४)—सुन्दर शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु बही।

(५) **सघट सबाल आव बर नारी** (मा. १.३०३.४)—सुन्दर बालक और घड़ेके साथ सुन्दर नारीके दर्शन हो रहे हैं।

(६) **लोवा फिरि फिरि दरस देखावा** (मा. १.३०३.५)—लोमड़ी दिखायी दी।

(७) **सुरभी सनमुख शिशुहिं पियावा** (मा. १.३०३.५)—बछड़ेको दूध पिलाती हुई गायके दर्शन हुए।

(८) **मृगमाला फिरि दाहिनि आई, मंगलगन जनु दीन्ह देखाई** (मा. १.३०३.६)—दायीं ओर हिरणोंके दर्शन हुए।

(९) **छेमकरी कह छेम बिशेषी** (मा. १.३०३.७)—**छेमकरी** अर्थात् लाल रङ्गकी चील दिखी।

(१०) **श्यामा बाम सुतरु पर देखी** (मा. १.३०३.७)—बायीं ओर वृक्षपर श्यामा कोकिला दिखायी दी।

(११) **सनमुख आयउ दधि अरु मीना** (मा. १.३०३.८)—सामने दही और मछली दिखीं।

(१२) **कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना** (मा. १.३०३.८) हाथमें पुस्तक लिये हुए दो कुशल वेदपाठी ब्राह्मण ब्रह्मचारी दिखे।

१२ शकुन, १२वें वर्षमें विवाह, विवाहके पश्चात् १२ वर्षतक श्रीअवधमें निवास, सब कुछ बारह-बारह!

॥ बोलिये भक्तवत्सल भगवान्‌की जय ॥

अब आप आरतीमें आ जाइये! आरतीमें मैं ही गीत गा रहा हूँ—

राम दुल्हाकी जय सीता दुल्हिनकी जय।
बोलो मिथिला अयोध्याकी जय जय जय॥

चारों दूल्हाकी जय चारों दुल्हिनकी जय।
बोलो मिथिला अयोध्याकी जय जय जय॥
चारों चन्दाकी जय चारों चँदिनकी जय।
बोलो घराती बारातीकी जय जय जय॥
चारों बन्नाकी जय चारों बन्नीकी जय।
बोलो दशरथ जनकजूकी जय जय जय॥
चारों दुल्हाकी जय चारों दुल्हिनकी जय।
बोलो कौशल्या सुनयनाकी जय जय जय॥
राम दुल्हाकी जय सीता दुल्हिनकी जय।
बोलो मिथिला अयोध्याकी जय जय जय॥
बोला श्रोता और वक्ताकी जय जय जय।
बोलो गायक और वादककी जय जय जय॥

बोलो युगल सरकारकी जय हो! युगल दरबारकी जय हो! युगल परिकरकी जय हो! युगल लीलाकी जय हो! युगल धामकी जय हो! युगल नामकी जय हो! मिथिलाके मेहमानकी जय हो! मञ्जुल मुस्कानकी जय हो! जय जय श्रीसीताराम!!

षष्ठ पुष्प

॥ नमो राघवाय॥

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥
नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥
यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥
जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी।
सुजनचकोरकदम्बो यत्कविताकौमुदीं पिबति॥
(श्री)सीतानाथसमारम्भां (श्री)रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे (श्री)गुरुपरम्पराम्॥
श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर-बिमल-जस जो दायक फल चारि॥
(श्री)रामचरितमानस बिमल कथा करौं चित चाइ।
आसन आइ विराजिये (श्री)पवनपुत्र हरषाइ॥

॥ सीताराम हनुमान् सीताराम हनुमान् ॥
॥ सीताराम हनुमान् सीताराम हनुमान् ॥
॥ सीताराम हनुमान् सीताराम हनुमान् ॥

सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनि॥

(मा. १.३१.८)

परिपूर्णतम परमात्मा भगवान् परब्रह्म परमेश्वर मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीसीतारामजीकी कृपासे, इस मोदीनगरमें श्रीराघव-सेवा-समितिद्वारा समायोजित मेरी १२५१वीं रामकथाके षष्ठ सत्रमें सभी बान्धवियों और बान्धवोंका मेरी ओरसे बहुत-बहुत स्वागत है।

तो मित्रो! देखो, आपको बताऊँ, चार दोषोंके कारण ब्राह्मणको यमराज मारना चाहते हैं। ब्राह्मणमें चार दोष नहीं होने चाहिए—

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति॥

(म.स्मृ. ५.४)

(१) **अनभ्यासेन वेदानाम्**—यदि ब्राह्मण शास्त्रोंका अभ्यास नहीं करता, तो यमराज उसको मारनेकी इच्छा करते हैं।

(२) **आचारस्य च वर्जनात्**—यदि ब्राह्मण आचारहीन हो जाता है, तब भी भगवान् उसे मारनेकी इच्छा करते हैं।

(३) **आलस्यात्**—यदि ब्राह्मण साधु आलसी हो जाए। मैं तो ४ बजे उठता हूँ, ११ बजे सोता हूँ और यदि अलार्म-घड़ी मेरी बात नहीं मानती तो उसे पटक देता हूँ। आलस्य नहीं होना चाहिए ब्राह्मण-साधुमें।

(४) **अन्नदोषात् च**—अन्नदोष नहीं होना चाहिए। भोजनमें बहुत संयम होना चाहिए।

मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति।

तो मित्रो! बड़ी सुन्दर चर्चा पाँच दिनोंसे आप सुन ही रहे हैं। एक बात और! जो नये आये हैं। देखिये आप लोग जानते है कि रामचरितमानसमें ३० कथाएँ हैं। ३० दिनोंके क्रमसे गोस्वामीजीने व्यवस्थाकी है। यह किसी वक्ताको भी पता नहीं मेरे अतिरिक्त। आजकल श्रम तो कोई करता ही नहीं है। उसमेंसे आज हम १३वीं कथाकी व्याख्या प्रारम्भ कर रहे हैं। १२वीं कथा मेरी पूर्ण हो चुकी है, अब अयोध्याकाण्डका क्रम है। बहुत गम्भीरतासे सुनिये! शेर-शायरी, चुटकले-कव्वाली नहीं सुनाऊँगा। मुझे आती भी नहीं। जब श्रीरामजन्मभूमिका बयान हो रहा था, तो उसके संबन्धमें मैंने उच्च न्यायालय (High Court) को शपथपत्र (affidavit) दिया था कि मैं भारतकी प्रत्येक भाषामें बोल सकता हूँ, केवल उर्दूको छोड़कर। उर्दू नहीं आती, उसके साधारण शब्दोंको भी मैं नहीं जानता। मैं क्या करूँ? हो सकता है कि मेरे कर्ममें न लिखी हो। भारतकी सभी भाषाएँ जानता हूँ, अंग्रेजी बहुत अच्छी बोलता हूँ, और फ्रेंच भी बोलता हूँ। परंतु यही एक भाषा है, जो मेरे भाग्यमें नहीं है। बच्चे कुछ बोलते हैं तो भी मैं समझ नहीं पाता। एक दिन किसीने कहा—"आप यकीन मानिए।" यकीन क्या होता है भैया! मैं नहीं जानता। तो आइये! बहुत अच्छी चर्चा है।

कथा १३: भय भंजनि (मा. १.३१.८)

अयोध्याकाण्डमें केवल दो कथाएँ हैं—१३ और १४। **भय भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनि** (मा. १.३१.८)। १३वीं कथाका नाम है—**भय भंजनि** और १४वीं कथाका नाम है—**भ्रम भेक भुजंगिनि**। गोस्वामीजीने रामचरितमानसजीके बालकाण्डके ३१वें दोहेकी चौथी पङ्क्ति **निज संदेह मोह भ्रम हरनी** (मा. १.३१.४) से प्रारम्भ करके दोहे **तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु** (मा. १.३१) पर्यन्त ३० कथाओंकी पूरी सूची दी है। तो १३वीं कथा **भय भंजनि** है। सब लोग गाइये—

भय भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनि।

(मा. १.३१.८)

देखिये! अयोध्याकाण्डकी कथाके दो विभाग हैं—(१) अयोध्याकाण्डके प्रारम्भसे १४२वें दोहेकी चौथी पङ्क्तितक प्रथम कथा और (२) इसके पश्चात् १४२वें दोहेकी ५वीं पङ्क्तिसे ३२५वें दोहे पर्यन्त द्वितीय कथा। देखिये! अयोध्याकाण्डकी एक बहुत बड़ी विशेषता है। यहाँ प्रत्येक दोहा ८ चौपाइयोंसे बद्ध है, अर्थात् अयोध्याकाण्डके प्रत्येक दोहे में ८ चौपाइयाँ हैं। और प्रत्येक २५वें दोहेपर छन्द है। तथा प्रत्येक २५वें दोहेके पश्चात्वर्ती छन्दके साथ एक सोरठा। जहाँ १२६ पर छन्द आया है वहाँ प्रसङ्ग है तापसका। इसका वर्ण्यविषयसे कोई सामञ्जस्य नहीं है। इसलिए अयोध्याकाण्डके ११०वें दोहेकी ७वीं पङ्क्तिसे १११वें दोहेकी ६ठी पङ्क्ति पर्यन्त अंश क्षेपक माना जाता है। निष्कर्षतः अयोध्याकाण्डमें ३२५ दोहे, प्रत्येक २५ दोहेपर छन्द एवं सोरठा तथा प्रत्येक दोहेमें ८–८ चौपाइयाँ हैं।

वामाङ्गे च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशङ्करः पातु माम्॥

(मा. २ म.श्लो. १)

वामाङ्गे च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके। अब देखिये! गीताप्रेसादि कतिपय संस्करणोंमें जो पाठ आया है वह है—**यस्याङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके**। और भी ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ पाठमें अशुद्धियाँ हैं, जिनका निराकरण हमने अपने तुलसीपीठ संस्करणमें किया है। पर कुछ दिग्भ्रान्त लोगोंने इसका विरोध यह कहते हुए किया कि यह धार्मिक भावनाओंको आहत करती है और माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालयकी लखनऊ पीठमें वाद लाया गया। परन्तु माननीय न्यायालयने मेरे द्वारा सम्पादित श्रीरामचरितमानसजीमें लगाये गये सभी आरोपों को मनगढ़ंत पाते हुए १९ मई २०११ को याचिका खारिज कर दी थी और साथ ही उन्हें बीस हजार रुपये जुर्माना हुआ और माननीय न्यायालयने यह भी आदेश दिया कि अब कभी विरोध करेंगे तो गैरजमानती वॉरंट और श्रीकृष्णजन्मभूमिके दर्शन हो जायेंगे। अब यहींपर देखिये! इन्होंने अपनी मूर्खताका क्या नंगा परिचय दिया! अयोध्याकाण्डके मङ्गलाचरणका यह संकेत—**यस्याङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके** (मा.गी.प्रे.)। थोड़ी-सी किसीको बुद्धि हो तो क्या अयोध्याकाण्ड-जैसे वैराग्यपूर्ण काण्डमें ऐसा वाक्य तुलसीदासजी लिखेंगे?—**यस्याङ्के च विभाति भूधरसुता** अर्थात् जिनकी गोदमें पार्वतीजी विराज रही हैं। तुलसीदासजी तो वैसे ही बड़े मर्यादित हैं, कहते हैं—**जगत मातु पितु शंभु भवानी, तेहिं शृंगार न कहउँ बखानी** (मा. १.१०३.४)। **सदा शंभु अरधंग निवासिनि** (मा. १.९८.३)।

आप बताइये! हमारे तुलसीदासजी जो शिव-पार्वतीको जगत्के पिता-माता कह रहे हैं, कालिदास जैसे घटिया नहीं हैं। संस्कृतके विद्वान् दु:खी न हों! बड़े अच्छे-अच्छे लोग यहाँ बैठे हैं। यहाँ संस्कृतके शम्भुनाथ झा आदि बड़े धुरंधर लोग हैं। पर कालिदासने कितना विश्वासघात किया। एक ओर तो लिखा—**जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ** (र.वं. १.१) और दूसरी ओर

*कुमारसम्भवम्*का आठवाँ सर्ग इतना अश्लील लिखा कि सामान्य व्यक्ति अपनी बेटी-बहिनोंके सामने इसका वाचन भी नहीं कर सकता, इतना गन्दा लिखा। अरे कालिदास! यदि यही करना था कुकर्म, तो किसी प्राकृतिक नायक-नायिकाके संबन्धमें कर लेते। कहा तो यहाँतक जाता है कि पार्वतीजीने उनको क्रोध करके श्राप दिया कि तुम कोढ़ी हो जाओगे। कालिदासको कोढ़ हो गया। फिर जब रामपरक *रघुवंश* महाकाव्य लिखा, तब कोढ़ समाप्त हुआ उनका।

तो देखिये! वर्णनकी एक सीमा होती है और जनता सबका लेखा-जोखा चुका देती है। इसका फल आप जानते हैं, क्या हुआ? आज तुलसीदासजीको कौन नहीं जानता? हाँ! कतिपय विद्याभिमानी संस्कृतज्ञ लोग भले न जानते हों। किंतु मैं भी तो संस्कृतज्ञ हूँ मित्रो! ऐसा नहीं है। शम्भुनाथजी! आजकी दिनाङ्क पर्यन्त मैंने संस्कृतमें १२२ पुस्तकें लिखी हैं और २९ पुस्तकें हिन्दीमें लिखी हैं। परंतु संस्कृतका यह फल थोड़े ही है! संस्कृतज्ञोंमें तो संस्कार होने चाहिए। गोस्वामीजी **यस्याङ्के** नहीं लिख सकते। इसका प्राचीन प्रतिका पाठ है, जो हमने दिया है—

वामाङ्गे च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशङ्करः पातु माम्॥

बहुत अच्छा वर्णन है! गोस्वामीजी कहते हैं कि **यस्य वामाङ्गे भूधरसुता विभाति**। अङ्ग माने विभाग। जिनके वामभागमें पर्वतराजपुत्री पार्वतीजी विराज रही हैं—**बाम भाग आसन हर दीन्हा** (मा. १.१०७.३)। **यस्य मस्तके देवापगा**—जिनके मस्तकपर देवनदी भगवती गङ्गाजी विराज रही हैं, **यस्य भाले बालविधुः**—जिनके ललाटपर बाल (अर्थात् द्वितीयाका) चन्द्रमा विराज रहे हैं, **यस्य गले गरलं**—जिनके कण्ठमें हालाहल विष है, **यस्योरसि व्यालराट्**—जिसके वक्षस्थलपर सर्पराज विराज रहे हैं, **भूतिविभूषणः**—भस्म ही जिनका अलङ्कार है, **सुरवरः**—जो देवताओंमें श्रेष्ठ हैं अथवा **सुरेभ्यः वराणि यस्मात्** अर्थात् देवताओंको जिनसे वरदान मिले हैं, **सर्वाधिपः**—सबके अधिप अर्थात् स्वामी, **शर्वः**—*शृणाति पापानि नाशयति इति शर्वः* अर्थात् सभी पापोंको नष्ट करने वाले, **सर्वगतः**—सर्वव्यापी, **शिवः**—कल्याणमय अथवा *शेते श्मशाने यः स शिवः* अर्थात् श्मशानमें शयन करने वाले, **शशिनिभः**—चन्द्रमाके समान धवल श्वेत, **श्रीशङ्करः**—*श्रिया अनुगृहीतः शङ्करः* अर्थात् श्रीजीके द्वारा अनुगृहित शङ्करजी, **मां पातु**—मेरी रक्षा करें। तुलसीदासजी महाराजको भी डर लग रहा है कि इतनी करुणकथा मैं कह रहा हूँ। कहीं वर्णन करते-करते मेरे ही हृदयकी गति न रुक जाए तो मैं क्या करूँगा? अतः हे शङ्करजी! आप मेरी रक्षा करें।

अब यहाँ एक बड़ी नयी बात! आप लोग यहाँ बैठे हैं, आस्तिक हैं, हिन्दू हैं। देखिये! सभी शिवलिङ्ग तो ठीक हैं, परंतु हमारे भारतवर्षमें १२ ऐसे स्थान हैं शिवजीके द्वादश ज्योर्तिलिङ्ग, जिनकी बहुत महत्ता और महिमा है। इस श्लोकमें गोस्वामीजीने बारहों ज्योर्तिलिङ्गोंकी स्तुतिकी है, इतना सुन्दर श्लोक है यह। एक ही श्लोकमें आपको बारहों ज्योर्तिलिङ्गोंके दर्शन हो जायेंगे। वे द्वादश ज्योर्तिलिङ्ग हैं—

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारे परमेश्वरम्॥
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम्।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने॥
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे।
हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये॥
एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं प्रातः पठेन्नरः।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति॥

(शि.पु. ३.४२.२–४)

(१) सौराष्ट्रमें सोमनाथजी, (२) आन्ध्रप्रदेशमें श्रीशैलपर्वतपर श्रीमल्लिकार्जुनजी, (३) उज्जैनमें महाकाल, (४) ओंकारक्षेत्रमें परमेश्वर। *ओङ्कारममलेश्वरम्* अशुद्ध पाठ है। उन्हींका स्तवन कालिदासने किया—**जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ** (र.वं. १.१)। (५) परली (महाराष्ट्र)में वैद्यनाथ और (६) डाकिनी (महाराष्ट्र)में भीमशङ्कर और (७) सेतुबन्धमें रामेश्वर, (८) द्वारकाजीके पास दारुकावनमें नागेश्वर, (९) वाराणसीमें काशीविश्वनाथ, (१०) फिर महाराष्ट्रमें नासिकमें त्र्यम्बकेश्वर, (११) हिमालयमें केदारनाथजी, और (१२) शिवालयमें घुश्मेश्वर—ये शिवजीके बारह ज्योर्तिलिङ्ग हैं।

तुलसीदासजी महाराजने इतना काम किया है कि हम उनका ऋण कभी नहीं चुका सकते। गोस्वामीजीने केवल कथावाचकोंको ही रोटी नहीं दी, उन्होंने संपूर्ण भारतीय-समाजको रोटी दी है। जब नालन्दा विश्वविद्यालय और तक्षशिला विश्वविद्यालयमें विधर्मियोंने आग लगाई, सारी पुस्तकें जलकर खाक हो गयीं, तब भगवान्‌ने वाल्मीकिजीको ही तुलसीदासजीके रूपमें प्रस्तुत किया और कहा—"चिन्ता मत करो हिन्दुओ! जितनी पुस्तकें जल गयीं हैं, सारी पुस्तकोंके सिद्धान्तोंको एक रामचरितमानसमें उपनिबद्ध करके फिर भारतको भेंट दे देते हैं।" केवल रामचरितमानस ठीकसे पढ़ लो। और अपने लिए पढ़ो, जनताके लिए मत पढ़ो। मैंने अपने लिए पढ़ा। अभी मैं अपने लिए सुना रहा हूँ, तुम्हारे लिए थोड़े ही सुना रहा हूँ। एक वक्ताने मेरे लिए व्यङ्ग्य किया कि जगद्गुरुजी तो केवल अपना अभ्यास करते हैं, सुनाते थोड़े ही हैं। हमने कहा कि यही करते हैं, चलो! कौन गलती करते हैं? तुम शेर-शायरी, कव्वाली, फूहड़-पिक्चरके गानोंका अभ्यास करते हो; जहाँ न लोक न परलोक। पर मैं तो कम से कम भारतीयशास्त्रोंका अभ्यास करता हूँ। कौन-सा पाप करता हूँ? तो देखिये! अब मैं प्रयास करूँगा कि एक ही श्लोकमें आपको १२ ज्योर्तिलिङ्गोंके दर्शन हो जाएँ। चलिये, तैयार हो जाइये! क्रम अनिवार्य नहीं है जैसा वहाँ लिखा है, पर हो जायेंगे बारहों ज्योतिर्लिङ्गके दर्शन। और क्रमकी कोई आवश्यकता भी नहीं है, पर प्रारम्भ तो सोमनाथसे होना चाहिए।

वामाङ्गे च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशङ्करः पातु माम्॥

(१) **वामाङ्गे च विभाति भूधरसुता**—जब चन्द्रमाको दक्षने श्राप दिया, तो चन्द्रमाको राजयक्ष्मा (टीबी) हो गयी। चन्द्रमा क्षीण होने लगे। तब बृहस्पतिजीने कहा—"जाओ प्रभासक्षेत्रमें, वहीं शिवजीकी आराधना करो। बहुत पाप किये हो। भगवान् कृपा करेंगे।" तब चन्द्रमाने वहाँ शिवजीकी आराधना की। शिवजी प्रसन्न हुए। सोम माने चन्द्रमा होता है। तो चन्द्रमाने अपने ही नामसे प्रथम ज्योर्तिलिङ्ग (सोमेश्वर)की स्थापना की। वहींपर शिवजी दाहिनी ओर विराज रहे हैं और पार्वतीजी उनके वाम भागमें विराज रही हैं। वहीं वे भगवान् रामका नाम जप कर रहे हैं। यह प्रथम ज्योर्तिलिङ्ग है—**सौराष्ट्रे सोमनाथं च**।

(२) **देवापगा मस्तके**—तुलसीदासजीने कहा कि सोमनाथजीके पश्चात् विश्वनाथ आना चाहिए। **वाराणस्यां तु विश्वेशम्**। विश्वनाथजीके मस्तकपर गङ्गाजी विराज रही हैं। बहुत अद्भुत ज्योर्तिलिङ्ग है यह भगवान्का। इतने रामभक्त हैं शिवजी कि—

काशी मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिशोकी॥

(मा. १.११९.१)

काशीमें जब कोई मरता है, तो मरते समय उसके दाहिने कानमें शङ्करजी राममन्त्रका उपदेश करते हैं। अत: कोई भी मरे, कितना भी पापी क्यों न हो, यदि काशीमें मरेगा तो—

आकर चारि जीव जग अहहीं। काशी मरत परम पद लहहीं॥

(मा. १.४६.४)

जासु नाम बल शंकर काशी। देत सबहि सम गति अविनाशी॥

(मा. ४.१०.४)

रामनाम सबको सुनाते रहते हैं अविनाशी शिवजी। खड़ाऊँ पहनकर आते हैं, रामनाम सुनाते हैं। इसीसे सिद्ध हो जाता है कि राम-नाम सबपर भारी है। कृष्ण भगवान्से भी शङ्करजीका युद्ध होता है ऊषा-अनिरुद्धयुद्धके प्रकरणमें; पर रामजीको इतना प्रेम करते हैं कि स्वयं हनुमान्जीका अवतार लेकर रामजीकी सेवा स्वीकारी शिवजीने। इसपर मेरी पुस्तक है—*हर ते भे हनुमान*। देखिये। इतना प्रेम करते हैं। मैं अपनी निर्बलता भी कह रहा हूँ आपसे। जब यह देखा कि *शतरुद्रसंहिता*के बीसवें अध्यायमें *शिवपुराण*कार स्वयं कह रहे हैं कि शङ्करजी रामजीकी सेवा करनेके लिए हनुमान् बने; तब हमने कहा कि बस, अब चकाचक है। तबसे मैं बहुत सम्मान करता हूँ *शिवपुराण*का। मैं किसीसे कोई समझौता नहीं करता भाई! सब कुछ करो, पर रामजीके विषयमें कुछ कहा तो फिर देख लेना। देवताओंमें राम, फलोंमें आम और सब्जियोंमें आलू—इनका कोई विकल्प नहीं है। कोई विकल्प है क्या? कितनी भी सुन्दर सब्जी बना दो, पर आलूके बिना सब कुछ सूना। और इन तीनोंकी कोई निंदा करता है, तो मैं बहुत चिढ़ता भी हूँ। रामकी निंदा मत करो, आमकी निंदा मत करो, और आलूकी भी निंदा मत करो। तो, धन्य हैं विश्वनाथ! वे घूमते रहते हैं काशीकी गलियोंमें। कहते हैं—

पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं
ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम्।
जल्पञ्जल्पन् प्रकृतिविकृतौ प्राणिनां कर्णमूले
वीथ्यां वीथ्यामटति जटिल: कोऽपि काशीनिवासी॥

जब व्यक्ति मरने लगता है काशीमें, तो भगवान् शिव जाकर उसके कानमें यही कहते हैं—"अरे पागल! इन कानोंके दोनोंसे रामनामामृतका पान करते रहो! करते रहो!! मनमें और किसीका ध्यान मत करो। रामजीका सुन्दर प्यारा-प्यारा मञ्जुल-मञ्जुल, दिव्य-दिव्य, भव्य-भव्य, प्यारा-प्यारा, नीले मेघके समान सुन्दर-सा विग्रह, उभरा हुआ कपोल चमाचम, घुँघराली अलकें, निर्दोष नेत्र, मधुर-मधुर मुस्कुरानेसे चमचम चमकती हुईं दो-दो दंतुलियाँ, सुन्दर-सा ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, हाथमें धनुष-बाण—कितना प्यारा प्रभुका रूप है! एक बार मनमें ध्यान करनेसे जीवनके सारे पाप चले जाते हैं—इतने सुन्दर हैं प्रभु।" रावणने स्वयं कहा था—"ऐसा रूप हमने संसारमें कभी नहीं देखा। मैं पापी हूँ, यह सत्य है। पर जब-जब मैं रामजीके रूपका ध्यान करता हूँ, तब-तब संसारकी सारी महिलाएँ मुझे माता-जैसी दिखती हैं।" ऐसा स्वरूप क्या किसीको मिलेगा?

मैं तो प्रभुसे पूछ रहा हूँ कि प्रभु! सही बताना—

ऐसा सुंदर स्वरूप कहाँ पाया, राघवजी तुम्हें ऐसा किसने बनाया॥
जिन्हें छू भी न सकी दुष्ट माया, राघवजी तुम्हें ऐसा किसने बनाया॥
तरुण तमाल जलद सम शोभा, कोटि मनोभव मन लखि लोभा॥
ऐसा सुंदर स्वरूप कहाँ पाया, राघवजी तुम्हें ऐसा किसने बनाया॥
शिव सनकादि समाधि लगाये, आप प्रकट भये बिधि न बनाये॥
अमित गंगा सरिस विमल काया, राघवजी तुम्हें ऐसा किसने बनाया॥
ऐसा सुंदर स्वरूप कहाँ पाया, राघवजी तुम्हें ऐसा किसने बनाया॥
नीरज नयन कृपामृत वृष्टि, परनारी पाई न जिसकी दृष्टि॥
जिसने सीताजीके मनको चुराया, राघवजी तुम्हें ऐसा किसने बनाया॥
ऐसा सुंदर स्वरूप कहाँ पाया, राघवजी तुम्हें ऐसा किसने बनाया॥
मृदु मुसुकानि सरोरुह आनन, जो न मुरझाया निरख कर कानन॥
अधर पल्लव जनोंको ललचाया, राघवजी तुम्हें ऐसा किसने बनाया॥
ऐसा सुंदर स्वरूप कहाँ पाया, राघवजी तुम्हें ऐसा किसने बनाया॥
कटि निषंग कर धनु शर सोहे, पीत बसन सुर मुनि मन मोहे॥
लखन हनुमत के चित्त को लुभाया, राघवजी तुम्हें ऐसा किसने बनाया॥
जिसको ध्यानमें पाकर रावण, परम अपावन हो गया पावन॥
***रामभद्राचार्य* मनको रमाया, राघवजी तुम्हें ऐसा किसने बनाया॥**
ऐसा सुंदर स्वरूप कहाँ पाया, राघवजी तुम्हें ऐसा किसने बनाया॥
रानी कौशल्या तुम्हें प्रकटाया, राघवजी तुम्हें ऐसा किसने बनाया॥

मेरी कथा ध्यानसे सुनोगे तो राघवके दर्शन तो हो ही जायेंगे। पर ठीकसे सुनो तब! Ego से मत सुनना, अहंकारसे मत सुनो। सामने बैठनेपर बहुत आनन्द आता है। सामने सीधा वक्ताका मुख दिखता है न! इधरसे क्या देखोगे तुम? इधर तुम्हारा ego तुम्हारे साथ रहेगा कि हम मञ्चपर बैठे हैं, हम बड़े हैं। पर यहाँ तो चकाचक है। Ego जबतक रहेगा, तबतक गोविंद नहीं आयेगा।

Ego देखकर गोविंद कहते हैं—"ले तू अपना ego सँभाल, I go मैं जाता हूँ बाहर!" यहाँ तो चकाचक आनन्द है। तो अब प्रकृतमनुसराम:, जहाँ छोड़ा था। तो मित्रो!—

(१) **वामाङ्गे च विभाति भूधरसुता**—यह है प्रथम ज्योतिर्लिङ्ग सोमनाथ—**सौराष्ट्रे सोमनाथं च**।

(२) **देवापगा मस्तके**—गोस्वामीजीने द्वितीय ज्योतिर्लिङ्ग विश्वनाथको कहा, जिनके मस्तकपर गङ्गाजी हैं। परम रामभक्त हैं शिवजी। कहते हैं—

गङ्गातरंगरमणीयजटाकलापं गौरीनिरन्तरविभूषितवामभागम्।
नारायणप्रियमनङ्गमदापहारं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम्॥

(का.वि.स्तो. १)

देवापगा मस्तके यह द्वितीय शिवलिङ्ग विश्वनाथ है—**वाराणस्यां तु विश्वेशम्**।

(३) **भाले बालविधुः**—मस्तकपर बालचन्द्रमा धारण करके कार्त्तिकेयजीको मनानेके लिए भगवान् श्रीशैल आये। गणपतिका विवाह हो गया, कार्त्तिकेयका नहीं हुआ। अत: कार्त्तिकेयजी रूठकर चले गये क्रौञ्चपर्वतपर। उनको मनानेके लिए शिव-पार्वती श्रीशैल श्रीमल्लिकार्जुन बनकर आये। **भाले बालविधुः**—मस्तकपर बाल चन्द्रमा—यह तृतीय ज्योतिर्लिङ्ग है मल्लिकार्जुन—**श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्**।

(४) **गले च गरलम्**—गलेमें विष। यह चतुर्थ ज्योतिर्लिङ्ग हैं उज्जैनके महाकाल—**उज्जयिन्यां महाकालम्**। गलेमें विष है, फिर भी उनकी मृत्यु नहीं, क्योंकि महाकाल हैं वे। इन महाकालको तुलसीदासजीने चतुर्थ ज्योतिर्लिङ्ग कहा।

(५) **यस्योरसि व्यालराट्**—पञ्चम ज्योतिर्लिङ्ग वे कह रहे हैं नागेश्वर—**नागेशं दारुकावने**। दारुका नामक शिवभक्ता राक्षसीकी रक्षा करनेके लिए भगवान् नागेश्वर बने—**यस्योरसि व्यालराट्**।

(६) **सोऽयं भूतिविभूषणः**—विभूति ही जिनका आभूषण है। **परल्यां वैद्यनाथञ्च**—ये वैद्यनाथजी बिल्कुल श्मशानमें हैं। मैंने दर्शन किये हैं। मैंने स्वयं बारहों ज्योतिर्लिङ्गोंके दर्शन किये हैं। परली जाइये महाराष्ट्रमें। पूरे श्मशानके बीचमें शिवजीका यह मन्दिर है। कैसी भगवान्‌की लीला है कि वहाँ मृतक जलते हैं, पर उनकी दुर्गन्ध नहीं आती। और भगवान्‌का आनन्द है। विभूति ही उनका आभूषण है। रावण शिवजीको लङ्का ले जाना चाहता था पर शिवजीका मन नहीं था। भारतको छोड़कर कहाँ जायेंगे? रावणने कहा—"मैं आपको ले चलूँगा।" शिवजीने कहा—"ले चलो! पर जहाँ मुझे स्थापित कर दोगे, वहाँसे मैं हटूँगा नहीं।" संयोगसे जब ये यहाँ आये, शिवजीने रावणको लघुशङ्काका वेग उपस्थित कर दिया और स्वयं एक वैद्यनाथ बन गये। रावणको लघुशङ्का लगी। उसने कहा—"भगवन्! यह शिवलिङ्ग आप लिए रहें। मैं जबतक सुसू करके आता हूँ, तब मुझे दे दीजियेगा।" ठीक है। और भगवान् तो भगवान्! लघुशङ्काकी धारा बढ़ा दी। दस मिनट बीती, बीस, तीस...फिर? अरे! क्या रुके, अरे! एक घण्टा तो सुसू करता रहेगा मूर्ख। सुसू बंद ही नहीं हो रहा। तब शिवजीको आया क्रोध—"तेरी ऐसी-की-तैसी बेईमान! कबतक तू सुसू करता रहेगा?" शिवजीने तुरन्त पटक दिया। वहींपर भगवान् वैद्यनाथ विराज गये—**सोऽयं भूतिविभूषणः**।

(७) **सुरवरः**—सुरोंको जिनसे वरदान मिला। जब विन्ध्याचल बढ़ने लगा और उसने प्रतिज्ञा की कि मैं सूर्यनारायणके मण्डलको ढँक दूँगा। देवता भयभीत हुए। अगस्त्यजी महाराज आये। अगस्त्यजीको विन्ध्याचलने साष्टाङ्ग दण्डवत् की। अगस्त्यजीने कहा—"बस अच्छे! ऐसे ही लेटे रहो। जब मैं आऊँगा, तब उठना।" उसने कहा—"क्या करूँ? मुझे कुछ पूजनका आधार दीजिये।" उसी समय सब लोगोंकी प्रार्थना पर शिवजीका प्राकट्य हुआ और ओंकारेश्वरमें परमेश्वर ज्योतिर्लिङ्गकी स्थापना हुई। ओंकारेश्वरमें परमेश्वर विराज गये—**ओङ्कारे परमेश्वरम्**।

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

(र.वं. १.१)

(८) **सर्वाधिपः सर्वदा**—केदारेश्वर भगवान् सबके अधिपति हैं अतः हिमालयके उच्च शिखरपर विराजमान होकर नर-नारायणकी परम्पराकी रक्षा कर रहे हैं। अतः—**हिमालये तु केदारम्**।

(९) **शर्वः**—भगवान् भीमशङ्करने डाकिनी क्षेत्रमें सम्पूर्ण असुरोंका संहार किया। शर्वः शब्दका अर्थ ही यह है—*शृणाति इति शर्वः*, अर्थात् जो सबका संहार करते हैं। **डाकिन्यां भीमशङ्करः**।

(१०) **सर्वगतः**—शङ्कर भगवान् अपने तीनों नेत्रोंसे त्रिलोकीको व्याप्त किये हुए हैं, अतः **त्र्यम्बकं गौतमीतटे**।

(११) **शिवः**—शिवालय नामक सरोवरमें प्रकट होकर घुश्मेश्वर शिवजीने सुदेहाद्वारा मारे गये घुश्माके पुत्रको जीवित किया था, अतः **घुश्मेशं च शिवालये**।

(१२) **शशिनिभः**—यहाँ यह जनश्रुति कही जाती है कि भगवान् श्रीरामने हनुमान्जीको शिवलिङ्ग लानेके लिए काशी भेजा। ईश्वरीय लीलाके कारण हनुमान्जीको शिवलिङ्ग लानेमें विलम्ब हुआ। इधर स्थापनाका शुभ मुहूर्त समाप्त हो रहा था। श्रीशिवजीकी इच्छासे भगवान् श्रीरामने मुहूर्त-मर्यादाकी रक्षा करते हुए एक बालुका-राशि निर्मित धवल शिवलिङ्गकी स्थापना कर दी, जो चन्द्रमाके समान श्वेत और सुन्दर है। यही हैं भगवान् रामेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग। पश्चात् हनुमान्जी शिवलिङ्ग लेकर काशीसे आये। उन्होंने बालुका-राशि निर्मित ज्योतिर्लिङ्गको हटाने का बहुत प्रयास किया पर वह टस-से-मस नहीं हो सका। अतः **सेतुबन्धे तु रामेशं।** ऐसे शशिनिभ रामेश्वर ज्योतिर्लिङ्गकी जय!

शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते—जब शस्त्रसे राष्ट्रकी रक्षा हो जाती है, तब व्यक्तिका शास्त्रमें मन लगता है। आज क्या कारण है कि हमारा पड़ोसी देश इस समय उसी प्रकार काँप रहा है, जैसे सिंहको देखकर बकरी काँपती है? क्योंकि हमारी सेना, हमारी स्थल सेनाका विश्वमें जोड़ नहीं है। और भारत भारत है। हम शान्ति चाहते हैं, पर नपुंसकोंवाली शान्ति नहीं, क्लीबोंकी शान्ति नहीं! भगवान् *वाल्मीकीय रामायण*में कहते हैं—

क्षमया हि समायुक्तं मामयं मकरालयः॥
असमर्थं विजानाति धिक्क्षमामीदृशे जने।

(वा.रा. ६.२०–२१)

यदि कोई क्षमाको कायरता समझ ले, निर्बलता समझ ले, तब क्षमा कभी नहीं करनी चहिए। हमारा सैन्यबल बहुत ही सुव्यवस्थित है। हमारे पास पारमाण्विक व नाभिकीय शस्त्र भी हैं। हमारे प्रक्षेपास्त्र (Brahmos) ही पर्याप्त हैं पूरे विधर्मी देशको समाप्त करनेके लिए। और हमारी सेना जानती है कि कब प्रसाद देना चाहिए। तो मित्रो! ऐसी कोई बात नहीं है। यही बात रामजीके साथ है। रामजीके समयसे हमारी विदेशनीति यही है। हम पहले प्रयास करते हैं कि समझौता हो जाए। विभीषणने समझाया, त्रिजटाने समझाया, माल्यवान्ने समझाया, हनुमान्जीने समझाया, और अङ्गदजीने समझाया। जब नहीं समझा, तो क्या विकल्प है? तब तो वही विकल्प है, जो होना चाहिए। वही है—**बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति** (मा. ५.५७)। तो आज सबको डर लग रहा है। मन्थराको सबसे पहले डर लगा और उसने कैकेयीसे कह दिया—

कद्रू बिनतहिं दीन्ह दुख तुमहिं कौसिला देब।
भरत बंदिगृह सेइहैं लखन रामके नेब॥

(मा. २.१९)

“यदि रामजी राजा बनेंगे, तो भरतजीको कारागारमें डाल दिया जायेगा। लक्ष्मणजी युवराज होंगे।” पर ऐसा नहीं हुआ क्योंकि **भय भंजनि** (मा. १.३१.८)। रामजी राजा बने तो क्या भरतजी कारागारमें आये? नहीं—

भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते।
गहे छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म शक्ति बिराजते॥

(मा. ७.१२.९)

माता कैकयीको भय हो गया—

सभय रानि कह कहसि किन कुशल राम महिपाल।
लखन भरत रिपुदमन सुनि भा कुबरी उर साल॥

(मा. २.१३)

रानी भयभीत हो गयीं कि बताओ—(१) रामजी, (२) चक्रवर्तीजी, (३) लक्ष्मण, (४) भरत, (५) शत्रुघ्न कुशलसे हैं? पाँचकी कुशल पूछी। यह भय भी इस **भय भंजनि** (मा. १.३१.८) कथाने दूर किया। (१) चक्रवर्तीजीका शरीर भले छूटा परंतु वे नरक नहीं गये, सकुशल इन्द्रपुरमें विराजे और लङ्काके युद्धके पश्चात् फिर आ गये—**तेहि अवसर दसरथ तहँ आये** (मा. ६.११२.१)। (२) रामजी कुशलसे हैं। (३) भरत, (४) लक्ष्मण व (५) शत्रुघ्न कुशलसे हैं। दशरथजीने कैकेयीसे कहा—

सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुन धाम राम प्रभुताई॥
करिहैं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर रामबड़ाई॥

(मा. २.३६.३–४)

भय भंजनि (मा. १.३१.८) सरस्वतीजीको भय है कि क्या होगा? भगवान्ने कहा—“कुछ नहीं होगा, आपका सम्मान होगा।” अत:—

आगिल काज बिचारि बहोरी। करिहैं चाह कुशल कबि मोरी॥

(मा. २.१२.७)

कैकयीजीको मन्थराने बहकाया, अनर्थ तो हो गया। कैकयीजी कोपभवनमें पधारीं। कैकयीजीका कोपभवनमें जाना सुनकर चक्रवर्तीजीको भय हो गया—

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भयबश अगहुड़ परइ न पाऊ॥

(मा. २.२५.१)

चक्रवर्तीजीको भय हो गया—"क्या होगा? क्या करेगी कैकयी?" भगवान् रामने कहा—"पिताजी! अब निश्चिन्त रहिये। वनमें मेरा बहुत बड़ा कल्याण होगा।" चक्रवर्तीजी—"क्यों?" भगवान् रामने कहा—"पिताजी! यहाँ रहता तो अर्थ मिलता। वनमें रहूँगा तो अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष—चारों मुझे मिलेंगे।"

मुनिगन मिलन बिशेष बन सबहिं भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि सम्मत जननी तोर॥

(मा. २.४१)

(१) **मोक्ष—मुनिगन मिलन बिशेष बन सबहिं भाँति हित मोर** (मा. २.४१) मुनिगणोंसे मिलन होगा, अर्थात् मुनियोंसे और अपने गणोंसे मिलन होगा। यही मोक्ष है।

(२) **धर्म—तेहि महँ पितु आयसु बहुरि** (मा. २.४१) अर्थात् पिताजीकी आज्ञाका पालन। यह धर्म है क्योंकि—**पितु आयसु सब धरमक टीका** (मा. २.५५.८)

(३) **अर्थ—सम्मत जननी तोर** (मा. २.४१)

(४) **काम—भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू** (मा. २.४२.१)—यही कामना (काम) है।

भय भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनि (मा. १.३१.८)। देखते जाइये! सारे संसारको भय है।

भूप मनोरथ सुभग बन सुख सुबिहंग समाज।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचन भयंकर बाज॥

(मा. २.२८)

कैकेयी माताजी आज वरदान माँग रही हैं।

(१) पहला वरदान—

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक वर भरतहिं टीका॥

(मा. २.२९.१)

भरतजीको टीका दे दिया जाए। सरस्वतीजी कहलवा रही हैं, अतः संदर्भसे यह नहीं कहा कि रघुकुलका टीका दे दिया जाए, राजा बनाया जाए। अब किसका राजा बनाया जाए, वह तो भगवान् जानें। रघुकुलका राजा थोड़े बनाया जायेगा, आज भरतजीको पूरे भक्तोंका राजा बनाना है। **देहु एक वर भरतहिं टीका**—केवल यह कहा। कहाँका टीका? यह नहीं कहा। यदि रघुकुलके टीकेकी बात होती, तब तो फँस जाते। कैकयी यही समझ रही हैं, पर सरस्वती ऐसा नहीं कह रही हैं।

(२) दूसरा वरदान बहुत अच्छा माँगा। यहाँ लक्ष्मणजी भी डर रहे हैं और सीताजी भी डर रही हैं। लक्ष्मणजीने सरस्वतीजीसे कह दिया—"देख लेना! यदि रामजीके वनगमनमें मेरा नाम नहीं आता तो परिणाम क्या होंगे। समझ लेना, घोंट दूँगा तुम्हारे हंसका गला।" सीताजीने कहा—"बहुत लड्डू-पूड़ी मेरे साथ खाई हो मिथिलामें चकाचक।" दोनों डर रहे हैं, पर **भय भंजनि**

(मा. १.३१.८)।

कथाका क्रम देखिये आप। यदि तुलसीदासजी महाराज कथाको व्यवस्थित लिख सकते हैं, तो तुलसीपीठाधीश्वर कथाको व्यवस्थित कह भी सकते हैं। और देखिये मोदीनगरवालो! फिर कह रहा हूँ कि जहाँ समझमें न आये, वहाँ बताना कि गुरुजी! मुझे यह समझमें नहीं आ रहा। मैं प्रयास करूँगा कि सब समझमें आये पर चित्त यहीं रखना, घरमें नहीं। माताओ! ऐसा नहीं! बहुत-सी महिलाएँ आती हैं तो स्वेटर बुनती रहती हैं (यहाँ तो नहीं बुन रही हैं)। मैंने कहा कि इसी कथामें स्वेटर तैयार करोगी। पूरा चित्त यहीं रखो। बेटा-बेटी सबकी चिन्ता छोड़ो, सब रघुनाथजी सँभाल देंगे तुम्हारे। और पुरुषलोग भी सारी बदमाशी छोड़कर कथामें बैठा करो।

लक्ष्मणजी और सीताजी—दोनों डर रहे हैं। दोनों सरस्वतीजीसे कह रहे हैं—"मेरा नाम आ जाना चाहिए रामजीकी सेवामें। नहीं तो कैकेयीजी कहेंगी कि मैंने तो केवल एक रामजीको ही वनवास दिया था, ये दोनों कैसे जा रहे हैं?" इससे अब ऐसा प्रयोग यहाँ होगा कि दोनोंका नाम आ जायेगा रामजीके साथ—

तापस बेष बिशेष उदासी। चौदह बरिस राम बनबासी॥

(मा. २.२९.३)

आनन्द कर दिया! अब सुनिये! मैंने लोहा मान लिया कि गोस्वामी तुलसीदासजी-जैसा व्यवस्थित कोई नहीं लिख सकता। इस कथाको देखकर लगता है कि इतनी व्यवस्थित चर्चाके लिए कैसी व्यवस्थाकी होगी ब्राह्मणने। कालिदास कहते हैं कि मैं बहुत व्यवस्थित लिखता हूँ, पर उनसे करोड़ों गुना अधिक व्यवस्थित लिखते हैं गोस्वामीजी।

तो पहले लक्ष्मणजीको अभय करेगी यह **भय भंजनि** (मा. १.३१.८) कथा। इसी चौपाईमें लक्ष्मणजीका और सीताजीका दोनोंका कल्याण होना है। चौपाई ध्यानसे देखिये—**तापस बेष बिशेष उदासी**। मैं समझानेका प्रयास कर रहा हूँ। मन मेरे पास रखिये, इधर-उधर मत देखिये। कैकयीजीसे सरस्वतीजीने विशेषण दिलवाया—**तापस बेष** रामजीको तापस वेष कहा। पर लक्ष्मणजी बोले कि पहले मेरा नाम आना चाहिए। अतः कहा—**बिशेष**। क्या कह दिया? **बिशेष**। विशेष माने क्या होता है? संस्कृतमें *शेष* शब्दके तीन अर्थ कहे जाते हैं—**शेषः सर्पेऽवशिष्टे च शेषः परिकरे तथा** अर्थात् (१) शेष माने शेषनाग। (२) शेष माने दूसरा अवशिष्ट, जो काटनेपर बच जाए। १७में ४का भाग दिया, बाहर गया ४ और शेष बचा १—यह है शेष। (३) और तीसरा शेष माने क्या होता है? सेवक। सेवकको भी संस्कृतमें शेष कहते हैं। तो विशेषमें कह दिया शेष। **विशेष** अर्थात्—

(१) *विशिष्टः विभूषणं शेषः यस्य*। शेषनाग जिनकी शय्या है—ऐसे क्षीरशायी विष्णुजी ही लक्ष्मणजी बन गये हैं। वे रामजीकी सेवामें रहेंगे—**विशेष**।

(२) *विशिष्टः शेषः*—परशुरामजीके फरसेसे जो नहीं कटे वह लक्ष्मणजी भी शेष हैं, रामजीकी सेवामें रहेंगे।

(३) *विशिष्टः शेषः सेवकः यस्य* एक विशिष्ट सेवक रामजीकी सेवामें रह सकते हैं, वे रहेंगे लक्ष्मणजी।

समझ गये आप लोग? यहाँ शेषके तीनों अर्थ हैं। तो लक्ष्मणजी सेवामें आ गये। लक्ष्मणजीका

भय समाप्त हो गया।

॥ बोलो लखनलालकी जय ॥

सीताजीने कहा—"मेरा नाम कब आयेगा?" सरस्वतीजीने कहा—**उदासी** (मा. २.२९.३)। क्या कहा? **उदासी**। संस्कृतमें उका अर्थ होता है उत्कृष्ट। उत्कृष्ट माने क्या होता है? सर्वश्रेष्ठ। **उदासी** अर्थात् रामजीके साथ एक उत्कृष्टा दासी भी रह सकती है। उत्कृष्ट क्यों कहा? और स्त्रियाँ सेवा करतीं तो वे निकृष्टा दासियाँ होती हैं, पर पत्नी जब पतिकी सेवा करती है तो वह उत्कृष्टा दासी होती है। दोनोंका कल्याण हो गया चकाचक! **भय भंजनि** (मा. १.३१.८)।

दोनों लक्ष्मणजी और सीताजीका भय दूर किया।

चक्रवर्तीजीका भय दूर किया इस कथाने। अब चक्रवर्तीजीने बहुत समझाया, पर कैकेयी नहीं मानी। सुमन्त्र आ रहे हैं। सुमन्त्रने देखा कि राजभवन भयंकर लग रहा है—

गये सुमंत्र तब राउर माहीं। देखि भयानक जात डेराहीं॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहुँ बिपति बिषाद बसेरा॥

(मा. २.३८.३–४)

मानो खाना चाहता है यह। **सचिव सभीत सकइ नहिं पूँछी** (मा. २.३८.८)—सुमन्त्रजी डर रहे हैं। यह **भय भंजनि** (मा. १.३१.८) लीला सुमन्त्रको भी निर्भय करेगी। सुमन्त्रजी जब वनवासके लिए प्रभुको छोड़ने जा रहे हैं, तब रामजीने कहा—नहीं भगवन्! आप निर्भय रहिये—

पितुपद गहि कहि कोटि नति बिनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहुँ बात कइ तात करिय जनि मोरि॥

(मा. २.९५)

आज्ञा हो गयी। राघवजीने कहा—"पिताजी! आप चिन्ता न करें, यह मङ्गलका समय है—"

मंगल समय सनेहबश सोच परिहरिय तात।
आयसु देइय हरषि हिय कहि पुलके प्रभुगात॥

(मा. २.४५)

"पिताजी! आप निर्भय हो जाइये। मैं वनवास जाऊँगा, पर आपको मैं नरकमें नहीं पड़ने दूँगा क्योंकि आपने मेरी शपथ लेकर प्रतिज्ञाकी है। आप प्रतिज्ञा छोड़ देंगे तो आपको नरक होगा। और पुत्रका अर्थ होता है—*पु* माने नरक होता है, *त्र* माने छुड़ाने वाला। मैं आपका पुत्र हूँ। जो पिताको नरकसे छुड़ा दे, उसीको तो पुत्र कहते हैं। जो बेटा शराब पीता है, कुकर्म करता है, वह अपने बापको नरकमें ही तो डालता है, और क्या करता है? शराब पीना, जुआ खेलना, किसी परायी नारीपर दृष्टि डालना—इन कुकर्मोंसे पिताको नरक होता है। इसलिए पुत्रको ऐसा कभी नहीं करना चाहिए जो पिताको नरकमें डाले।" रामजी कहते हैं—"पिताजी! ये भयंकर पाप हैं जीवनमें।" आज क्या कारण है कि हमारे भारतमें बलात्कार (rape) बढ़ते जा रहे हैं? हम तो प्रधानमन्त्रीजीसे माँग करेंगे कि केवल दण्ड नहीं! बलात्कारियोंको तो प्राणदण्डसे नीचे कोई दण्ड ही नहीं होना चाहिए। तो मित्रो! जीवनमें हमको सुन्दर आचरण करने चाहिए, जिससे पिताका यश बढ़े।

धन्य जनम जगतीतल तासू। पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू॥

(मा. २.४६.१)

उसीका जीवन धन्य है जिसके चरित्रको सुनकर पिताको प्रमोद हो।

चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके॥

(मा. २.४६.२)

इसलिए बालकको चाहिए कि जितना हो सके, वैदिक धर्मका पालन करे, वर्णाश्रममें विश्वास रखे, चरित्रको सँभालकर रखे, आँखोंको सँभालकर रखें और परायी नारीपर दृष्टि न जाये। और बेटियोंको भी यह नियम निभाना चाहिए। बेटी तो दोनों कुलोंको पवित्र करती है—**पुत्रि पबित्र किये कुल दोऊ** (मा. २.२८७.२)। आज लवजिहादके नामपर कितना अनर्थ किया जा रहा है हमारे यहाँ! याद रखिये, मेरी कथा तबतक पूर्ण नहीं होगी, जबतक उसमें राष्ट्रीय व्यथाका सम्मिश्रण नहीं होगा। मैं प्रार्थना करूँगा अपनी कन्याओंसे कि आप बहुत भावुकतामें मत बहिये। अपने चरित्रको सँभालकर रखिये। हमारी मर्यादाको रखियों बेटियों! हम कृतज्ञ होंगे आपके! हम नहीं चाहते कि हमारी हिन्दू कन्याओंपर ये दुष्ट, विधर्मी अपनी कुदृष्टि डालें और हमारी हिन्दू कन्याओंको अपनी वासनाकी बलि चढ़ा दें, यह हम नहीं चाहते। आपपर बहुत दायित्व हैं।

तो भगवान् पिताको अभय कर रहे हैं। श्रीकौशल्याजी भयभीत हुईं—

सहमि सूखि सुनि शीतलि बानी। जिमि जवास परें पावस पानी॥

(मा. २.५४.२)

भयभीत हो गयीं—**नयन सजल तन थर थर काँपी** (मा. २.५४.४)। भगवान्ने पूछा—"अरे! आप डर क्यों रहीं हैं माँ?"

पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥

(मा. २.५३.६)

शब्दावली देखिये—**जनि सनेहबश डरपसि भोरे** (मा. २.५३.८)। माताजी डर रही हैं। **आनँद अम्ब अनुग्रह तोरे** (मा. २.५३.८), "पिताजीने मुझे **कानन राजू** काननका राज्य दिया है।" **कानन** कहा, विपिन नहीं कहा, वन नहीं कहा। **कानन** अर्थात् *कं सुखमानने यस्य,* जिस प्रदेशके मुखमण्डलमें सुख है, भय नहीं है। "अब मत डरिए—**जनि सनेहबश डरपसि भोरे** (मा. २.५३.८)।" माताजीको अभय कर दिया, क्योंकि **भय भंजनि** (मा. १.३१.८)। पूरे विषयको समझते जाइये!

सीताजी क्यों डरेंगीं? रामजीने डरवाना चाहा, पर सीताजी नहीं डरीं। सीताजी वनवास जाना चाहती हैं, पर रामजीने कहा—

डरपहिं धीर गहनसुधि आये। मृगलोचनि तुम भीरु सुभाये॥

(मा. २.६३.४)

"आप तो स्वभावसे भीरु हैं।" सीताजीने कहा—"किसने कह दिया कि मैं भीरु हूँ? कब आपने मेरी भीरुता देखी?" सीताजीने विनोदमें कहा—"प्रभु! बड़े साहेब! जिस धनुषको आपने तोड़ा था न, उसी शङ्कर-धनुषको मैं बचपनमें पचासों बार घसीटकर खेलती थी प्रतिदिन। मैं भीरु कैसे?" बहुत दिव्य आनन्द है यहाँका! सीताजीने रामजीके प्रत्येक पक्षका खण्डन किया।

रामजीने कहा—**आयसु मोर सासु सेवकाई** (मा. २.६१.४) यानि सासुकी सेवा करना यह मेरी आज्ञा है; **सादर सासु ससुर पदपूजा** (मा. २.६१.५)। सीताजीने कहा—“सासु कहते किसे हैं? पहले आप यह बता दीजिये। सासु-ससुरकी भी आप व्याख्या बता दीजिये, फिर मैं आपको उत्तर दूँगी।” रामजीने कहा—“पतिकी माताको सासु कहते हैं और पतिके पिताको ससुर कहते हैं।” सीताजीने कहा—“बिल्कुल ठीक! तो आपकी माताजी क्या कह रही थीं, आपको स्मरण है?”

पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी॥

(मा. २.५६.३)

सीताजी कहती हैं—“आपसे ही तो माताजी कह रही थीं कि आजसे वनदेव आपके पिता हैं और वनदेवी आपकी माता हैं। अब यहाँ तो कोई मेरा सास-ससुर नहीं है, तो यहाँ रहकर क्या करूँगी मैं? बताइये! इसलिए मुझे वनमें जाना है, क्योंकि—”

बनदेबी बनदेव उदारा। करिहैं सासु ससुर सम सारा॥

(मा. २.६६.१)

लीजिये! आज मुझे लगता है कि रामजी भी किसीके पाले पड़ गये। अबतक ये अपनेको बहुत बुद्धिमान् मानते थे। भई देखो! मैं तो बहूरानीका पक्ष लेता हूँ। यह सभी लोग जानते हैं कि रामजी मेरे बेटे हैं और सीताजी मेरी बहूरानी हैं। मैं संसारकी बहुओंकी चिन्ता नहीं करता। ये क्षणभङ्गुर बहुएँ मेरा क्या करेंगी भाई साहब! हमारे पास तो एक ही बहू है—

जनक-नृप-नंदिनी सीता, बहूरानी हमारी हैं।
जनक-नृप-नंदिनी सीता, बहूरानी हमारी हैं।
प्रणत-कुल-चंदिनी सीता, बहूरानी हमारी हैं।
जनक-कुल-चंदिनी सीता, बहू रानी हमारी हैं।

मैं संसारमें महिलाओंको बहू कहता हूँ। बहूरानीतो केवल एक ही हैं सीताजी। तो रामजीने कहा—**सुमुखि मातु हित राखउँ तोही** (मा. २.६१.८), आपको माताजीके लिए रख रहा हूँ। घरमें रहिये न! सीताजीने कहा—“यह घर हो, तब तो रहूँ! अब तो आजसे घर ही नहीं रहेगा, यह तो श्मशान बन रहा है—**घर मसान परिजन जनु भूता** (मा. २.८३.७)। हे रामजी ! इसलिए मैं यहाँ नहीं रहूँगी।” रामजीने कहा—“ऐसा है कि वनमें काँटे चुभेंगे आपको। बड़े-बड़े काँटे!”

कुश कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना॥

(मा. २.६२.५)

सीताजीने कहा—“ये काँटे औरको चुभ सकते हैं, मुझे नहीं चुभेंगे।” “क्यों?” “इसलिए कि मैं भूमिसे उत्पन्न हूँ और ये भी भूमिसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिए ये मेरे भैया हैं। तो भाई कभी बहनका खून नहीं पीता।”

अब आप सोचिये, कितना रस है रामकथामें! सोच लीजिये आप, ऐसा रस कहीं मिलेगा आपको? बताइये! रामजीने कहा—“भूमिपर सोना होगा, वल्कल धारण करना होगा, कंद-मूल फल भोजन मिलेगा।” तो सीताजीने कहा—“क्या आपत्ति है? अरे! भूमिपर शयन मुझे चाहिए।

अरे! मैं तो तरस गयी अपनी माँकी गोदमें बैठनेके लिए। मिथिलामें सुनयना माताने गोदमें ले लिया, आपके यहाँ माता कौशल्याजीने—"

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥

(मा. २.५९.५)

"और जिसने जन्माया, वो पृथ्वी मैया बेचारी तरसी मुझे अपनी गोदमें लेनेके लिए। तो कमसे कम चौदह वर्ष तो मैं अपनी मैयाकी गोदमें रहूँगी। मेरा जीवन धन्य हो जायेगा। **भूमि शयन वल्कल बसन** (मा. २.६२) और यह वल्कल क्या है? वृक्षोंकी छाल ही तो वल्कल है और वृक्ष मेरे भैया हैं, तो भाईकी दी हुई साड़ी बहन बहुत गर्वसे धारण करती है। **अशन कंद फल मूल** (मा. २.६२)—यह मेरा सौभाग्य है कि अपनी माँका दिया हुआ प्रसाद पाऊँगी। **लागइ अति पहार कर पानी** (मा. २.६३.२), पहाड़का पानी मुझे नहीं लगेगा। पहाड़ मेरे भाई हैं, तो क्या भाई अपनी बहनको विषैला पानी पिलायेगा?" रामजीके एक-एक पक्षका सीताजी खण्डन कर रही हैं, आज आनन्द कर दिया! रामजीने कहा—**निशिचर निकर नारि नर चोरा** (मा. २.६३.३)। सीताजीने कहा—"नहीं, ये मुझे नहीं चुरा सकते क्योंकि मैं भी चोरकी पत्नी हूँ—**सुन्दर श्यामल गौर तनु बिश्व बिलोचन चोर** (मा. १.२४२)—आप विश्व विलोचन चोर हैं, तो चोर चोर मौसेरे भाई! कोई बात नहीं।" हा! हा!! हा!!! रामजीने कहा—

डरपहिं धीर गहन सुधि आये। मृगलोचनि तुम भीरु सुभाए॥

(मा. २.६३.४)

सीताजीने कहा—"सुनिये! सुनिये!! मैं सिंहकी पत्नी हूँ न! जब आप धनुष तोड़ने जा रहे थे मटकते हुए, तो कैसे लग रहे थे?—

ठाढ़ भये उठि सहज सुहाये। ठवनि जुबा मृगराज लजाये॥

(मा. १.२५४.८)

सिंहके समान आप जा रहे थे। इसलिए मैंने आपसे विवाह किया। मैं सिंहकी पत्नी हूँ, तो सिंहकी पत्नी किसीसे डरती है क्या? यह बताइये।

को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा। सिंघबधुहिं जिमि शशक सिआरा॥

(मा. २.६७.७)

अरे! आपके साथ रहूँगी तो कोई आँख नहीं उठा सकता मेरे सामने। समझ लीजिये!" आनन्द कर दिया सीताजीने।

सीताजी बोलीं—"मैं नहीं थकूँगी—

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिन छिन चरन सरोज निहारी॥

(मा. २.६७.१)

प्रभु! एक बात बताइये! मैं विनोद नहीं कर रही हूँ, सही कह रही हूँ। उसी फूलवारीमें मैं आयी थी?" रामजीने कहा—"हाँ।" सीताजीने कहा—"मैं घूम रही थी?" रामजीने कहा—"जी।" सीताजीने कहा—"उसी फूलवारीमें आप भी पधारे थे?" "रामजीने कहा—"जी।" सीताजीने कहा—"मुझको एक भी बूँद पसीना नहीं आया, पर आपको?—**भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाये**

(मा. १.२३३.३)—आपको पसीना आ गया था। तो यह बताइये कि थकान आपको लगती है कि मुझको लगती है? मुझे निरर्थक बदनाम कर रखा है आपने।" हाय! हाय!! आनन्द कर दिया! तब रामजीने कहा—"भैया! मैं आपसे हार गया भगवती। अब वन चलो। पर तुम योग्य नहीं हो।" सीताजीने पूछा—"क्यों योग्य नहीं हूँ?" रामजीने कहा—"क्योंकि आप हंसगामिनी हैं—**हंसगमनि तुम नहिं बन जोगू** (मा. २.६३.५)।" सीताजीने पूछा—"अच्छा यह बताइये कि यह प्रमाणपत्र मुझे किसने दिया?" राघवजीने कहा कि मेरी माँने—**डाबर जोग कि हंसकुमारी** (मा. २.६०.५)। सीताजीने कहा—"तो आपको भी मेरी माँने प्रमाणपत्र दिया है कि आप बालहंस हैं—**बाल मराल कि मंदर लेहीं** (मा. १.२५६.४)। जब बालहंस जा सकता है वनमें, तो बालहंसिनी क्यों नहीं जायेगी? यह बताइये!" आनन्द कर दिया! कोई पक्ष ही नहीं बच रहा। आज क्या हो गया है बहूरानीजीको! आज आनन्द है! तब रामजीने अपना पक्ष लौटा लिया और बोले चलिये। सीताजी निर्भय हैं क्योंकि **भय भंजनि ...** (मा. १.३१.८)। एक-एक बिन्दुपर ध्यान देते जाइये और मैं बिन्दु सहित चर्चा कर रहा हूँ।

अब लक्ष्मणजीको समाचार मिला कि रामजी सीताजीके साथ वनको पधार रहे हैं, तो वे भी थोड़ा-सा डरे, **ब्याकुल बिलख बदन उठि धाये** (मा. २.७०.१)—"हे भगवन्! क्या होगा? रघुनाथजी मुझे क्या कहेंगे?" देखा रामजी ने—"अरे लक्ष्मण! क्या कह रहे हो?" लक्ष्मणजीने कहा—"यही कि मैं क्या करूँ?" रामजीने कहा—"तुम यहीं रहो न, सेवा करो सबकी।" बहुत व्याकुल हो गये लक्ष्मणजी। दौड़कर चरण पकड़ लिये और बोले—"नहीं महाराज, मुझे न छोड़ा जाए। संसारके सारे संबन्ध मेरे आपसे जुड़े हैं।" रामजीने देख लिया कि लक्ष्मणजी डर रहे हैं। दोहा पढ़िए न—

करुनासिंधु सुबंधुके सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाये उर लाइ प्रभु जानि सनेह सभीत॥

(मा. २.७२)

आगेकी पङ्क्ति क्या है? **जानि सनेह सभीत**। यह देखिये **भय भंजनि ...** (मा. १.३१.८)। भगवान्ने लक्ष्मणजीको हृदयसे लगाकर समझाया—"आप चिन्ता न करें।" लक्ष्मणजीने कहा—"चिन्ताकी बात नहीं है। मैं शिशु हूँ, आपके प्रेममें पला हुआ हूँ। मराल हूँ मैं। हंसका बच्चा सुमेरु पर्वत नहीं उठा सकता। भगवन्! मेरी क्षमता नहीं है।" तब रामजीने उन्हें निर्भय कर दिया—

माँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥

(मा. २.७३.१)

लक्ष्मणजीसे कहा—"आप जाइये! माँसे विदा माँग आइये।" लक्ष्मणजीने कहा—"मैं पहले ही कह चुका हूँ—**गुरु पितु मातु न जानउँ काहू** (मा. २.७२.४)।" रामजीने कहा—"अरे पगले! मैं तुम्हें तुम्हारी माँके यहाँ नहीं भेज रहा हूँ। मैं तुम्हें अपनी छोटी माँके पास भेज रहा हूँ। जाओ! उनसे विदा माँगो।" लक्ष्मणजीनेपूछा—"आप नहीं जायेंगे?" रामजी बोले—"नहीं-नहीं, मैं नहीं जाऊँगा। मुझे भी भय लग रहा है कि सुमित्राजी मेरे तपस्वी वेषको देखकर कहीं यह न कह दें कि दोनों समान हैं कैकेयी और मैं। यदि सौतेली माँके अधिकारसे कैकेयी तुम्हें वनवास

दे रही हैं, तो उसी सौतेली माँके अधिकारसे मैं कैकेयीके आदेशको चुनौती देती हूँ। मैं निरस्त कर रही हूँ। और जब दोनोंके आदेश टकरायेंगे तो रावण-वधकी लीला कैसे होगी? बताओ! इसलिए तुम जाओ और मेरी ओरसे माताजीसे विदा माँग आओ। जाकर मेरा एक संदेश कह देना लक्ष्मण—

कहि दीजो सुमित्रासे जाकरके अब राघव कानन जा रहा है।
अति धीर धुरंधर वीर व्रती पन प्रेम औ नेम निभा रहा है।
जननी तव प्रेम सरोवरमें सुत बारहिं बार नहा रहा है।
***गिरिधर* ईश तुम्हारे ही सम्मुख आवनमें सकुचा रहा है।**

जाकर कह देना।" लक्ष्मणजी आ रहे हैं। माँसे पूरी बात कही। लक्ष्मणजीको फिर थोड़ा-सा डर लगा—**माँगत बिदा सभय सकुचाहीं** (मा. २.७३.८)। शब्दोंको देखिये! **भय भंजनि**। मैंने कहा न कि इस बार मैं आपको श्रीरामकथाकी व्यवस्था ही समझाने आया हूँ। ऐसा व्यवस्थित प्रबन्ध हमने और कहीं तो नहीं देखा।

लक्ष्मणजी डर रहे हैं। सुमित्रा माताजीने सुना तो—**गयी सहमि सुनि बचन कठोरा** (मा. २.७३.६)—वे भी डर गयीं और **मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा** (मा. २.७३.६)। परन्तु धैर्य धारण किया। **धीरज धरेउ कुअवसर जानी** (मा. २.७४.१)। क्योंकि—**भय भंजनि**। माताजीने कहा—"बेटे!"

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही॥

(मा. २.७४.२)

"बेटे! जब राघवजीने यह कहा कि तुम माँके पास जाओ, उसी समय तुम कह देते कि नहीं सीताजी मेरी माँ हैं और आप मेरे पिताजी हैं।" लक्ष्मणजीने कहा—"यह सब तो कहा। पर उन्होंने मुझे मेरी माँके पास नहीं भेजा, उन्होंने मुझे अपनी माँके पास भेजा है।" तब सुमित्राजीने कहा—"ठीक है, यदि वे मेरे सामने आनेसे सकुचा रहे हैं तो मैं भी उनके सामने जानेमें सुकुचा रही हूँ लक्ष्मण! तुम जाओ, राघवजी एवं सीताजीकी सेवा करना—

उपदेश यह जेहिं तात तुमते राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
तुलसी सुतहिं सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आशिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥

(मा. २.७५.९)

बेटे! मेरा यही उपदेश है कि तुम वही करना जिससे सीतारामजी तुमसे प्रसन्न रहें।"

लक्ष्मणजी फिर थोड़ा-सा डरे कि कहीं उर्मिलाजी न रोक लें, पर उर्मिलाजी क्यों रोकेंगीं—**मातु चरन सिर नाइ चले तुरत शंकित हृदय** (मा. २.७५)। शङ्का कर रहे हैं, पर उर्मिलाजीने कहा कि नहीं मैं नहीं रोकूँगी—

मेरे मानसके हरिण आज वनचारी।
मैं रोक न लूँगी तुम्हें तजो भय भारी॥

(सा.)

उर्मिलाजीने नहीं रोका क्योंकि—**भय भंजनि** (मा. १.३१.८)। श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी; तीनों वल्कल वस्त्र धारण किये हुए दशरथजीके पास आये। श्रीरामजीने पिताजीसे कहा—

तात किये प्रिय प्रेम प्रमादू। जग जश जाइ होइ अपबादू॥

(मा. २.७७.४)

प्रियके प्रति प्रेममें यदि प्रमाद हुआ तो अनर्थ हो जायेगा पिताश्री!

सजि बन साज समाज सब बनिता बंधु समेत।
बंदि बिप्र गुरु चरन प्रभु चले करि सबहिं अचेत॥

(मा. २.७९)

क्या दृश्य है! सबको अचेत कर दिया, नहीं तो मर जाते। वसिष्ठजीके यहाँ आकर खड़े हुए। दशरथजीके राज्यकालमें वित्त मन्त्रालय रामजीके पास ही था—**गुरु सन कहि बरषाशन दीन्हे** (मा. २.८०.३)। सब ब्राह्मणोंके लिए सौंपा **बरषाशन**। चौदह वर्षका बजट बनाकर दे दिया एक साथ और पूरी व्यवस्था कर दी कि जबतक मैं वनवाससे नहीं लौटूँगा, तबतक मेरे ही धनसे अयोध्याके ब्राह्मण भोजन करते रहेंगे। दासी-दास सबको सौंप दिया। चल पड़े। लङ्कामें अपशकुन हुए, अवधमें शोक है, स्वर्गमें हर्ष-विषाद दोनों। इधर राघवजीके चले जानेके पश्चात् चक्रवर्तीजीकी मूर्च्छा जगी और वे बोले—"रामजी चले गये, पर मेरे प्राण नहीं जा रहे हैं। सुमन्त्र रथ लेकर जाओ।" सुमन्त्रजी रथ लेकर जा रहे हैं। रथपर प्रभुको बैठाया। इधर अयोध्याके लोग सब पीछे-पीछे चल पड़े—

सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी॥

(मा. २.८४.४)

बालक बृद्ध बिहाइ गृह लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवास किय प्रथम दिवस रघुनाथ॥

(मा. २.८४)

तमसाके किनारे भगवान् प्रथम दिवस विश्राम कर रहे हैं। उन्होंने सोचा कि अयोध्यावासियोंका क्या करूँ? देवताओंकी मायाने अयोध्यावासियोंको थोड़ा सुला दिया कि वनमें इनका जाना ठीक नहीं रहेगा। प्रभु सुमन्त्रसे कहते हैं—"चुपकेसे रथ ले चलो—**खोज मारि रथ हाँकहु ताता** (मा. २.८५.८), चिह्न नहीं दिखने चाहिए।"

शृङ्गवेरपुर आये। निषादराज गुह प्रभुके मित्र हैं, उनसे मिले। प्रभुने कंद-मूल फलाहार किया। शयन कर रहे हैं रामजी और सीताजी। लक्ष्मणजी जाग रहे हैं। निषादराजजीको बहुत क्लेश हुआ—"अरे! कैकेयी माताने क्या कर दिया! प्रभुको वनवास? ये दु:ख सहने योग्य हैं क्या?" लक्ष्मणजीने कहा—"क्या कह रहे हैं आप? कोई किसीको सुख-दु:ख नहीं देता, सबको अपने कर्मफल भोगने पड़ते हैं।" निषादने पूछा—"तो रामजीने कौन सा कर्म किया, जो उनको भोगना पड़ रहा है?" लक्ष्मणजीने कहा—"तो पहले ये बताइये कि रामजी भोग कहाँ रहे हैं? आपको भ्रम हो रहा है कि रामजी भोग रहे हैं।" निषादने पूछा—"इसका प्रमाण?" लक्ष्मणजीने कहा—"अरे! प्रमाण यह है कि यदि रामजीको थोड़ा-सा भी दु:ख होता तो इतने

खर्राटे भरकर सोते क्या? यह बताइये!" इसलिए—

सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन रामपद नेहू॥

(मा. २.९३.६)

बहुत सुन्दर चर्चा हुई। केवट बहुत ध्यानसे यह संवाद सुन रहा था। इधर भगवान् रामने लक्ष्मणजीके साथ सिरपर जटा बनायी और वानप्रस्थ नियम धारण किया। सुमन्त्रजीकी आँखोंमें आँसू भर आये। रामजीने उन्हें बहुत समझाया—"आप जाइये! पिताजीको मेरा यह संदेश कहियेगा कि मेरी चिन्ता न करें।" सीताजीने भी कहा कि मेरे सास-ससुरको मेरी ओरसे प्रणाम कहियेगा, मैं प्रसन्न हूँ तथा मुझे किसी प्रकारका डर नहीं है।

प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीरधुरीन धरे धनु भाथा॥

(मा. २.९९.१)

अब सुनिये! यहींसे निर्भयताका प्रारम्भ हो रहा है—**भय भंजनि** (मा. १.३१.८)। रामजीने कह दिया कि अब किसीको डरनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं अभय हूँ, अभयदान करने आया हूँ। चलिये देखें! सबसे प्रथम उदाहरण केवटका।

बरबस राम सुमंत्र पठाए। सुरसरि तीर आपु तब आये॥

(मा. २.१००.२)

प्रभु गङ्गाजीके किनारे उपस्थित हैं और केवट नावपर बैठा है। भगवान् केवटको बुला रहे हैं—केवट! केवट!!

आवहो आवहो आवहो आवहो।
आवहो मोरी नावके खिवैया, जिनि बार लगावा केवट भैया॥

यह हमारी शुद्ध अवधी भाषा है—

हम दो बंधु अवधसे आये, पिता वचन ते बिपिन सिधाए।
हमरे साथ बैठे कोमल लुगैया, जिनि बार लगावा केवट भैया॥
गंगा नदी बहे अबिरल धारा, जल अघाद अति दूर किनारा।
अब पवन चलत पुरबैया, जिनि बार लगावा केवट भैया॥
आवहो आवहो आवहो आवहो।
आवहो मोरी नावके खिवैया, जिनि बार लगावा केवट भैया॥
शोक विकल सब पुर नर नारी, हमरे वियोगमें अधिक दुखारी।
हमरे पास नहीं नाव औ खिवैया, जिनि बार लगावा केवट भैया॥

केवट बोला—"क्या करूँ?" रामजीने कहा—

गंगा नदीसे पार उतारो, *गिरिधर*-प्रभुको हृदयमें धारो।
तुम्हें लौटिके देब उतरैया, जिनि बार लगावा केवट भैया॥
आवहो आवहो आवहो आवहो।
आवहो मोरी नावके खिवैया, जिनि बार लगावा केवट भैया॥

आहा! आहा!! बोलिये भक्तवत्सल भगवान्‌की जय!

केवटने कहा—

माँगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरम मैं जाना॥

(मा. २.१००.३)

"मैं आपका मर्म जानता हूँ।" "अच्छा! क्या मर्म जानते हो?" केवटने कहा—"सबका उद्धार हो रहा है। आपने बचपनमें खगका, भुशुण्डिजीका उद्धार किया। फिर मृगका उद्धार किया—**जे मृग राम बानके मारे** (मा. १.२०५.३)। व्याध जैसे क्रूर स्वभाववाले ताड़का, मारीच-सुबाहूका उद्धार किया, पाषाण अहल्याजीका उद्धार किया। अब मेरी बारी है। अब आप नावका उद्धार कर रहे हैं। तो भगवन्! नावका उद्धार तो पश्चात् होगा, अभी मेरा निपटा दीजिये। क्योंकि आपके चरण-स्पर्श करके जब शिला सुन्दरी नारी बन गयी तो यह नाव तो बड़ी कोमल है। मार्गमें उलट जायेगी, लुट जायेगी—**तरनिउ मुनिघरनी होइ जाई** (मा. २.१००.६)। आप तो नहीं डूबेंगे, पर मेरी जीविका चली जायेगी।" इसलिए—

जौ प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥

(मा. २.१००.८)

यदि आप मार्ग अवश्य पार होना चाहते हैं, तो मुझे चरण कमल धोनेकी आज्ञा दीजिये। भगवान्‌ने कहा—"फिर।" प्रभु—**पद पदुम धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं** (मा. २.१००.९)। सही कह रहा हूँ, झूठ नहीं बोल रहा हूँ—

मोहि राम राउरि आन दशरथ शपथ सब साँची कहौं।
बरुतीर मारहुँ लखन पै जब लगि न पायँ पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पार उतारिहौं॥

(मा. २.१००.९)

रामजी हँसे। यहाँ बहुत अच्छा सोरठा है—

सुनि केवटके बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना ऐन चितइ जानकी लखन तन॥

(मा. २.१००)

बिहँसे करुना ऐन—भगवान् हँसे। क्यों हँसे? भगवान् कह रहे हैं—"सुनो सीते! मेरे चरणोंकी सेवाके लिए आपने पीहर छोड़ा, ससुराल छोड़ा और लक्ष्मणने मेरी चरणसेवाके लिए महतारी छोड़ी और नारी छोड़ी। फिर भी सेवा नहीं मिली। और केवटने कुछ भी नहीं छोड़ा, फिर भी आज दोनों चरणोंकी सेवा पा रहा है। यह बताइये कि आपका त्याग भारी पड़ रहा है या केवटका अनुराग भारी पड़ रहा है? बताइये!" **चितइ जानकी लखन तन**—दोनों सीताजी और लक्ष्मणजीकी ओर देखकर भगवान् हँसे। आनन्द कर दिया!

दोनों ओर भगवान्‌ने एक और कारणसे देखा। भगवान्‌को लगा—"केवट निर्भय है। कहीं सीताजीको क्रोध आ जाए तो सीताजी स्वर्गसे नाव मँगवा लेंगीं। जब मेरी बारातकी सेवा वे ऋद्धि-सिद्धिसे करवा सकती हैं तो यदि स्वर्गसे नाव आ जायेगी तब तो बेचारे केवटकी जीविका खतरेमें पड़ जायेगी। और लक्ष्मणजी कहीं क्रोधमें आकर कह दें कि गङ्गाजी! थोड़ी देर सूख जाइये हम पैदल चले जायेंगे, तो केवटपर कृपा कैसे होगी।" इसलिए **चितइ जानकी लखन**

तन—दोनों सीताजी और लक्ष्मणजीकी ओर इस आशय से देखा कि तुम लोग कुछ भी मत बोलो! लीला देखते रहो, मूक दर्शक रहो। इसलिए दोनों जनोंकी ओर देखा। फिर बुलाया केवटको और कहा—"अच्छा भैया! वही करो जिससे तुम्हारी नाव न जाये—

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहि तव नाव न जाई॥

(मा. २.१०१.१)

शीघ्र मेरे चरण पखारो, विलम्ब हो रहा है।" "ठीक है सरकार! पर यदि ये दोनों रोकें, तब?" "अरे नहीं! **केवट राम रजायसु पावा** (मा. २.१०१.६)—यह मैं राजाज्ञा दे रहा हूँ। अब कैसे ये लोग रोकेंगे?" केवटने कहा—"अच्छा! आप राजा कबसे बने भगवन्?" भगवान्ने कहा—"जबसे तुमने कहा। तुम्हीं तो कह रहे थे—**सब परिवार मेरो याहि लागि राजा जू** (क. २.८)।" रामजी आनन्दमें मुदित हो गये।

केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लइ आवा॥
अति आनन्द उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥

(मा. २.१०१.६–७)

कौन चरण धो रहा है? बोले—**अनुरागा**। आज भगवान्का प्रेम ही केवट बन गया है, वही चरण धो रहा है।

बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। येहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥

(मा. २.१०१.८)

देवता फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं, जय-जयकार कर रहे हैं, आनन्द हो गया, इतना बड़ा पुण्यपुञ्ज कोई है ही नहीं आज।

पद पखारि जल पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पार करि प्रभुहिं पुनि मुदित गयेउ लइ पार॥

(मा. २.१०१)

चार कार्य किये केवटने—(१) **आपु सहित परिवार पद पखारि**, (२) **आपु सहित परिवार जल पान करि**, (३) **आपु सहित परिवार पितर पार करि**, (४) **आपु सहित परिवार प्रभुहिं पुनि मुदित गयउ लै पार**। ये चार काम किये परिवार सहित। केवटने कहा—"सरकार! एक बार चरण और धुलवा लीजिये।" भगवान्ने कहा—"क्यों?" केवटने कहा—"अरे! आज हमारे पितरोंका श्राद्ध करना है भगवन्! पितर पक्ष चल रहा है। भगवन्! मुझे श्राद्ध करना है।" धुलवाये भगवान्ने और उसी चरणामृतसे—*अनेन भगवत्पादोदकेन अस्मद्वृद्धमाता अस्मन्मातामह: अस्मत्पितामह: अस्मत्प्रपितामह: अस्मत्पितरो प्रीयन्तां तृप्यन्ताम्*। आनन्द कर दिया! सब लोग साकेत चले गये—

पद पखारि जल पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पार करि प्रभुहिं पुनि मुदित गयेउ लै पार॥

(मा. २.१०१)

आनन्द कर दिया!

उतरि ठाढ़ भये सुरसरि रेता। सीय राम गुह लखन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच येहि नहिं कछु दीन्हा॥

(मा. २.१०२.१–२)

स्वयं प्रभु खड़े हुए। केवटने उतरकर दण्डवत् की। "क्यों भैया?" केवटने कहा—"मैं जानता हूँ कि जो आपको दण्डवत् कर लेता है, उसे दण्ड नहीं मिला करते भगवन्! इसलिए दण्डवत् कर ली।" "अरे! इसे मैंने कुछ नहीं दिया"—

केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच येहि नहिं कछु दीन्हा॥
पियहिय की सिय जाननिहारी। मनिमुदरी मन मुदित उतारी॥

(मा. २.१०२.२–३)

आहाहा! भगवती जान गयीं कि प्रभुको संकोच हो रहा है। प्रसन्नतासे चूड़ामणि भी उतार ली और मुद्रिका भी; कहा—"लक्ष्मणकी उतराईमें केवटको चूड़ामणि दे दूँगी और अपनी उतराईमें मुद्रिका दे दूँगी।" भगवान्ने कहा—"उतराई लो।" **कहेउ कृपालु लेहु उतराई** (मा. २.१०२.४)। केवटने चरण पकड़ लिए—**केवट चरन गहे अकुलाई** (मा. २.१०२.४) और बोला—"उतराई ही तो ले रहा हूँ। चूँकि यह चूड़ामणि सीताजीकी निजी संपत्ति नहीं है और मुद्रिका भी उनकी निजी संपत्ति नहीं है। सीताजीकी निजी संपत्ति है आपके वाम चरण और लक्ष्मणजीकी निजी संपत्ति है आपका दाहिना चरण। यही उतराई मैं ले रहा हूँ और क्या चाहिए। **नाथ आजु मैं काह न पावा** (मा. २.१०२.५)—सब कुछ तो मुझे मिल गया भगवन्। कुछ नहीं चाहिए—**अब कछु नाथ न चाहिय मोरे** (मा. २.१०२.७)।" आनन्द कर दिया! भगवान्ने अभय कर दिया—**भय भंजनि** (मा. १.३१.८)।

प्रयाग आये, भरद्वाजजीके दर्शन किये। भरद्वाजजीने कहा—"सरकार! आपके दर्शनसे सब कुछ मिल गया मुझे।" सब लोग वनपथमें आनन्द कर रहे हैं। सबको आनन्द देते हुए आ रहे हैं। वटवृक्षके नीचे रुके। **भय भंजनि**। ग्रामवधुएँ भी निर्भय हो गयी हैं, सीताजीके पास आती हैं और कहती हैं कि ये करोड़ों कामदेवोंको लज्जित करने वाले तुम्हारे कौन हैं?—

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥

(मा. २.११७.१)

सीताजीने बताया—

खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिनहिं सिय सयननि॥

(मा. २.११७.७)

गद्गद हो गयीं। वाल्मीकिजीके आश्रममें आये और वाल्मीकिजीने भगवान्को चौदह स्थान बताये रहनेके। चित्रकूट आ गये और देवताओंने कोल-किरातोंके वेषमें आकर कुटी बनायी। भगवान् चित्रकूट आ गये हैं, यह समाचार सुनकर ऋषि-मुनि आये—

चित्रकूट रघुनंदन छाये। समाचार सुनि सुनि मुनि आये॥

(मा. २.१३४.५)

सम्मान करके प्रभु ने उन्हें विदा किया—**जथाजोग सनमानि प्रभु, बिदा किये मुनिबृंद** (मा. २.१३४)। कोल-किरात पत्तोंके दोनोंमें कन्द-मूल, फल भर-भरकर दौड़े हुए आये, प्रभुने

प्रिय वचन कहकर सबको प्रसन्न कर दिया, सब आनन्द कर दिया। सब प्रेमसे निर्भय हो गये—**भय भंजनि**। सीतारामजी लक्ष्मणजीके सहित प्रसन्न होकर चित्रकूटमें रह रहे हैं—

राम लखन सीता सहित सोहत परननिकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर शची जयंत समेत॥

(मा. २.१४१)

येहि विधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी॥

(मा. २.१४२.३)

इस प्रकार तेरहवीं कथा **भय भंजनि** (मा. १.३१.८) सम्पन्न हुई।

॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥
॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥
सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय हो!
पवनपुत्र हनुमान्‌जी महाराजकी जय हो!
गोस्वामीजी तुलसीदास महाराजकी जय हो!
॥ जय जय श्रीसीताराम ॥

सप्तम पुष्प

॥ नमो राघवाय ॥

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥
नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥
सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥
जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी।
सुजनचकोरकदम्बो यत्कविताकौमुदीं पिबति॥
(श्री)सीतानाथसमारम्भां (श्री)रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे (श्री)गुरुपरम्पराम्॥
श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर-बिमल-जस जो दायक फल चारि॥

सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय।

(श्री)रामचरितमानस बिमल कथा करौं चित चाइ।
आसन आइ विराजिये (श्री)पवनपुत्र हरषाइ॥

पवनसुत हनुमान्‌जी महाराजकी जय हो। गोस्वामी तुलीदासजी महाराजकी जय हो।

जय सियारामा भरत प्रिय रामा। जय सियारामा भरत प्रिय रामा॥
भरत प्रिय रामा लखन प्रिय रामा। जय सियारामा भरत प्रिय रामा॥
सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनि॥
जय सियारामा भरत प्रिय रामा। जय सियारामा भरत प्रिय रामा॥

श्रीसीताराम भगवान्‌की जय हो! भावते भरतलालजीकी जय हो!!

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा, जगन्नियन्ता, जगदेथकनाथ, जगदाधार, जगदधिष्ठान, जगन्मोहन, जगन्नाथ, जगदीश, भगवान्, परमाराध्य श्रीसीतारामजीकी कृपासे, मोदीनगरमें राघव-सेवा-समितिद्वारा समायोजित, मेरी १२५१वीं ऐतिहासिक रामकथाके सप्तम सत्रमें आप सभी बान्धवियों और बन्धुओंका मैं बहुत-बहुत स्वागत करता हूँ।

कथा १४: भ्रम भेक भुजंगिनि (मा. १.३१.८)

आजकी जो कथा है, उसके संबन्धमें योगिराज जनकजीका वाक्य ध्यातव्य है। योगिराज जनकजी चित्रकूटमें अपनी धर्मपत्नी सुनयनाजीसे कह रहे हैं—

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरतकथा भवबंध बिमोचनि॥

(मा. २.२८८.३)

"हे सुमुखि! तुमने भरतजीकी चर्चा की। हे सुलोचनि! तुमने भरतजीकी छविको निहारा है। अत: इस कथाको सावधान होकर सुनो, अवधानके साथ सुनो।" अवधान माने एकाग्रता और सावधान अर्थात् *अवधानेन सहितम्* एकाग्रताके साथ सुनो। भरतजीकी कथा भवबन्धको नष्ट कर देती है—**भरतकथा भवबंध बिमोचनि** (मा. २.२८८.३)। और इसी कथाको यहाँ तीस कथाओंके क्रममें गोस्वामीजी कहते हैं—**भ्रम भेक भुजंगिनि** (मा. १.३१.८)। यह भ्रमरूप मेंढकको निगलनेके लिए सर्पिणीके समान है। मेंढक चिल्लाता रहता है और साँपिन मेंढकको निगल जाती है। इसी प्रकार यदि जीवनमें भरतलालजीकी कथा आ जाए, तो हमको-आपको भगवान्के प्रति भ्रम नहीं रह जायेगा और यही भ्रम हमको संसारमें ले आता है—**तब भवमूल भेद भ्रम नासा** (मा. ७.११८.२)। भेदका जो हमें भ्रम हो गया है, वह नष्ट हो जाता है।

भेद भ्रमका अर्थ क्या है? एक बात बताऊँ! मैं कारण नहीं जान पा रहा हूँ, पर न जाने क्यों मोदीनगरकी इस कथामें मेरा मन बहुत लग रहा है! देखिये **भेद भ्रम**का अर्थ यह है कि हम वैष्णवलोग स्वरूपत: तो अभेद स्वीकारते नहीं, स्वरूपसे हम भगवान्से अलग हैं। भगवान् परमात्मा हैं और हम जीवात्मा। इतना समझ लेना चाहिए कि जीवात्मा कभी परमात्मा नहीं बन सकता। अद्वैतवादी यही कहते हैं कि जीवात्मा परमात्मा है, पर हमने कहा कि ऐसा नहीं है क्योंकि श्रुति उसका विरोध कर रही हैं—

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।

(क. उ. २.२.१३)

जीवात्मा अणु है। अणु होकर चेतन है जीवात्मा, छोटा-सा है और परमात्मा व्यापक होकर चेतन है—**अणुत्वे सच्चेतनत्वं जीवात्मत्वं, व्यापकत्वे सच्चेतनत्वं परमात्मत्वम्**। परमात्मा व्यापक होकर चेतन है और जीवात्मा अणु होकर चेतन है। जीवात्माका नाम है क्षेत्रज्ञ। क्या नाम है? याद रखिये क्षेत्रज्ञ—**क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत** (भ.गी. १३.२) और परमात्माका नाम है सर्वज्ञ। परमात्मा सब कुछ जानते हैं, सभी शरीरोंकी बात जानते हैं, जीवात्मा केवल अपने शरीरको जानता है—**इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते** (भ.गी. १३.१)। इसलिए जीवात्मा परमात्माका भक्त है। न्यायशास्त्रमें स्पष्ट कहा गया है—**ज्ञानाधिकरणमात्मा** (त.सं.)। अन्नम्भट्टने जब इसकी टीका लिखी, तो कहा—**समवायसंबन्धेन नित्यज्ञानवानीश्वर:** अर्थात् समवाय-संबन्धसे नित्य ज्ञानवान् ईश्वर है। भगवान्का ज्ञान कभी ढँकता नहीं, जीवका ज्ञान मायासे ढँक जाता है—

ग्यान अखंड एक सीताबर। माया बश्य जीव सचराचर॥

(मा. ७.७८.४)

रामायणजीकी चौपाइयोंको गानेसे समाधि लग जाती है मित्रो! जो अभागे हों उन्हें न समाधि लगे। उनको तो पिक्चरके गीतोंमें समाधि लगती है। उन्हें कव्वालियोंमें, शेर-शायरीमें, फिल्मोंमें, फूहड़ गीतोंमें समाधि लगती है। वे अभागे हैं। क्या करेंगे?—

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥

(मा. ३.३५.३)

इसलिए मुझको तो चौपाई गानेमें समाधि लगती है, आनन्द आ जाता है। आपको भी लगेगी, चिन्ता मत करो माताओ। करपात्री स्वामीजीका मेरठमें भी एक आश्रम है धर्मसंघवाला। बहुत प्रचार किया धर्मका, झूठ नहीं कहना चाहिए। सीधे बहुत थे करपात्री स्वामी। कुछ लोगोंने उनसे संस्था बनवा दी, थोड़ा राजनैतिक हो गया नहीं तो, इतने अच्छे थे वे कि कभी-कभी लगता था कि स्वयं भगवत्पाद आद्यशंकराचार्यजी ही करपात्रीजीके रूपमें आ गये। बहुत अच्छे थे, पर गलती सबसे होती है। हो गयी! बहुत अच्छे थे। तो करपात्री स्वामी एक बात कहते थे कि वैदिक-लोगोंको वेदपारायण करनेसे जितना पुण्य मिलता है, उतना ही पुण्य रामचरितमानसको सस्वर गानेसे मिल जाता है। तो वेद तो बहिनें पढ़ नहीं सकतीं। अब तो ठीक है, जो कुछ है। और सभीको वेद पढ़नेका अधिकार नहीं होता। रामायणजी सब गाओ चकाचक! बैठकर गाओ, उठकर गाओ, लेटकर गाओ, घूमकर गाओ, नहाकर गाओ, बिना नहाकर गाओ—जैसे भी गाओ, कल्याण ही कल्याण है। श्रीरामायणजीको बहुत प्रेमसे गाना चाहिए।

देखिये! हम यह कह रहे हैं कि हमलोग स्वरूपत: तो परमात्माका अभेद नहीं मानते, परन्तु संबन्ध-निबन्धना एकता हम मानते हैं। संबन्धसे हम परमात्मासे अभिन्न हैं और स्वरूपसे भिन्न हैं। संबन्धसे अभिन्न होनेका क्या अर्थ है? जैसे वाल्मीकीयरामायणमें आया न—**रामसुग्रीवयोरैक्यं देव्येवं समजायत** (वा.रा. ५.३३.४९) अर्थात् इस प्रकार राम और सुग्रीवकी एकता हो गयी। एकता माने संबन्ध हो गया। तो हम भगवान्‌के सेवक हैं और भगवान् हमारे स्वामी हैं—यही हमारा संबन्ध है।

एक बात आज बहुत गम्भीरतासे सुनिये। फिर तो नाचने-गाने वाले वक्ता मिल ही जायेंगे, आपको सुनायेंगे। पर जो मैं सुना रहा हूँ, उसे सुनिये! हम कौन हैं? हम भगवान्‌के सेवक हैं और भगवान् हमारे स्वामी हैं। ये रामजीके सखा कह रहे हैं और कितना सुन्दर कह रहे हैं।

सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओरनिबाहू॥

(मा. २.२४.६)

इतनी सुन्दर पङ्क्ति है।

जेहिं जेहिं जोनि करम बश भ्रमहीं। तहँ तहँ ईश देउ यह हमहीं॥

(मा. २.२४.५)

हे भगवन्! हम जिस-जिस योनिमें जायें, इतना दे दीजिये कि **सेवक हम स्वामी सियनाहू** (मा. २.२४.६) यानि हम भगवान्‌के सेवक रहें और सीतापति भगवान् राम हमारे स्वामी। **होउ नात यह ओरनिबाहू** (मा. २.२४.६) यह जो हमारा नाता (संबन्ध) है, सेवक-सेव्य भाव, जबतक हम जीते रहें तबतक इसका निर्वहण होता रहे।

सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओरनिबाहू॥

(मा. २.२४.६)

तो देखिये, संबन्ध-निबन्धना एकतामें जब **भेद भ्रम** हो जाता है, तब हम संसारमें पड़ जायेंगे। जब हमको यह भ्रम हो जायेगा कि हम रामजीके नहीं है, रामजी हमारे नहीं हैं, तब हमारी पत्नी, हमारा पति, हमारा बेटा, हमारी बेटी, हमारा घर-द्वार, हमारे इष्ट, हमारे मित्र, हमारा धन, हमारी संपत्ति—जब व्यक्ति संसारमें हमारा-हमारा करने लगेगा—तब उसे संसारमें पड़ना है। तब **भव मूल भेद भ्रम** (मा. ७.११८.२)—तब भेद भ्रम होगा। यही भेदका भ्रम है। संसारमें भगवदतिरिक्त-संबन्धकी कल्पना ही **भेद भ्रम** है, और हम कर रहे हैं। **हम-हम** करके मरते जा रहे हैं—

हम-हम करि धन-धाम सँवारे अंत चले उठि रीते॥

(वि.प. १९८.२)

तो यह भरतजीकी कथा इसी भ्रमको नष्ट करती है—**भय भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनि** (मा. १.३१.८)। यह बताती है कि अरे! ये संसारके संबन्ध व्यवहारमात्र हैं और व्यवहार कभी भी अध्यात्मके साथ जुड़ नहीं पाता। व्यवहार झूठा होता है, विचारके साथ इसका समन्वय नहीं हो पाता। यह तो केवल भरतजीका ऐसा व्यवहार है जो झूठा नहीं है, सत्य है। उनका तो क्या कहा जाए, उनका तो आचार भी सत्य है, विचार भी सत्य है और व्यवहार भी सत्य है—

सुनि भूपाल भरत ब्यवहारू। सोन सुगंध सुधा शशिसारू॥

(मा. २.२८८.१)

अन्यत्र तो दो प्रकारका व्यवहार रहता है, संसारका व्यवहार अलग और भगवान्‌का अलग। पर यहाँ दो नहीं हैं। यहाँ तो क्या भगवान्‌की कृपा है! यहाँ तो संसारमें किसी संबंधकी कल्पना ही नहीं की गयी, इसलिए **भय भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनि** (मा. १.३१.८)। देखिये! गोस्वामीजीने कहा कि संसारमें दस प्रकारके संबन्ध होते हैं। और जो भी संबन्ध होंगे, उनका इन्हींमें समाहार हो जायेगा। सुन्दरकाण्डमें भगवान् राम विभीषणसे बहुत अच्छा कहते हैं—

जननी जनक बंधु सुत दारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी॥

(मा. ५.४८.४–५)

(१) **जननी**—माताका संबन्ध, (२) **जनक**—पिताका संबन्ध, (३) **बंधु**—भाई और बहिनका संबन्ध, (४) **सुत**—पुत्र और पुत्रीका संबन्ध, (५) **दारा**—पुरुषके लिए पत्नीका संबन्ध और स्त्रीके लिए पतिका संबन्ध, (६) **तन**—शरीरका संबन्ध, (७) **धन**—संपत्तिका संबन्ध, (८) **भवन**—घरका संबन्ध, (९) **सुहृद**—मित्रोंका संबन्ध, और (१०) **परिवार**—कुटुम्बका संबन्ध—ये ही तो दस संबन्ध होते हैं। इन्हीं दस संबन्धोंकी कल्पनामें जीव मर रहा है बेचारा! इन्हीं दस संबन्धोंमें जुड़ा रहता है और दशरथनन्दनसे दूर रहता है। और कोई ग्यारहवाँ संबन्ध हो तो बताओ भाई! ये ही दस संबन्ध हैं संसारके। भगवान् कहते हैं कि इन सबकी ममताकी रस्सीको इकट्ठी करके बढ़िया डोरी बटकर, इसी डोरीसे अपने मनको मेरे चरणोंमें बाँध दो। तो भगवान् कहते हैं—“ममताएँ इकट्ठी करो।” भरतजीने कहा—“क्या इकट्ठी करनी हैं? जब

इनपर हमारी ममता ही नहीं, तो इकट्ठी करनेकी बात कहाँसे आयी?" भरतजीको किसीसे ममता ही नहीं है—न मातासे, न पितासे, न बन्धुसे, न पुत्रसे, न पत्नीसे, न शरीरसे, न धनसे, न भवनसे, न मित्रसे और न परिवारसे। अद्भुत व्यक्ति हैं ये! इसलिए क्या बताऊँ आपको। स्वयं गीताके वक्ता भगवान् चकित हो गये, तो अब सबकी बात क्या करें? भगवान्ने कहा—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

(भ.गी. ७.१६)

भगवान् कहते हैं कि चार प्रकारके मेरे भक्त मुझे भजते हैं—(१) आर्त्त, (२) जिज्ञासु, (३) अर्थार्थी, (४) ज्ञानी—जो क्रमशः (१) काम, (२) धर्म, (३) अर्थ, (४) मोक्ष मुझसे ही चाहते हैं। भरतजीने कहा—"प्रभु! ऐसे भी तो लोग हैं जो आपसे न अर्थ चाहते हैं, न धर्म चाहते हैं, न कामना चाहते हैं, न मोक्ष चाहते हैं। तो उनको आप क्या कहेंगे?" तो भगवान् फँसे। भगवान्ने कहा—"ऐसा है कि ये चार तो मेरा भजन करते हैं। परंतु जो इनसे ऊपर हैं—वे मेरा भजन करें या न करें, मैं उनका भजन करता हूँ।" तो—

भरत सरिस को रामसनेही। जग जप राम राम जप जेही॥

(मा. २.२१८.८)

क्या बात है! **चतुर्विधा भजन्ते माम्**—किन्तु एतदतिरिक्तं? एतदतिरिक्तमहं भजे। **ज्ञानी च भरतर्षभ**—भरतजीका नाम ले लिया। *भरतेषु ऋषभः भरतर्षभः* और *भरतः ऋषभः यस्य स भरतर्षभः तम्*। कृष्णावतारमें व्रजाङ्गनाएँ अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष—कुछ नहीं चाहतीं और रामावतारमें भरतजी अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष—कुछ नहीं चाहते। श्रीव्रजाङ्गनाएँ तो यहाँतक कहती हैं कि मैं अपने शरीरकी सँभाल नहीं करूँगी। अब तो मैंने आपको अपना शरीर सौंप दिया, अब इसकी सँभाल आप कीजिये। श्रीव्रजाङ्गनाएँ भगवान्से कहती हैं—

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा॥

(भा.पु. १०.२९.३४)

प्रभु! हम तो कुछ नहीं जानतीं। हे मोहन! वे तो कहती हैं—

लट उरझी सुरझा जा रे मोहन हाथ मेरे मेंहदी लगी है॥
रासमें मेरी बेसर गिर गई अपने हाथ पहिरा जा रे मोहन ...॥
रासमें मेरो कुंडल गिर गयो अपने हाथ पहना जा रे मोहन ...॥
रासमें मेरो कंगन गिर गयो अपने हाथ पहना जा रे मोहन ...॥
रासमें मेरो नूपुर गिर गयो अपने हाथ पहरा जा रे मोहन ...॥
रासमें मेरी चुनरी गिर गई अपने हाथ ओढ़ा जा रे मोहन ...॥
मीराके प्रभु गिरिधर नागर बिगरी बात बना जा रे मोहन ...॥
लट उरझी सुरझा जा रे लट उरझी सुरझा जा रे मोहन ...॥

*हाथ मेरे मेंहदी लगी है*का तात्पर्य क्या है? यह मेंहदी मैंने आपके लिए लगायी है, अतः इस हाथका मैं अपने लिए उपयोग नहीं करूँगी। अब तो आप जानें और आपका काम जाने।

हमने यह पचरंगी चोला आपके चरणोंमें सौंप दिया है। जो उपयोग आप करना चाहें, वह करें। इतना सुन्दर गीत है यह! एक बार मैंने गाया यह गीत तो एक लड़का था, हमारा ही परिचित था, उसको महाभाव आ गया। वह बालक १५ दिनोंतक पागल बना रहा। बहुत अच्छा गीत है। **लट उरझी सुरझा जा रे मोहन हाथ मेरे मेंहदी लगी है**।

तो भरतजीकी कथाका यही सारांश है कि उन्होंने संसारके व्यवहारोंकी कभी कल्पना ही नहीं की। जनकजी कहते हैं कि सुनयना! यह लड़का इतना पागल है कि इसने स्वार्थ और परमार्थकी कभी चिन्ता ही नहीं की—

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
साधन सिद्धि रामपग नेहू। मोहि लखि परत भरतमत एहू॥

(मा. २.२८९.७–८)

ऐसा व्यक्ति कभी देखा गया क्या जो कि परमार्थ भी नहीं जानता स्वार्थ भी नहीं जानता! क्यों? देखिये कथाएँ तो मैंने बहुतकी हैं, पर इस कथाका अपना कुछ विलक्षण अस्तित्व है।

अद्भुत प्रकरण है यहाँका! सुमन्त्रजी पछतावा करते-करते श्रीअवध आ रहे हैं। चक्रवर्तीजीको संदेश दिया कि अब रघुनाथजी श्रीअवध नहीं लौटेंगे चौदह वर्ष पर्यन्त। ध्यान दीजियेगा—भरतजीका दशरथजीसे बहुत सत्संग होता था। यह कुछ लोगोंका वर्ग था श्रीअवधमें। श्रीअवधमें तीन साधक थे—(१) भरतजी, (२) दशरथजी, और (३) जानकीजी। इन तीनोंका अपना एक अलग व्यक्तित्व था। कई बार भरतजीने श्रीदशरजथजीसे कहा—“पिताश्री! आप मुझे श्रीरामप्रेमकी दीक्षा दे दीजिये।” तो दशरथजीने कहा—“पागल! मैं रामप्रेमकी दीक्षा दूँ? हम लोगोंका यह सौभाग्य है कि श्रीराम आराधनाकी प्रथम आचार्या (प्रथम जगद्गुरु) जगज्जननी सीताजी जनकनन्दिनी बनकर हमारे अवधकी बड़ी बहूरानी बन गयी हैं। उन्हींके चरणोंमें प्रणाम करके उन्हींसे श्रीरामप्रेमकी दीक्षा ले लेना।” ये लोग परम उपासक हैं सीतारामजी के। भगवान् श्रीरामके गूढ प्रेमकी एक परम्परा (संप्रदाय) है—जनकजी, जानकीजी, भरतजी, और दशरथजी।

(१) जनकजीका गूढ प्रेम—

प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि रामपद गूढ़ सनेहु॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥

(मा. १.१७.१–२)

(२) जानकीजीका गूढ प्रेम—ऐसा ही गूढ प्रेम जानकीजीका है—

तन सँकोच मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेम लखि परइ न काहू॥

(मा. १.२६४.३)

(३) भरतजीका गूढ प्रेम—कौशल्या माताजी कहती हैं—

गूढ़ सनेह भरतमन माहीं। रहे नीक मोहि लागत नाहीं॥

(मा. २.२८४.४)

(४) दशरथजीका गूढ प्रेम—

बंदउँ अवधभुआल सत्य प्रेम जेहिं रामपद।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ॥

(मा. १.१६)

यह प्रेमियोंका एक वर्ग है। *सत्य रामप्रेमी श्रीदशरथ* मेरा एक ग्रन्थ है। उसे पढ़िये, विक्रय केन्द्रपर मिल जायेगा। प्रेमियोंकी अपनी लीला है। चक्रवर्तीजीने जब सुमन्त्रजीसे सुना कि अब रघुनाथजी लौटकर नहीं आयेंगे, तब सोचा—"क्या करें? चौदह वर्षोंतक कौन प्रतीक्षा करेगा? नहीं, छः दिन ही मेरे लिए पहाड़ हो गये। अब मुझे नहीं रहना।" कह दिया—

हा रघुनंदन प्रानपिरीते। तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते॥

(मा. २.१५५.७)

आपके बिना जीते बहुत दिन बीत गये। *राम* कहकर अयोध्या धाम छोड़ा, *राम* कहकर अयोध्याका धन छोड़ दिया, *राम* कहकर अयोध्याकी धरणी छोड़ दी।

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबरबिरह राउ गयेउ सुरधाम॥

(मा. २.१५५)

धन्य हो गये चक्रवर्ती! **जिवन मरन फल दशरथ पावा** (मा. २.१५६.१)। ध्यान रखिये कि चक्रवर्तीजीकी मृत्युने भरतजीको बहुत आहत किया। मैं कह चुका हूँ कि ये एक वर्गके लोग हैं। श्रीअवधमें श्रीरामप्रेमके प्रतीक तीन लोग रहते थे—चक्रवर्ती दशरथजी महाराज, भरतजी महाराज और भगवती सीताजी। लग यह रहा है कि आज भरत भैया पूर्णतया अकेले पड़ गये हैं। पिताजीका शरीर छूटा तो वे इन्द्रलोक चले गये और भगवती सीताजी श्रीचित्रकूट पधार गयीं। अब श्रीअवधमें अकेले भरतजी हैं। तो कुछ भी हो, जब व्यक्ति अकेला होता है तो छटपटाता ही है। ननिहालसे बुलाया गया भरतजीको। कैकेयीजीसे चक्रवर्तीजी संसारकी बात करते थे, परंतु कौशल्या माताजीके साथ उनका सत्संग होता था। और बार-बार यह बात कौशल्याजी कहेंगी सुनयनाजीसे—

जानउँ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा॥

(मा. २.२८३.५)

यही पङ्क्ति संकेत कर रही है कि कौशल्या भगवतीजीके साथ महाराजका भगवदीय सत्संग होता है। दोनों भगवच्चर्चा करते हैं। कौशल्याजीके समक्ष कह दिया—"बड़ी महारानीजी! यह भरत निरन्तर कुलका दीपक बना रहेगा—**जानउँ सदा भरत कुलदीपा** (मा. २.२८३.५)। रामजी तो अस्थायी कुल दीपक हैं—**रघुकुलदीपहिं चलेउ लिवाई** (मा. २.३९.६), **गयेउ जहाँ दिनकर कुल टीका** (मा. २.३९.५), फिर तो वह मणि बनेंगे—**रघुकुलमनि दशरथके जाए** (मा. १.२१६.८)। पर भरत एकरसमें दीपक ही रहेंगे।" दीपक सभी कर्मोंका साक्षी होता है। जबतक कर्म चलता है, तबतक दीपक जलता है—**प्रत्यक्षं दीपं दर्शयामि**। यह भगवान्की पूजाका बारहवाँ उपकरण है, दीपक बारहवीं पूजा है।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥

(शु.य.वे. ३१.१२)

अद्भुत है यह! और दीपककी सबसे बड़ी बात होती है—संसारमें भी हमारे यहाँ अब तो बिजली आने लगी है, पर अभी भी बहुतसे गाँवोंमें बिजली नहीं होती। जब सूर्यनारायणके दर्शन न हों और चन्द्रमा भी न हो—उस समय अमावस्याकी रातमें दीपककी भूमिका बहुत बड़ी हो जाती है। आज अयोध्याजीमें अमावस्याकी रात आ गयी है क्योंकि रामचन्द्रजी चौदह वर्षोंके लिए वनमें, चित्रकूट, पधार गये हैं और पिताजी सूर्यनारायण अनवसर अस्त हो चुके हैं, अब भरतजीकी भूमिका है—**जानउँ सदा भरत कुलदीपा** (मा. २.२८३.५)।

अब क्रम देखिये, कैसे भ्रमको यह कथा दूर करेगी! भ्रमका यहाँ अर्थ है, याद रखिये—**भेद भ्रम** (मा. ७.११८.२) संसारके संबन्धका जो भेद है, यही भ्रम है। और यह **भ्रम भेक भुजंगिनि** (मा. १.३१.८) कथा है। एक-एक करके अब देखते जाइये कि क्या दसों ममताएँ भरतजीको छू सकीं? मन्थराने बताया—"भरत आ रहे हैं।"

सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई॥

(मा. २.१५९.३)

कैकेयी माताजी बड़े प्रेमसे आरती सजाकर ले आयीं। यहाँ बहुत अच्छा वाक्य है! देखिये! आरतीकी नहीं, पर **द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई**। इसका अर्थ क्या है? इसका अर्थ यह है कि आरती लेकर स्वयं दौड़ीं। राजरानी हैं, पर दासियोंने भी आज उनका साथ नहीं दिया। माण्डवीजीने भी सहयोग नहीं किया। आरती सजायी, प्रसन्न होकर दौड़ीं, तो दौड़ते समय ही आरती बुझ गयी। तो आरती तो कर नहीं पायीं। अतः **द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई** (मा. २.१५९.३)। द्वारपर ही मिलीं और कहा—"चलो! पहले भवनमें चलो, गुरुदेवने बुलाया है तुमको। स्नान आदि कर लो, तब न गुरुदेवसे मिलोगे!" तो ले आयीं। अब यहींसे प्रारम्भ होता है भरतजीके व्यक्तित्वका दिग्दर्शन। एक-एक करके देखिये! एक ही बार गोस्वामीजीने यह बात कही कि भरतजीका चरित्र एक यज्ञ है—**शमन अमित उतपात सब भरतचरित जप जाग** (मा. १.४१)। यज्ञमें हवन होता है, दस प्रकारकी समिधाओंका हवन। इसको हम दशाङ्ग कहते हैं। आज भरतजीके चरित्रमें किसका हवन होगा? भरतजी किसका हवन करेंगे? जो **जननी जनक बंधु सुत दारा, तन धन भवन सुहृद परिवारा** (मा. ५.४८.४)की दस ममताएँ हैं, उन्हींको समिधा बनाकर भरतजी हवन करेंगे। अब एक-एक प्रकरण देखते जाइये!

पहले भरतजीने माण्डवीजीसे पूछा—

कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता॥

(मा. २.१५९.८)

कहु—इस प्रकारका सम्बोधन व्यक्ति अपनी पत्नीसे ही कर सकता है। "कहो! पिताजी कहाँ हैं? सभी माताएँ कहाँ हैं? अरे! हमारी आचार्या सीता भाभी माँ कहाँ हैं? श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाई कहाँ हैं?" माण्डवीजीने कोई उत्तर नहीं दिया। तब कैकेयीजीने कहा—"अरे! वे तो वनवास चले गये—सीताजी आपकी भाभी, राम-लक्ष्मणजी। मैंने सब बात बना डाली। मन्थराने

मेरी सहायता की। पर एक कार्य ब्रह्माजीने बीचमें बिगाड़ दिया कि—**भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ** (मा. २.१६०.२)—अब चक्रवर्तीजी सदाके लिए इन्द्रलोक चले गये, शरीर छोड़कर चले गये।" भरतजी बड़े व्याकुल हो गये, गिर पड़े पृथ्वीपर। फिर पूछा—"कैसे हुआ?" सब बताया। अब यहीं विरहकी अग्नि जली और पहली ममताका हवन भरतजी अब कर रहे हैं। स्वाहा! आहाहा!! कह दिया कि अरे माताजी—

जौ पै कुरुचि रही असि तोही। जनमत काहे न मारेसि मोही॥

(मा. २.१६१.७)

मुझे मार डाले होतीं।

पेड़ काटि तैं पालउ सींचा। मीन जियन निति बारि उलीचा॥

(मा. २.१६१.८)

कर दिया हवन।

हंसबंश दशरथ जनक राम लखन से भाइ।
जननी तू जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ॥

(मा. २.१६१)

तुम तो अपनी माताके समान हो गयीं। तुम्हारी माताने जैसे पतिको मारनेका षड्यंत्र रचा, पर वे तो नहीं मरे, परंतु मेरे पिताजी तो मर ही गये—**बिधि सन कछु न बसाइ** (मा. २.१६१)। हवन कर रहा हूँ माताकी ममताका! आजके पश्चात् जीवन भर आपसे मैं सामने बात नहीं करूँगा—

कैकेयी जौलों जियति रही।
तौलों बात मातुसों मुँह भरि, भरत न भूलि कही॥

(गी. ७.३७)

जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई॥

(मा. २.१६२.८)

बस! पहली ममताका हवन कर दिया—मातृ ममतां जुहोमि श्रीरामाय स्वाहा। **भय भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनि** (मा. १.३१.८)। पहली ममताका हवन हो गया।

अब उसी समय मन्थरा आयी। शत्रुघ्नजीने मन्थराको दण्डित किया, और फिर **कौशल्या पहिं गे दोउ भाई** (मा. २.१६३.८)—कौशल्याजीके पास आये। आहा! बोले—**मातु तात कहँ देहु देखाई** (मा. २.१६४.३)—माताजी! पिताजीको दिखा दीजिये न! कौशल्याजीने कहा—"क्या दिखा दूँ? यह अमावस्याकी रात्रि है और अमावस्याकी रात्रिको पूर्व दिशाके पास न चन्द्रमा रहते हैं और न सूर्य। मैं प्राची हूँ, पर करूँ क्या? पूर्णिमाकी प्राची नहीं, आज मैं अमावस्याकी प्राची हूँ।" और यहीं पिताजीके वास्तविक व्यक्तित्वकी चर्चा की माताजीने—

पितु आयसु भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
बिसमय हरष न हृदय कछु पहिरे बलकल चीर॥

(मा. २.१६५)

कौशल्या माताजीने कह दिया—"बेटा! मैं आपको क्या बताऊँ? मुझे तो अपना प्रेम देखकर

लज्जा नहीं लग रही है—

मोहि न लाज निज नेह निहारी। राम सरिस सुत मैं महतारी॥

(मा. २.१६६.७)

लोग कहते हैं कि माता पितासे अधिक कोमल होती है, पर चक्रवर्तीजीने आज इस बातको उलट दिया। आज माता कठोर निकली और पिता ही कोमल निकले। मैं तो जी रही हूँ—

जियइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय शत कुलिश समाना॥

(मा. २.१६६.८)

चक्रवर्तीजीने अपना पुत्रप्रेम प्रमाणित कर दिया और उन्होंने अपने व्यक्तित्वको मुझसे भारी कर दिया। चले गये चक्रवर्तीजी, बेटा!" आज यहीं भरतजी पिताजीकी ममताका भी हवन कर रहे हैं, श्राद्ध करके। पिताजीको मुखाग्नि दी। हवन कर दिया और आज राजसभामें कह भी दिया—

नाहिन डर बिगरिहिं परलोकू। पितहु मरन कर मोहि न शोकू॥

(मा. २.२११.५)

द्वितीय हवन कर दिया। आहा! चकित हैं लोग! **जननी जनक बंधु सुत दारा** (मा. ५.४८.४)। बहुत अद्भुत यज्ञ है—**भरतचरित जप जाग** (मा. १.४१)।

अयोध्याका राज्य चलानेकी बात आयी। सब लोगोंके मनमें एक प्रकारकी निराशा है, एक प्रकारका प्रश्न है। सभी लोग यही कह रहे हैं—

रजिया कौन अब चलावे भैया भरत के बिना।
भैया भरत के बिना भावते भरत के बिना॥ रजिया कौन ...
छत्र भंग कोसलपुर छाया दश दिशि दुसह अँधेरा।
हाहाकार मचा त्रिभुवन में विपत दसहु दिशि घेरा।
दियना कौन अब बरावे भैया भरत के बिना॥ रजिया कौन ...
राम बिरह में व्याकुल रोवे मातु सचिव गुरु नारी।
छाती पीट कौशल्या बिलखे शोक मगन महतारी।
धीरज कौन अब धरावे भैया भरत के बिना॥ रजिया कौन ...
शुक सारिका पिंजरा में बिलपें खग मृग जाहिं न जोए।
भूमि पछारी मारी हय हिन से आँसुन ते मुँह धोए।
रजिया कौन अब बचावे भैया भरत के बिना॥ रजिया कौन ...
भ्रातृ प्रेम परिमित की सीमा कौन भगति दरसावे।
रामभद्राचार्य के मन मरूथल में कौन प्रेम बरसावे।
रहिया कौन अब दिखावे भैया भरत के बिना॥ रजिया कौन ...

आहाहा!! श्रीअवधके राज्यका प्रस्ताव हो रहा है। वसिष्ठजीने कर दिया प्रस्ताव—"बेटे! तुम्हें राज्य करना चाहिए। आज रामजी नहीं हैं, वनमें हैं। चक्रवर्तीजी चले गये। तुम सँभालो।" भरतजी ने कहा—"गुरुदेव! यह राज्य मुझसे नहीं सँभलेगा।" वसिष्ठजीने पूछा—"क्यों?" भरतजी बोले—"यह तो सिंहासन है। सिंहासन सिंहसे सँभलता है, हंससे नहीं सँभलता। मैं तो

हंस हूँ—**भरत हंस रबिबंश तड़ागा** (मा. २.२३२.६)। यह तो सिंहसे सँभलेगा गुरुदेव! हंससे नहीं। यह राज्य मेरे बसका नहीं है।" वसिष्ठजीने पूछा—"तो क्या तुम्हारे पिताश्रीने गलती की बेटा? तुमसे नहीं सँभलेगा! तुम्हारे पिताजीको तो विवेक होना चाहिए था—**राय राजपद तुम कहँ दीन्हा** (मा. २.१७४.३) उन्होंने तो तुमको राज्यपद दिया है।" भरतजी ने कहा—"गुरुदेव! समझने का फेर है। पिताजीने मुझे राजपद दिया है। राजपदका अर्थ होता है—राजा का चरण। तो मेरे पिताजीने मुझे राजा रामजीका चरण सेवाके लिए दिया है—**राय राजपद तुम कहँ दीन्हा** (मा. २.१७४.३)।" अद्भुत आनन्द हो रहा है!

गुरुदेव! मेरे पिताजीका संकेत है कि *राजपदमें* तत्पुरुष समास और बहुव्रीहि समास दोनों कर लेना। यदि मिल जाए तो सेवाके लिए राजाका पद, रामजीका चरण लेना, क्योंकि रामजी राजा हैं। यदि न मिले तो वहाँ बहुव्रीहि कर लेना—*राज्ञः पदं यस्मिन्* अर्थात् जहाँ राजाका चरण विराजता है, ऐसी पादुका सेवाके लिए लेकर चले आना बेटा!" यह कितना सुन्दर पक्ष है! देख रहे हैं आप? और आपको लगता भी होगा कि रामायणजी देखनेमें सरल हैं, पर कठिन भी बहुत हैं। "तो गुरुदेव! मेरी विवशता है। आप बताइये! जब व्यक्ति राजा बनता है, तो पूरा परिवार साथ होता है न। आज मुझे कैसे राजा बनाया जा रहा है? मैं पूछता हूँ गुरुदेव! पूर्वका राजा वर्तमानके राजाको राजतिलक करता है। आज बतायें आप मेरा तिलक करने वाला यहाँ कौन है?

पितु सुरपुर सिय राम बन करन कहहु मोहि राज।
ऐहि ते जानहु मोर हित कै आपन बड़ काज॥

(मा. २.१७७)

कौन मेरा तिलक करने आया? यदि आज मैं राजा बन जाऊँगा गुरुदेव! तो रावणमें और मुझमें क्या अन्तर रह जायेगा? बताइये! लङ्कामें रावणका भी किसीने राजतिलक नहीं किया, वह स्वयंभू राजा बन गया। यही परिस्थिति यदि अब मेरी हो गयी तो गुरुदेव! रावणमें और मुझमें अन्तर क्या रह जायेगा? बताइये तो!"

पूरी सभा चुप है कि भरतजीका पक्ष बहुत उचित है। भरतजीने कहा—"गुरुदेव! यह सिंहासन मैं चित्रकूट ले चलूँगा। यह सिंहका आसन है और आज रामरूप सिंह वनमें हैं। मैं वहाँ यह सिंहासन ले चलता हूँ। यदि रामजी बैठ जायेंगे, तो बैठ जायेंगे। नहीं बैठेंगे तो रामजीकी पादुका सिंहासनपर बिठाऊँगा, पर मैं नहीं बैठूँगा।" वास्तवमें कितना सुन्दर कहा भरतजीने! "गुरुदेव! आप बताइये! माताजी! आप सब लोग मुझे राजा बनाना चाहते हैं, पर यह नहीं जानते—

मोहि राज हठि देइहउ जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥

(मा. २.१७९.२)

मुझे यदि राज्य दीजियेगा न तो पृथ्वी रसातलको चली जायेगी, क्योंकि इस सिंहासनपर जो बैठा उसने यहाँके लिए कुछ न कुछ दान किया। जब भगीरथ इस सिंहासनपर बैठे, तो गङ्गाजीको ले आये। और जब दशरथजी इस सिंहासनपर बैठे, तो रामजीको प्रकट कर दिया। यह बताइये कि मैं किस मुखसे इस सिंहासनपर बैठूँ? दशरथजी तो रामजीको लाये तब सिंहासनपर बैठै,

यहाँ तो मैं रामजीको वनवास भेज रहा हूँ। मेरे कारण रामजी वनवास चले गये, अब कौन-सा मुँह लेकर इस सिंहासनपर बैठूँ? बताइये!"

मोहि राज हठि देइहउ जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥

आहाहा!! ऐसा भाई आजतक नहीं मिला। पाण्डव भी भाई-भाई हैं, बहुत प्रेम है। परन्तु युधिष्ठिरजीको कोसने में अर्जुन और भीमने किसी प्रकारका संकोच नहीं किया। भीमसेनने द्रौपदीजीके चीरहरणके समय ही कह दिया—"सहदेव! आग ले आओ। मैं युधिष्ठिरके हाथको जला देता हूँ।" और अर्जुनने कर्णवधके प्रकरणमें कह दिया। वे तो तलवार लेकर मारने चले गये युधिष्ठिरको, परंतु कृष्ण भगवान्ने बचा लिया। पर यहाँ तो क्या आनन्द है! इतना विमल चरित्र! भरतजीने कहा—"यदि आप लोग मेरे हृदयकी जलनको ठंडी करना चाहते हैं, शान्त करना चाहते हैं तो—

आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहिं शिर नाइ।
देखे बिनु रघुनाथपद जिय कै जरनि न जाइ॥

(मा. २.१८२)

मेरे हृदयमें बहुत ताप है।" आज यहाँ अयोध्या छोड़नेका अर्थ है कि भरतजीने दसों ममताओंको छोड़ दिया—माताकी ममता, पिताकी ममता, बन्धु लक्ष्मण-शत्रुघ्नकी ममता, बहिन शान्ताकी ममता छोड़ दी। पुत्र-पुत्रीके समान प्यारी प्रजाकी ममता छोड़ दी। दारा माण्डवीजीकी ममता छोड़ दी। चर्चातक नहीं की, चल पड़े। बस कह दिया कि गुरुदेव और पुरवासियो! अब तो—

चित्रकूट जाने को जी चाहता है।
चित्रकूट में रामजी बिराजें। राम में रम जाने को जी चाहता है॥
चित्रकूट जाने को जी चाहता है।
चित्रकूट में सीताजी बसत हैं। सिय दरश पाने को जी चाहता है॥
चित्रकूट जाने को जी चाहता है।
चित्रकूट में लखनजी लसत हैं। लखन दरश पाने को जी चाहता है॥
चित्रकूट जाने को जी चाहता है।
चित्रकूट में मन्दाकिनी बहत हैं। मन्दाकिनी नहाने को जी चाहता है॥
चित्रकूट जाने को जी चाहता है।
चित्रकूट में कामदगिरि बिराजें। परिक्रमा लगाने को जी चाहता है॥
चित्रकूट जाने को जी चाहता है।
चित्रकूट में *गिरिधर* प्रभु रमत हैं। राम दरश पाने को जी चाहता है॥
चित्रकूट जाने को जी चाहता है।

भरतजीने सब कुछ छोड़ दिया—

जननी जनक बंधु सुत दारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी॥

(मा. ५.४८.४)

(१) **जननी**—भरतजीने माताकी ममता छोड़ी—**आँखि ओट उठि बैठहि जाई** (मा. २.१६२.८)।

(२) **जनक**—भरतजीने पिताकी ममता छोड़ी—**पितहु मरन कर मोहि न शोकू** (मा. २.२११.५)।

(३) **बंधु**—भरतजीने बंधुकी ममता छोड़ी—**जाउँ राम पहिं आयसु देहू** (मा. २.१७८.७)।

(४) **सुत**—भरतजीने पुत्रके जैसी प्रजाकी ममता छोड़ दी—**सौंपि नगर शुचि सेवकन सादर सबहिं चलाइ** (मा. २.१८७)।

(५) **दारा**—भरतजीने पत्नीकी ममता छोड़ दी—**सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरत दोउ भाइ** (मा. २.१८७)।

(६) **तन**—भरतजीने तनकी भी ममता छोड़ी दी—**सानुज भरत पयादेहिं जाहीं** (मा. २.१८८.२)।

(७) **धन**—भरतजीने धनकी ममता छोड़ दी—**संपति सब रघुपति कै आही** (मा. २.१८६.३)। यह मेरी सम्पत्ति नहीं है, रघुपति की सम्पत्ति है यह।

(८) **भवन**—भरतजीने भवनकी ममता छोड़ दी—**चले चित्रकूटहिं भरत** (मा. २.२७१)।

(९) **सुहृद**—सुहृद्‌की ममता छोड़ दी—केवल साथ निषादको लेकर चल रहे हैं।

(१०) **परिवारा**—परिवारकी ममता छोड़ दी—अब तो केवल सीतारामजी...

भरत चले चित्रकूट, हो रामा! राम को मनाने।
राम को मनाने, माता सीता को रिझाने॥
भरत चले चित्रकूट, हो रामा! राम को मनाने।

भय भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनि (मा. १.३१.८)। अरे! स्वयं रामजीके मित्र निषादराजको भ्रम हो गया। **कारन कवन भरत बन जाहीं** (मा. २.१८९.३)—ये भरतजी वनमें क्यों जा रहे हैं? उनके भ्रमका कारण क्या है? वनमें जाना था तो अकेले जाते, इतनी बड़ी सेना लेकर क्यों जा रहे हैं?—

जौ पै जिय न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई॥

(मा. २.१८९.४)

भ्रम हो रहा है कि रामजीको युद्धमें मारने जा रहे हैं। निषादराज भी नहीं समझ पाये **गूढ़ सनेह भरत मन माहीं** (मा. २.२८४.४)। क्यों लिये जा रहे हैं? भरतजी सोच रहे हैं कि जैसे मैं तड़प रहा हूँ भगवान्‌के लिए, उसी प्रकार ये अवधवासी भी तो तड़प रहे होंगे। उनका भी तो हृदय है कि नहीं? मैं रामजीके दर्शन करूँगा तो हमारे अवधवासी भी दर्शन करेंगे। सबको आनन्द आ जाए। और गम्भीरता देखिये मित्रों! **आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः** (हि. १.१४)। अवधवासी तो ठीक हैं—माताजी, पुरजन, परिजन, गुरुजन, सबकी पत्नियाँ, बच्चे। पर पशुओंके प्रति भी भरतजीको प्रेम है। ये हाथी, घोड़े, बैल सबको रामजीके प्रति प्रेम है। भगवान्‌के चारों घोड़े, छुटकावाला घोड़ा उनका बलाहकवा (उसका नाम है *बलाहक*), वह बहुत प्रिय है रामजीको। माताजीने कह दिया—“भैया! और कोई जाये, चाहे ना जाये, पर यह जो छुटका घोड़ा है राघवजीका इसको तो ले चलो, नहीं तो थोड़े ही दिनमें इसके प्राण चले

जायेंगे। यह बहुत व्याकुल है। कुछ खाता-पीता नहीं है, सतत रोता रहता है। दुबला-पतला हो गया है।"

राघौ एक बार फिरि आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने, बहुरो बनहि सिधावौ॥
राघौ एक बार फिरि आवौ।

(गी. २.८७)

आप लोग हमारे यहाँ सेवामें देखे होंगे। हमारे यहाँ जो राघवजीकी सेवा होती है, वहाँपर उनका घोड़ा भी है बलाहक। बहुत प्रिय है भगवान्‌को! तो ये सब जा रहे हैं। **कोतल संग जाहिं डोरिआएँ** (मा. २.२०३.४)—इनको भरतजी लिए जा रहे हैं रस्सीमें। इनपर चढ़ नहीं रहे हैं। सेवकोंने कहा—"घोड़ेपर चढ़ियेगा?" भरतजीने कहा—"चुप! यह रामजीका घोड़ा है। जैसे रामजी पूज्य हैं मेरे लिए, वैसे इनका घोड़ा भी पूज्य है। इसपर मैं सवारी करूँगा? इसकी तो मैं पूजा करूँगा। सवारी करूँगा?" सोचिये क्या व्यक्ति हैं! "मुझे तो यह उचित होगा कि **सिर भरि जाउँ उचित अस मोरा** (मा. २.२०३.७)—जहाँ रामजीके चरण चलें, वहाँ मेरे सिर चले।" फिर कहा—"यह भी उचित नहीं है। क्योंकि सिर रखूँगा तो रामजीके चरणचिह्न मिट जायेंगे, इसलिए **सब ते सेवक धरम कठोरा** (मा. २.२०३.७)।"

प्रयागमें आ रहे हैं भरतजी। **भय भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनि** (मा. १.३१.८)। एक प्रकार की परीक्षा है। प्रयागराजने कहा—"क्या जा रहे हो! दे देता हूँ तुमको अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष।" भरतजीने कहा—"मुझे मत बहकाइये प्रयागराज! ये नहीं चाहिए मुझे। क्या करूँगा लेकर?" "तो क्या चाहिए?"

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति रामपद यह बरदान न आन॥

(मा. २.२०४)

अर्थ चाहिए न धर्म काम चाहिए कौशल्या कुमार मुझे राम चाहिए॥
सत्यसंध दयासिंधु वीर व्रतधारी चाहिए चित्रकूट काननबिहारी॥
मन्दाकिनी ललित ललाम चाहिए कौशल्या कुमार मुझे राम चाहिए॥
आप्तकाम पूर्णकाम राम मुझे चाहिए आत्माराम घनश्याम राम मुझे चाहिए॥
परब्रह्म भवभय विराम चाहिए कौशल्या कुमार मुझे राम चाहिए॥
नील सरोरुह श्याम राम मुझे चाहिए इन्द्र नीलमणि श्याम राम मुझे चाहिए॥
जानकी जीवन पूर्णकाम चाहिए कौशल्या कुमार मुझे राम चाहिए॥
कोटि मन्मथाभिराम राम मुझे चाहिए लोक लोचनाभिराम राम मुझे चाहिए॥
***रामभद्राचार्य* को अभिराम चाहिए कौशल्या कुमार मुझे राम चाहिए॥**

देखिये! आज तीनों परीक्षा ले रहे हैं—

(१) **क्रोध**—निषादके आक्रमणमें क्रोधने परीक्षा ली। निषादने पूरे आक्रमणकी बात कर दी थी, पर भरतजीको क्रोध नहीं आया।

(२) **लोभ**—प्रयागने लोभ देकर चार पदार्थोंकी बात कह डाली, पर लोभ नहीं आया मनमें।

और

(३) **काम**—भरद्वाजजीने **स्त्रक चंदन बनितादिक भोगा** (मा. २.२१५.८)—सभी अप्सराएँ उपस्थित कर दीं, पर काम नहीं आया।

ये विचित्र ही व्यक्ति हैं वास्तवमें! कोई अत्योक्ति नहीं समझनी चाहिए। तीनों भाइयोंके यहाँ एक-एक महिला आयी—

(१) **रामजी**—रामजीके यहाँ ताटका आयी, उसका वध रामजीने किया।

(२) **शत्रुघ्नजी**—इनके यहाँ मन्थरा आयी, उसकी कमर उन्होंने तोड़ी।

(३) **लक्ष्मणजी**—इनके यहाँ शूर्पणखा आयी, उसकी नाक उन्होंने काटी।

पर भरतजीके यहाँ कोई ऐसी महिला आयी ही नहीं। कोई महिला आयी क्या? बताइये आप लोग! कोई नहीं आयी। इसलिए **भय भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनि** (मा. १.३१.८)। यह व्यक्ति क्या बताया जाए, मैं स्वयं आश्चर्यचकित हूँ।

(१) **अर्थ**—अयोध्यामें अर्थ छोड़ दिया। है न? छोड़ दिया—

अवध राज सुरराज सिहाई। दशरथ धन सुनि धनद लजाई॥

(मा. २.३२४.६)

(२) **धर्म**—यहाँ धर्म छोड़ा—**माँगउँ भीख त्यागि निज धरमू** (मा. २.२०४.७)।

(३) **काम**—भरद्वाज आश्रममें काम छोड़ा, सारी ऋद्धि-सिद्धियाँ छोड़ दीं—**स्त्रक चंदन बनितादिक भोगा** (मा. २.२१५.८)। और

(४) **मोक्ष**—चित्रकूटमें जाकर मोक्षदा अयोध्या भी छोड़ दी—**कानन करउँ जनम भरि बासू** (मा. २.२५६.८)।

अरथ अवध छोड्यो मोड्यो मुख जगत ते राम के चरण धन मन को रमायो है।
धर्म प्रयाग तज्यो परम धरम भज्यो रघुपति प्रेम के प्रयाग में नहायो है।
भरद्वाज आश्रम में काम के साधन तजि जागि राति भर रामगुणगण गायो है।
चित्रकूट जाई मोक्षदायिनी अयोध्या तजि ताते *रामभद्राचार्य* भरत अपनायो है॥

सब कुछ छोड़ दिया। **भय भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनि**।

क्या बतायें आपको! चित्रकूट आ रहे हैं, सबको भ्रम ही भ्रम तो हो रहा है—(१) निषादको भ्रम, (२) प्रयागको भ्रम, (३) भरद्वाजको भ्रम—"देखता हूँ कि क्या होता है?" ऋद्धि-सिद्धि बुला लीं। (४) इन्द्रको भ्रम—जब भरतजीके दर्शन मात्रसे सभी जड़-चेतन साकेतलोक जाने लगे, तब इन्द्रको भ्रम हो गया। इन्द्रने कहा—"गुरुदेव! अब तो गड़बड हो जायेगा, ये तो सब साकेत चले जा रहे हैं। क्या होगा अब?" गुरुदेवने कहा—"कोई बात नहीं!" इन्द्रने कहा—"व्यवधान डालिए।" गुरुदेवने कहा—"नहीं! भरत रामजीके मिलनमें कोई व्यवधान नहीं डाल सकता। तुम मनमें भी मत लाना, नहीं तो बहुत बुरा हो जायेगा। और जब भगवान् राम बुरा मान लेंगे तो तुम्हारी सारी सम्पत्ति धूलमें मिल जायेगी। ये तो रामजीके प्रेमी हैं—

भरत सरिस को रामसनेही। जग जप राम राम जप जेही॥

(मा. २.२१८.८)

इतना बड़ा कोई रामभक्त होगा? क्या कह रहे हो?" अन्तमें इन्द्रका भ्रम दूर हुआ—**भय**

भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनि (मा. १.३१.८)। आजकलके लोगोंने **भुअंगिनि** (मा.गी.प्रे.) शब्द छापा है। यहाँ *भुअंगिनि* शब्द नहीं, *भुजंगिनि* है—**भय भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनि** (मा. १.३१.८)। अब देखिये! भरतजी चित्रकूट पहुँच रहे हैं। (५) लक्ष्मणजीको भ्रम—सबकी बात तो छोड़ ही दीजिये, लक्ष्मणजीको ही भ्रम हो गया। इस प्रसंगकी व्याख्या मैंने *भावार्थबोधिनी*में की है, वहीं पढ़ लीजियेगा। सामान्य लोग यह कहते हैं कि लक्ष्मणजी भरतजीको मारनेके लिए कह रहे हैं पर ऐसा नहीं है। वहाँकी चौपाइयोंको समझनेमें हम भूल करते हैं। लक्ष्मणजीको भ्रम अवश्य है, पर भ्रम इतना अधिक नहीं कि वे मर्यादा तोड़ दें। आजतक तो लोग ये कहते रहे कि लक्ष्मण जानते हैं कि रामजीको मारने भरतजी आ रहे हैं—

कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आये दल बटोरि दॊउ भाई॥

(मा. २.२२८.६)

परन्तु ऐसा नहीं है। वहाँकी चौपाईमें लक्ष्मणजीको भ्रम यह है कि भरतजी भावुकतामें आ रहे हैं, अयोध्याजीकी बिना कोई व्यवस्था किये। और जब अयोध्यामें सुरक्षाकी कोई व्यवस्था नहीं है, तो कहीं भरत-शत्रुघ्नकी अनुपस्थितिमें अयोध्यापर रावणने आक्रमण कर दिया तब क्या होगा? तब रामजीसे लक्ष्मणजीने कहा—"भगवन्! भले भरतजीने भूल कर दी है, पर उसका परिमार्जन मैं करूँगा। यदि कुम्भकर्ण-रावण आ रहे हैं, तो हे रघुनाथजी! आपके चरणोंकी शपथ! मैं देखते-देखते कुम्भकर्ण-रावणको आज ही मार डालूँगा—"

तैंसेहिं भरतहिं सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥

(मा. २.२३०.७)

यहाँ इसका अर्थ क्या है? शत्रुघ्न-भरतजीको **निदरि**, माने पीछे, उनको पीछे करके मैं रावण-कुम्भकर्णका वध करूँगा। यह यहाँका अर्थ है। मुझे चिन्ता है—

कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आये दल बटोरि दॊउ भाई॥

(मा. २.२२८.६)

रामजीको वनवासमें देखकर और भरतजीको विरहमें व्याकुल देखकर यदि दोनों भाई रावण-कुम्भकर्ण दल बटोरकर आये हैं, तो आज ही जो कुछ हो जाए हो जाए। जो कौशल्याजीका हरण किया था रावणने, उसका सब लोगों को क्रोध है ही, उस क्रोधको आज ही मैं प्रकट कर दूँगा—**प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू** (मा. २.२३०.५)। जो कुछ होगा, हो जायेगा। वहाँ पूरा प्रकरण यही है। कहा—नहीं, **जग बौराइ राज पद पाये** (मा. २.२२८.८)—जगत् बौरा जाता है; राजपद पाकर पागल हो जाता है। भरतजीने यहाँ थोड़ी असावधानी बरती है, उस असावधानीका लाभ उठा लिया है रावणने। भगवन्! **भरत हमहिं उपचार न थोरा** (मा. २.२२९.७)—हममें और भरतमें कोई औपचारिकता थोड़े ही है। यह यहाँका अर्थ है। हम लोग भाई-भाई हैं। यदि भरतने भूल कर दी तो मैं सुधारूँगा। मैं उनका छोटा भाई हूँ, मैं सुधारूँगा। आज्ञा दीजिये—

आजु रामसेवक जश लेऊँ। भरतहिं समरसिखावन देऊँ॥

(मा. २.२३०.३)

आज मैं रामजीका सेवक होनेका यश लूँगा। भरतजीसे कहूँगा कि भैया! ऐसी गलती आपको नहीं करनी चाहिए थी। अभी अयोध्या छोड़कर चित्रकूट आपको नहीं आना चाहिए था। यह शिक्षा दूँगा भरतजीको मैं!

रामनिरादर कर फल पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई॥

(मा. २.२३०.४)

रामजीके निरादरका फल पाकर दोनों भाई रावण और कुम्भकर्ण युद्धकी शय्यापर सोयेंगे। जो कुछ हो जाए, हो जाए, सीताहरणका प्रकरण ही नहीं आयेगा।

अति सरोष माखे लखन लखि सुनि सपथ प्रमान।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान॥

(मा. २.२३०)

लक्ष्मणजीके वचन सुनकर सारा संसार भयभीत हो गया। रामजीने कहा—"नहीं। लक्ष्मण! भरतजीको राजमद नहीं हो सकता, वे अयोध्याकी व्यवस्था करके आये हैं। और लक्ष्मण! जबतक भरतजीकी व्यवस्था रहेगी, अयोध्यापर रावण आँख भी नहीं उठा सकेगा।" जैसे आज पाकिस्तानका प्रकरण है। बार-बार धमकी देता है। जानता नहीं कि हमारे पास ऐसा विमान है जो ३७०० किलोमीटर दूर मार कर सकता है। दिल्लीसे इस्लामाबाद बहुत दूर नहीं है, सात-आठ सौ किलोमीटर होगा। हमारे पास ऐसा विमान है बेटा कि ३७०० किलोमीटरतक, नमो राघवाय, गोविन्दाय नमो नमः, कर सकता है।

तो लक्ष्मणजीको रामजीने समझाया—नहीं! नहीं!! नहीं!!!—

भरतहि होइ न राजमद बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजीसीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ॥

(मा. २.२३१)

देखिये! रामायणजीको बहुत मर्यादासे पढ़ना चाहिए। लक्ष्मणजीने कहा—"भूल हो गयी।" रामजीने कहा—"कोई बात नहीं! इसका प्रायश्चित यह है कि मैं एक हवन कर रहा हूँ। तुम मुझे भरतजीके आनेका समाचार दे देना। देखते रहो!"

भरतजी आये—

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं॥

(मा. २.२४०.२)

लक्ष्मणजीने समाचार दिया—

बचन सप्रेम लखन पहिचाने। करत प्रनाम भरत जिय जाने॥

(मा. २.२४०.३)

समाचार दिया राघवजीको कहा—

कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥

(मा. २.२४०.७)

रामको समाचार दिया।

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥

(मा. २.२४०.८)

आज भगवान् जब उठे तो भगवान्‌के पीताम्बरने कहा—"पहले मैं प्रणाम करूँगा।" भगवान्‌के पीताम्बरने, दुपट्टेने प्रणाम किया, भूमिपर दण्डवत् की। तरकसने भगवान्‌को छोड़कर दण्डवत् कर ली फटाफट। धनुषने कहा—"मैं एक क्षणके लिए अलग हो रहा हूँ, फिर आपके हाथमें आ जाऊँगा।" भगवान्‌के धनुषने दण्डवत् कर ली। भगवान्‌के बाणोंने दण्डवत् कर ली—**कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा** (मा. २.२४०.८)। चारोंने मानो कहा—"भगवन्! हम इसलिए दण्डवत् कर रहे हैं क्योंकि भरतजीमें चारों गुण हैं भक्तिके—

(१) **आर्त**—आर्त भक्त भी भरतजी हैं। इतना आर्त कोई हो नहीं सकता—**रहत न आरत के चित चेतू** (मा. २.२६९.४)।

(२) **जिज्ञासु**—जिज्ञासु भक्तके गुण भी भरतजीमें हैं। सबसे जिज्ञासा करते हैं—

मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी॥
करि प्रनाम पूँछहिं जेहि तेही। केहि बन लखन राम बैदेही॥

(मा. २.२२४.४–५)

सबसे पूछते हैं कि रामजी कहाँ हैं?

(३) **अर्थार्थी**—अर्थार्थी इतना कोई हो नहीं सकता। अयोध्याका अर्थ छोड़ा, पर रामजीके चरणके अंकों अर्थात् चरणचिह्नोंको बहुत बड़ा धन मान लिया—

हरषहिं निरखि रामपद अंका। मानहुँ पारस पायउ रंका॥

(मा. २.२३८.३)

(४) **ज्ञानी**—और ज्ञानी इतना कोई हो नहीं सकता। ज्ञानी सम्पूर्ण बन्धनोंको छोड़ देता है। भरतजीने चारों पुरुषार्थोंके बन्धनका त्याग कर दिया—**अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान** (मा. २.२०४)।

तो भरतजीमें चारों भक्तिके गुण हैं, इसलिए इन चारोंने उन्हें प्रणाम किया—(१) **पट**—भरतजीको आर्त भक्त समझकर भगवान्‌के पीताम्बरने प्रणाम किया, (२) **निषंग**—भरतजीको जिज्ञासु भक्त समझकर भगवान्‌के तरकसने प्रणाम किया, (३) **धनु**—भरतजीको अर्थार्थी भक्त समझकर भगवान्‌के धनुषने प्रणाम किया, और (४) **तीरा**—भरतजीको ज्ञानी भक्त समझकर भगवान्‌के बाणने प्रणाम किया। **कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा** (मा. २.२४०.८)। आनन्द कर दिया! (१) भरतजीने अर्थ छोड़ा, इसलिए पीताम्बरने प्रणाम कर लिया। (२) भरतजीने धर्म छोड़ा, इसलिए तरकसने प्रणाम किया। (३) भरतजीने काम छोड़ा, इसलिए धनुषने प्रणाम किया। (४) और भरतजीने मोक्ष छोड़ा, इसलिए बाणोंने प्रणाम कर लिया। क्या बात है! जब *निर्वाण* छोड़ दिया तो *बाण*को तो प्रणाम करना ही चाहिए! **कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा** (मा. २.२४०.८)। अद्भुत!

बरबस लिये उठाइ उर लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरा सबहिं अपान॥

(मा. २.२४०)

देवता फूलोंकी वर्षा करने लगे। जय! जय!! अद्भुत प्रेम! सब लोग मिले। सबको भ्रम है कि रामचन्द्रजी क्या करेंगे? किसकी बात मानेंगे? अवध चलेंगे या नहीं? **राम गमन बिधि अवध कि नाहीं** (मा. २.२५२.८)। यह **भ्रम भेक भुजंगिनि** (मा. १.३१.८) कथा दूर करेगी भ्रम। भरतजीने कहा—"सरकार! ऐसा उपाय कर दिया जाए कि दोनों बातें हो जाएँ—आप यहाँ भी रह लीजिये और अवधमें भी रह लीजिये।" ऐसा कैसे किया जाए? बड़ी लम्बी-लम्बी चर्चाएँ हुईं। चार पक्ष भरतजीने दिये—

(१) **सानुज पठइय मोहि बन कीजिय सबहिं सनाथ** (मा. २.२६८)—या तो मैं शत्रुघ्नके साथ वन चला जाता हूँ, आप अयोध्या चले जाइये। अथवा;

(२) **नतरु फेरियहिं बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ** (मा. २.२६८)—शत्रुघ्न-लक्ष्मणको अयोध्या भेज दीजिये, मैं आपके साथ वन चलूँ। अथवा;

(३) **नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई, बहुरिय सीय सहित रघुराई** (मा. २.२६९.१)—हम तीनों भाई वन चले जाते हैं, आप सीताजी सहित अयोध्याजी लौट जाइये। अथवा;

(४) **जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई, करुनासागर कीजिय सोई** (मा. २.२६९.२)—जैसे आप प्रसन्न हो सकें, वही कर लीजिये।

समाधान नहीं बना, अभी भ्रमकी स्थिति बनी है। सबको भ्रम है कि क्या करना चाहिए? एक पक्ष आया कि भरतजी वनमें रह लें और लक्ष्मणजी अवध लौट जाएँ, पर यह पक्ष देवताओंको अनुकूल नहीं है। क्योंकि लक्ष्मणजी यदि वनमें नहीं जायेंगे तो मेघनादका वध कैसे होगा? अत: यह पक्ष देवताओंको अनुकूल नहीं आ रहा है। जनकजीने भी कहा—"मैं लक्ष्मणजीको नहीं कह सकता कि तुम अवध चलो। एक बार थोड़ी-सी बात मेरे मुखसे निकल गयी—**बीर बिहीन मही मैं जानी** (मा. १.२५२.३), तो भूचाल कर दिया—**डगमगानि महि दिग्गज डोले** (मा. १.२५४.१)।" तब देवताओंने सरस्वतीजीसे कहा—"किसी प्रकार आप ही भरतजीकी बुद्धि फेर दीजिये और भरतजी यह कह दें कि ठीक है! लक्ष्मणजी आपके साथ चले जायेंगे; मैं जाता हूँ अयोध्या।" सरस्वतीजीने भी मना कर दिया—"मेरेसे नहीं होगा।" अन्तमें भरतजीने ही कहा—"प्रभु! आज आप मुझे आज्ञा दीजिये, यह मेरी रुचि है।" तो भगवान्‌ने कह दिया—"यदि आज्ञा की बात है, तो मैं आज्ञा दे रहा हूँ कि तुम चौदह वर्ष पर्यन्त अयोध्यामें जाकर अयोध्याजीका पालन करो! यही मेरी आज्ञा है।" जय-जयकार हुआ! देवताओंने प्रसन्नतासे कल्पवृक्षके पुष्प बरसाये—**सुर स्वारथी सराहि कुल बरषत सुरतरुफूल** (मा. २.३०८)। जय! जय!!

परन्तु अभी भरतजीको एक भ्रम है। सबका भ्रम तो दूर हो गया, पर भरतजीको भ्रम है कि मैं अपने प्राणोंकी रक्षा चौदह वर्ष कैसे करूँगा? तब—

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत शीष धरि लीन्ही॥

(मा. २.३१६.४)

भगवान्‌ने पाँवरी दे दी। **प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं** अथवा *कृपा प्रभु पाँवरी करि दीन्हीं* अर्थात् भगवान्‌की कृपाने रामजीको ही पादुका बनाकर भरतजीको दे दिया। भगवान्‌की कृपाने ही दाहिनी पादुकामें रामावतार और वाम पादुकामें सीताजीका अवतार किया और भरतजीको दे दिया। इस प्रकार अब दोनों कार्य हो गये। भगवान् एक दृष्टिसे चित्रकूटमें रह रहे हैं और दूसरी

दृष्टिसे अयोध्या चले गये। बोलिये पादुकाबिहारी सरकारकी जय हो!

पादुका लेकर भरतजी पधारे और **सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि** (मा. २.३२३)। सिंहासनपर विराजमान कर इस प्रकार प्रतिदिन पादुकाजीकी पूजा करते हैं भरतजी—

नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समाति।
माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहु भाँति॥

(मा. २.३२५)

जय हो! और अब **भय भंजनि भ्रम भेक भुजंगिनि** (मा. १.३१.८)।

इस प्रकार—

सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनम न भरत को।
मुनिमन अगम जम नियम शम दम बिषम ब्रत आचरत को।
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजश मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से शठनि हठि रामसनमुख करत को॥

(मा. २.३२६.९)

भरतचरित करि नेम तुलसी जे सादर सुनहिं।
सीयराम पद प्रेम अवशि होइ भवरस बिरति॥

(मा. २.३२६)

जय सियारामा भरत प्रिय रामा। जय सियारामा भरत प्रिय रामा॥
जय सियारामा भरत प्रिय रामा। जय सियारामा भरत प्रिय रामा॥

सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय हो!

भावते भरतभद्रकी जय हो!

पवनपुत्र हनुमान्‌जी महाराजजीकी जय हो!

॥ जय जय श्रीसीताराम ॥

अष्टम पुष्प

॥ नमो राघवाय॥

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥
नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥
सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥
रामपादाब्जरोलम्बं कवीनां सद्गुरुं प्रभुम्।
गुरुस्वामितुलसीदासं श्रद्धया प्रणतोऽस्म्यहम्॥
(श्री)सीतानाथसमारम्भां (श्री)रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे (श्री)गुरुपरम्पराम्॥
श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर-बिमल-जस जो दायक फल चारि॥

सियावर रामचन्द्र भगवान्की जय।

(श्री)रामचरितमानस बिमल कथा करौं चित चाइ।
आसन आइ विराजिये (श्री)पवनपुत्र हरषाइ॥

पवनसुत हनुमान्जी महाराजकी जय हो। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजकी जय हो॥

॥ सीताराम हनुमान् सीताराम हनुमान् सीताराम हनुमान् सीताराम हनुमान् ॥
॥ सीताराम हनुमान् सीताराम हनुमान् सीताराम हनुमान् सीताराम हनुमान् ॥

असुरसेन सम नरक निकंदिनि। साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि॥

(मा. १.३१.९)

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा, परमेश्वर, परमाराध्य, मर्यादा-पुरुषोत्तम, भगवान् श्रीसीतारामजीकी कृपासे, मोदीनगरमें राघव-सेवा-समितिके तत्त्वावधानमें समायोजित, मेरी १२५१वीं रामकथाके अष्टम सत्रमें आप सभी बान्धवियों और बन्धुओंका मैं बहुत-बहुत स्वागत करता हूँ। आप सुनते आ रहे हैं, इस बार मैंने प्रतिज्ञा की है कि मानसजीमें जो तीस कथाएँ है, उनमें-से प्रत्येककी कुछ-न-कुछ व्याख्या सुनाऊँगा। अब दो दिनका समय मेरे पास है—आज और कल।

कथा १५: असुरसेन सम नरक निकंदिनि (मा. १.३१.९)

तो चलिये अब पंद्रहवीं कथाकी ओर।

असुरसेन सम नरक निकंदिनि। साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि॥

(मा. १.३१.९)

देखिये! यहाँ श्लेष है। **गिरिनंदिनि** शब्दका प्रयोग एक बार किया है गोस्वामीजीने। पर उसके दो अर्थ हैं—(१) एक तो **गिरिनंदिनि** माने पार्वतीजी, वे गिरिकी नंदिनी हैं और (२) दूसरा **गिरिनंदिनि** माने गङ्गाजी। तो यहाँ पहले पार्वतीजी **असुरसेन सम नरक निकंदिनि** और अब **साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि** श्रीरामजीकी कथा—

असुरसेन सम नरक निकंदिनि। साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि॥

जिस प्रकार महाकालिका पार्वतीजी असुरोंकी सेनाका विनाश करती हैं, उसी प्रकार यह श्रीरामकथा नरकको नष्ट करती है। कितना अच्छा कहा कि श्रीरामकथा सुनने और कहनेसे नरक हो ही नहीं सकता! परंतु इसमें न तो कोई मिलावट होनी चाहिए और न बनावट होनी चाहिए। जितनी सहजतासे मैं कह रहा हूँ, मुझे हर्ष है कि अध्यात्म-चैनलपर कह रहा हूँ, उतनी ही अच्छी प्रतिक्रिया आ रही है। संस्कार-आदि चैनलोंपर भी मेरी कथा प्रसारित होती है, पर इस कथाको लोग बहुत ही पसंद कर रहे हैं, स्वीकार कर रहे हैं, अच्छा मान रहे हैं। कोई बनावट नहीं!

तो देखिये! पंद्रहवीं कथा क्या है? श्रीभरतजी अब चित्रकूटसे अवधको पधार चुके हैं और भगवान् राम वनमें, श्रीचित्रकूटपर्वतपर, सीताजीके साथ विहार कर रहे हैं। और यह देखिये—यह महारास है भगवान्का। रसिकजन तो कहते हैं कि भगवान् रामजीने सीताजीके सहित श्रीचित्रकूटमें साढ़े निन्यानवें रास किये। सौवाँ महारास चल रहा था, उसीको जयन्तने विघ्नित किया था। तो आधा पूरा हो गया और आधेमें छूट गया। वही आधा महारास वृन्दावनमें किया भगवान् श्रीकृष्णने, जिसकी बड़ी चर्चा होती रहती है। साढ़े निन्यानवें रास तो चित्रकूटमें ही हुए।

आज आपको अपने मनकी बात बताऊँ! विश्वमें तीर्थ तो बहुत हैं, परंतु मैं बहुत निष्ठा और गम्भीरतासे कह रहा हूँ कि श्रीचित्रकूट-जैसा तीर्थ आज भी विश्वमें नहीं है। आपको एक बात बताऊँ। आज भी जिन्हें साधना करनी है, उन्हें चित्रकूटजी चाहिए। हाँ, भंडारेके लिए चाहे जहाँ चले जाओ! मैं किसी तीर्थकी निंदा नहीं कर रहा हूँ, पर स्थिति आपको बताऊँ क्योंकि मैंने तो चित्रकूटको बहुत निकटतासे देखा है। नौ बार हमने दूधपर रहकर छः-छः महीनेका अनुष्ठान (पयोव्रत) किया चित्रकूटमें और एक बार तो नौ महीनेका अनुष्ठान किया; कुल दस नौ बार हो गये। युवावस्था थी तो कादमगिरिकी परिक्रमा की। आज भी प्रातःकाल तीन बजेसे छः बजेतकके बीचमें हम तुलसीपीठमें जब बैठते हैं, तो स्पष्टरूपसे सीताजीकी पायलकी झंकार सुनायी पड़ती है। आज भी भगवान् रामकी, लक्ष्मणजीके धनुष-बाणकी खड़खड़ाहट, सीताजीके केश झाड़नेके शब्द ... और एक पक्षी वर्षाकालमें आता है, मित्रो! इतना सुन्दर *सीताराम* कहता है कि जितना हम कह ही नहीं सकते। संतोंकी प्रतिज्ञा है कि सीतारामजीके दर्शन चाहिए

तो चित्रकूटमें ही होंगे। अन्यमें होंगे कि नहीं—यह कोई गारंटी नहीं है, पर वहाँ तो होंगे ही। रोटी तोड़ना हो तो कहीं भी तोड़ लेते हैं।

मैं अपनी बात करूँ! हरिद्वारमें भी मेरा आश्रम है। वहाँ रहकर बहुत काम किया हमने। पर मेरे हृदयसे पूछा जाए—हरिद्वारमें आश्रम है, फिर भी क्यों नहीं वहाँ चातुर्मास्य करता? मैं इतने लम्बे समयतक कहीं नहीं रह सकता चित्रकूटको छोड़कर। वहाँ तो छः-छः महीने रह जाऊँ, मनमें कोई ऊब नहीं होती, अन्यत्र विघ्नता हो जाती है। चित्रकूटके कण-कणमें श्रीसीतारामजीका प्रेम छलकता है। मित्रो! यह ताली बजानेकी बात नहीं है, यह साधनाकी बात है। भगवान्‌की बहुत बड़ी कृपा है कि कलिकालने सारे तीर्थोंको नष्ट किया, पर चित्रकूटपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। हम लोग साधुसमाजमें भी कहते हैं, हमारा टकसाल जो है, श्रीअवध हमारी धर्मशाला है, परंतु सुख-विलास तो हमारा चित्रकूट है।

तो वहाँ भगवान्‌ने महारास किया। ९९ महारास हो गये। १००वें महारासमें सीताजीको भगवान् राम सजा रहे हैं—

एक बार चुनि कुसुम सुहाये। निज कर भूषन राम बनाये॥

(मा. ३.१.३)

एक बार अर्थात् यहाँ मैं ९९वें बारकी घटना नहीं कह रहा हूँ, १००वीं बारकी घटना है यह। अपने हाथसे सुन्दर पुष्पोंको चुनकर **चुनि कुसुम सुहाये**। कितना सुन्दर वर्णन है! भगवान् मानसजीमें दो बार पुष्प ले रहे हैं—(१) श्रीमिथिलामें—**चहुँ दिशि चितइ पूँछि मालीगन** (मा. १.२२८.१) और (२) श्रीचित्रकूटमें—**एक बार चुनि कुसुम सुहाये** (मा. ३.१.३)।

मोदीनगरवालो! मेरे साथ चौपाई गाया करो! आपको चौपाई गानेका अभ्यास नहीं है। चौपाई गानी चाहिए। यह है चौपाई। चौपाई गाओ, चारों वस्तुएँ मिल जायेंगीं—अर्थ भी मिलेगा, धर्म भी मिलेगा, कामनाओंकी पूर्ति भी होगी, मोक्ष भी मिलेगा चकाचक! पर गाओ तब न! प्रेमसे गाओ। **एक बार चुनि कुसुम सुहाये** (मा. ३.१.३)—सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंको चुना भगवान्‌ने और **निज कर भूषन राम बनाये** अपने हाथोंसे आभूषण बनाये। क्या आनन्द है! जो श्रीराम स्वयं तीनों लोकोंके भूषण हैं—**तुलसिदास प्रभु त्रिभुवनभूषन** (मा. ७.३५.९), जिन्हें मिथिलाके दूत विश्वका विभूषण कहते हैं—**बिश्व बिभूषन दोउ** (मा. १.२९१), जिन्हें सखी सूर्यकूलका भूषण कहती हैं—**देखि भानुकुलभूषनहिं** (मा. १.२३३), वे यदि स्वयं अपने हाथोंसे आभूषण बनायें तो कितने सुन्दर बनेंगे।

अथवा **निज कर भूषन राम बनाये** अर्थात् अपनेको ही आभूषण बना लिया भगवान्‌ने। भगवान् राम स्वयं ही सीताजीके कानोंके कुण्डल, सीताजीके माथेकी बिंदिया, सीताजीके हाथोंके कंगन और सीताजीके गलेका हार बन गये। और, **सीतहिं पहिराये प्रभु सादर** (मा. ३.१.४)। हमारी माताओंको जलन न हो जाए! इतना प्रेम कोई पति अपनी पत्नीसे कर ही नहीं सकता। यहाँ **सादर** शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। पत्नीको प्रभु आदर दे रहे हैं। मित्रो, आदर किसको देते हैं—बड़ेको या छोटेको? बड़ेको। अर्थात् आज रामचन्द्रजीने सीताजीको अपनेसे बड़ा मान लिया। मनुकी वह पङ्क्ति स्मरण कर ली—**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः** (म.स्मृ. ३.५६) अर्थात् जहाँ नारीकी पूजा होती है, वहाँ देवता रम जाते हैं। भगवान्‌ने कहा—"भगवती!

आप शक्ति हैं। आज आपका आह्वान कर रहा हूँ। राक्षसोंका वध करना है, वह बिना शक्तिकी सहायताके संभव नहीं है। हे शक्ति! जग जाओ! मुझे भारतको आतङ्कवादसे रहित करना है।"

यह तुंग हिमाचल किसका है।
हिमगिरिकी चट्टानें कहतीं, जिसमें पौरुष हो उसका है।

हे महाशक्ति! जग जाओ! कितना सुन्दर है!

इसलिए—

सीतहिं पहिराये प्रभु सादर। बैठे फटिकशिला परमाधर॥

(मा. ३.१.४)

बैठे फटिक सिला पर सुंदर (मा.गी.प्रे.)—यह पाठ अशुद्ध है। आज गोस्वामीजीने भगवान्‌को **परमाधर** कहा, क्योंकि आज प्रभु परम शोभाको धारण कर रहे हैं। और **परमाधर**—*परम: अधर: यस्य*—अधर केवल रामजीका परमपूज्य है, जिसका सीताजीके अतिरिक्त किसीने पान नहीं किया। इसलिए भी भगवान्‌को **परमाधर** कह रहे हैं। जयन्तको संदेह हो गया—"अरे! ये कौन-से भगवान् अपनी पत्नीको इतना सजा रहे हैं? ये भगवान् नहीं हो सकते। ये तो कोई रसिक राजकुमार हैं।" इसलिए जयन्तने कौवेका वेष बनाया और सीताजीके चरणमें चोंच मार दी—**सीता चरन चोंच हति भागा** (मा. ३.१.७)।

लोगोंका आरोप है कि रामचरितमानसमें नारीका अपमान हुआ। पर मेरी प्रार्थना है कि यदि रामचरितमानसमें नारीका अपमान हुआ होता तो रामायण केवल अयोध्याकाण्डतक रह जाती। यह अरण्यकाण्डसे उत्तरकाण्ड पर्यन्त लीला, नारीके सम्मानकी ही लीला है। यहाँ एक बात और समझ लेनी है। अन्य किसी धर्ममें, नारीको *बीबी* कहा जाता है, कहीं नारीको *बेबी* बोला जाता है; पर हिन्दूधर्ममें नारीको *देवी* बोला जाता है। इसका अर्थ होना चाहिए कि हम जितना नारीका सम्मान करते हैं, इतना कोई कर ही नहीं सकता। हमारे यहाँ जब पढ़ते-लिखते है, तब डॉक्टर बनते हैं। पवन सिंघल साहब पढ़े, तो डॉक्टर बने। भले प्रैक्टिस छोड़ चुके हैं, पर डॉक्टर तो हैं ही! पर इनकी पत्नी बिना पढ़े-लिखे डॉक्टराईन बन गयीं। लोग पढ़कर मास्टर बनते हैं और घरवाली बिना पढ़े मास्टराईन बन जाती है। हमारे यहाँ नारीका कितना सम्मान है। ब्राह्मण पढ़ता-लिखता है बहुत! अब तो ठीक है! जो बहुत पढ़े-लिखे होते हैं, वे पण्डित बनते हैं। पण्डित चार प्रकारके होते हैं—

गृहेषु पण्डिताः केचित्केचिद्ग्रामेषु पण्डिताः।
सभासु पण्डिताः केचित्केचित्पण्डितपण्डिताः॥

अर्थात्, (१) कुछ लोग घरमें पण्डित बने रहते हैं, (२) कुछ लोग गाँवके पण्डित होते हैं, (३) कुछ लोग सभामें पण्डित होते हैं, और (४) कुछ ही लोग होते हैं, जो पण्डितोंके भी पण्डित होते हैं। तो पण्डितजी कितना श्रम करते हैं तब पण्डित बनते हैं और उनकी पत्नी कुछ नहीं करती, पण्डितके साथ विवाह हो गया तो पण्डितानी बन गयी। अरे! एक पण्डितकी पत्नीने मुझसे कहा—"जगद्गुरुजी! आप जानते हैं? सुनिये। जितना पण्डितके पतरामें, उतना पण्डितानीके अँचरामें।"

तो हमारे-जैसा नारीका सम्मान कोई नहीं कर सकता! हमको चुनौती नहीं देनी चाहिए। मैं,

मेरा वक्तव्य ऐसा नहीं है! मैं चुनौती दे रहा हूँ, challenge कर रहा हूँ। और धर्मोंमें तो नारीको केवल production की factory बना दिया गया, बच्चे पैदा करनेकी factory; २५–२५ बच्चे पैदा करते हैं एक-एकसे, क्योंकि वह औरत होती है औरत! हमारे यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ तो—

एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भया

(चा.नी.)

एक सुन्दर बालकने जन्म लिया, हमारे यहाँ बच्चा पैदा नहीं किया जाता, हमारे यहाँ पुत्रका जन्म होता है। एक सुन्दर पुत्रको जन्म देकर सिंहिनी मस्तीमें सोती है और बहुत-से बच्चोंको बिया करके भी गधी डंडे ही खाती है—**सहैव दशभिः पुत्रैः भारं वहति रासभी** (चा.नी.)। उस महिलाका क्या होता होगा, जो २५–२५ बच्चे पैदा करती है धूमकेतु! नूरजहाँसे शाहजहाँने १४–१४ बच्चे पैदा किये। क्या मिला? शाहजहाँको क्या मिला? वृद्धावस्थामें जेल मिली। एक अन्न खानेको विवश हुआ शाहजहाँ! हमारे यहाँ रामजीको प्रकट करके कौशल्याजीको क्या नहीं मिला! औरंगजेबकी मजारपर आज भी कुत्ते मूतते हैं और हमारे रामजीके मन्दिरमें आज भी अनन्त लोगोंके आँसूओंके अभिषेक होते हैं। श्रीअयोध्याका राम मन्दिर हमारी आस्थाका प्रतीक है। राम मन्दिर हमारा था, हमारा है, और हमारा ही रहेगा।

रहेंगे न तारे न चंदा रहेगा, पर राम मन्दिर हमारा हमारा रहेगा।

क्यों? कितना तोड़ोगे? मेरा वक्तव्य राजनैतिक नहीं है, पर धर्मको राजनीतिसे अलग नहीं किया जा सकता। धर्म पति और राजनीति पत्नी है। पतिको पत्नीसे कैसे अलग करेंगे? धर्म नहीं रहेगा तो राजनीति विधवा हो जायेगी और यदि राजनीति नहीं रहेगी, तो धर्म विधुर हो जायेगा। मैं बहुत बलपूर्वक कह रहा हूँ। कोई बच्चोंका चंदा-मामा नहीं है मेरा वक्तव्य।

एक बात आपको बतायें। एक दिन मुलायम सिंहका एक वक्तव्य आया था, मुझे बहुत पीड़ा हुई। उन्होंने कहा—“१९९०में जो गोलीकाण्ड हुआ था, उसमें मैंने १६ लोगोंको मरवाया था। देशकी सेवाके लिए मैं ३०० लोगोंको भी मरवा सकता था।” तो मैं कहने जा रहा हूँ—“महोदय! १६ लोगोंका यह बलिदान व्यर्थ नहीं गया और आपके देखते-देखते ६ दिसम्बर १९९२को हमने भारतमाताके माथेपर लगा हुआ जो कलङ्क था, अयोध्याके राम मन्दिरपर बने गलत ढाँचाको हमने सदा-सदाके लिए सरयू मैयामें प्रवाहित कर दिया। और आप कुछ भी नहीं कर पाये महोदय! और इतना चिन्ता मत करिये! हम तो मरकर अमर होना जानते हैं। थोड़ी हमारी भूल थी, अब आप मारकर देखिये किसीको! हमने राम मन्दिर तो बना लिया है, केवल जीर्णोद्धार होना है, वह भी होगा। ६ दिसम्बर २०१८तक हम राम मन्दिर बनाकर आपको दिखाएँगे। और महोदय! भगवान् करे, तबतक आप बिस्तरपर लेट-लेटकर कलच-कलचकर जीते रहें, प्रसन्नतासे न जीयें।”

तो देखिये! एक प्रश्न है कि क्यों रामजीपर हम इतना प्रेम करते हैं? इसलिए कि हमने इतना नारीका सम्मान करते हुए किसीको देखा ही नहीं, जैसा रामजीको देखा है। आप लोग अन्यथा मत लीजियेगा। मैं भगवान् कृष्णका भी बहुत भक्त हूँ, परंतु जब समीक्षा होगी तो कहूँगा ही। कहूँगा। और बुरा मत मानियेगा, फिर कह रहा हूँ। यदि बुरा मानेंगे, भी तो मेरा क्या बिगड़ेगा? पर कहूँगा अवश्य! देखिये, कृष्णभगवान् प्रेम करना जानते हैं, परंतु संबन्धकी रक्षा करना उनके

वशका नहीं है। गोपियोंसे भगवान्‌ने प्रेम किया और गोपियोंने सर्वस्व लुटा दिया भगवान्‌के लिए। पर आप बताइये! मथुरा जानेके पश्चात् कौन-सी सुरक्षाकी व्यवस्था कृष्ण भगवान्‌ने गोपियोंकी की? क्या बताऊँ आपको! प्रभासक्षेत्रमें, भगवान्‌के गोलोकमें प्रवेश होनेके पश्चात्, भगवान्‌की वधूओंको गोपालोंने लूट लिया! यह क्या है! बोलो कन्हैया, मुझे उत्तर चाहिए। और सीताजीकी परछाईका केवल रावणने अपमान किया, तो रघुनाथजीने रावणके करोड़ों सिरोंको काट-काटकर उसके रक्तसे भूमिका अभिषेक करके कह दिया—"देखो पृथ्वी! तुम्हारी बेटीका मैं कितना सम्मान करता हूँ! देख लो!" इसीलिए, रामजीका एक बहुत बड़ा स्वभाव है, आपको बताऊँ! जिससे रामजी संबन्ध बनाते हैं, उसका निर्वहण करते हैं—

तुलसी अपने राम को भजन करो निरसंक।
आदि अंत निरबाहिहै जैसे नौ को अंक॥

सीताजीका वनवास नहीं हुआ था, यह तो लोगोंने भगवान् रामके चरित्रको बदनाम किया। इसपर भी मैं चर्चा कभी करूँगा। देखिये! जयन्तने सीताजीके चरणमें चोंच मारी। भगवान् रामने कहा—"अच्छा! वह पति कैसा, जो अपनी पत्नीके सम्मानकी रक्षा न करे? वह तो क्लीब है।" सींकके धनुषपर ब्रह्मास्त्रका रामजीने संधान किया, **सींक धनुष सायक संधाना** (मा. ३.१.८)। **बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार** (मा. १.१९२)—भगवान्‌ने देवताओंके लिए मनुष्यका अवतार लिया है, पर जब देवता ही मानवताका खून पीने लग जाएँ, तब फिर क्या है? **प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा** (मा. ३.२.१)—ब्रह्मास्त्रका प्रयोग कर दिया। जयन्त सारे लोकोंमें भ्रमण करता रहा, कहीं भी जयन्तको ठिकाना नहीं मिला, शरण नहीं मिली। तब—**नारद देखा बिकल जयंता** (मा. ३.२.९)। नारदजीने जयन्तको विकल देखा, दया आयी। कहा—"जाओ रामजीके पास!" जयन्तने कहा—"कैसे? बहुत बड़ा अपराध किया है।" नारदजीने कहा—तुम समझे नहीं रघुनाथजीको! तुमसे अधिक अपराध तो मैंने किया था जयन्त! तुम तो उनकी पत्नीके चरणमें केवल चोंच मारे हो, मैं तो उन्हींकी पत्नीसे विवाह करने जा रहा था; फिर भी प्रभुने मुझे क्षमा कर दिया। हे जयन्त!—

उनकी करुणा में कोई कमी है नहीं, पात्रता में हमारी कमी रह गयी।
उनकी ममता में कोई कमी है नहीं, पुत्रता में हमारी कमी रह गयी॥

मुझे नहीं अनुकूल आता कि भगवान् कृष्णकी धर्मपत्नियोंको गोपाल लूटें और भगवान् चुप होकर देखें! मैं झूठ नहीं बोलता। भगवान् मुझे दण्ड दें, मैं दण्ड सहनेको तैयार हूँ। घोर दण्ड दे दें। इस मेरे वक्तव्यपर भगवान् कुपित होकर सुदर्शनचक्र भी मुझपर चलायें, सिर देनेको मैं तैयार हूँ। पर मुझे यह बात उनके अनुकूल नहीं आ रही है। अरे! जिन्होंने आपके लिए जीवन दिया, उनकी रक्षाकी व्यवस्था तो आपको करनी ही चाहिए थी; उनकी व्यवस्था करनी थी आपको। अब आप क्या समझते हो आप जानो, मुझे अनुकूल नहीं लगा।

और राघवजी? पहली बात तो हम सीताजीका वनवास मानते ही नहीं। और जो सीताजीका वनवास मानते हैं, वहाँ भी रामजीने अन्याय नहीं किया है। सीताजीको वाल्मीकिजीके आश्रममें पहुँचवाया उन्होंने, क्योंकि वे जानते थे वहाँ उनकी रक्षा हो जायेगी और वहाँ लव-कुशकी व्यवस्था होगी। **सोऽहं चिरन्तनसखा जनकस्य राज्ञः**—वाल्मीकिजी जनकजीके मित्र हैं, उस

पक्षमें भी रामजी ठीक हैं। यद्यपि यह घटना, सीताजीका वनवास, मैं नहीं मानता।

मैं यह निवेदन करने जा रहा हूँ कि रघुनाथजीकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि जिससे जैसा संबन्ध जोड़ा, उसको रघुनाथजीने निभाया। अब देख लीजिये! जयन्त आया, रामजीके चरण पकड़ लिए। प्रभुने विनोद किया। यह बहुत पुराना भाव है आचार्योंका, मुझे भी बहुत अच्छा लगता है। श्रीकरपात्री स्वामीजी भी यही भाव कहते थे। अच्छा लगता है! प्रभुने विनोद किया—"क्यों जयन्त! यदि तुमको मेरे पास आना ही था, तो इतनी दूर भागे क्यों?" सीताजीने धीरे-से बता दिया। जयन्तने कहा—"आपका प्रभाव देखने दूर चला गया था, क्योंकि प्रभाव तो दूरसे दिखता है।" भगवान्ने कहा—"जब दूर चले गये थे, तो साले यहाँ आये क्यों?" जयन्तको भगवान् साला मानते हैं। नारदजीने बता दिया था—"जयन्त! कह देना मैं नारदजीका शिष्य हूँ और सीताजी भी नारदजीकी शिष्या हैं, तो दोनों गुरुभाई-बहिन हो गये।" इसलिए जयन्तने रामजीको जीजा ही कहा था—"जीजाजी प्रणाम !" तो सीताजीने कहा—"जब यह आपको जीजाजी कह रहा है, तो जीजाको देखकर तो जीने का मन करता है, मारेंगे कैसे आप बताइये।" तो भगवान्ने यही कहा—"साले! यदि आना ही था तो गये क्यों?" तो जयन्तने कहा—"आपका प्रभाव देखने चला गया था।" भगवान्ने कहा—"अच्छा ठीक है छोटे साले! यह बताओ कि यदि मेरे पास ही आना था तो पहले क्यों गये? फिर मेरे पास क्यों आये, दूर ही रह जाते?" जयन्तने कहा—"प्रभु! जीजाजी! आपका स्वभाव देखने आपके पास चला आया क्योंकि स्वभाव निकटसे ही तो दिखता है।" तो भगवान्ने जयन्तको बचा लिया।

असुरसेन सम नरक निकंदिनि। साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि॥

(मा. १.३१.९)

प्रथम **गिरिनंदिनि** पार्वतीजी। पंद्रहवीं कथा पार्वतीजीके समान है, जहाँ उचित दण्डविधान किया जाता है। आनन्द कर दिया! और पार्वतीजी इस घटनासे प्रसन्न भी बहुत हुईं—जयन्त कह रहा है। बहुत प्रसन्न हुईं। प्रारम्भमें—

उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति॥

(मा. ३ म.सो. १)

फिर,

सुनि कृपालु अति आरत बानी। एकनयन करि तजा भवानी॥

(मा. ३.२.१४)

जयन्त-निग्रह भगवतीजीको बहुत भाता है और उन्हें लग गया—"हाँ, प्रभुने एक भारतीय नारीका कितना सम्मान किया! जिसने उन्हें सब कुछ सौंप दिया, उसका सम्मान तो उन्हें करना ही है।"

कथा १६: साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि (मा. १.३१.९)

और अब **साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि** (मा. १.३१.९)—साधुरूप देवताकुलको आनंदित करनेके लिए द्वितीय **गिरिनंदिनि**। देखिये! जनकजी चित्रकूटमें कहते हैं कि गङ्गाजीने तो तीन स्थलों हरिद्वार, प्रयाग और गङ्गासागरको बड़ा बनाया, परंतु हमारी मैथिलीकी इस कीर्तिनदीने तो अनेक साधुसमाजको बड़ा बना दिया—

गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। येहिं किये साधुसमाज घनेरे॥

(मा. २.२८७.४)

गङ्गाजीने चार स्थानोंको महिमामंडित किया। (१) हरिद्वारको—यदि गङ्गा न हों, तो हरिद्वारको कौन पूछे? हरिद्वारमें रहकर गङ्गा न नहाओ तो लगता है, कुछ नहीं किया। (२) प्रयागको, (३) काशीको, और (४) गङ्गासागरको। चार स्थानोंको गङ्गाजीने बड़प्पन दिया और इस कथामें भी रामचन्द्रजी चार मुनियोंसे मिलेंगे—(१) अत्रिजीसे, (२) शरभङ्गजीसे, (३) सुतीक्ष्णजीसे, और (४) अगस्त्यजीसे। यहाँ (१) **अत्रिदर्शन**—यह हरिद्वार है, (२) **शरभङ्गदर्शन**—यह प्रयाग है, (३) **सुतीक्ष्णदर्शन**—यह काशी है, और (४) **अगस्त्यदर्शन**—यह गङ्गासागर है। यह है रामकथा देखो! **साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि** (मा. १.३१.९)।

(१) अत्रिदर्शन-हरिद्वार—

१२ वर्ष विराजमान होकर चित्रकूटसे चले प्रभु। अत्रिजीके दर्शन किये और अत्रिजीने १२ छन्दोंमें ही भगवान्‌की स्तुति की। इसीसे सिद्ध हो जाता है कि चित्रकूटमें १२ वर्ष पर्यन्त भगवान् रहे। वैसे तो **चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत** (दो. ४)। पर **नमामि भक्तवत्सलम्** (मा. ३.४.२)—यहाँ १२ छन्द हैं। इस छन्दका नाम जानते हो? बहुत अच्छा नाम है। क्या नाम है? प्रमाणिका छन्द—

नमामि भक्तवत्सलम्। कृपालुशीलकोमलम् ॥
भजामि ते पदांबुजम्। अकामिनां स्वधामदम्॥
निकामश्यामसुंदरम्। भवाम्बुनाथमंदरम् ॥
प्रफुल्लकंजलोचनम्। मदादिदोषमोचनम् ॥

(मा. ३.४.२)

कोई तुमसे पूछे, क्या प्रमाण है कि बारह वर्ष भगवान् चित्रकूटमें रहे, तो यही छन्द बता देना कि यदि बारह वर्ष न रहे होते चित्रकूटमें, तो बारह छन्द गोस्वामीजी क्यों लिखते? ११ कर देते, १० कर देते, १३ या १४ भी कर सकते थे। तो चित्रकूटसे प्रस्थान करते समय १२ वर्ष पर्यन्त जो भगवान् चित्रकूटमें रहे, उसी की कृतज्ञतामें प्रमाणिका छन्द लिखकर गोस्वामीजीने सिद्ध कर दिया कि अत्रिजी भगवान्‌की द्वादशवर्षीय लीलाका स्मरण कर रहे हैं। बहुत सुन्दर छन्द है यह! अनसूयासे पातिव्रत्यका उपदेश हरिद्वार के समान है—तो यह हरिद्वार है।

गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। येहिं किये साधु समाजघनेरे॥

अनसूयाजीसे पतिव्रतका उपदेश सुना सीताजीने। **सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं** (मा. ३.५ख) क्या बात कहती हैं! सीताजीका नाम स्मरण करके नारियाँ पतिव्रतका

आचरण करती हैं। **तुमहिं प्रानप्रिय राम कहेउँ कथा संसार हित** (मा. ३.५ख)—माताजीने सीताजीको पतिव्रतका उपदेश दिया और कहा यह तो मैंने सारे संसारके लिए कहा है कि नारीका एक ही धर्म है, एक ही व्रत है, एक ही नियम है—

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पतिपद प्रेमा॥

(मा. ३.५.१०)

इस चौपाईका जो लोग अर्थ नहीं जानते, वे कुछ नाटक करते हैं। वे कहते हैं कि गोस्वामीजी कहते हैं पतिके चरणमें प्रेम कर, भगवान्‌का भजन मत कर। केवल मेरे जूतेकी पॉलिश (polish) करती रह! पर ऐसा नहीं है। **पतिपद प्रेमा**का अर्थ है पति जिन चरणोंकी पूजा करते हैं, ऐसे भगवान् श्रीरामके चरणोंमें प्रेम करना—यही नारीका धर्म है। **पद**का अर्थ रक्षक होता है—**पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु** (अ.को. ३.३.५३८)। पतिके जो रक्षक हैं भगवान्, उनके चरणमें प्रेम करना। रामजीके चरणमें प्रेम करना ही पतिव्रता नारीका व्रत, नियम और धर्म है—

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पतिपद प्रेमा॥

(मा. ३.५.१०)

अत्रिजीसे मिलकर चले। भगवान्‌ने मार्गमें विराधका वध किया। विराधका वध किया, तो संत प्रसन्न हो गये—

मिला असुर बिराध मग जाता। आवतहीं रघुबीर निपाता॥

(मा. ३.७.६)

(२) शरभङ्गदर्शन-प्रयाग—

शरभङ्गजीसे मिले—**साधु बिबुध कुल हित गिरिनंदिनि** (मा. १.३१.९)। बहुत अच्छा! **न सौ गंगा नेक सरभंगा**—एक बार शरभङ्गकुण्डमें नहा लीजिये, तो सौ गङ्गा नहानेका फल मिल जाता है। तो इतने रामजीके भक्त! कहा—"सरकार! मैं ब्रह्माजीके धाम जा रहा था। उसी समय कोई *वाल्मीकीय रामायण* कह रहा था। उसमें लिखा था—**विराधं राक्षसं हत्वा शरभङ्गं ददर्श ह** (वा.रा. १.१.३३) अर्थात् विराधको मारकर भगवान् शरभङ्गका दर्शन करेंगे। इतना मैंने सुना तो ब्रह्माजीसे पूछा भी नहीं, मैं उनके विमानसे कूद पड़ा और अपनी कुटियामें आ गया और ब्रह्माजीसे कहा—"चुप! मैं तुम्हारे लोक नहीं जाऊँगा। रामजी मेरी कुटियामें आयें और मैं ब्रह्मलोक जाऊँ? परब्रह्म मेरी कुटियामें आ रहा है, मैं ब्रह्माके लोकमें जाऊँ? ब्रह्माके लोककी ऐसी की तैसी! नहीं जाऊँगा—"

जात रहेउँ बिरंचि के धामा। सुनेउँ स्रवन बन ऐहैं रामा॥

(मा. ३.८.२)

मैंने सुना कि रामजी वनमें आयेंगे तो **चितवत पंथ रहेउँ दिन राती** (मा. ३.८.३)। तबसे मैं आपकी राह जोहता रहा।" शरभङ्ग धन्य हैं! **कासीं बिधि बसि तनु तजें हठि तनु तजें प्रयाग** (दो. १४) प्रयागमें हठसे शरीर छोड़नेसे भी मुक्ति हो जाती है और इसीलिए शरभङ्गने चिता रची और बैठ गये। भगवान्‌से कह दिया—"मैं इसीलिए बैठ रहा हूँ कि जीवित अग्नि समाधि लूँगा। मेरे द्वारा शरीर छोड़नेपर आप मुझे मुखाग्नि दीजिये। मैं प्रसन्न हो जाऊँगा। आह! कोई भी व्यक्ति आपकी मुखाग्निका आनन्द नहीं ले सका, मैं लूँगा।" तो भगवान्‌ने मुखाग्नि दी और **अस कहि**

जोग अगिनि तनु जारा (मा. ३.९.१)।

(३) सुतीक्ष्णदर्शन-काशी—

साठ हजार सगरपुत्रोंकी अस्थियोंका उद्धार गङ्गाजीने किया, यहाँ तो करोड़ों ब्राह्मणोंको राक्षसोंने खाकर बर्बाद कर दिया है।

अस्थिसमूह देखि रघुराया। पूँछी मुनिन लागि अति दाया॥

(मा. ३.९.६)

क्या बात है महर्षि? **निशिचरनिकर सकल मुनि खाये** (मा. ३.९.८)। आँसू आ गये भगवान्‌के, प्रतिज्ञा की। यह काशीका भावमय दृश्य है। काशीमें अस्थिप्रवाहसे मुक्ति होती है। भगवान्‌ने प्रतिज्ञा की और रुद्र बन गये भगवान्—

निशिचरहीन करउँ मही भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन के आश्रमनि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

(मा. ३.९)

यह काशीकी गङ्गा है। आनन्द कर दिया! सुतीक्ष्णसे मिल रहे हैं। परम रामभक्त सुतीक्ष्ण आगमनका समाचार सुना, तो दौड़कर आये—

प्रभु आगमन श्रवन सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा॥

(मा. ३.१०.३)

काशीमें शङ्करजी रामनाम लेकर नाचते हैं, यहाँ सुतीक्ष्णजी भी नाच रहे हैं—

कबहुँक फिरि पाछे पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥

(मा. ३.१०.१२)

प्रकट हो गये भगवान्—

अतिशय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदय हरन भवभीरा॥

(मा. ३.१०.१४)

सुतीक्ष्णजीको भगवान्‌ने अभीष्ट वरदान दिया।

(४) अगस्त्यदर्शन-गङ्गासागर—

अब अगस्त्यजीसे भगवान् मिल रहे हैं, यह गङ्गासागर है। जैसे गङ्गाजी सागरसे मिल रही हैं, इसी प्रकार अगस्त्यजीकी भक्तिगङ्गा रामरूपी सागरसे मिल रही है। आनन्द कर दिया! **प्रभु अगस्त्य कर संग** (मा. ७.६५)। सगर पुत्रोंका यहीं उद्धार हुआ और यहाँ भी भगवान् कह रहे हैं—

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही॥

(मा. ३.१३.३)

आनन्द कर दिया भगवान्‌ने! अद्भुत आनन्द है!

कथा १७: संत समाज पयोधि रमा सी (मा. १.३१.१०)

अब—

संतसमाज पयोधि रमा सी। विश्वभार भर अचल छमा सी॥

(मा. १.३१.१०)

यह रामायणकी सत्रहवीं कथा है। श्रीरामकथा कैसी है? तो उत्तर है—यह लक्ष्मीजीके समान है, जो संत समाजरूप क्षीरसागरसे प्रकट होती है। बहुत अद्भुत! भगवान् जटायुजीसे मिल रहे हैं। पञ्चवटीमें कुटिया बनायी—**गोदावरी समीप प्रभु रहे परन गृह छाइ** (मा. ३.१३)। चित्रकूटमें कुटिया बनाने आ गये थे देवता—**कोल किरात बेष सब आये** (मा. २.१३३.७) पर यहाँ नहीं आये, क्योंकि यहाँ खर-दूषण रहते हैं, बहुत डरते हैं देवता। देवता नहीं आये, तो लक्ष्मणजीने स्वयं कुटी बना ली।

यहींपर लक्ष्मणजीने अर्थपञ्चक पूछा, जो साधुसमाजकी निधि है। पाँच वस्तुएँ हमें जाननी हैं—

प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः।
प्राप्त्युपायं फलं चैव तथा प्राप्तिविरोधि च॥

(१) **स्वस्वरूप**—*स्व* माने जीव, उसका क्या स्वरूप है। (२) **परस्वरूप**—*पर* माने परमात्मा, उसका क्या स्वरूप है। (३) **उपायस्वरूप**—*उपाय* माने परमात्मासे मिलने का उपाय। (४) **फलस्वरूप**—*फल* माने परमात्मासे मिलनेका जो फल मिलेगा, उसका क्या स्वरूप है। और (५) **विरोधिस्वरूप**—*विरोधी* माने परमात्मासे हमें कौन मिलने नहीं दे रहा है। लक्ष्मणजीने भगवान्‌से पाँच प्रश्न किये—

कहहु ग्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया॥

(मा. ३.१४.८)

ईश्वर जीवहिं भेद प्रभु सकल कहहु समुझाइ।
जाते होइ चरनरति शोक मोह भ्रम जाइ॥

(मा. ३.१४)

(१) **कहहु ग्यान बिराग, कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया**—परमात्माकी प्राप्तिके उपायका स्वरूप पूछा, (२) **अरु माया**—विरोधीका स्वरूप पूछा, (३) **ईश्वर**—परमात्माका स्वरूप पूछा, (४) **जीवहिं भेद**—जीवका स्वरूप पूछा, (५) **जाते होइ चरनरति शोक मोह भ्रम जाइ**—फलका स्वरूप पूछा।

हाँ! तो भगवान्‌ने लक्ष्मणजीकी अर्थपञ्चकविषयक जिज्ञासाका समाधान किया—

(१) **विरोधिस्वरूप**—पहले विरोधिस्वरूप कहा,

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बश कीन्हे जीव निकाया॥

(मा. ३.१५.२)

"यह मैं हूँ, यह मेरा है, माने ये तू ये तेरा," भगवान्‌से अतिरिक्त संसारके संबन्धोंकी कल्पना ही माया है। लोग मुझसे यही कहते हैं—"गुरुजी! यह मेरा बेटा आया। ये मेरे ससुर ..." अरे यार! तुम मेरे-मेरे कबतक करते रहोगे? यह बताओ! ये मेरे ससुर, यह मेरी सास, यह मेरे पति, यह मेरी बेटी ... यहाँ तो बहुत लोग मुझे यही कहते रहते हैं। मेरे कान पक गये सुनते-सुनते! हमारे यहाँ भी मेरा-मेरा करोगे? हम तो यहीं कहेंगे तुमसे—

तू रामशरणमें जा मत कर तू मेरा मेरा।
तू राममें मनको रमा मत कर तू मेरा मेरा॥
पति पत्नी और संपत्ति बेटे नाते जगके झूठे।
सच्चे हैं नाते रघुवरके ये ही नित्य अनूठे।
तू राममें चित्तको लगा मत कर तू मेरा मेरा॥
तू रामशरणमें जा मत कर तू मेरा मेरा।
तू राममें मनको रमा मत कर तू मेरा मेरा॥

कभी-कभी विशिष्ट (special) लोग बात करते हैं, तो मेरे मनको बड़ी पीड़ा होती है। चाहे वह आयोजक हों, चाहे कोई हों कि मेरे, मेरे। अरे! क्या मेरे-मेरे? मर रहे हो यार! अरे! मेरे तो रामजी हैं—

मेरे-मेरे कहकर मरता कोई नहीं है तेरा।
झूठे संबन्धी सब जगके यही मोहका फेरा।
तू राम शरण में जा मत कर तू मेरा मेरा॥
जिनको तू अपना कहता है वे हैं सभी पराए।
स्वार्थके साथी हैं जगके कोई काम न आये।
तू राम शरण में जा मत कर तू मेरा मेरा॥
जबतक तेरे पास द्रव्य है तबतक सभी हैं तेरे।
अंत समयमें जूते मारे गिरिधर प्रभु ही तेरे।
तू रामको अपना बना मत कर तो मेरा मेरा॥
रामकी शरण में जा मत कर तू मेरा मेरा॥

अरे! क्या बताऊँ? मैं इस विशिष्ट (special) धारणासे बहुत दु:खी हो जाता हूँ। व्यक्तिको इतना स्वार्थान्ध नहीं होना चाहिए। हमारा स्वार्थ क्या है?—

स्वारथ साँच जीव कहँ एहा। मन क्रम बचन रामपद नेहा॥

(मा. ७.९६.१)

मनसे, वाणीसे, कर्मसे रामजीके चरणमें प्रेम करना—यही जीवके मनका स्वार्थ है, यही वचनका स्वार्थ है, यही कर्मका स्वार्थ है, तो इसलिए—

संतसमाज पयोधि रमा सी। विश्वभार भर अचल छमा सी॥

(मा. १.३१.१०)

(२) **स्वस्वरूप—माया ईश न आपु कहँ जान कहिय सो जीव** (मा. ३.१५)।

(३) **परस्वरूप—बंध मोक्ष प्रद सर्ब पर माया प्रेरक शीव** (मा. ३.१५)।

(४) **उपायस्वरूप—**

धर्म ते बिरति जोग ते ग्याना। ग्यान मोक्षप्रद बेद बखाना॥
जाते बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥

(मा. ३.१६.१–२)

(५) **फलस्वरूप—**

बचन कर्म मन मोरि गति भजन करहिं निष्काम।
तिन के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥

(मा. ३.१६)

कथा १८: विश्व भार भर अचल छमा सी (मा. १.३१.१०)

यह १८वीं कथा इतनी सुन्दर कथा है कि विश्वके भारको धारण करने वाली पृथ्वीके समान है। कौन कथा है? यही कथा है कि जब शूर्पणखा रामके पास आ रही है। शूर्पणखा रावणकी बहिन है। एक बार पञ्चवटीमें भ्रमण करते-करते आयी।

पंचबटी सो गइ ऎक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥

(मा. ३.१७.४)

रामजी और लक्ष्मणजीको देखकर विकल हो गयी। गोस्वामीजीने कहा कि क्यों ऐसा हुआ? तो कहा—

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
होइ बिकल सक मनहिं न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहिं बिलोकी॥

(मा. ३.१७.५–६)

इन चौपाइयोंका अर्थ थोड़ा ध्यानसे सुनें। मैं चाहता हूँ कि आपको रामायणजीकी चौपाइयोंका अर्थ समझमें आये। आप रामायणजीकी चौपाइयोंसे परीचित हो जाइये! मेरी यही तो भूमिका होनी चाहिए कि भारतका बच्चा-बच्चा रामायणजीकी चौपाइयोंसे परिचित हो जाए।

गरुडजीने भुशुण्डिजीसे पूछा—“(१) शूर्पणखा राम-लक्ष्मणपर क्यों मोहित हो गयी और (२) राम-लक्ष्मण शूर्पणखापर क्यों मोहित नहीं हुए?—ये दो प्रश्न हैं।” इन्हीं दोनों प्रश्नोंका उत्तर दे रहे हैं—“हे गरुड! चाहे भाई हो या पिता हो या पुत्र हो, यदि नारी इनमें दो बातें देखने लगती है—पुरुषत्व और सुन्दरता; तो बहिन भाईपर मोहित हो जायेगी, बेटी पितापर मोहित हो जायेगी और माता भी बेटेपर मोहित हो जायेगी—नियम है यह। इसी प्रकार यदि भाई, पिता या पुत्र नारीमें मनोहरता देखेगा और भोगका साधन देखेगा, तो भाई बहिनपर मोहित हो जायेगा, पिता पुत्रीपर मोहित हो जायेगा, पुत्र मातापर मोहित हो जायेगा। कितना सुन्दर कह रहे हैं।”

तो गोस्वामीजीका कितना सुन्दर प्रकरण है! बहिनको भाईकी सुन्दरता नहीं देखनी चाहिए, उसमें पुरुषत्व नहीं देखना चाहिए। पुत्रीको पितामें पिताका सौन्दर्य नहीं ..., वे तो पिता हैं, पर्याप्त है। भाई-भाई होता है, वह सुन्दर हो या कुरूप हो। माताको पुत्रकी सुन्दरता नहीं देखनी चाहिए। “क्या छ: फीट का है, क्या गोरा-चिट्टा सा है!”—यह तुमको कहनेका अधिकार नहीं है। यह उसकी पत्नी कहे, तुम कौन होती हो कहने वाली? पाप हो जायेगा। उसी प्रकार भाईको अपनी बहिनकी सुन्दरता नहीं देखनी चाहिए, बहिन तो बहिन, उसके चरणोंकी ओर निहारो। पिताको बेटीकी सुन्दरता नहीं देखनी चाहिए, नहीं तो उसके मनमें वासना आयेगी। पुत्रको माताका सौन्दर्य नहीं देखना चाहिए, केवल मातृत्व देखना चाहिए। तो भ्राता, पिता और पुत्र नारीका मनोहरत्व और नारीत्व न देखें और नारी भ्राता, पिता और पुत्रमें मनोहरत्व व पुरुषत्व न देखे—

यह यहाँका तात्पर्य है। तो शूर्पणखाने भगवान् राम-लक्ष्मणमें पुरुषत्व देख लिया और मनोहरता देख ली, इससे वह मोहित हो गयी। राम-लक्ष्मणजीने उसमें मनोहरत्व और नारीत्व नहीं देखा, इसलिए वे मोहित नहीं हुए—

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
होइ बिकल सक मनहिं न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहिं बिलोकी॥

कौशल्याजी रामजीको देखती हैं, पर क्या नहीं देखतीं? रावणका वध करनेके पश्चात् भी रामजीको माताजीने देखा, तो क्या उन्होंने उनका पुरुषत्व देखा कि सुन्दरता देखी?—

कौशल्या पुनि पुनि रघुबीरहिं। चितवति कृपासिन्धु रनधीरहिं॥
हृदय बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा॥
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निशिचर सुभट महाबल भारे॥

(मा. ७.७.६–८)

शूर्पणखा मोहित हुई और कहा—"राजकुमार! मैं तुमसे विवाह करना चाहती हूँ।" भगवान्ने कहा—"नहीं।" **सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता** (मा. ३.१७.११) सीताजीकी ओर देखा और बोले—"मेरे पास तो पत्नी है, मैं तुम्हें क्यों देखना चाहूँ? **अहइ कुमार मोर लघु भ्राता** (मा. ३.१७.११)—मेरे छोटे भाई कुमार हैं। झूठ नहीं बोला, कुमार हैं। *कुत्सितः मारः येन स कुमारः*—जिनकी सुन्दरताने कामदेवको भी कुत्सित कर दिया है, उन कुमारसे बात करो। देखा जायेगा! जो कुछ होगा, होगा।" लक्ष्मणजीने भी अस्वीकार कर दिया, तब वह सीताजीको खाने दौड़ी तो रामजीने उसको विरूपित कराया। तो **विश्वभार भर अचल छमा सी** (मा. १.३१.१०)। यह चरित्र इतना सुन्दर है कि रामजी चलायमान नहीं हुए। पृथ्वीके समान अचल रही है कथा। इसीलिए तो पृथ्वीपुत्री सीताजी, रामजीकी इस कथापर बलिहार हो गयीं।

कथा १९: जम गन मुँह मसि जग जुमना सी (मा. १.३१.११)

अब बहुत सुन्दर चर्चा—**जमगन मुँह मसि जग जुमना सी** (मा. १.३१.११)। कहते हैं कि यह कथा यमराजके गणोंके मुखमें कालिख लगानेके लिए यमुनाजीके समान है। इसका तात्पर्य है कि एक तो यमोंके गण और दूसरा जम गण। करोड़ों यमराजोंके समान भयंकर खर-दूषण-त्रिशिरा रामजीपर आक्रमण कर रहे हैं। राघवजीने लक्ष्मणजीसे कहा—"अपनी भाभीको तुम गुफामें ले जाओ, क्योंकि इनकी उपस्थितिमें मैं राक्षसोंको मार नहीं सकूँगा।" श्रीरामने भी तैयारी कर ली। खर-दूषणने एक प्रस्ताव भेजा—

जद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥

(मा. ३.१९.५)

"कह दो! सीताजीको लौटा दें—**देहु तुरत निज नारि दुराई** (मा. ३.१९.६) जिस नारीको गुफा में छुपा रखा है, दे दें और चले जाएँ।" श्रीरामने कहा—"मुझे कोई समझौता नहीं करना। हम लोग तो क्षत्रिय हैं; जो ललकारता है, उससे युद्ध करेंगे। जो कुछ होगा, होगा।" भयंकर युद्ध चला। खर-दूषण रावण-जैसे बलवान् हैं—**खर दूषन मोहि सम बलवंता** (मा. ३.२३.२)।

एक-साथ करोड़ों अस्त्र-शस्त्र छोड़े जा रहे हैं। ये मरते हैं और फिर जीवित हो जाते हैं। मर-मरकर जीवित हो रहे हैं। **सुर डरत चौदह सहस निशिचर देखि इक कोसल धनी** (मा. ३.२०.१२)। देवता डरे, तो भगवान्‌ने गांधर्वास्त्रका प्रयोग किया। सबको रामजी ही दिखायी पड़ने लगे। सबकी दृष्टिमें रामजी आ गये, सब एक-दूसरेको राम समझकर मारने लगे। रामजीको धनुष-बाण उठाना नहीं पड़ा, अपने आप ही ससुरे मार-मारकर मर गये, कट गये—**करि उपाय रिपु मारेउ छन महँ कृपानिधान** (मा. ३.२०क)। सबके मुखपर भगवान्‌ने कालिख लगा दी, सबको मुक्ति दे दी। देवता प्रसन्न हुए, चारों ओरसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। जय हो!

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते॥
तब लछिमन सीतहिं लै आये। प्रभुपद परत हरषि उर लाये॥

(मा. ३.२१.१–२)

कथा २०: जीवन मुकुति हेतु जनु कासी (मा. १.३१.११)

श्रीरामचरितमानसकी २०वीं कथा जीवन-मुक्ति हेतु काशी है, अर्थात् यह जीवनको उसी प्रकार मुक्ति देती है जैसे भगवती काशी। तात्पर्य यह कि काशीमें पाँच कोश हैं। इसीसे पञ्चक्रोशात्मिका काशी कहा जाता है। इसी प्रकार इस बीसवीं कथा में भी पाँच लोगोंको मुक्ति मिली है—(१) मारीच, (२) जटायु, (३) कबन्ध, (४) माता शबरी, एवं (५) नारदजी। श्रीमद्भागवतजीके तृतीय स्कन्धके उनतीसवें अध्यायके १३वें श्लोकमें भगवान् कपिलजीने अपनी माता देवहूतिजीसे मुक्तिके पाँच भेद कहे हैं—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

अर्थात् भक्तलोग मेरे द्वारा दी जाती हुई सालोक्य मुक्ति, सार्ष्टि मुक्ति, सामीप्य मुक्ति, सारूप्य मुक्ति, तथा सायुज्य मुक्तिको भी ग्रहण नहीं करते। इसका तात्पर्य यह है कि भागवतकारने पाँच मुक्तियाँ मानी हैं और संयोग तथा सौभाग्य यह है कि बीसवीं कथामें इन पाँचों मुक्तियोंके निदर्शन हो जाते हैं।

(१) मारीच—खरदूषणके वधके पश्चात् शूर्पणखाने रावणको भगवान् श्रीरामकी वीरताका समाचार दिया और रावणने भी अपनी बहनके अपमानका प्रतिशोध लेने का निर्णय लिया। इधर भगवान् श्रीरामने सीताजीको अनुज्ञा दी कि वे जबतक वे राक्षसों का नाश कर रहे हैं तबतक वे अग्निमें निवास करें—

तुम पावक महँ करहु निवासा। जब लगि करउँ निशाचरनाशा॥

(मा. ३.२४.२)

सीताजीने वही किया, अग्निमें निवास कर लिया। मायाकी सीताजीने भगवान् श्रीरामकी लीलामें अग्र भूमिका निभायी। मुक्तिका प्रथम भेद है सालोक्य। पर यहाँ ऐसा क्रम नहीं रखा गया। भगवान् श्रीरामने मारीचको सामीप्य मुक्ति दी। मारीच रावणके अनुरोधपर माया-मृग बना। भगवान्‌के चरणोंके प्रति इतनी मधुर मनोरथ किये कि उन्हीं मनोरथोंके माहात्म्यसे मारीच स्वर्ण-

मृग बन गया—

मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही॥

(मा. ३.२६.८)

तेहि बन निकट दशानन गऊ। तब मारीच कपट मृग भऊ॥
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनकदेह मनिरचित बनाई॥

(मा. ३.२७.२–३)

मारीच स्वर्ण-मृग बना। माया सीता आश्रममें हैं। स्वर्ण मृगको देखकर सीताजीने श्रीरामसे उसके वध का अनुरोध किया—

सत्यसंध प्रभु बधि करि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही॥

(मा. ३.२७.६)

इसका वध कर चर्म ले आयें। अर्थात् निकटताका संकेत दिया, मारीचको आपके निकट होना चाहिये और प्रभुने वही किया। माया मृगका प्रभुने अनुधावन किया और मारीचको मारा—

तब तकि राम कठिन शर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा॥

(मा. ३.२७.१५)

मारीचने पहले लक्ष्मणजीका नाम लिया। फिर भगवान् श्रीरामका स्मरण किया—

लछिमन कर प्रथमहि लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महँ रामा॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज देही। सुमिरेसि राम सहित बैदेही॥

(मा. ३.२७.१६–१७)

भगवान् श्रीराम और सीताजीके संस्मरणके माहात्म्यसे मारीचको भगवान्‌की सामीप्य मुक्ति मिली—

बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहँ दीनबंधु रघुनाथ॥

(मा. ३.२७)

मारीच सामीप्य मुक्ति पाकर धन्य हुआ।

(२) जटायु—इधर मायाका कपट संन्यासी बनकर रावण सीताजीके पास आया। उसके अनुरोधसे सीताजी लक्ष्मणजीके द्वारा बनायी हुई धनुषकी रेखाको लांघकर बाहर आयीं और सीताजीका रावणने हरण किया। सीताजी विलाप कर रहीं थीं। कोई उनका रक्षक नहीं था। अन्ततोगत्वा, सीताजीकी रक्षा का भार जटायुने सँभाला और दायित्वपूर्ण युद्धमें रावणको कुछ क्षणोंके लिए मूर्च्छित कर दिया। एक दण्ड पर्यन्त मूर्च्छित रहने के पश्चात् रावणने जटायुके पंख काट दिये—

काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अदभुत करनी॥

(मा. ३.३१.२२)

इधर सीताजीका अन्वेषण करते हुए भगवान् श्रीराम जटायुके पास पहुँच गये। प्रभुने जटायुको क्षत-विक्षत देखा। जटायुकी धूरि प्रभुने अपनी जटाओंसे झाड़ी—

दीन मलिन अधीन हो अंग बिहंग पर्यो क्षिति खिन्न दुखारी।
राघव दीन दयालु कृपालु को देखि दुखी करुणा भई भारी॥
गीध को गोद में राखि कृपानिधि नयन सरोरुह में भरे वारी।
बार ही बार सुधारत पंख जटायु की धूर जटान सों झारी॥

जटायु मुस्कुराये। प्रभुने उनसे उनका मुस्कुरानेका कारण पूछा। जटायुने कहा—"प्रभु! जब ब्रह्माजीने मेरा नाम जटायु रखा तब मुझे आश्चर्य हुआ और हँसी आयी कि जटायु नाम का क्या तात्पर्य हो सकता है? पर प्रभु! आज जीवनके अन्तिम क्षणमें मुझे जटायु शब्दका अर्थ समझमें आ गया। जब आप परम प्रभु मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम मेरी धूलि अपनी जटाओंसे झाड़ रहे हैं और मैंने समझ लिया—*रामस्य जटायामायुः यस्य सः जटायुः*, अर्थात् रामजीकी जटाओंमें जिसकी आयु है, वह जटायु है। (काशी है न, थोड़ा वैदुष्य है।) प्रभु! मैं धन्य हो गया। आप मेरे पुत्र हैं और सीताजी पुत्रवधू। यदि आप मेरी अन्तिम इच्छा पूर्ण करना चाहते हैं तो मेरी एक ही इच्छा है। जिस रावणने मेरी पुत्रवधू सीताका केश पकड़कर अपमान किया, जिन भुजाओंसे उसने सीताजीको घसीटा, उन बीसों भुजाओंको काटकर मेरी बिरादरीको मेरा वार्षिक श्राद्धका भोजन करवाइयेगा- यही मेरी अन्तिम इच्छा है।" जटायुको भगवान्‌ने सारूप्य मुक्ति दी। जटायु गीधका शरीर छोड़कर भगवान्‌के चतुर्भुज रूपको प्राप्त कर लिये—

गीध देह तजि धरि हरिरूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा॥
श्याम गात बिशाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी॥

(मा. ३.३४.१–२)

गीधराजको सारूप्य मुक्ति मिली। प्रभुके समान रूप अर्थात् वैष्णव रूप मिला क्योंकि राम-रूप तो किसीको दिया नहीं जा सकता। अतः गीधराजको भगवान्‌ने वैष्णव रूप प्रदान कर सारूप्य मुक्ति दे दी—

अबिरल भगति माँगि वर गीध गअेउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम॥

(मा. ३.३४)

(३) कबन्ध—अब तृतीय मुक्ति भगवान् श्रीरामने कबन्धको दी। कबन्धने श्रीराम और लक्ष्मणको अपनी योजन पर्यन्त लम्बी भुजाओंमें जकड़ लिया। प्रभु श्रीरामने कबन्धकी भुजाएँ काट दीं। उसको नीचे गिराया और जला दिया—**त्वं निहत्य माहाबाहुर्ददाह स्वर्गतश्च सः** (वा.रा. १.१.५६) और उस गन्धर्वको भगवान्‌ने सालोक्य मुक्ति दे दी—

रघुपतिचरन कमल शिर नाई। गअेउ गगन आपनि गति पाई॥

(मा. ३.३६.४)

तात्पर्य यह है कि कबन्धको सालोक्य मुक्ति दे दी।

(४) शबरी—और अब भगवान् श्रीराम शबरीके पास आये। शबरीने प्रभुको निहारा और भाव-विह्वल हो गयीं। उन्हें उनका बेटा मिल गया—

शबरी देखि राम गृह आये। मुनि के बचन समुझि जिय भाये॥
श्याम गौर सुंदर दोउ भाई। शबरी परी चरन लपटाई॥

(मा. ३.३६.६, ८)

भगवान् श्रीरामके चरणोंमें शबरीजी लिपट गयीं। उन्हें अपने आश्रममें ले आयीं। अपने आँचलका आसन बनाकर प्रभुको विराजमान कराया और—

कंद मूल फल सुरस अति दिये राम कहँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाये बारंबार बखानि॥

(मा. ३.३६)

यहाँ *खाये* पदका दोनों ओर अन्वय होगा, अर्थात् **कंद मूल खाये अति सुरस फल राम कहँ आनि दिये** और **बारंबार बखानि प्रेम सहित खाये**। अर्थात् शबरीजीने चख-चखकर सुन्दर-सुन्दर स्वादयुक्त बेर भगवान्को खिलाया और प्रभुने भी बारंबार प्रशंसा करके शबरीके फल खाये। प्रभु शबरीके फल खा रहे हैं, प्रेमसे पा रहे हैं। देवता पुष्पोंकी वर्षा कर रहे हैं। इस अवस्थाका वर्णन *रामरसायन*में रसिक बिहारीजी बहुत ही मनोज्ञ काव्य-पाठ कर रहे हैं—

बेर बेर बेर लैं सराहैं बेर बेर बहु
रसिक बिहारी देत बंधु कहँ फेर फेर।
चाखि चाखि भाषैं यह वाहु ते महान मीठो
लेहुँ तौ लखन यौं बखानत हैं हेर हेर।
बेर बेर देवै बेर शबरी सुबेर बेर
तोऊ रघुबीर बेर बेर तिहि टेर टेर।
बेर जनि लावो बेर बेर जनि लावो बेर
बेर जनि लावो बेर लावो कहैं बेर बेर॥

धन्य हो गयीं शबरीजी। पूर्ण हो गया उनका अभियान और भगवान् श्रीरामने शबरीजीको सायुज्य मुक्ति दे दी, अर्थात् शबरीजी भगवान्के चरणोंमें लीन हो गयीं—**तजि जोगपावक देह हरिपद लीन भइ जहँ नहिं फिरे** (मा. ३.३८.१४)। शबरीकी परिस्थितियोंका वर्णन करते हुए संतोंने क्या ही सुन्दर दोहा लिखा है—

ब्याह न कीन्हों शबरिहू पति दर्शन नहीं कीन्ह।
शबरी पुत्रवती भयी प्रभु गोदी भरि दीन्ह॥

शबरी पुत्रवती हो गयीं। इस प्रकार शबरीजीको सायुज्य मुक्ति मिली।

(५) नारदजी—भगवान् आगे बढ़े, पम्पा सरोवरके पास आये। बैठे हैं। नारदजी आ गये। जैसा कि हम बता रहे हैं कि काशीमें रामनामकी बहुत महिमा है। **जीवन मुकुति हेतु जनु कासी** (मा. १.३१.११)। रामनामके बलपर ही शङ्करजी सबको समान रूपसे दर्शन देते हैं। नारदजीने भी कहा—"भगवन्! मेरी भी इच्छा है कि रामनाम सम्पूर्ण नामोंसे अधिक हो जाए।" मेरा तो आप लोगोंको एक सुझाव है कि रामनामका जप अधिक करना चाहिए। रामनाम मत छोड़ो। रामनामका जप करना चाहिए, बहुत लाभ होता है। नारदने कहा—"मैं एक संशयसे बंधा हुआ हूँ। आपने अपनी मायाकी प्रेरणासे मुझे मोहित किया। मैं विवाह करना चाहता था,

आपने नहीं करने दिया।" भगवान्ने कहा—"हाँ! तुम्हें बहुत कष्ट होता नारद! क्योंकि विवाह तुम वासनाके कारण कर रहे थे।" तो कहा—"भगवन्! आपने मुझे बचा तो लिया, पर मेरी हँसी बहुत उड़वायी।" भगवान्ने कहा—"जब बालक सुन्दर होता है, तो माँ उसको नजरका टीका लगा देती है। तो मैंने एक टीका लगा दिया तुमको।" तो नारदजी भी इस भ्रमसे मुक्त हुए। पाँच-पाँच लोगोंको मुक्ति दी।

॥ बोलिये भक्तवत्सल भगवान्की जय हो ॥

कथा २१: रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी (मा. १.३१.१२)

अब इक्कीसवीं कथा; बहुत अच्छी कथा है—

रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसीदास हित हिय हुलसी सी॥

(मा. १.३१.१२)

यह रामायणजीकी इक्कीसवीं कथा रामजीको तुलसीजीके समान प्रिय है। जैसे शालग्रामरूपमें प्रभु तुलसीको शीशपर धारण करते हैं, इसी प्रकार इस कथाको अपने शीशपर चढ़ा रखा है। यह कथा है हनुमान्जीके मिलनकी कथा। बोलिये वीर बजरंग बलीकी जय हो!

आज शनिवार है महावीर का वार है।
ऐसे श्रीहनुमानजी को बार-बार नमस्कार है॥
आज शनिवार है महावीर का वार है।
ऐसे श्रीहनुमानजी को बार-बार नमस्कार है॥

अद्भुत आनन्द हो रहा है! **रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी** (मा. १.३१.१२)। रामजी आगे चल रहे हैं—

आगे चले बहुरि रघुराया। ऋष्यमूक पर्बत नियराया॥

(मा. ४.१.१)

रामचन्द्रजी आगे चल रहे हैं। राघवजी और लक्ष्मणजीको देखकर सुग्रीवजी डरे। सुग्रीवजीने कहा—"ये हमको मारने आ रहे हैं क्या? हनुमान्जी आप पता लगाइये।" अब हनुमान्जी आ रहे हैं। बहुत अच्छा लगेगा! यह कथा रामजीको बहुत प्रिय है, जैसे तुलसी मैया शालग्रामको प्रिय हैं। हनुमान्जी आये, प्रणाम किया, पाँच प्रश्न किये हनुमान्जीने—

(१) **को तुम श्यामल गौर शरीरा, छत्री रूप फिरहु बन बीरा** (मा. ४.१.७)—आप दोनों श्यामल, गौर शरीर वाले कौन हैं जो क्षत्रिय रूपमें इस वनमें भ्रमण कर रहे हैं?

(२) **कठिन भूमि कोमल पद गामी, कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी** (मा. ४.१.८)—इस कठिन भूमिपर कोमल चरणोंसे चलने वाले आप दोनों किस कारणसे वनमें विचरण कर रहे हैं?

(३) **मृदुल मनोहर सुंदर गाता, सहत दुसह बन आतप बाता, की तुम तीनि देव महँ कोऊ** (मा. ४.१.९–१०)—आप दोनों वनमें असहनीय धूप और कठोर वायु सहन कर रहे हैं। क्या आप दोनों ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक तीनों देवोंमेंसे कोई हैं?

(४) **नर नारायण की तुम दोऊ** (मा. ४.१.१०)—क्या आप दोनों नर-नारायण हैं?

(५) **जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार, की तुम अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार** (मा. ४.१)—क्या भगवान् श्रीराम हैं, जिन्होंने जीवोंको भवसागरसे तारनेके लिए और पृथ्वीका भार हरण करनेके लिए श्रीअवधमें मनुष्य रूपमें अवतार लिया है?

रामजीने बताया—

कोसलेश दशरथ के जाये। हम पितु बचन मानि बन आये॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई॥
इहाँ हरी निशिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥

(मा. ४.२.२–४)

यहाँ सीताजीको एक राक्षसने चुरा लिया है, हम ढूँढ रहे हैं। भगवान्ने बताया कि देखो! यहाँ हम चार लोगोंको ढूँढ रहे हैं—(१.व २.) **हरी**—*हरिः हरी हरयः*। *हरिम् हरी हरीन्*। **हरी**—द्विवचन है, अर्थात् यहाँ हम दो वानरोंको ढूँढ रहे हैं; दो हरि माने—(क) सुग्रीव और (ख) हनुमान् (३) **निशिचर**—एक राक्षस विभीषणको ढूँढ रहे हैं, (४) **बैदेही**—सीताजीको ढूँढ रहे हैं।

आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई॥

(मा. ४.२.५)

हनुमान्जीने कहा—"मैंने आपको पहचान लिया।"

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥

(मा. ४.२.६)

चरणपर पड़ गये। **रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी** (मा. १.३१.१२) तुलसीजी भी भगवान्के चरणपर पड़ती हैं, हनुमान्जी भी पड़ गये। भगवान्ने हृदयसे लगा लिया—**तब रघुपति उठाइ उर लावा** (मा. ४.३.६)। हनुमान्जी प्रकट हो गये और कहा—भगवन्! आप सुग्रीवसे मित्रता कर लीजिये—**तेहि सन नाथ मयत्री कीजै** (मा. ४.४.३)। आनन्द कर दिया! **रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी** तुलसी शालग्रामजीके सिरपर बैठती हैं, पर यहाँ थोड़ा अन्तर है। इस कथामें हनुमान्जी रामजीके सिरपर नहीं बैठ रहे हैं, बल्कि रामजीको ही हनुमान्जी अपनी पीठपर बैठा रहे हैं—

येहि विधि सकल कथा समुझाई। लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई॥

(मा. ४.४.५)

आहाहाहाहा! हनुमान्जी ला रहे हैं। **रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी** (मा. १.३१.१२)। क्यों? आज हनुमान्जीने सुग्रीवजीकी रामजीसे मित्रता करायी—**तब हनुमंत उभय दिशि कै सब कथा सुनाइ** (मा. ४.४)। एक बात और! मित्रता आपने बहुत देखी होंगी, पर ऐसी मित्रता कभी नहीं देखी होगी। अग्निको साक्षी देकर मित्रता करना! यह तो पति और पत्नीका जैसे वैदिक विवाह होता है, अग्निके फेरे दिये जाते हैं, इसी प्रकार—**पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाई** (मा. ४.४)। हनुमान्जी मन्त्र बोल रहे हैं—"तुम दोनों जने अग्निकी परिक्रमा करो।" "क्यों करें?" "सीताजी अग्निमें निवास कर रही हैं। और सुग्रीव! तुम्हारी और रामजीकी मित्रतामें सीताजी साक्षी रहेंगी।" मन्त्र पढ़ा—

ॐ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥

(ऋ.वे. १.१६४.२०)

आनन्द कर दिया भगवान्ने—**पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाई** (मा. ४.४)। गद्गद हो गया पूरा वातावरण! धन्य धन्य हो गया!! दोनों जने परिक्रमा कर रहे हैं, हनुमान्जी मन्त्र पढ़ रहे हैं; जय-जयकार हो रही है। बोलिये भक्तवत्सल भगवान्की जय! **चकार सख्यं रामेण प्रीतश्चैवाग्निसाक्षिकम्** (वा.रा. १.१.६१)। इस प्रकार—**रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी** (मा. १.३१.१२)।

कथा २२: तुलसीदास हित हिय हुलसी सी (मा. १.३१.१२)

अब बाईसवीं कथा—**तुलसीदास हित हिय हुलसी सी** (मा. १.३१.१२)। देखिये! गोस्वामीजी कह रहे हैं कि मेरे हृदयके हितके लिए तो यह कथा मेरी माता हुलसीके समान है। रामायणमें एक ही बार अपनी माताजीका नाम लिया गोस्वामीजीने बालकाण्डके ३१वें दोहेकी बारहवीं पङ्क्तिमें। बोलिये हुलसीहर्षवर्धन तुलसीदास महाराजकी जय हो!

भगवान् रामकी मित्रता हो गयी। सुग्रीवने रघुनाथजीको पूरी बात बतायी। रामचन्द्रजी अब पक्ष ले रहे हैं सुग्रीवका। तुलसीदासजी कह रहे हैं कि इसी प्रकार रामचन्द्रजीने मेरा भी पक्ष लिया है, अतः—**तुलसीदास हित हिय हुलसी सी**। यहाँ एक बात बहुत आवश्यक है। आप सभी जानते हैं कि मेरा स्वभाव है कुछ नया सोचनेका। पुराना सब कुछ ठीक ही है—ऐसा मैं कभी नहीं मानता। अतः कुछ नया सोचनेका मेरा अभ्यास पहलेसे है। और इतना समझानेके पश्चात् भी धारावाहिक (serial) वाले मूर्ख अपने ही मनकी करते हैं। मैंने बारम्बार कहा कि सीताजीका दूसरा वनवास नहीं हुआ था। फिर भी मूर्ख लोग धारावाहिक (serial) में दिखा देते हैं, तो इन लोगोंको दण्ड भी मिलता है। मैंने कहा है कि रामजीने बालिको छिपकर नहीं मारा, यही मेरा पक्ष है। आप रामलीलामें भी देखते होंगे कि रामजी छिपकर मार रहे हैं। और अब गाँठ बाँध लीजिये कि रामजीने बालिको छिपकर नहीं मारा। क्यों छिपकर मारेंगे? बताइये, क्यों मारेंगे? तो लोग कहते हैं कि बालिको वरदान था कि जो भी सामने आयेगा शत्रु, उसका आधा बल बालिको मिल जायेगा। पहली बात, यह वरदान बालिको नहीं था। हमने किसी पुराणमें नहीं देखा, लोग झूठ बोलते हैं। यदि मान लो इन्हींकी बात तो भी यह रामजीपर नहीं घटेगा क्योंकि आप आधा किसका कर सकते हैं? जिसके पूरेका हमको आपको ज्ञान हो। अब रामजीके बलका तो हमको ज्ञान ही नहीं—**बलमप्रमेयमनादिमजमब्यक्तमेकमगोचरम्** (मा. ३.३४.४) अमित बल! तो जब हमको ज्ञान ही नहीं है कि कितना लीटर है, कितना मीटर है, कितना किलोग्राम है, तो उसका आधा करेंगे कैसे? बताइये? इसलिए झूठ बोलते हैं लोग। रामजीने बालिको छिपकर नहीं मारा। बालिने रामजीको ललकारा था। सुग्रीवको नीचे गिरा दिया और छातीपर चढ़ गया, तो कहा कि बताओ सुग्रीव! जो तुम्हारा रक्षक हो, अब वो आ जाय। तब रामजी आ गये—

पुनि नाना विधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई॥

(मा. ४.८.८)

तस्य ज्यातलघोषेण त्रस्ताः पत्ररथेश्वराः (वा.रा. ४.१६.३४)। भगवान्‌ने धनुषकी टंकार की। सभी पक्षी डर गये, मृग डर गये। रामजीने बालिसे आँखें मिलायीं। बालिकी दशरथजीके समान अवस्था देख कहा—"काका! राम! राम!!" रामजीने काका कहा। बालिने कहा—"युद्ध करिये।" रामजीने कहा—"देखिये! क्या आपसे युद्ध करूँ? आपको जितना अस्त्र-शस्त्र छोड़ते बने, सब मुझपर छोड़ दीजिये। यदि मैं सबका प्रतिकार कर सका तब तो ठीक है, नहीं तो आप मुझे मार डालियेगा।" बालिने रामजीपर बहुत अस्त्र-शस्त्र छोड़े—**क्षिप्रमान् वृक्षान् समाविध्य विपुलाश्च शिलास्तथा** (वा.रा. ४.१९.१२)। बड़े-बड़े वृक्ष छोड़े, सब रामजीने काट दिए बाणोंसे। बड़ी-बड़ी शिलाएँ फेंकीं, सब रामजीने काट दीं। रामजीने कहा—"काका! हे काका! अबतक आपने अस्त्र-शस्त्र छोड़े हैं। अब मेरे केवल एक बाणका प्रहार सह लीजिये, मैं दूसरा नहीं मारूँगा। यदि मेरे एक प्रहारमें आप मर गये, तब तो कोई बात नहीं। नहीं तो महादेव की शपथ! मैं आपपर दूसरा बाण नहीं छोड़ूँगा। एक ही बाण छोड़ूँगा बस!" **बालि एक शर मारेउ** (मा. ६.३६)—एक ही बाण खींचकर मारा रामचन्द्रजीने और बालि धड़ामसे मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। बालिने कहा—"आपने मुझे व्याधकी भाँति निर्दयतासे मारा।" भगवान्‌ने कहा—"यह क्या? मारनेमें कोई निर्दयता और दयाका प्रश्न होता है क्या? तुम जब मुझे मार रहे थे, तो तुमने कोई दया की थी क्या? जब तुमने मुझे अपना भतीजा नहीं माना, तो मैं तुम्हें काका क्यों मानूँ? तब रामजीने कहा—

अनुजबधू भगिनी सुतनारी। सुनु शठ कन्या सम ए चारी॥
इनहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥

(मा. ४.९.७–८)

भगवान्‌ने कहा—हे काका!—"(१) **अनुजबधू**—छोटे भाईकी पत्नी, (२) **भगिनी**—बहिन, (३) **सुतनारी**—पुत्रकी पत्नी और (४) **भगिनी सुतनारी**—श्लेष में बहिनके पुत्रकी पत्नी माने भांजेकी बहू। अब गिनिये! हो गये न चार! ये चार कन्याके समान होती हैं। छोटे भाई की पत्नी, बहिन, पुत्रवधू और भांजेकी की बहू—इनको जो बुरी दृष्टिसे देख लेता है, उसको मारनेमें कोई भी पाप नहीं लगता। और तुमने तो जो किया वो जानते ही हो, कितना अनर्थ हो गया?" भगवान्‌ने कहा—"बालि! इन्हीं चार अपराधोंके कारण मैं रावणको भी मारूँगा।" बालिने कहा—"क्यों मारोगे?" भगवान्‌ने कहा—"(१) **अनुजबधू**—राजाकी दृष्टिसे रावण मेरा बड़ा भाई है। मैं छोटा भाई हूँ, तो सीताजी अनुज वधू भी हैं, (२) **भगिनी**—दूसरी दृष्टिसे सीताजी रावणकी छोटी बहिन के समान हैं, (३) **सुतनारी**—तीसरी दृष्टिसे मैं अवस्थामें रावणके बेटेके समान हूँ, तो सीताजी रावणकी पुत्रवधूके समान हैं, और (४) **भगिनी सुतनारी**—चौथी दृष्टिसे कौशल्याजी रावणकी बहिनके समान हैं और उनके पुत्रकी (मेरी) पत्नी हैं सीताजी, तो भांजेकी बहूके समान हैं। सीताजीको रावण हर कर लाया है। तो तुमको भी दण्ड दिया, अब तुम्हारे मित्र रावणको भी प्रसाद देना मेरे लिए अनिवार्य हो गया है। बेटा! चिन्ता मत करो।" अन्तमें बालिने कहा—"एक बार मेरी ओर देख लीजिये।"

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो वर माँगऊँ।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्मबश तहँ रामपद अनुरागऊँ॥

(मा. ४.१०.७)

बालिने शरीर छोड़ा और इधर भगवान्‌ने आज्ञा दी सुग्रीवको; उसका दाह संस्कार करनेकी। लक्ष्मणजीसे कहा—जाओ! सुग्रीवको राजा बनाओ!—

लछिमन तुरत बुलाये पुरजन बिप्रसमाज।
राज दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज॥

(मा. ४.११)

अङ्गदको भगवान्‌ने युवराज बनाया।

उमा राम सम हित जग माहीं। सुत पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

(मा. ४.१२.१)

भगवान्‌ने सुग्रीवसे कहा—"तुम अपने नगर जाओ, मैं अब प्रवर्षण पर्वतपर जाऊँगा।" **तुलसीदास हित हिय हुलसी सी** (मा. १.३१.१२)।

कथा २३: शिवप्रिय मेकल शैल सुता सी (मा. १.३१.१३)

अब **शिवप्रिय मेकल शैल सुता सी** (मा. १.३१.१३)—यह तेईसवीं कथा है रामायणजीकी। शिवजीको इतनी प्रिय है यह कथा, जितनी मेकल पर्वतकी पुत्री नर्मदाजी। नर्मदाजी शिवजीको बहुत प्रिय हैं। नर्मदामें शिवजी डूबे रहते हैं। माता मानते हैं। और, नर्मदाके प्रत्येक पत्थरमें शिवजीका निवास होता है। इतने डूबे रहते हैं शिवजी नर्मदामें। इसी प्रकार इस कथामें भी शिवजी बहुत मग्न रहते हैं। रामजी चातुर्मास कर रहे हैं। पूरा वर्णन किया, चार दोहोंमें वर्णन है—**वरनन बर्षा शरद अरु ...** (मा. ७.६६)। वर्षा ऋतु और शरद्‌का वर्णन। **बरषा बिगत शरद ऋतु आई** (मा. ४.१६.१)। वर्षा, शरद्‌के पश्चात् रामजीने कहा—"लक्ष्मण! शरद् ऋतु आ गयी, सीताजीका समाचार नहीं मिला।" जैसे नर्मदामें धारा; भगवान् रामके क्रोधकी धारा देखिये! "सुग्रीव भी मेरी सुध भूल गये लक्ष्मण!"

जेहिं सायक मारा मैं बालि। तेहिं शर हतउँ मूढ़ कहँ काली॥

(मा. ४.१८.५)

यह पङ्क्ति बहुत मार्मिक है और आजतक लोग इसका अर्थ नहीं लगा पाये हैं। साधारण अर्थ यह है कि रामजी कहते हैं कि जिस बाण से मैंने बालिको मारा, कल उसी बाणसे मूर्ख सुग्रीवको मारूँगा! पर आप बताइये कि क्या यह उचित है? क्या मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम ऐसा कर सकते हैं? जब रामजीने अग्निको साक्षी करके मित्रता की है, क्या भगवान् राम उसको मारने की बात करेंगे? और यदि नहीं करेंगे तो इस पङ्क्ति का अर्थ कैसे लगेगा? **तेहि शर हतौं मूढ़ कहँ काली**। इस पङ्क्ति का अर्थ लगानेमें सारे टीकाकार मौन हैं, पर मेरा यहाँ बड़ा मधुर निवेदन है कि हमारे यहाँ व्याकरण में *क्त* प्रत्यय तीन अर्थों में होता है—(१) कर्तामें, (२) कर्ममें और (३) भावमें। यहाँ **मूढ़** शब्दमें *क्त* प्रत्यय भाव में हुआ है। यहाँ **मूढ़**का अर्थ है—मूढता,

जैसे *हसित* माने हँसना, उसी प्रकार *मूढ* माने मोह। भगवान् राम कह रहे हैं—"लक्ष्मण! जिस बाणसे मैंने बालिको मारा, यदि कल सुग्रीव नहीं आते तो उसी बाणसे सुग्रीवके हृदयमें बैठे हुए मोहको मार डालूँगा, सुग्रीव को नहीं मारूँगा।" यहाँ *क्त* प्रत्यय भाव अर्थ में है—**नपुंसके भावे क्तः** (पा.सू. ३.३.११४)। लोग कहते हैं कि संस्कृत की आवश्यकता नहीं है, बिना संस्कृत के रामचरितमानस का अर्थ लगेगा कैसे? रामजीके बाण कौन हैं?—हनुमान्जी। तुरन्त हनुमान्जी सक्रिय हो गये—

इहाँ पवनसुत हृदय बिचारा। रामकाज सुग्रीव बिसारा॥

(मा. ४.१९.१)

नर्मदाके स्मरणसे सर्प नष्ट हो जाता है—**त्राहि मां सर्पसंकटात्**। और यह कथा सुग्रीवके मनमें जो कामरूप सर्प है—**काम-भुजंग डसत जब जाहीं, बिषय-नींब कटु लगत न ताहीं** (वि.प. १२७.३), उसका नाश करती है।

लक्ष्मणजीने धनुष-बाण उठा लिए—"अभी जाता हूँ सुग्रीवके पास।" भगवान्ने कहा—"उनको मारियेगा नहीं, भय दिखाकर ले आइये! मेरे मित्र हैं वे।" इधर हनुमान्जी आकर सुग्रीवजीको समझाये। सुग्रीवजी भयभीत हुए, और कहा—"हनुमान्जी! अब क्या होगा?" "ठीक है! करता हूँ समाधान।" सभी दूत भेजकर वानरोंको बुलवा लिया। इधर लक्ष्मणजी आ गये नगरमें बोले—"नगरको जला दूँगा।" अङ्गदजी आये, अङ्गदजीसे कुछ नहीं बोले लक्ष्मणजी। सुग्रीवजीने कहा—"हनुमान्जी! आप जाइये, ताराजीको साथ ले जाइये।" ताराजीको साथ ले गये।

देखिये! जो लोग दुष्ट होते हैं न, सर्वत्र उन्हें दुष्टता ही दिखती है। जो जिस प्रकृतिका होता है, उसको उसी प्रकारके भाव दिखते हैं। जो विषयके कीड़े हैं (कामी लोग), उनको सर्वत्र यही दिखता है। लोग सुग्रीव, विभीषणको कामी मानते हैं। इसपर मेरा एक ग्रन्थ है, देखिये—*सुग्रीव की कुचाल और विभीषण की करतूत*। सुग्रीवजीने ताराजीको कभी अपनी भोग्या नहीं बनाया और न ही विभीषणजीने मन्दोदरीको अपनी भोग्या बनाया। ध्यान रखिये, ये सब छिछली बातें हैं। जो रामजीके भक्त हैं, ऐसी गलती करेंगे? और **तारा** साक्षात्—सीताजीके नामके अन्तिम **ता** और रामके नामका प्रारम्भ **रा**—तारा हैं। इस प्रकार जो कहते हैं, मेरा बस चले तो मैं क्या करूँ उनको? आप लोग बताइये। यदि ताराजी दूषित होतीं, तो हनुमान्जीके साथ लक्ष्मणजीके पास जातीं?—

तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बंदि प्रभु सुजश बखाना॥

(मा. ४.२०.४)

प्रतिदिन चौपाई पढ़ा कीजिये रामायणजीकी! हनुमान्जी तो इतने कठोर हैं! इसलिए मैं कहता हूँ कि मन्दिरमें कोई महिला उन्हें छुये नहीं। कहा जाता है कि यदि मन्दिरमें कोई महिला हनुमान्जीके विग्रहको छू दे तो २१ दिनतक वे कुछ भी नहीं लेते—जलपान भी नहीं। इसलिए नहीं छूना चाहिए। तो ताराके साथ कैसे जाते हनुमान्जी? और यदि सुग्रीवजीका पलंग दूषित होता तो लक्ष्मणजीको सुग्रीवजीके पलंगपर बिठाया जाता क्या?—

करि बिनती मंदिर लइ आये। चरन पखारि पलँग बैठाये॥

(मा. ४.२०.५)

जो कहे, उसको थुथुरो। जो कुछ होगा, होगा। पुरुष कहे तो पुरुष लोग चाँटा मारो और महिला कहे तो हमारी महिलाएँ पर्याप्त हैं, थुथुर दें। अरे! रामजीके भक्त ऐसी गलती करेंगे?

लक्ष्मणजीको समझाया। लक्ष्मणजी सुग्रीवजीको साथ लेकर रामजीके पास आये। इस कथामें इतने डूबते हैं शिवजी, मैंने बताया न कि जैसे नर्मदामें डूबते हैं। कह रहे हैं—"हे पार्वतीजी! वानरोंकी १८ पद्म सेनाको मैंने देखा—"

बानरकटक उमा मैं देखा। सो मूरख जो करन चहै लेखा॥

(मा. ४.२२.१)

इतने डूबते हैं शिवजी। वह मूर्ख है, जो इनका लेखा कर ले। कितने हैं? १८ पद्म तो रावणके मन्त्रीने कहा। ये अनन्त हैं और इनको देखकर भगवान् रामने अनन्त रूप बना लिये—**अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तमूर्तिम्** (भा.पु. १०.४०.७)। प्रत्येक वानरसे मिले, सबसे समाचार पूछा। सब लोग चल पड़े। हनुमान्‌जीको रामजीने निकट बुलाया—

पाछे पवनतनय सिर नावा। जानि काज प्रभु निकट बुलावा॥

(मा. ४.२३.९)

कहा—हो महावीर! हे महावीर!! अरे! तनि हेन्ने आवा!!!

अंजनी के बारे हो दुलारे पवन देवता के।
सुन महावीर बलवान तनि हेन्ने आवा॥
तुहइ बिटवा होईजा हमरी लाज के बचैया हो।
अंजनी के नन्दन सुजान तनि हेन्ने आवा॥ सुन महावीर ...
कंचन बरन चमके पियरि शरीरिया।
इन्द्रधनुष जैसे लपकी ललकी लंगुरिया।
तोहे बबुआ होइ जा सीता प्राण के रखैया हो।
संकट मोचन हनुमान तनि हेन्ने आवा॥ सुन महावीर ...

देखिये अब! प्रभुने हनुमान्‌जीको मुद्रिका दी—

परसा शीष सरोरुह पानी। करमुद्रिका दीन्ह जन जानी॥

(मा. ४.२३.१०)

हनुमान्‌जी महाराज चल पड़े, मुद्रिकाको मुखमें ले लिया। **शिवप्रिय मेकल शैल सुता सी** (मा. १.३१.१३)—जैसे नर्मदामें शालग्रामकी शिला डूबी रहती है, उसी प्रकार हनुमान्‌जीने मुखमें मुद्रिका भर ली है। गुफामें आये, स्वयंप्रभाने सबको फल खिलाये, कहा—"आँख बंद कर लो! चले जाओगे।" आँख बंद कीं, माता स्वयंप्रभाजीने सबको तपोबलसे सागरके तटपर भेज दिया। सन्तजन तो कहते हैं कि यही स्वयंप्रभा रामजीसे विवाह करना चाहती हैं। रामजीने कहा—"अभी विवाह नहीं करूँगा, एकनारीव्रत हूँ। आप चलिये, जम्मूमें पर्वतपर वैष्णो देवी बनकर तपस्या करिये! कलियुगमें जब कल्कि अवतार होगा, तब आप पद्मावती बनकर मेरी पत्नी बन जाइयेगा। वहीं वैष्णो देवी हैं, ये जम्मूवाली वैष्णो देवी!" इतनी शुद्ध यही एक देवी

हैं, जहाँ बिल्कुल शुद्ध वैष्णव! जहाँ मदिरा-मांसका कोई प्रयोग होता नहीं। शुद्ध वैष्णो देवी!

तो वानर चिन्तित हैं कि क्या किया जाए?—

इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं॥

(मा. ४.२६.१)

वानर आमरण अनशनपर बैठे हैं। सम्पातीने कहा—"ये सब मरेंगे, सबको खा जाऊँगा मैं।" अङ्गदने कहा—अरे! तुम हमारी मृत्यु मना रहे हो? धन्य थे जटायु! जिन्होंने रामजीके कार्यमें अपना शरीर छोड़ दिया—

कह अंगद बिचारि मन माहीं। धन्य जटायू सम कोउ नाहीं॥
रामकाज कारन तनु त्यागी। हरि पुर गऎउ परम बड़भागी॥

(मा. ४.२७.७–८)

सम्पातीने कहा—"कौन हो भाई, जो मेरे भाई का नाम ले रहे हो?" आया सम्पाती, सबने अपना परिचय बताया। "अरे! ठीक है। मुझे ले चलो सागर तटपर, मैं अपने भाईका श्राद्ध कर लूँ। फिर बताता हूँ।" जटायुजीका श्राद्ध किया। रामजी पहले कर ही चुके हैं, अब फिर। कहा—"यह देखो त्रिकूट पर्वतके ऊपर लङ्का! वहीं अशोक वाटिका है। वहाँ सीताजी बैठकर चिन्ता कर रही हैं। पर उनको वही देख सकता है, जो एक छलांगमें सागर को लाँघ जाए।"

तब सबने अपना-अपना मन बता दिया, पर पार जानेके लिए संशय बना रहा—१०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९०तक। अङ्गदने कहा—"१०० योजन जा सकता हूँ, पर आनेमें संदेह है।" जाम्बवन्तजीने कहा—"यही काम कर सकते हैं, इन्होंने अपना व्रत नहीं तोड़ा।" तब हनुमान्‌जीको ललकारा—अञ्जनानन्दवर्धन! क्या कर रहे हो?—

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना॥
पवनतनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम पाहीं॥

(मा. ४.३०.३–५)

तुम स्वयंको भूल गये? हे अञ्जनानन्दवर्धन! आप शङ्करजी हैं, आपका अवतार रामजीके कार्यके लिए हुआ है—

राम काज लगि तव अवतारा। सुनि कपि भयउ पर्बताकारा॥

(मा. ४.३०.६)

हनुमान्‌जी....

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनुमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिस्तु प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः॥

अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्॥

(वा.रा. ५.४१.६–९)

रावणको मसल दूँगा, आज्ञा हो जाए! **अयुतं योजनानां तु गमिष्यामीति मे मतिः** (वा.रा. ४.६६.२४) इसी वेगसे मैं दस हजार योजन जा सकता हूँ। मसल दूँगा रावणको। सहायकोंके सहित रावणको मारकर त्रिकूटको उखाड कर यहाँ लाऊँगा, चूर कर दूँगा पर्वतोंको, नोंच दूँगा मेघमालाको, सागरको सोख लूँगा। आज्ञा हो जाए।

इतना करहु तात तुम जाई। सीतहिं देखि कहहु सुधि आई॥

(मा. ४.३०.११)

जैसे नर्मदाका वेग होता है, उसी प्रकार इस कथामें हनुमान्‌जीका वेग—हर हर हर हर। आनन्द हो रहा है! **शिवप्रिय मेकल शैल सुता सी** (मा. १.३१.१३)।

कथा २४: सकल सिद्धि (मा. १.३१.१३)

देखिये! अब हम सुन्दरकाण्डकी चर्चा कर रहे हैं—**सकल सिद्धि सुख संपति रासी** (मा. १.३१.१३)। सुन्दरकाण्डमें तीन कथाएँ हैं—२४वीं, २५वीं और २६वीं। पूर्वमें सुन्दरकाण्डके प्रारम्भसे लेकर ३२तक—**सकल सिद्धि ...** (मा. १.३१.१३)। सुन्दरकाण्डमें प्रथम चरित्र हनुमान्‌जीका है और इस चरित्रमें आठ सिद्धियोंका वर्णन है। और आप जानते ही हैं कि सुन्दरकाण्डमें आठ बार **सुंदर** शब्दका प्रयोग भी हुआ है। आज एक महिलाको मैंने देखा। वे सुन्दरकाण्डका अर्थ पढ़ती थीं, चौपाई नहीं। मैंने कहा—“नहीं! नहीं!! अर्थ पढ़ो या न पढ़ो, सुन्दरकाण्डकी चौपाइयोंको पढ़नेसे सारे काम बन जायेंगे। कोई काम बिगड़ ही नहीं सकता सुन्दरकाण्ड पढ़नेसे।” प्रतिदिन सुन्दरकाण्डका पाठ करना चाहिए। इसमें हनुमान्‌जीके आठ चरित्र हैं—

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि॥

(मा. ५ म.श्लो. ३)

आठ चरित्र हैं हनुमान्‌जीके! अब आइये, देखिये हनुमान्‌जीकी आठों सिद्धियोंका प्रयोग! आठ सिद्धियाँ बतायी जाती हैं—

अणिमा गरिमा चैव महिमा लघिमा तथा।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्ट सिद्धयः॥

(अ.को. १.१.३५क)

अर्थात् (१) अणिमा, (२) गरिमा, (३) महिमा, (४) लघिमा, (५) प्राप्ति, (६) प्राकाम्य, (७) ईशित्व, (८) वशित्व। हनुमान्‌जी आठों सिद्धियोंका आज प्रयोग करेंगे क्योंकि—

अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता। अस वर दीन्ह जानकी माता॥

(ह.चा. ३१)

(१) **अणिमा**—अणिमा अर्थात् हल्कापन। हनुमान्‌जी महाराज इतने हल्के हैं कि कूदकर चढ़ गये—

सिंधु तीर ऐक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर॥
बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी॥

(मा. ५.१.५–६)

(२) **महिमा**—इतने महान कि—

जेहिं गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ सो गा पाताल तुरंता॥

(मा. ५.१.७)

इतने भारी हैं हनुमान्‌जी कि जिस पर्वतपर चरण देकर चले, वह तुरन्त पाताल चला गया।

(३) **लघिमा**—अब लघिमा देखिये—

जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना॥

(मा. ५.१.८)

सर्रसे आगे चले। मैनाकने रोका। हनुमान्‌जीने कहा—**राम काज कीन्हे बिनु मोहि कहाँ बिश्राम** (मा. ५.१)। सुरसाने कहा—"मैं तुम्हें खाऊँगी।" हनुमान्‌जीने कहा—"रामजीका काम कर लूँ, फिर खा लेना।" सुरसाने कहा—"नहीं! मेरे पास कहाँ समय है? मैं अभी खाऊँगी।" हनुमान्‌जीने कहा—"अच्छा! खाओ फिर!" अब महिमा फिर देखिये! उसने एक योजनका मुँह फैलाया, हनुमान्‌जीने दो योजन कर दिया। जैसे-जैसे उसने सोलह योजनका किया, हनुमान्‌जी बत्तीस योजनके बन गये। पूरा करते-करते अन्तमें उसने सौ योजनका मुख बनाया—**शत जोजन तेहिं आनन कीन्हा** (मा. ५.२.१०)। अब हनुमान्‌जीने लघिमा सिद्धिका प्रयोग किया—**अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा** (मा. ५.२.१०)। आनन्द कर दिया! अणिमासे चढ़े और महिमासे बिल्कुल चल पड़े, पातालमें पर्वतको भेज दिया और महिमाके ही बलपर भिन्न-भिन्न रूप बनाते गये—सौ योजनका मुँह। तब **अति लघु रूप** (मा. ५.२.१०) लघिमा हो गयी। अब मुखसे बाहर आ गये और सुरसासे आशीर्वाद लिया।

निशिचरि एक सिंधु महँ रहई। करि माया नभ के खग गहई॥

(मा. ५.३.१)

अभी लघिमा ही चल रही है। इतने लघु कि सिंहिकाके पेटमें चले गये और भीतर जाकर नाखूनसे सिंहिकाको फाड़कर फेंक दिया।

शैल बिशाल देखि एक आगे। तापर कूदि चढ़ेउ भय त्यागे॥

(मा. ५.३.८)

चढ़ गये और देखा रावणका विशाल वैभव! अभी लघिमा ही चल रही है—

पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निशि नगर करौं पैसार॥

(मा. ५.३)

छोटा-सा रूप बनाया—**मशक समान रूप कपि धरी** (मा. ५.४.१)। लङ्किनी रोक रही है—"ऐ! कहाँ जा रहा है? मेरा मर्म नहीं जानता? लङ्काके चोरोंको खाती हूँ मैं।" हनुमान्‌जीने

कहा—"चबौनो! यदि लङ्काके चोर खाती हो तो सबसे बड़ा चोर तो रावण है। उसे क्यों नहीं खा लिया?"

(४) **गरिमा**—इतने गुरु कि **मुठिका एक ताहि कपि हनी** (मा. ५.४.४)। एक मुक्का खींचकर लगाया तो चक्कर आ गया लङ्किनी महारानीको, खूनकी धारा बह चली। अब बोली—

तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥

(मा. ५.४.८)

(५) **प्राप्ति**—

अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥

(मा. ५.५.४)

नगरमें प्रवेश किया। सर्वत्र ढूँढ रहे हैं, सीताजी नहीं मिल रही हैं। क्या करें अब? **मंदिर मंदिर प्रति करि शोधा** (मा. ५.५.५)—सोचा कि मन्दिरमें होंगी सीताजी! प्रत्येक मन्दिरको ढूँढा। रावणके महलके पास मन्दिर बना था। वहाँ देखा तो रावण था, आया तो था महाकालकी पूजा करने और शराब पीकर सो गया था वहीं। तब अन्तमें एक वैष्णव मन्दिर दिखा, जहाँ धनुष-बाण चिह्नित थे, तुलसीके बिरवे लगे थे। "अरे! यहाँ तो ठीक है! यहाँ सीताजी अवश्य मिल जायेंगीं। यदि नहीं मिलेंगीं, तो कोई न कोई पता तो मिलेगा।" अन्तमें विभीषण जगे, राम राम राम राम कहा। "अरे! ये तो वैष्णव हैं! अब तो मेरा काम बना बनाया है।" हनुमान्‌जीने ब्राह्मणका रूप बनाया और बुलाया—"सीताराम!" हम लोग बुलाते हैं—"ऐ! सीताराम!" तो लोग आ जाते हैं। अभी यह परम्परा रामानन्द सम्प्रदायमें है। गुरुजनोंकी बात अभी भी शिष्य लोग मानते हैं। तो हनुमान्‌जीने बुलाया और विभीषण बाहर आ गये। विभीषणने कहा—"अच्छा! भगवन् आप हैं कौन? आप कोई न कोई भगवान्‌के भक्त हैं क्योंकि आपको देखकर मेरे मनमें रामजीका प्रेम बढ़ता जा रहा है—"

की तुम हरि दासन महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम राम दीन अनुरागी। आऍहु मोहि करन बड़भागी॥

(मा. ५.६.७–८)

तब हनुमान्‌जीने सम्पूर्ण रामकथा सुनायी। कितना सुन्दर विषय है! सोचो! चार बज रहे हैं प्रात:के। किसीने मुँह भी नहीं धोया है। विभीषण भी जग गये हैं। रामनामसे पवित्र हो गये हैं, स्नानकी कोई आवश्यकता नहीं। सम्पूर्ण रामकथा वहीं सुनायी हनुमान्‌जीने। गद्गद हो गये विभीषणजी—**सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम** (मा. ५.६)। **जुगल** माने—(१) रामकथा भी सुनी और (२) कथावाचकका नाम भी सुना। तो विभीषणजीने कहा—"यह बताइये हनुमान्‌जी! क्या मुझपर रामजी कृपा करेंगे?" हनुमान्‌जीने कहा—"रे पागल! कृपा न करते, तो कैसे दर्शन देनेकी व्यवस्था करते?" विभीषणने कहा—"अरे! मैं ही अपना वाक्य वापस ले रहा हूँ, लौटा रहा हूँ। कृपा की, तभी तो आपने मुझे दर्शन दिया है।" दोनोंकी चर्चा चलती रही। **पुनि सब कथा बिभीषन कही** (मा. ५.८.३)—हनुमान्‌जीने रामजीकी कथा सुनायी तो विभीषणजीने सीताजीकी कथा सुनायी। दोनों कथावाचक मिल गये और दोनोंने एक संधि कर ली। हनुमान्‌जीने कहा—विभीषण! अभी मैं भी अधूरा हूँ और तुम भी अधूरे हो।

तनक हमहु अधूरे तनक तुमहु अधूरे। आज दोनों बनै पूरे पूरे॥
बिना माता के हमारे नैन बरसते रहे।
बिना पिता के तुम्हारे नैन तरसते रहे।
तनक हमहु अधूरे तनक तुमहु अधूरे। आज दोनों बनै पूरे पूरे॥
तुम तो माताजी के दर्शन करा दो हमें।
मैं तो पिताजी के दर्शन करा दूँ तुम्हें।
तनक हम हो अधूरे तनक तुम हो अधूरे। आज दोनों बनै पूरे पूरे॥

आनन्द कर दिया हनुमान्‌जीने! यही—**तुम्हरो मंत्र बिभीषन माना** (ह.चा. १७)। यही मन्त्र है। हनुमान्‌जीने कहा—"एक काम करो! तुम मुझे माताजीके दर्शन करा दो, और मैं तुम्हें पिताजीके दर्शन करा दूँगा। दोनों चकाचक हो जायेंगे।" तब **जुगुति बिभीषन सकल सुनाई** (मा. ५.८.५), विभीषणने बता दिया—"ऐसा कीजिये कि आप मेरा रूप बनाकर जाइये! अशोक वाटिकामें दो ही पुरुष जा सकते हैं, या तो मैं जाऊँ या रावण जाये। आप मेरा रूप बनाइये! सब आपको राम-राम कहेंगे, आप भी राम-राम कहते जाइयेगा।" हनुमान्‌जीने कहा—"ठीक है!" **धरि सोइ रूप ...** (मा. ५.८.६)—**सोइ** अर्थात् विभीषणका ही रूप बनाकर हनुमान्‌जी गये और सीताजीके दर्शन हो गये। बोलिये वीर बजरंगबलीकी जय!

(६) **प्राकाम्य**—रावणने सीताजीको बहुत सताया। सीताजीको क्रोध आया, उन्होंने कहा—

तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥

(मा. ५.९.६)

आहा! सीताजीने कहा—"रावण! उस बार तुम्हारे कुलका नाश करना था, इसलिए मैं लक्ष्मणजीकी रेखाको लाँघकर बाहर आ गयी थी। अब आज बेटा यदि तुममें शक्ति है तो मैं तुम्हारे और अपने बीचमें एक तिनका रख रही हूँ। यदि तुम इसे लाँघकर आ जाओ मुझे छूनेके लिए, तो मैं वचन देती हूँ कि मैं तुम्हारी बात मान लूँगी। आकर दिखाओ!" अब रावण उस तिनकेको कैसे लाँघ सकता है? कुछ नहीं हुआ। "बस यही? जब तुम एक तिनकेको नहीं लाँघ सकते मूर्ख! तो तुम किस बलपर मुझे अपनी पत्नी बनाना चाहते हो?" रावणने कहा—"मैं मार डालूँगा।" "क्या मार डालोगे?"

चंद्रहास हरु मम परितापा। रघुपति बिरह अनल संतापा॥

(मा. ५.१०.५)

"हे चन्द्रमाके समान मुस्कुराने वाले प्रभु रामजी! कबतक मुस्कुराइयेगा? अब इसको मार डालिये, बहुत हो चुका! **शीतल निशि तव असि वर धारा** (मा. ५.१०.६)—हे रावणकी तलवार! तुम ही मार डालो, रावणका सिर काटो। मूर्ख! **सो भुज कंठ कि तव असि घोरा** (मा. ५.१०.४)। अरे! जिन रामचन्द्रजीने मेरे गलेमें हाथ डाला, क्या तुम्हारी तलवार मुझे काट सकती है? चुप!" अन्तमें त्रिजटाजीने राक्षसियोंको समझाया—"अनर्थ मत करो! सपनेमें हमने देखा कि एक वानरने लङ्का जला दी है और राक्षसोंको मार डाला है। रावण नंगा गधेपर बैठा-बैठा चला जा रहा है दक्षिण दिशा में।" सीताजी बहुत चिन्तित हैं। सबसे आग माँग रही हैं। तबतक हनुमान्‌जी महाराजने मुद्रिका गिरा दी—

कपि करि हृदय बिचार दीन्ह मुद्रिका डारि तब।
जनु अशोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥

(मा. ५.१२)

हनुमान्‌जी आये, सारी चर्चा की। हनुमान्‌जीने कहा—"मैं अभी आपको ले जा सकता हूँ।" सीताजीने कहा—"तुम तो बहुत छोटे हो!"

मोरे हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्ह निज देहा॥

(मा. ५.१६.७)

तब हनुमान्‌जीने शरीरको प्रकट किया—

कनकभूधराकार शरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥
सीता मन भरोस तब भऑेउ। पुनि लघु रूप पवनसुत लऑेऊ॥

(मा. ५.१६.८–९)

आनन्द कर दिया! अरे! प्राकाम्य! शरीर बड़ा हुआ, और सीताजीने तो आशीर्वादोंसे हनुमान्‌जीकी झोली भर दी—

आशिष दीन्ह रामप्रिय जाना। होहु तात बल शील निधाना॥
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहु बहुत रघुनायक छोहू॥
करिहिं कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

(मा. ५.१७.२–४)

हनुमान्‌जीने कहा—

अब कृतकृत्य भऑेउँ मैं माता। आशिष तव अमोघ बिख्याता॥

(मा. ५.१७.६)

(७) **ईशित्व**—*ईष्टे इति ईशिन् ईशिनो भावः ईशित्वं शासनम्*। अरे राम! राम!! शासन! हनुमान्‌जीने रावणकी अशोक वाटिकामें प्रवेश किया—

विद्यमान देखत दसानन को कानन सो
तहस-नहस कियो साहसी समीर कें॥

(क. ५.२)

हनुमान्‌जीने अशोक वाटिका उजाड़ डाली, अक्षकुमारको मारा। यह ईशित्व ही तो है। मेघनादने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। कोई अन्तर नहीं, लीला हो गयी। उसने नागपाशमें बाँधा, तो ब्रह्मास्त्र चला गया। अब हनुमान्‌जी फिर स्वस्थ! हनुमान्‌जीने कहा—"तुमने गलती की है। मैं रावणसे कहूँ?" मेघनाद गिड़गिड़ाया—"नहीं! पापासे मत कहियेगा! जो कहिए, वो करूँ।" हनुमान्‌जीने कहा—"तो ठीक है! तुम गधे हो, गधे मजदूरी करो! मुझको ले चलो उठाकर।" ले आया रावणकी सभामें! हनुमान्‌जी आनन्द कर रहे हैं! ईशित्व अर्थात् सबपर शासन करना। नहीं डरे हनुमान्‌जी और उपदेश किया। रावणने मृत्युदण्डकी घोषणा की। विभीषणने मना किया—"नहीं! नहीं! नहीं!!" रावणने कहा—"ठीक है! इसकी पूँछ जला दी जाए।" पूँछ? इसीपर तो पार्वतीजीको और क्रोध आया और जला दी पूँछसे लङ्का—

उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥

(मा. ५.२६.८)

आहाहा!

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता के आगे ठाढ़ भऐउ कर जोरि॥

(मा. ५.२६)

आनन्द!

"माँ! मुझे चिह्न दिया जाए।" माँने चूड़ामणि चिह्न दे दिया—**चूड़ामनि उतारि तब दऐउ** (मा. ५.२७.२)।

(८) **वशित्व**—आ रहे हैं हनुमान्‌जी लेकर चूड़ामणि! सारे वानर प्रसन्न, सुग्रीव तो बहुत प्रसन्न! थोड़ा-सा भी अभिमान नहीं दिख रहा है। यही वशित्व है। राघवजीने कहा भी—रावण द्वारा पालित लङ्काको आपने जलाया कैसे? **कहु कपि रावनपालित लंका, कॆहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका** (मा. ५.३३.५)। हनुमान्‌जीने कहा कि भगवन्!

नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निशिचरगन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछु मोरी प्रभुताई॥

(मा. ५.३३.८–९)

"मेरी कोई प्रभुता नहीं है महाराज! मैंने थोड़े ही जलाई है!" "फिर कैसे जली लङ्का?" "(१) लङ्का जलाई आपने, (२) लङ्का जलाई सीताजीके परितापने, (३) लङ्का जलाई ब्राह्मणोंके श्रापने, (४) लङ्का जलाई रावणके पापने, और (५) लङ्का जलाई मेरे बापने।"

यह—**सकल सिद्धि** (मा. १.३१.१३)।

कथा २५: सुख (मा. १.३१.१३)

सकल सिद्धि सुख संपति रासी में **सकल सिद्धि**के पश्चात् अब देखिये **सुख** (मा. १.३१.१३)। **कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा** (मा. ५.३३.४) हनुमान्‌जीको कितना बड़ा सुख मिल गया! हृदयसे लगा लिया हनुमान्‌जीको रामजीने। कहा—बेटा! तुमसे मैं उऋण ही नहीं हूँ—

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचारि मन माहीं॥

(मा. ५.३२.७)

यह देखिये सुख!

सुनि प्रभुबचन बिलोकि मुख हृदय हरषि हनुमंत।
चरन परॆउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥

(मा. ५.३२)

चरणोंपर पड़ गये। बस थोड़ी देर और कथा चलने दीजिये जो कुछ है चकाचक!

बार बार प्रभु चहत उठावा। प्रेममगन तॆहि उठब न भावा॥

(मा. ५.३३.१)

उठ नहीं रहे हैं। हृदयसे लगाया भगवान्‌ने, इतना आनन्द!

प्रभु पद पंकज कपि के शीशा। सुमिरि सो दशा मगन गौरीशा॥

(मा. ५.३३.२)

यहाँ **प्रभु कर पंकज** (मा.गी.प्रे.) नहीं है। शङ्करजी ही डूब गये इतना सुख! भगवान्‌ने हनुमान्‌जीको वरदान दिया—

नाथ भगति तव अति सुखदायिनि। देहु कृपा करि सो अनपायनि॥
सुनि प्रभु परम सरल कपिबानी। एवमस्तु तब कहेउ भवानी॥

(मा. ५.३४.३–४)

एवमस्तु! दिव्य सुख मिल गया।

येह संबाद जासु उर आवा। रघुपतिचरन भगति सोइ पावा॥

(मा. ५.३४.६)

यह है—**सकल सिद्धि सुख संपति रासी** (मा. १.३१.१३)।

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरिशरन न एकउ बाधा॥

(मा. ४.१७.१)

भगवान्‌ने विजय यात्रा की—

हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भये सुंदर शुभ नाना॥

(मा. ५.३५.४)

देवताओंने पुष्पोंकी वर्षा की। सुन्दर शकुन हो गये। रामजीने प्रयाण किया। आनन्द आ गया!

इधर रावणके सैनिक सशङ्क रह रहे हैं—**उहाँ निशाचर रहहिं सशंका** (मा. ५.३६.१)। तो हमारे बाबा कहते थे—"यहाँ **सशंका**का अर्थ है कि जबसे हनुमान्‌जी लङ्का जलाकर गये हैं, तबसे हनुमान्‌जीका पराक्रम याद करके राक्षस सुसू करते ही रहते हैं, कभी इनका सुसू बन्द नहीं हुआ। **सशंका**! इनको बहुमूत्रताकी बीमारी हो गयी।" हा! हा! हा!!! मन्दोदरी समझाती है रावणको। विभीषणने, माल्यवान्‌ने सभीने समझाया, पर कहाँ समझना था।

अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा (मा. ५.४१.६) रावणने विभीषणको लात मारी। विभीषण कहते हैं—

राम सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबश तोरि।
मैं रघुबीरशरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥

(मा. ५.४१)

चल पड़े विभीषणजी! संकल्प कर रहे हैं। आहा! छः संकल्प किये—

(१) **जे पद परसि तरी ऋषिनारी** (मा. ५.४२.६)—प्रभु श्रीरामजीके जिन श्रीचरणोंका स्पर्श करके ऋषिपत्नी अहल्याजी भवसागरसे तर गयीं,

(२) **दंडक कानन पावनकारी** (मा. ५.४२.६)—जो श्रीचरण दण्डकवनको पावन करने वाले हैं,

(३) **जे पद जनकसुता उर लाये** (मा. ५.४२.७)—जिन श्रीचरणोंको अपने हृदयमें धारण करके जनकनन्दिनी श्रीसीताने अग्निमें और मायामयी श्रीसीताने अशोक वाटिकामें निवास किया,

(४) **कपट कुरंग संग धर धाये** (मा. ५.४२.७)—जो श्रीचरण कपटमृगके साथ दण्डकवनकी पृथ्वीपर दौड़े,

(५) **हर उर सर सरोज पद जेई, अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई** (मा. ५.४२.८)—जो श्रीचरण शिवजीके हृदयरूप तालाबके कमल हैं,

(६) **जिन पायन की पादुका भरत रहे मन लाइ, ते पद आजु बिलोकिहउँ इन नयननि अब जाइ** (मा. ५.४२)—जिन श्रीचरणोंकी पादुकामें मन लगाकर श्रीभरत चौदह वर्षोंसे नन्दिग्राममें रह रहे हैं, आज मैं जाकर उन्हीं श्रीचरणोंको इन्हीं नेत्रोंसे देखूँगा।

आहा! छः संकल्प किये, छः ही प्रकारसे विभीषणको सुख मिला। सुख मिलता ही जा रहा है, आनन्द हो रहा है! **एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा** (मा. ५.४३.१)। रामजीको देखा, रामजी आनन्द दे रहे हैं—

दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता॥

(मा. ५.४५.२)

सकल सिद्धि सुख संपति रासी (मा. १.३१.१३)। धन्य धन्य हो गये विभीषण!

स्रवन सुजस सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन शरन सुखद रघुबीर॥

(मा. ५.४५)

सकल सिद्धि सुख संपति रासी (मा. १.३१.१३)। आनन्द कर दिया! उठा लिया भगवान्ने और हृदयसे लगा लिया। तीनों ताप नष्ट हो गये—

तुम कृपालु जापर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भवशूला॥

(मा. ५.४७.६)

चकाचक हो गया, आनन्द कर दिया! भगवान्ने हृदयसे लगा लिया।

कथा २६: संपति रासी (मा. १.३१.१३)

अब **संपति रासी** (मा. १.३१.१३)। भगवान्ने लक्ष्मणसे कहा कि लक्ष्मण! समुद्रका जल ले आइये—

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरस अमोघ जग माहीं॥
अस कहि राम तिलक तेहिं सारा। सुमनबृष्टि नभ भई अपारा॥

(मा. ५.४९.९–१०)

आह! तिलक कर दिया। **सुमन बृष्टि नभ भई अपारा** (मा. ५.४९.१०)। अरे! अपार पुष्पोंकी बरसात! आनन्द हो रहा है—

जो संपति शिव रावनहिं दीन्हि दिये दश माथ।
सोइ संपदा बिभीषण सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥

(मा. ५.४९ख)

रघुनाथजी अभी भी संकोच कर रहे हैं कि मैंने तो कुछ भी नहीं दिया। जबकि संकल्प मात्रसे

विभीषणजीको लङ्का दे दी। भगवान्ने कहा—"अभी जलते ही रहने दो लङ्काको, जब विभीषण राजा बनेंगे, तब सब चकाचक हो जायेगा।" यह संकल्प करके दे दी। इसलिए **संपदा** कह रहे हैं।

अब यह प्रस्ताव है कि सागरको कैसे लाँघा जाए? **सुनु कपीश लंकापति बीरा** (मा. ५.५०.५) रामजीने तीन लोगोंसे पूछा—(१) **कपीश**—कपीश माने सुग्रीवजीसे, (२) **लंकापति**—लङ्कापति माने विभीषणजीसे और (३) **बीरा**—बीर कहते हैं भाईको, अपने भाई लक्ष्मणजीसे पूछा। सुग्रीव तो कुछ नहीं बोले। विभीषणजी बोले—**बिनय करिय सागर सन जाई** (मा. ५.५०.८) ये सागर आपके कुलगुरु हैं। गुरु माने श्रेष्ठ, आपके कुलके श्रेष्ठ हैं प्रभु!—**प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि कहिहि उपाय बिचारि** (मा. ५.५०)। सगरसे उत्पन्न होनेके कारण पूर्वज हैं। पर लक्ष्मणजीको यह पक्ष अच्छा नहीं लगा—**मंत्र न यह लछिमन मन भावा** (मा. ५.५१.२)। "अरे क्या महाराज! **नाथ दैव कर कवन भरोसा** (मा. ५.५१.३)।" भगवान्ने कहा—"चुप! चुप!! सब तुम्हारी बात हो जायेगी। अभी चुप रहो!" भगवान् तो समझ गये—**सुनत बिहँसि बोले रघुबीरा, ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा** (मा. ५.५१.५)। बोले कि चिन्ता मत करो भैया! ऐसा ही करूँगा। सागरसे विनय करनेके लिए बैठे। रावणने अपने दूतोंको भेजा था। उन दूतोंने जब देखा, तो वे भगवान्की प्रशंसा करने लगे। शत्रुदूत समझकर वानर उन्हें पकड़कर ले आये और नाक-कान काटने लगे। तो दूतोंने कहा—"जो हमारे नाक-कान काटे, उसे रामजीकी शपथ!" तब लक्ष्मणजीने कहा—"अरे छोड़ो यार! नाक-कान काटकर दूतसे क्या बदला लेना? अरे! नाक-कान काटनेका मन है तो मैंने रावणकी बहिनके नाक-कान काटे। तुम रावणके भाई कुम्भकर्णके काट लेना। चलो!" छोड़ दिया। रावणके दूत जाकर समाचार देते हैं। रावणको लक्ष्मणजीकी पत्रिका दिखायी। रावणने कहा—"अरे! क्या बात करते हैं! ये तो तपस्वियोंका वाग्विलास है।" शुकने समझाया तो रावणने छातीमें लात मारी। शुकको अगस्त्यका श्राप था, अतः राक्षस बना था। फिर शुक मुनि बन गया। इधर—

बिनय न मानत जलधि जड़ गये तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति॥
लछिमन बान शरासन आनू। सोषौं बारिधि बिशिष कृशानू॥

(मा. ५.५७, ५.५८.१)

"लक्ष्मण! लाओ मेरे धनुष-बाण! मैं सागरको सोख लेता हूँ।" "नहीं सरकार!" "लक्ष्मण! क्या बताऊँ? मेरे सात प्रयोग विफल हो गये—

शठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती॥
ममतारत सन ग्यान कहानी। अतिलोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहिं शम कामिहिं हरिकथा। ऊसर बीज बए फल जथा॥

(मा. ५.५८.२–४)

(१) **शठ सन बिनय**—यह शठ है, मेरी विनय विफल हो गयी, (२) **कुटिल सन प्रीती**—समुद्र कुटिल है, मेरा प्रीत-प्रस्ताव विफल हो गया, (३) **सहज कृपन सन सुंदर नीती**—यह कृपण है, मेरी नीति विफल हो गयी, (४) **ममतारत सन ग्यान कहानी**—यह ममतारत है, मेरी

ज्ञानकी कहानी विफल हो गयी, (५) **अतिलोभी सन बिरति बखानी**—यह अत्यन्त लोभी है, मेरा वैराग्य विफल हो गया, (६) **क्रोधिहिं शम**—यह क्रोधी है, मेरा शान्तिका संदेश विफल हो गया, (७) **कामिहिं हरिकथा**—यह कामी है, अत: श्रीहरि रूप में मैंने जो कथा सुनायी वह भी विफल हो गयी। लाओ—**अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा, यह मन लछिमन के मन भावा** (मा. ५.५८.५)। धनुषपर बाण चढ़ाया—

संधानेउ प्रभु बिशिष कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला॥
मकर उरग झष गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने॥

(मा. ५.५८.६–७)

सकल सिद्धि सुख संपति रासी (मा. १.३१.१३)। यह संपत्ति देखिये—

कनकथार भरि मनिगन नाना। बिप्ररूप आयउ तजि माना॥

(मा. ५.५८.८)

समुद्र ब्राह्मणके रूपमें स्वर्णके थालमें मणिगण ले आया। *पाहि मां पाहि माम्* करने लगा—**सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे** (मा. ५.५९.१)। "अरे! ठीक है।" कहा—"भगवन्! आप मुझे मत मारियेगा।" बिल्कुल ठीक है! कहा कि अच्छा—**जेहि बिधि उतरै कपि कटक तात सो कहहु उपाइ** (मा. ५.५९)—"आप उपाय बताइये। कोई बात नहीं!" कहा कि महाराज! क्या बताऊँ?—

ढोल गवाँर शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी॥

(मा. ५.५९.६)

यहाँ निन्दा नहीं है। *ताडनं शिक्षणम्*। **ताड़न** माने शिक्षा। इनको शिक्षा देनी चाहिए—**प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही** (मा. ५.५९.५)। **ताड़न** माने शिक्षण। (१) **ढोल**—वाद्यके विशारदोंको, (२) **गवाँर**—गँवारों अर्थात् विषयभोगमें लिप्त प्राणियोंको, (३) **शूद्र**—शूद्रोंको अर्थात् जो प्राणी चिन्तासे असन्तुलित हो जाते हैं, (४) **पशु**—पशुओंको, (५) **नारी**—अशिक्षित नारीको—इनको शिक्षा देनी चाहिए, पढ़ाना चाहिए। गोस्वामीजीने पहली बार यह अभियान चलाया कि यदि समाजको स्वस्थ बनाना है तो नारीकी शिक्षा अनिवार्य है।

तो समुद्रने कहा—"नल-नील बड़े अच्छे हैं, इनके स्पर्शसे ये पत्थर तैर जायेंगे, मैं सहायता करूँगा।" पर एक उपाय उसने नहीं बताया कि पत्थर तैरेंगे तो, पर एक-दूसरेसे सटेंगे कैसे? कहा—"यह काम तो हनुमान्‌जीका है, हनुमान्‌जी जानते हैं।" सारी चर्चा उसने बतायी—"इस बाणको मेरे उत्तर तटतक फेंक दीजिये केरलके पास। दुष्ट लोग रहते हैं।" फेंक दिया, सब दुष्ट आसुरी शक्ति समाप्त हुई।

निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहिं येह मत भाऒउ।
येह चरित कलिमल हर जथामति दास तुलसी गाऒउ॥
सुखभवन संशयशमन दमन बिषाद रघुपति गुन गना।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत शठ मना॥

सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जलयान॥

(मा. ५.६०.९, ५.६०)

इस प्रकार छब्बीस कथाएँ मैंने आपकी सेवामें उपस्थित कर दीं।

सीताराम हनुमान्, सीताराम हनुमान्। सीताराम हनुमान्, सीताराम हनुमान्॥
सीताराम हनुमान्, सीताराम हनुमान्। सीताराम हनुमान्, सीताराम हनुमान्॥
सियावर रामचन्द्र भगवानकी जय!
पवनपुत्र हनुमान्जी महाराजकी जय हो!
गोस्वामीजी तुलसीदास महाराजकी जय हो!
आजके आनन्दकी जय हो!

नवम पुष्प

॥ नमो राघवाय॥

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥
नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥
सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥
जयति कविकुमुदचन्द्रो हुलसीहर्षवर्धनस्तुलसी।
सुजनचकोरकदम्बो यत्कविताकौमुदीं पिबति॥
(श्री)सीतानाथसमारम्भां (श्री)रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे (श्री)गुरुपरम्पराम्॥
श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर-बिमल-जस जो दायक फल चारि॥
(श्री)रामचरितमानस बिमल कथा करौं चित चाइ।
आसन आइ विराजिये (श्री)पवनपुत्र हरषाइ॥

सीताराम हनुमान्, सीताराम हनुमान्। सीताराम हनुमान्, सीताराम हनुमान्॥
सीताराम हनुमान्, सीताराम हनुमान्। सीताराम हनुमान्, सीताराम हनुमान्॥

सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। रघुबरभगति प्रेम परमिति सी॥

(मा. १.३१.१४)

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा, परमाराध्य, परमेश्वर, भगवान् श्रीसीतारामजीकी कृपासे, मोदीनगरमें श्रीराघव-सेवा-समितिके तत्त्वावधानमें समायोजित, मेरी १२५१वीं श्रीरामकथाके नवम सत्रमें आप सभीका बहुत-बहुत स्वागत। आठ दिनोंसे आप सुन रहे हैं कि गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितमानसजीमें तीस दिनोंके क्रमके आधारपर ही मात्र तीस कथाएँ लिखी हैं। क्योंकि महीनेमें तीस ही दिन होते हैं और व्यक्तिको तीसों दिन रामकथा चाहिए, इसलिए गोस्वामीजीने तीस ही कथाएँ लिखीं। यद्यपि यह सत्य है कि यह तथ्य मेरे अतिरिक्त किसी वक्ताको याद नहीं रहा।

कथाएँ तो संसारमें बहुत हैं। न जाने कितनी कथाएँ आयीं और चली गयीं। किंतु, उत्तरी ध्रुवसे

लेकर दक्षिणी ध्रुव पर्यन्त जितना सम्मान श्रीरामकथाका हुआ, आज अद्यावधि उतना सम्मान किसी कथाका नहीं हुआ। क्या कारण है? कारण है कि यह सुननेमें लग रही है रामकथा, परंतु वास्तवमें यह राष्ट्रकी संहिता है। और आप जानते हैं कि जबतक राष्ट्रकी व्यथाका समाधान सूत्र नहीं प्राप्त होता, तबतक रामकथा कैसी? राष्ट्रकी प्रत्येक समस्याका समाधान श्रीरामचरितमानसमें है। मेरा प्रयास होगा समाधान की ओर। यही बात कह रहा था कि मैं एक ऐसा वक्ता हूँ जिसने श्रीरामकथा और श्रीकृष्णकथाका एक भी पैसा अपने लिए नहीं लिया। यह तो केवल **त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये**। आज हम २७वीं कथाकी ओर चल रहे हैं। २६ कथाएँ आप सुन चुके हैं। युद्धकाण्डमें एक ही कथा है—२७वीं कथा। २७वीं कथामें पूरा युद्धकाण्ड संपूर्ण हो जाता है। उत्तरकाण्डमें ३ कथाएँ हैं।

क्रम बहुत मधुर है। (१) **बालकाण्ड**—१२ कथाएँ, (२) **अयोध्याकाण्ड**—मात्र २ कथाएँ, (३) **अरण्यकाण्ड**—६ कथाएँ, (४) **किष्किन्धाकाण्ड**—३ कथाएँ, (५) **सुन्दरकाण्ड**—इसमें भी ३ कथाएँ, (६) **युद्धकाण्ड**—अब आप तो लङ्काकाण्ड कहते हैं, हम युद्धकाण्ड कह रहे हैं; पुरानी प्रतिमें युद्धकाण्ड ही लिखा है—१ कथा और (७) **उत्तरकाण्ड**—३ कथाएँ। यह है ३० कथाओंका क्रम।

कथा २७: सदगुन सुरगन अंब अदिति सी (मा. १.३१.१४)

तो चलते हैं युद्धकाण्डकी कथामें—

सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। रघुबरभगति प्रेम परमिति सी॥

मोदीनगरवालो! मुझे दक्षिणा तो देनी पड़ेगी आपको। मेरी एक ही दक्षिणा है कि आप सब लोग रामचरितमानसजीके पाठका अभ्यास कीजिये। देशकी यही माँग है तथा हम भी प्रयास करेंगे कि २०१८तक रामचरितमानसजीको राष्ट्रीय ग्रन्थ घोषित किया जाए; तभी सारी समस्याओंका समाधान मिल पायेगा। वस्तुतः हमारा प्रयास है कि

(१) **रामचरितमानस**—राष्ट्रीय ग्रन्थ घोषित हो,

(२) **गौ माता**—राष्ट्रकी धरोहर घोषित हों,

(३) **गङ्गामाता**—राष्ट्रकी राष्ट्रीयनदी घोषित हों, तथा

(४) **हिन्दी भाषा**—संसदके द्वारा राष्ट्रभाषा घोषित हो।

इतना सुन्दर ग्रन्थ मैंने जीवनमें कभी देखा नहीं। परंतु यह भी कहना अनिवार्य है कि जितना प्यारा यह ग्रन्थ है, उतने ही प्रेमसे वक्ताओंने विकृत भी किया है। पढ़ते-लिखते तो हैं नहीं वक्ता।

सदगुन सुरगन अंब अदिति सी (मा. १.३१.१४)—गोस्वामीजी कहते हैं कि जिस प्रकार अदितिजीने बारह पुत्रोंको जन्म दिया, उसी प्रकार श्रीरामकथा सद्गुणरूप सुरगणोंकी, देवगणोंकी, माँ अदितिके समान हैं। जैसे अदिति बारह पुत्रोंको जन्म देती हैं, उसी प्रकार युद्धकाण्डकी कथा बारह सद्गुणोंको जन्म देती है। आइये! उन्हींपर विचार करेंगे। अदितिके बारह पुत्र—

विवस्वानर्यमा पूषा त्वष्टाथ सवितो भगः।
धाता विधाता वरुणो मित्रः शक्र उरुक्रमः॥

(भा.पु. ६.६.३९)

(१) विवस्वान्, (२) अर्यमा, (३) पूषा, (४) त्वष्टा, (५) सविता, (६) भग, (७) धाता, (८) विधाता, (९) वरुण, (१०) मित्र, (११) शक्र अर्थात् इन्द्र, एवं (१२) उरुक्रम अर्थात् उपेन्द्र (भगवान् वामन)—ये अदितिके बारह पुत्र हैं। इन्हींको आदित्य कहते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि जैसे अदितिजी बारह पुत्रोंकी माँ बनीं, उसी प्रकार युद्धकाण्डकी यह कथा बारह सद्गुणोंको जन्म देती है। कौन? हम लोग तो जानते हैं कि यह राम-रावण-युद्धकी कथा है! है भी, पर वास्तवमें यह बहुत महत्त्वपूर्ण कथा है। किन सद्गुणोंको जन्म देती है यह? सुन्दरकाण्डमें भगवान् राम स्वयं इन बारह सद्गुणोंकी चर्चा करते हैं विभीषणके समक्ष—

जो नर होइ चराचरद्रोही। आवइ सभय शरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बंधु सुत दारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी॥
समदरशी इच्छा कछु नाहीं। हरष शोक भय नहिं मन माहीं॥

(मा. ५.४८.२–६)

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन के द्विजपद प्रेम॥

(मा. ५.४८)

(१) **आवइ सभय**—भगवान् कहते हैं कि भले ही चर-अचर सबका द्रोही हो तो पहली शर्त है कि यदि संसारके इस प्रपञ्चसे भयभीत होकर; (२) **शरन तकि मोही**—एकमात्र जो मेरी शरणमें आ जाता है; (३) **तजि मद मोह कपट छल नाना**—वह भी मद, मोह, कपट, अनेक छलोंको छोड़कर; (४) **जननी जनक बंधु सुत दारा, तन धन भवन सुहृद परिवारा**—ये जो दस ममताएँ हैं, **सब कै ममता ताग बटोरी** सबकी ममताकी रस्सियोंको इकट्ठी करके, **मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी** उसी ही रस्सीसे अपने मनको मेरे चरणोंमें बाँध देता है; (५) **समदरशी**—जिसकी समदृष्टि होती है; (६) **इच्छा कछु नाहीं**—जो सभी इच्छाओंसे परे हो जाता है; (७) **हरष शोक भय नहिं मन माहीं**—हर्ष, शोक, भयसे जो रहित है; (८) **सगुन उपासक**—सगुण उपासक; (९) **परहित निरत**—परहितमें जो निरत रहता है; (१०) **नीति दृढ़**—नीतिपूर्ण जीव बिताता है; (११) **नेम**—जो नियमित जीवन बिताता है; और (१२) **ते नर प्रान समान मम जिन के द्विजपद प्रेम**—और जिनको वैदिक ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रेम है। ये बारह सद्गुण हैं और इन्हीं बारह सद्गुणोंकी युद्धकाण्डमें चर्चा की गयी। और ये बारह सद्गुण किसके पास हैं? विभीषणजीके पास—**सुनु लंकेश सकल गुन तोरे** (मा. ५.४९.१)। इसीलिए युद्धकाण्डके प्रारम्भसे लेकर विश्रामपर्यन्त विभीषणजी ही विभीषणजी छाये हुए हैं। **सदगुन सुरगन अंब अदिति सी....** (मा. १.३१.१४)।

अब देखिये राष्ट्रकी समस्याओंके समाधान हेतु रामचरितमानसके १२ सूत्र—

(१) **सहयोग**—युद्धकाण्डका प्रारम्भ हो रहा है। गोस्वामीजी कहते हैं—

लव निमेष परमाणु जुग बरष कलप शर चंड।
भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदंड॥

(मा. ६ म.दो. १)

युग जिनके लव निमेषके (काल-मापक इकाई जिसमें लव ८ सेकण्डका सौवाँ हिस्सा तथा निमेष १६ सेकण्डका सौवाँ हिस्सा है) समान हैं, कल्प जिनका वर्ष है, जिनका बाण बहुत भयंकर है—**शर चंड**। अथवा (१) लव-निमेष, (२) परमाणु, (३) युग, (४) वर्ष, (५) कल्प—ये ही पाँच जिनके बाण हैं। क्या बात है! और **काल जासु कोदंड** और काल ही जिनका धनुष है—ऐसे रामजीका तुम भजन क्यों नहीं करते?

समुद्रका वचन सुनकर भगवान् रामने कहा—"अब सेतुकी रचना की जाए।" जाम्बवान्ने कहा—आपका नाम सेतु ही सेतु है भगवन्! उसपर चढ़कर लोग भवसागर पार कर लेते हैं—

नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भवसागर तरहिं।

(मा. ६ म.सो. २)

देखिये! बहुत रोचक प्रकरण है। यहाँ संकेत है कि जो संघीय परम्परामें विश्वास करते हैं, उन्हें निश्चित जानना चाहिए कि कोई भी बड़ा-से-बड़ा व्यक्ति बड़े-से-बड़े कार्योंको परिणाम तब देता है, जब प्रत्येक व्यक्ति उससे जुड़ जाता है। देखिये! श्रीसीताजीका हरण हो चुका है आप सब जानते हैं, परंतु यहाँ सीताजीका हरण कोई सामान्य घटना नहीं है। सीताजीको प्रत्येक व्यक्तिने उस समय केवल रामजीकी पत्नी नहीं माना। यह भारतीय संस्कृति है। यह भारतमाताकी अखण्ड-संप्रभुता है। और जब कोई विदेशी आक्रान्ता भारतमाताकी अखण्ड-संप्रभुताका अपमान करनेके लिए उतारू हो जाता है, तो प्रत्येक भारतीय इकट्ठा होकर उस अपमानका बदला लेता है। देखिये! आज भगवान् राम केवल एक राजा नहीं हैं। प्रत्येक भारतीयने सोच लिया है कि भगवान् राम भारतमाताके एक अजेय योद्धा, सपूत हैं। यहाँतक कि सामान्य पक्षी जटायुने भी रामजीका साथ दिया। सोचिये! संपूर्ण वानर व भालू जाति इकट्ठी हुई और रामजीसे न तो कोई भोजन माँगा, न फल खाया, और न ही कोई हथियार माँगा। संपूर्ण भारतसे वानर-भालू इकट्ठे हुए और किसीकी सहायता नहीं ली। उनसे हथियार नहीं माँगा, वृक्ष और पर्वतोंकी सहायतासे उन्हींको शस्त्र बनाकर युद्ध किया। एक प्रकारकी लहर थी। उस लहरका सबने सदुपयोग किया। सबने तय कर लिया था कि हमें भारतमाताके अपमानका बदला लेना ही है।

इसी प्रकार आज, जैसे रामजीको इतना सहयोग मिला था, जैसे रामजीको इतना support मिला; उसी प्रकार भारतकी एक अरब बत्तीस करोड़ जनता यदि मोदीजीका support कर दें, तो वह दिन दूर नहीं जब विश्वके नक्शेसे पाकिस्तानका नाम मिट जायेगा। आज सूत्रात्मक चर्चा मैं कर रहा हूँ। अब तो रामजी जैसा support चाहिए। आप बताइये! यहाँ थोड़ा-सा हम करते हैं, तो अपना उल्लू सीधा करने लगते हैं। थोड़ी-सी सेवा की, दो-चार बार जेल गये, तो हमें MLA बनना अनिवार्य, हमें MLA बना दीजिये। MLA माने—वहाँ में ले, यहाँ ले, वहाँ भी ले। क्या होगा? कैसे होगा? हमारे चित्रकूट आनेसे पहले एक व्यक्तिने कहा—"आप कह दीजिये तो

हमें टिकट मिल जाए!" मैंने कहा—"क्यों?" तो उसने कहा—"मेरे ऊपर कर्ज बहुत है।" तो मैंने कहा—"तो कर्ज उतारनेके लिए तुम MLA बनना चाहते हो? मैं तो कभी नहीं कहूँगा।" आज खुलकर कह रहा हूँ, जो कुछ कहना था मुझे। बहुत लोगोंने थोड़ा-सा काम किया तो बहुत बड़ा लाभ ले लिया। पर हमने जब विश्वविद्यालय बनाया [जबकि सेवाएँ कितनी की, यह सभी जानते हैं], तब हमने उत्तरप्रदेश सरकारसे भूमि नहीं माँगी। भूमि खरीदकर हमने विश्वविद्यालय बनाया।

तो देखिये! यदि सेवक कुछ चाहेगा, तो सेवा नहीं होगी। आप बताओ! वानरोंने कुछ चाहा क्या? कौन-सा राज्य बेचारोंने चाहा? कुछ नहीं चाहा भगवान्‌से! एक अंगुल वस्त्र भी नहीं चाहा भगवान् रामसे! व्यक्ति बहुत अपेक्षाएँ करने लगता है, तब तो निश्चित ही राष्ट्रकी उपेक्षा करेगा ही करेगा।

(२) **विश्वास**—मित्रो! अब देखिये सेतु बनानेकी परिकल्पना। रामजी चाहते तो अपने बाणोंसे सेतु नहीं बना सकते थे? **सक सर एक शोषि शत सागर** (मा. ५.५६.२)—रामजीका एक बाण सैंकड़ों सागरोंको सुखा सकता था। क्या कारण था, क्यों चिन्तित थे भगवान् राम कि कैसे किया जाए? इसलिए कि इस कार्यमें छोटे-से-छोटे व्यक्तिकी भागीदारी सुनिश्चित होनी चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति यह सोचे कि मैंने भी इसमें सहयोग किया है—यही रामजीकी नीति है। भारतके प्रत्येक प्रान्तसे पत्थर मँगाया गया। जैसे हमने श्रीरामजन्मभूमिके लिए शिलाएँ इकट्ठी की हैं, उसी प्रकार प्रत्येक प्रान्तसे पत्थर मँगाया गया। सेतु बनानेके लिए सबका मानसिक सहयोग चाहिए। पत्थरोंका सहयोग चाहिए, हम समुद्रमें पुल बनाने जा रहे हैं।

आपने कथा सुनी होगी। रामायणमें तो देखी नहीं हमने, पर संत-परम्परामें सुनी है। सभी सहयोग कर रहे हैं रामजीका। क्या समझकर? क्या रामजीकी पत्नीको छुड़ाना चाहते हैं? नहीं! सब जानते हैं कि रामका अर्थ क्या है? *रा* माने राष्ट्र और *म* का अर्थ है मङ्गल—रामजी राष्ट्रके मङ्गल हैं। और सभी जानते हैं कि सीताजी भारतकी अखण्ड-संप्रभुता हैं। तो रामजीकी पत्नी नहीं, भारतकी अखण्ड-संप्रभुताको सम्मानके सहित प्रत्यावर्तित करनेके लिए सभीने सहयोग दिया। एक आश्चर्य देखिये कि एक छोटी-सी गिलहरी भी सहयोग कर रही है। जाती है सागरमें, अपने शरीरको गीला करती है, फिर बालूमें लोटकर अपने शरीरसे बालू लाती है और सेतुपर गिरा देती है। उससे क्या होगा? आप बताइये! परंतु भगवान् रामने भावना देखी कि गिलहरीका भी इतना बड़ा सहयोग। भगवान् रामने देखा कि गिलहरी इतना सहयोग कर रही है। इतने प्रसन्न हुए भगवान् राम कि गिलहरीकी पीठपर अपनी अंगुलियाँ फेर दीं। आज भी गिलहरीकी पीठपर भगवान् रामकी तीनों ऊँगलियोंके निशान स्पष्ट दिखते हैं। मैं बहुत भाषणोंपर विश्वास नहीं करता, पर सिद्धान्तोंपर विश्वास करता हूँ। सबसे प्रथम सूत्र है युद्धकाण्डमें—सहयोग! सबका सहयोग।

देखि सेतु अति सुंदर रचना। बिहँसि कृपानिधि बोले बचना॥

(मा. ६.२.२)

इतना सुन्दर सेतु भगवान् रामने देखा। सबका सहयोग मिला, तो सहयोगपर विश्वास भी करना चाहिए। हमें सबपर विश्वास भी करना होगा। तब भगवान् रामने कहा कि यहाँ मुझे रामेश्वरम्‌की स्थापना करनी है—

करिहउँ इहाँ शंभु थापना। मोरे हृदय परम कलपना॥

(मा. ६.२.४)

मैं शङ्करजीकी यहाँ स्थापना करूँगा। शङ्करजीकी स्थापना की तो क्या? अभी मेरी कथा तो प्रत्यक्ष पूर्ण हो गयी। अभी एक ऐसे सज्जन, जो गङ्गोत्रीसे जल ले गये थे रामेश्वरम्, उन्होंने मुझे भी जल दिया। कथाका प्रत्यक्ष हो रहा है इस समय। रामेश्वरम्‌की भगवान् रामने स्थापना की—यह दूसरा सद्गुण है। पहले सद्गुणका क्या नाम बताया मैंने? सहयोग, सबका सहयोग। दूसरे सद्गुणका क्या नाम है? विश्वास—

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥

(मा. १.मं श्लोक. २)

(३) **समन्वय**—हनुमान्‌जीके कंधेपर नहीं चढ़े। कुछ नहीं! पैदल चल रहे हैं और जब प्रभु पैदल चल रहे हैं, तो सारी वानरी-सेना पैदल चल पड़ी—

सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभपंथ उड़ाहि।
अपर जलचरन ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहिं जाहिं॥

(मा. ६.४)

भगवान्‌ने तीन प्रकारके सेतु बनाये—(क) **कर्म-सेतु**—यह सेतु बनाया नल-नीलके द्वारा, (ख) **ज्ञान-सेतु**—यह सेतु बनाया आकाशमें, और (ग) **उपासना-सेतु**—यह सेतु बनाया जलचरों द्वारा। जलचर खड़े हो गये कि हम सहायता करेंगे। यह देखिये सहायता! जलचरोंने भी कहा कि रावण अब दण्डनीय है। इसी प्रकार केवल मोदीजीसे नहीं; यदि प्रत्येक भारतवासीका मन बन जाए कि पाकिस्तानको दण्ड देना है, तो दण्ड मिलकर रहेगा उसको। पर हमारे यहाँ तो जयचन्द्र भी हैं! क्या करियेगा? उस बार रामचन्द्रजी थे, पर जयचन्द्र नहीं था। पृथ्वीराज चौहानके समयमें एक ही जयचन्द्र था, आज लाखों जयचन्द्र जन्म ले चुके हैं हमारे यहाँ। क्या करें?

एक बहुत बड़े नेताने हमें बुलाया था, जब अयोध्यामें चौरासी कोस परिक्रमाकी बात चल रही थी। मैं स्वयं जेलमें था, आप जानते होंगे। उसी समय उत्तरप्रदेश-सरकारके मुख्यमन्त्रीके पिताने मुझे बुलाया और कहा—"आप लोग पाकिस्तानके पीछे क्यों पड़े हैं? चीनके पीछे क्यों नहीं पड़ते?" हमने कहा—"महोदय! आपकी निर्लज्जताकी सीमा हो गयी। जो १९४७से लेकर अबतक हमारा खून पीता आ रहा है, उसपर इतना प्रेम? अरे!" उन्होंने तो अपना बयान दे डाला—"रामजन्मभूमिके प्रकरणमें मैंने १६को मरवाया था और मेरा बस चलता, और यदि कुछ होता तो ३००को मरवा देता।" हमने कहा कि आप ईश्वर नहीं हैं। उसीका फल देखा आपने? १६का बलिदान बेकार नहीं गया। ६ दिसम्बर १९९२को, जो कभी नहीं हुआ.....। मैं तो सौभाग्यशाली हूँ! जो दृश्य तुलसीदासजीको देखनेको नहीं मिला, सूरदासजीको देखनेको नहीं मिला, वह हमें मिल गया। ११ बजकर ४५ मिनटसे अपराह्न ४ बजकर ४७ मिनटतक भगवान्‌का एक अवतार हुआ था—कार्यसेवकावतार! कारसेवकोंका अवतार। हम लोग तो साक्षी हैं। संपूर्ण प्रकृति राममय थी। जो बड़ी-बड़ी छड़ें बुलडोज़रसे नहीं तोड़ी जा सक रही

थीं, उन्हींको हमारे बालकोंने ऐसे तोड़ा जैसे कोई मूली तोड़ देता है। तो देखिये! हमने कहा कि इसीका फल है मित्र! जो तुमने निहत्थोंपर गोली चलायीं। तुम कभी प्रधानमन्त्री बन ही नहीं सकोगे। दण्ड तुमको मिला।

मित्रो! ३ सूत्र आपने देखे। सभी वानरोंके साथ रामचन्द्रजी चल रहे हैं—

सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहि।
अपर जलचरन ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहिं जाहिं॥

(मा. ६.४)

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते॥

(ऋ.वे. १०.१९१.२)

एक साथ चलो। सबको साथ लेकर चलो। एक साथ, एक स्वरमें बोलो। एक स्वरमें, एक चिन्तन करो। एक साथ भोजन करो सब। अलग-अलग नहीं! **संघे शक्तिः कलौ युगे**—रामजीने देखा। यह तीसरा सूत्र है। **सदगुन सुरगन अंब अदिति सी** (मा. १.३१.१४)।

(४) **प्रतिज्ञाकी दृढ़ता**—चौथा सद्गुण देखिये! श्रीराम सुबेलपर्वतपर विश्राम कर रहे हैं। अपनी प्रतिज्ञाका कितना ध्यान है उनको! रावणको मारनेकी बात विभीषणके सामने कही। आज जब रावणका छत्र-मुकुट देखा, तो रामजीने विनोद किया—"वर्षा हो रही है क्या? ये बादल कहाँसे?" विभीषणने कहा—"ये बादल नहीं हैं, यह रावणका मेघडंबर छत्र है। यह बिजली नहीं, मन्दोदरीके कर्णफूल हैं। यह बादलका गर्जन नहीं ताल-मृदङ्ग बज रहे हैं।" रामजीने कहा—"जो बात कही, वह सत्य करके दिखाऊँगा। देख लेना!" लेटे-लेटे एक बाण धनुषपर चढ़ाया और—

छत्र मुकुट ताटंक तब हते एकही बान।
सब के देखत महि परे मरम न कोऊ जान॥

(मा. ६.१३क)

एक ही बाणमें छत्र-मुकुट-ताटङ्क-आदि सब काट दिए। भगवान् रामने सबको विश्वासमें ले लिया। यह चौथा सूत्र है कि अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहकर शासकको सबको विश्वासमें लेना चाहिए।

(५) **सम्मान**—अब पाँचवाँ सूत्र देखिये। अङ्गदको रावणके यहाँ भेज रहे हैं, यह उनकी कूटनैतिक सफलता है। भगवान् रामने रावणके यहाँ किसको भेजा? सोचो कौन है? जिसके पिताका अभी-अभी वध किया है। बालिका अभी-अभी वध किया है भगवान् रामने और बालिके बेटे अङ्गदको रावणके यहाँ भेज रहे हैं। यह देखिये! अर्थात् पाँचवा सूत्र है कि प्रत्येक व्यक्तिको अपने सहयोगीको सम्मान देना चाहिए, सबका सम्मान करना चाहिए। आज यही तो होती है गड़बड़! अपने कार्यकर्ताओंको लोग सम्मानित नहीं करते। और भाजपाकी भी एक सबसे बड़ी निर्बलता यही है कि वह अपने कार्यकर्ताओंका सम्मान नहीं करती। और रामजी अपने सहयोगीको सम्मान देते हैं। जबतक अपने कार्यकर्ताओंका सम्मान नहीं करोगे, तो कौन तुम्हारा साथ देगा? रामजीने किया सम्मान। अङ्गदजीको बुलाया और कहा—

काज हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥

(मा. ६.१७.८)

आनन्द कर दिया रघुनाथजीने! क्या आनन्द कर दिया? अङ्गद रामजीके हो गये। नियम है कि सामान्य व्यक्तिको जब कोई बड़ा व्यक्ति सम्मानित करता है, तो वह समर्पित हो जाता है। और इतना सम्मान? रावणने बड़ी भेदनीति अपनाई—"अरे अङ्गद! तुम्हारे पिताका जिसने वध कर दिया, उसका पक्ष लेकर तुम आये हो?" पर रावणकी भेद नीति यहाँ नहीं चली। अङ्गदजीने कह दिया—"कुछ भी हो! रामजीने सत्यका पक्ष लिया। मेरे पिताजी गलत मार्गपर थे। वे दण्डनीय थे, इसलिए दण्ड दिया रामजीने। मैं रामजीका पक्ष लूँगा।" इतना सुन्दर पक्ष लिया रामजीका कि क्या कहें! पूरे अङ्गद-रावण संवादका आप प्रकरण देखिये! एक ही बात है। रावण कहता है—"रामजी मनुष्य हैं।" और अङ्गदजी कहते हैं—"रामजीका आकार मनुष्यका है, पर वे ईश्वर हैं।" वही हाल हुआ, जैसे अकबरने बीरबल से पूछा—"क्यों बीरबल! वर कितने होते हैं?" तो बीरबलने कहा कि दो वर हमने सुने हैं—"सीतावर और राधावर।" अकबरने कहा—"तुम बेवकूफ हो!" बीरबलने पूछा- "क्यों?" अकबरने कहा -"अकबरको नहीं सुने हो?" तो बीरबलने कहा—"यदि ऐसे वरकी गिनती की जाय, तो हमने गोबरको भी सुना है।" है न ठीक उसी प्रकार। रावण बार-बार कहता है—"राम एक मनुष्य हैं" और अङ्गद कहते हैं—"नहीं! आकार मनुष्यका है, पर वे परमात्मा हैं।"

(६) **स्वाभिमान**—और छठा सूत्र है स्वाभिमान। एक राजदूतको अपने देशके प्रति कितना स्वाभिमान होना चाहिए? यह देखिये! छठे सूत्रका नाम है—स्वाभिमान। अङ्गदने कहा कि रावण!—

जौ मम चरन सकसि शठ टारी। फिरिहिं रामसीता मैं हारी॥

(मा. ६.३४.९)

यहाँ **मैं** शब्द द्वितीयाके अर्थमें है। **व्यत्ययो बहुलम्** (पा.सू. ३.१.८५) सूत्रसे यहाँपर व्यत्यय हुआ। अङ्गदजीने कहा—यदि तुम मेरे चरणको डिगा सकोगे तो—यह नहीं कहा कि श्रीराम लौट जायेंगे और श्रीसीता को मैं हार जाऊँगा। **फिरिहिं राम सीता मैं हारी** अर्थात् तब रामचन्द्रजी और सीताजी तो लौट जायेंगे और मैं अपनी हार मान लूँगा। यहाँ *मानसपीयूष*ने जो जहर बोया, वह अच्छा नहीं। *मानसपीयूष*कारने लिख दिया टीकामें—"अङ्गद कह रहे हैं कि सीताजीको मैं हार जाऊँगा।" अरे! अङ्गद कौन होते हैं सीताजीको हारने वाले? राष्ट्राध्यक्षकी पत्नीको राजदूत कैसे हारेगा? **फिरिहिं रामसीता**—एक वाक्य है, **मैं हारी** दूसरा वाक्य। राम-सीताजी लौट जायेंगे और मैं अपनी हार मान लूँगा। पूरी सेना रावणकी पस्त हो गयी, परंतु अङ्गदजीका चरण एक तिलभर भी टससे मस नहीं हुआ। यह राष्ट्रका स्वाभिमान देखिये! **सदगुन सुरगन अंब अदिति सी** (मा. १.३१.१४)। अङ्गदका इतना सुन्दर नेतृत्व आज मुझे अच्छा लगा।

(७) **समर्पण**—अब सातवाँ सूत्र है समर्पण। यह सातवाँ सद्गुण है। सहयोग, विश्वास, समन्वय, प्रतिज्ञाकी दृढ़ता, सम्मान, स्वाभिमान, और सातवाँ सूत्र क्या होगा? समर्पण। राम-रावण-युद्ध प्रारम्भ हो गया। वानर-भालू रामजीके प्रति समर्पित हैं और **आधा कटक कपिन**

संघारा (मा. ६.४८.४)। समर्पण देखिये अब! मेघनादने यह घोषणा की—"आज (१) राम (२) लक्ष्मण, (३) नल (४) नील, (५) द्विविद (६) सुग्रीव, (७) अङ्गद, और (८) हनुमान; इन आठोंके देखते-देखते भ्रातृद्रोही विभीषणको मैं मार डालूँगा।" सभी वानर मूर्च्छित हो गये मित्रो! मेघनादने सबको मूर्च्छित किया और स्वयं रामजीसे युद्ध करने लगा। लक्ष्मणजीने कहा—"अच्छा नहीं लग रहा है भगवन्! इससे मैं युद्ध करूँगा। यह मांसाहारी है, मैं फलाहारी हूँ। मेघनाद व्यभिचारी है, मैं ब्रह्मचारी हूँ। मेघनादने इन्द्रको जीता, मैंने इन्द्रियोंको जीता। मेघनादकी माता मन्दोदरी है, मेरी माता मैथिली हैं। मेघनादका पिता रावण है और मेरे पिताके समान आप हैं राघव!" युद्ध किया लक्ष्मणजीने। मित्रो! क्या युद्ध है! इतना सुन्दर युद्ध! मेघनादने कहा—"अब तो मैं मर ही रहा हूँ, अब वीरघातिनी-शक्तिका प्रयोग करूँगा।" ज्यों वीरघातिनी शक्ति छोड़ी—

बीरघातिनी छाड़िसि साँगी। तेजपुंज लछिमन उर लागी॥

(मा. ६.५४.७)

अब यहीं समर्पण देखिये! वीरघातिनी-शक्तिका प्रयोग मेघनादने किया और किया था वह प्रयोग विभीषणपर। *गीतावली*में कहेंगे—

लागति साँगि बिभीषन ही पर सीपर आपु भए हैं

(गी. ६.५)

मेघनादने विभीषणपर शक्तिका प्रयोग किया था, पर लक्ष्मणजीको लगा। यदि आज विभीषण मर जायेंगे, तो भगवान् रामके यशमें कलङ्ककी कालिमा लग जायेगी। और भगवान् राम एक राष्ट्र हैं, राष्ट्रके अध्यक्ष नहीं! भगवान् स्वयं भारत हैं। अत: लक्ष्मणने कहा—"भले मैं मर जाऊँ, पर मेरे रहते मेरे देशका स्वाभिमान नहीं गिरना चाहिए।" इसलिए मित्रो! विभीषणको लक्ष्मणजीने पीछे धकेला और स्वयं वीरघातिनी-शक्तिको अपनी छातीमें ले लिया। यह है समर्पण! इतना बड़ा समर्पण! यही सातवाँ सूत्र है समर्पण! सातवाँ सद्गुण है समर्पण! वीरघातिनी लगनेसे लक्ष्मणजीकी छातीके चार टुकड़े हो गये, लक्ष्मणजी मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

(८) **भ्रातृप्रेम**—अब आठवाँ सद्गुण है भ्रातृप्रेम। भगवान् राम पूछते हैं—"लक्ष्मण कहाँ हैं?" तभी—**तब लगि लै आयउ हनुमाना** (मा. ६.५५.६)। हनुमान्‌जी ले आये। राघवजी दु:खी हो गये। हे राम!

गिरि कानन जैहैं साखामृग हौं पुनि अनुज-सँघाती।
ह्वैहै कहा बिभीषनकी गति रही सोच भरि छाती॥

(गी. ६.७)

रामजी फूट-फूटकर रो रहे हैं आज! स्मरण कितना है? रामजी कहते हैं कि सबका तो कोई न कोई ठाँव है, पर विभीषणका क्या होगा?—

तुमहुँ तो चले सुरलोक सहोदर मेरे हो प्राण तुम्हीं संग जईहैं।
पति देवरकी यह देखि दशा तब सीतहूँ सिंधुकी गोद समईहैं।

जितने रहे भालू कपि दलमें उन्हुँ वन कुंजन जाई छिपईहैं।
तुलसी यह सोच बसि उरमें केकरे गृह भक्त विभीषण जईहैं॥

(९) **शरणागत पर निष्ठा**—रामजीकी शरणागतपर निष्ठा है कि हमने विभीषणको शरणमें लिया है। यह हमारा आदर्श है। कुछ लोग कहते हैं कि चीनके हम शत्रु क्यों बने? क्योंकि दलाई लामाको हमने शरण में लिया, यह हमारा आदर्श है। आज भी बलूच नेता कह रहे हैं कि हमको शरणमें लिया जाए, हम विचार कर रहे हैं। रामजीकी शरणागतपर निष्ठा देखें कि विभीषणका क्या होगा? यह नौवाँ सूत्र है।

सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। रघुबरभगति प्रेम परमिति सी॥

(मा. १.३१.१४)

(१०) **राष्ट्रभक्ति**—दसवाँ सद्गुण है राष्ट्रभक्ति। अब सुनिये क्या बात है! हनुमान्‌जी रावणके वैद्य सुषेणको ले आये है—

जामवंत कह बैद सुषेना। लंका रहइ को पठइय लेना॥
धरि लघु रूप गऍउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता॥

(मा. ६.५५.७–८)

इसका अर्थ आपने समझा? सुषेणको लङ्कासे क्यों लाये? **सदगुरु बैद बचन बिश्वासा** (मा. ७.१२२.६)—सुषेण कौन हैं? दार्शनिक भाषामें सद्गुरु हैं। और लङ्का क्या है? प्रवृत्ति-गृहस्थीका चक्कर! जबतक गुरु गृहस्थीके चक्करमें रहेगा, तबतक वह शिष्यकी औषधि नहीं कर सकता—यह सिद्धान्त है। क्योंकि यदि गृहस्थ गुरु होगा, तो तुममें और उसमें अन्तर क्या है? बताओ! तुम भी बच्चा पैदा कर रहे हो, वह भी कर रहा है। तुमसे थोड़ा अलग होना चाहिए कि नहीं? इसलिए जबतक लङ्कामें रहे सुषेण, तबतक औषधि नहीं कर सके और रावणके यहाँ किसीकी औषधि नहीं कर पाये। इतने लोग मरे, पर औषधि नहीं कर पाये। इसलिए हनुमान्‌जी इनको यहाँ ले आये। और गृहस्थीकी कीचड़में फँसे व्यक्तिको भगवान्‌की ओर ले कौन जाता है? बताओ! संत ले जाते हैं संत। इसीलिए भवनके सहित ले आये हनुमान्‌जी और जब रामजीकी शरणमें आ गये और लक्ष्मणजीकी औषधि कर दी चकाचक—**कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन** (मा. ६.५५)।

(११) **विशुद्ध कथा**—ग्यारहवाँ सद्गुण है विशुद्ध कथा। यह देखिये! हनुमान्‌जी जा रहे हैं। कालनेमिने उनको रोकना चाहा। देखिये! इतना ध्यान रखना चाहिए कि कथावाचक तो बहुत हैं, पर ध्यान रहे कि हम किससे कथा सुन रहे हैं? शुकाचार्यसे अथवा कालनेमिसे? कालनेमिकी क्या पहचान है? जब वक्ता श्रीरामकथा-श्रीकृष्णकथाको छोड़कर संसारकी कथा कहने लग जाए, जान लो कि यह कालनेमि है। अब बताइये! हनुमान्‌जी कालनेमिसे कथा सुन रहे हैं पर—**माँगा जल तेहिं दीन्ह कमंडल** (मा. ६.५७.७)। अब बताइये! वक्तासे कोई पानी पीनेके लिए कहता है क्या? वक्तासे कोई पानी नहीं माँगता, पर हनुमान्‌जीने कालनेमिसे पानी माँगा—"अच्छा बाबा! कथा बंद करो, थोड़ा पानी पिलाओ।" लेओ! क्या हनुमान्‌जीको यह ज्ञान नहीं है कि वक्ताको इस प्रकार अपमानित नहीं करना चाहिए? ज्ञान है पर हनुमान्‌जीने देख लिया कि यह वक्ता नहीं है, यह ISIS का agent है। कैसे?

होत महा रन रावन रामहिं (मा. ६.५७.५)—ये लो! कालनेमिने कहा—"रावण-राम का युद्ध!" हनुमान्‌जीने सोचा कि बस! बस!! हो गया! यह या तो ISI का या ISIS का agent है! अरे! वक्ता पहले रामजीका नाम लेता है, रावणका नाम थोड़े ही लेता है? यह तो रामजीका नाम बादमें ले रहा है। बदमाश है यह! "बस बाबा! अब कथा बन्द करो और पानी पिलाओ।" बढ़िया श्रोता कालनेमिको मिला! इतना ध्यान रखिये कि यदि वक्ता श्रीराम-कृष्णकथाको छोड़कर व्यर्थकी बात करने लग जाए, तो उसी समय उसकी कथा बन्द करवा देनी चाहिए—**माँगा जल तेहिं दीन्ह कमंडल** (मा. ६.५७.७)। यही ग्यारहवाँ सद्गुण है। हमें कथा रामजीकी सुननी है, हम शेर-शायरी, चुटकला-कव्वाली सुनने थोड़े आये हैं! अप्सराने बता दिया—**मुनि न होई यह निशिचर घोरा** (मा. ६.५८.२)। हनुमान्‌जीने मार डाला कालनेमिको।

देखा भरत बिशाल अति निशिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ चाप स्रवन लगि तानि॥

(मा. ६.५८)

भरतजीके बाणसे हनुमान्‌जी श्रीअयोध्याकी धरतीपर गिर पड़े। भगवान्‌ने लीला रची थी कि दण्डवत् हो जाए अयोध्याको, अतः दण्डवत् करवा दी। हनुमान्‌जी इसीलिए विजयी बनेंगे क्योंकि अयोध्याकी माटी इनके शरीरको लग रही है। भरतजीने समाचार सुना—"यह क्या हो रहा है? भरतजीने कहा—**चढ़ु मम सायक शैल समेता** (मा. ६.६०.६)—आप मेरे बाणपर बैठ जाओ! मैं आपको प्रभुके यहाँ भेज रहा हूँ।" हनुमान्‌जीने कहा—"नहीं! रामजी आपके बड़े भाई हैं। मैं रामजीका बाण हूँ—

जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना॥

(रा.च.मा. ५.१.८)

और यह आपका बाण है, अतः यह मेरा छोटा भाई है। बड़ा भाई छोटे भाईकी गोदमें नहीं बैठता, इसलिए नहीं बैठूँगा।" और कह दिया—

तव प्रताप उर राखि गोसाईं। जैहों राम बान की नाईं॥

(मा. ६.६०.९)

यह चौपाई गीताप्रेसने नहीं लिखी है। मैंने ढूँढकर अपने संपादनमें लिखी है। रामजी बहुत दुःखी हैं और कहते हैं—

निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम प्रान अधारा॥

(मा. ६.६१.१४)

यहाँ संदेह नहीं करना चाहिए। **एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा** अर्थात् *एक*के बहुत अर्थ होते हैं—(१) एक माने दूसरा, (२) एक माने प्रधान, (३) एक माने प्रथम, (४) एक माने एकमात्र। तो यहाँ **एक**का तीसरा अर्थ लिया—प्रथम। **एक कुमारा** अर्थात् "हे लक्ष्मण! तुम अपनी माताके **प्रथम बेटे** हो। मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा?" हनुमान्‌जी महाराज आ गये। क्या राष्ट्रभक्ति है हनुमान्‌जीकी! आनन्द कर दिया!

(१२) **धर्म**—अब एक ही गुण है, जो बहुत महत्त्वपूर्ण है। बारहवाँ सद्गुण है धर्म। पूरे संग्रामको

देखिये! भगवान् राम कुम्भकर्णका वध कर रहे हैं। रामजीका घनघोर युद्ध कुम्भकर्णसे हो रहा है। सारे वानरोंको कुम्भकर्णने नष्ट और मूर्च्छित किया। रामजीसे युद्ध हो रहा है कुम्भकर्णका। रामजी ज्ञानस्वरूप हैं और कुम्भकर्ण अहंकारस्वरूप है। अहंकार सबको खा जाता है, परंतु रामजीने कुम्भकर्णका वध किया—

तब प्रभु कोपि तीब्र शर लीन्हा। धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा॥

(मा. ६.७१.४)

जय-जयकार हो गयी। कुम्भकर्णका वध हुआ। देवता प्रसन्न हुए, पुष्पोंकी वर्षा की।

॥ बोलिये समरविजयी राजा रामचन्द्र भगवान्‌की जय हो ॥

बहुत अच्छा सिद्धान्त है यहाँ! मेघनादने भगवान् रामको नागपाशमें बाँधा। मेघनादको लगा कि सर्प रामजीको डसेंगे, पर सर्प लोग डस ही नहीं रहे हैं रामजीको। मेघनादने कहा—"मूर्खो! तुम रामजीको डस क्यों नहीं रहे हो?" सर्पोंने कहा—"इसलिए नहीं डस रहे हैं, क्योंकि हम लोग सर्प हैं और सर्पको मणि प्रिय होती है।" क्या प्रिय होती है? मणि! और रामचन्द्रजी कौन हैं?

रघुकुलमनि दशरथ के जाये। मम हित लागि नरेश पठाये॥

(मा. १.२१६.८)

यह हैं रामायणजी! रामजी रघुवंशकी मणि हैं। तो सर्पको तो मणि प्रिय होती ही है, इसलिए रामजीको साँप नहीं डस रहे हैं। क्या आनन्द हो रहा है! यही तो रामायणजीका अपना एक आनन्द है! सर्पोंने मेघनादसे कहा—"जो अपनी माँकी बात नहीं मानता, उसे भोगना पड़ता है। तुम्हारी माँने कहा था कि रामजीसे संधि कर लो, पर तुम नहीं माने। तुम्हारा नाश होगा। और हमारी माँने कहा कि हे सर्पो! जब रामजीको निहाकर हमने अपना जहर उगल दिया, उनको नहीं डसा, तो अब तुमको भी नहीं डसना है—"

जिन्हहिं निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिष तामस तीछी॥

(मा. २.२६२.८)

आनन्द कर दिया! मेघनादका लक्ष्मणजीसे युद्ध हो रहा है। ब्रह्माजीने मेघनादको वरदान दिया है कि जो बारह वर्ष निद्रा-नारी-भोजनका त्याग करेगा, वही मेघनादको मार सकता है। और लक्ष्मणजीके चौदह वर्ष बीत गये हैं। मेघनादका वध किया लक्ष्मणजीने। देवता बहुत प्रसन्न हुए। स्तुति करने लगे—**जय अनंत जय जगदाधारा** (मा. ६.७७.४)। जय-जयकार होने लगी। अब देखिये! हम आपको बता चुके हैं कि बारहवाँ जो सद्गुण है, बहुत अद्भुत है। बारहवाँ सद्गुण है धर्म।

सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। रघुबरभगति प्रेम परमिति सी॥

(मा. १.३१.१४)

अद्भुत आनन्द! रावण रथी है, रामचन्द्रजी विरथ हैं—**रावन रथी बिरथ रघुबीरा** (मा. ६.८०.१)। विभीषणजी अधीर हो गये—"अरे राम! क्या होगा?"

नाथ न रथ नहिं तनु पद त्राना। केहि बिधि जीतब रिपु बलवाना॥

(मा. ६.८०.३)

"इसको अब कैसे जीत पायेंगे प्रभु?" तब रामजीने कहा—**जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना** (मा. ६.८०.४)। "जिससे रावणको जीता जा सकेगा, वह दूसरा रथ है।" विभीषणजीने पूछा कि कौन-सा रथ है प्रभु? तो कहा—

सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके॥

(मा. ६.८०.११)

रामजीका धर्मरथ है, रावणका अधर्मरथ है। धर्म माने क्या होता है? बताओ! यह चर्चा करनी बहुत आवश्यक है। धर्म माने क्या है? घण्टी बजा देना धर्म है? कुछ लोग मन्दिरमें लोगोंकी जेब भी काटते हैं और घण्टी भी बजा देते हैं। कुछ लोग सायंकाल दो-दो बोतल चढ़ा लेते हैं और सबेरे बगुलाभगत बनकर मन्दिरमें आ जाते हैं भगवान्‌के दर्शन करनेके लिए। यह धर्म नहीं है। क्या है धर्म? जो हमें कर्तव्य मिले हैं—चाहे राष्ट्रसे मिले हों, चाहे समाजसे, चाहे परिवारसे, चाहे अपने शरीरसे, चाहे वर्णसे, चाहे आश्रमसे—अपने कर्तव्योंका निष्ठापूर्वक निर्वहन करना ही सबसे बड़ा धर्म है। मैं तो यही मानता हूँ। जिस दिन काम करते-करते पूजाका समय न मिले, जान लो कि उस दिन भगवान्‌की सही पूजा हुई है। मैं भी बहुत काम करता हूँ। बहुतसे ऐसे दिन आ जाते हैं कि भगवान्‌की पूजाका समय नहीं मिलता। तब तुम्हारी बुआजीसे कहता हूँ कि आप जरा भगवान्‌की सेवा कर लीजिये! धर्म यही है—**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः** (भ.गी. १८.४६)। भगवान्‌की गुलाबके फूलसे पूजा मत करो, यह तो सूख जायेगा। कमलसे पूजा मत करो! यह सब गड़बड़ है। अपने कर्मसे भगवान्‌की पूजा करनी चाहिए। इतना सुन्दर कर्म करें कि परमात्मा भी झूम जाएँ कि बेटा! बहुत अच्छा काम किया तुमने।

राम-रावण युद्ध बहुत घनघोर चला। सीताजी बहुत चिन्तित हैं कि रावण मर ही नहीं रहा है। तब विभीषणने रामजीको बताया—

नाभीकुंड सुधा बस याके। नाथ जियत रावन बल ताके॥

(मा. ६.१०२.५)

गीताप्रेसका पाठ है—**नाभिकुंड पियूष बस याकें** (मा.गी.प्रे.), हमारे पाठमें **नाभीकुंड सुधा बस याके** है। इसके नाभिकुण्डमें अमृत है। भगवान्‌ने दस बाणोंसे रावणके सिर काट दिये, बीस बाणोंसे बीस भुजाएँ काट दीं, एक बाणसे रावणकी नाभिकुण्डका अमृत सोख लिया। रावण भूमिपर गिर पड़ा। जय-जयकार हो गयी।

डोली भूमि गिरत दशकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर॥

(मा. ६.१०३.५)

जय-जयकार हो रही है चारों ओर भगवान् रामकी। अधर्मका वध हो गया, अन्यायका वध हो गया, कदाचारका वध हो गया, अत्याचारका वध हो गया। सब देवता जय-जयकार कर रहे हैं—

जय कृपाकंद मुकुंद द्वंद्वहरन शरन सुखप्रद प्रभो।
खलदल बिदारन परम कारन कारुनीक सदा बिभो॥

(मा. ६.१०३.१२)

जय-जयकार हो रही है। प्रभुने विभीषणको राज्याभिषिक्त किया। और सीताजीको ले आये हनुमान्‌जी तथा विभीषणजी। "मायाकी सीता हैं ये!"—भगवान्‌ने कहा, **तेहि कारन करुनायतन कहे कछुक दुर्बाद** (मा. ६.१०८)। सीताजीकी अग्निपरीक्षा नहीं हो रही है, उनका अग्निसे प्रत्यावर्तन हो रहा है। सीताजीको भगवान् राम अग्निसे लौटा रहे हैं। अरण्यकाण्डमें कहा था—**तुम पावक महुँ करहु निवासा** (मा. ३.२४.२)—आप अग्निमें निवास कीजिये। आज समय पूर्ण हो गया! अब वही भगवान् श्रीसूक्त पढ़ रहे हैं—

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्त्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥

(ऋ.वे. श्रीसूक्त १)

पंद्रह मन्त्र भगवान् रामने पढ़े—"हे अग्निदेव! मेरी गृहलक्ष्मीको **आवह** माने लौटा दीजिये!" क्यों लौटा दें? क्योंकि अग्निकी शरणमें सीताजी हैं, इसलिए लौटानेके लिए कह दिया। मायाकी सीताजी अग्निमें चली गयीं और वास्तविक सीताजी खेल रही हैं अग्निकी ज्वालाओंमें। मस्तकपर एक बूँद भी पसीना नहीं है—

श्रीखंड सम पावक प्रबेश कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।

(मा. ६.१०९.९)

सीताजीकी साड़ीका एक सूत भी नहीं जल रहा है। कहीं झलका भी नहीं पड़ा। **नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः** (भ.गी. २.२३) अग्नि कैसे जलायेगी? सीताजी परमात्मातत्त्व हैं।

जिमि छीरसागर इंदिरा रामहिं समर्पी आनि सो॥

(मा. ६.१०९.१०)

जय-जयकार हो रही है, देवता प्रसन्न हो रहे हैं। बहुत आनन्द हो गया! देवताओंने पुष्पोंकी वर्षा की। जनकनन्दिनी सीता महारानीजूकी जय! अद्भुत आनन्द हो गया! परीक्षा नहीं की उनकी! देवताओं तथा ब्रह्माजीने भी भगवान्‌की स्तुति की। दशरथजी महाराज आये—

तेहि अवसर दशरथ तहँ आये। तनय बिलोकि नयन जल छाये॥

(मा. ६.११२.१)

बहुत आनन्द आ रहा है! इन्द्रने स्तुति की और कहा—"आज्ञा! मुझे कोई सेवा दीजिये!" यही तो देखिये! इसीलिए रामजी प्रिय हैं? क्या कारण है कि आज नेताओंको रामजी नहीं पच रहे हैं? इतना बड़ा मातृभूमिभक्त कोई आजतक हुआ ही नहीं! लक्ष्मणजीने कहा कि कतिपय दिन लङ्कामें विश्राम कर लिया जाय। राघवजीने कहा चुप—

अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरियसी॥

भले सोनेकी लङ्का है, पर मुझे अच्छी नहीं लग रही है। नियम यह है कि माँ और मातृभूमि—ये स्वर्गसे भी श्रेष्ठ होती हैं। कितना राष्ट्रभक्त! इतना घोर युद्ध हुआ, अयोध्यासे कुछ नहीं लिया। और अयोध्याका कोई सिपाही नहीं मरा। छोटा-सा वानर मर रहा है, भगवान्‌ने कहा कि अमृत वर्षा करो इन्द्र! इन्द्रने अमृत वर्षा कर दी और सारेके सारे जीवित हो गये! जाओ! यह है राष्ट्रके प्रति कृतज्ञता! महाभारतमें भगवान्‌ने अपने भांजे अभिमन्युको भी नहीं जिलाया। कोई

नहीं बचा। केवल छः लोग बचे पाण्डवोंमें! महाभारतमें कोई नहीं बचा और रामायणमें कोई नहीं मरा, यह है रामजीका व्यक्तित्व! सारे वानर-भालू—

सुधाबृष्टि भै दुहुँ दल ऊपर। जिये भालु कपि नहिं रजनीचर॥

(मा. ६.११४.६)

आनन्द कर दिया भगवान्ने!

विभीषणने कहा—"यह सब सम्पत्ति वानरोंको दे दीजिये!" भगवान्ने कहा—"नहीं! नहीं!

तोर कोश गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात।
दशा भरत की सुमिरि मोहि निमिष कल्प सम जात॥

(मा. ६.११६क)

मुझे मेरी अयोध्या जल्दी भेजो! मेरे भरतजी प्राण देनेको उद्यत हो रहे हैं। अवधि बीतनेपर जाऊँगा, तो मैं जीते ही नहीं पाऊँगा अपने भैयाको।" सबको पुष्पकपर बैठा लिया। देखिये, आज आये दिन दुर्घटनाएँ होती हैं। नितिन गडकरी बोलते रहते हैं कि हेलमेट पहनकर रखिये। गाड़ी चलाते समय मोबाइल मत देखिये। नियमोंका पालन कीजिये। पर उनको यह भी कहना चाहिए, मैं तो यह कहूँगा कि, जब भी आप यात्रा कीजिये इस एक चौपाईको ग्यारह बार पढ़ लीजिये; कभी आपका accident नहीं होगा—

चलत बिमान कोलाहल होई। जय रघुबीर कहइ सब कोई॥

(मा. ६.११९.३)

पुष्पक विमानके सिंहासनपर भगवान् आरूढ हो रहे हैं। वानर-भालू प्रसन्न हैं, सबको बैठा लिया। यही है—**प्रजा सहित रघुबंशमनि किमि गवने निज धाम** (मा. १.११०)। सारे वानर-भालुओंको अपने विमानपर प्रभुने बैठा लिया। आ रहे हैं। बारह सद्गुण प्रकट हुए, आपने देखा। और इधर भी इन वानरोंमें बारह सद्गुण हैं—

जो नर होइ चराचरद्रोही। आवइ सभय शरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बंधु सुत दारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी॥
समदरशी इच्छा कछु नाहीं। हरष शोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभीहृदय बसइ धनु जैसे॥
तुम सारिखे संत प्रिय मोरे। धरउँ देह नहिं आन निहोरे॥
सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन के द्विजपद प्रेम॥

(मा. ५.४८.२–८, ५.४८)

(१) **आवइ सभय** (२) **शरन तकि मोही**—ये भी भगवान्की शरणमें आये हैं; (३) **तजि मद मोह कपट छल नाना**—ये भी मद, मोह, कपट, छल छोड़ चुके हैं; (४) **जननी जनक बंधु सुत दारा, तन धन भवन सुहृद परिवारा**—ये दसों ममताएँ छोड़कर, **सब कै ममता ताग बटोरी, मम पद मनहिं बाँध बरि डोरी**—अपने मनको भगवान् में बाँध चुके हैं; (५)

समदरशी—ये भी समदर्शी है; (६) **इच्छा कछु नाहीं**—इन्हें कोई इच्छा नहीं; (७) **हरष शोक भय नहिं मन माहीं**—हर्ष, शोक, भय नहीं है इनमें; (८) **सगुन उपासक**—सारे वानर सगुण ब्रह्मके उपासक है; (९) **परहित निरत**—परहितमें लगे हैं, इनको क्या लेना-देना बेचारोंको; (१०) **नीति दृढ़**—दृढ़ नीति है, रावण भी इन्हें विचलित नहीं कर पाया; (११) **नेम**—अपने नियमके पक्के हैं; (१२) **ते नर प्रान समान मम जिन के द्विजपद प्रेम**—रामजीमें समर्पण तो समर्पण, द्विज-पद-प्रेम, ब्राह्मणोंके प्रति भी प्रेम है इनको। बोलिये भक्तवत्सल भगवान्‌की जय हो!

इस प्रकार पुष्पक विमान आ रहा है। रामजी सीताजीको युद्धभूमि दिखा रहे हैं—"सीते! देखो—"

कह रघुबीर देखु रन सीता। लछिमन इहाँ हत्यो इंद्रजीता॥

(मा. ६.११९.९)

"यह देखो! यहाँ मेघनादको लक्ष्मणजीने मारा।"

हनूमान अंगद के मारे। रनमहि परे निशाचर भारे॥

(मा. ६.११९.१०)

"ये देखो बड़े-बड़े राक्षस पड़े हैं। इन्हें हनुमान्‌जी और अङ्गदजीने मार डाला। ये नहीं जी पाये अमृतवर्षासे।" तो सीताजी सोचती हैं—"आपने क्या किया?" आजकल होता है न कि लोग भले ही बाजारमें लात खायें पर पत्नीके सामने साक्षात् ईश्वर ही बने रहते हैं। पर रामजी कितने अच्छे हैं! रावण-कुम्भकर्णको मारा है रामजीने, पर अपना नाम नहीं लिया—

कुंभकरन रावन द्वौ भाई। इहाँ हते सुर मुनि दुखदाई॥

(मा. ६.११९.११)

यहाँ देवता, मुनियोंके शत्रु कुम्भकर्ण-रावण **हते** अर्थात् **मारे गये**। किसने मारा? यह प्रभुने नहीं कहा। यह देखिये व्यक्तित्व! **इहाँ सेतु बाँध्यो अरु थापेउँ शिव सुख धाम** (मा. ६.११९क)। विमान दण्डकवनमें आया। चित्रकूट उतरा—**सकल ऋषिन सन पाइ अशीशा, चित्रकूट आये जगदीशा** (मा. ६.१२०.३) हम लोग जब कामदगिरिकी परिक्रमा करते हैं तो जहाँ विमान उतरा था भगवान्‌का, वहाँ थोड़ी देर रूक जाते हैं। यह नियम है कामदगिरिकी परिक्रमाका।

आहाहा! यमुनाजीके दर्शन किये। गङ्गाजी दिखीं। राघवजीने कहा—"सीते! प्रणाम करो।" **राम कहा प्रनाम करु सीता** (मा. ६.१२०.६)। "ओह देखो! त्रिवेणी! वो मेरी अयोध्या! आहाहा!" भगवान्‌ने प्रणाम किया और **कपिन सहित बिप्रन कहँ दान बिबिध विधि दीन्ह** (मा. ६.१२०ख)। तो दान कहाँसे मिला होगा? वही जो समुद्रने दिया था—

कनकथार भरि मनिगन नाना। बिप्ररूप आयउ तजि माना॥

(मा. ५.५८.८)

वही दान दे दिया। हनुमान्‌जीसे कहा—"तुम जल्दी ब्राह्मणका वेश धारण करके अयोध्या जाओ।" हनुमान्‌जी ब्राह्मणका वेश धारण करके अयोध्या आ रहे हैं। भरद्वाजसे मिले भगवान्। विमान उतरा, सीताजीने गङ्गाजीकी पूजा की—**तब सीता पूजी सुरसरी** (मा. ६.१२१.८)।

निषादसे भगवान् मिले। यह युद्धकाण्ड सम्पन्न!

समरबिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिनहिं देहिं भगवान्॥

(मा. ६.१२१क)

सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय हो!
अब उत्तरकाण्ड! बहुत अच्छा काण्ड है!

कथा २८: रघुबर भगति (मा. १.३१.१४)

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम्॥

(मा. ७ म.श्लो. १)

यहाँका वर्णन बहुत अच्छा है! भगवान् कैसे हैं? नीले वर्णके—**केकीकण्ठाभनीलं** अर्थात्, मोरके कण्ठके समान भगवान् नीले हैं। कितना सुन्दर कहा! विवाहकालमें कहा—**केकि कंठ दुति श्यामल अंगा** (मा. १.३१६.१) और यहाँ कह रहे हैं **केकीकण्ठाभनीलं**। ऐसा क्यों? देखिये! मोरका गला हमने देखा है। बचपनमें हमारे यहाँ मोर नाचते थे। एक मोर बहुत परिचित था हमारा, वह मेरी गोदमें आकर बैठ जाता था। उसके गलेकी विशेषता यह होती है कि नीला तो होता है मोरका गला, परन्तु नीलेके साथ लाल-लाल बुन्दकियाँ भी उसके गलेमें दिखायी पड़ती हैं। है न! यह बात क्यों कही? कहा कि विवाहकालमें तो भगवान् नीले वर्ण के हैं ही, पर लाल-लाल महावर दिखायी पड़ रहा है, इसलिए मोरके गलेके समान हैं। फिर यहाँ लाल क्या है? रावणको जो भगवान् राम ने मारा है, तो रावणके खूनके छींटेसे भगवान्‌का शरीर थोड़ा-थोड़ा लाल हो गया है—

शोनित-छीट छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहैं महा छबि छूटीं।
मानो मरक्कत-सैल बिसाल में फैलि चलीं बर बीरबहूटीं॥

(क. ६.५१)

अद्भुत आनन्द हो रहा है! तो यहाँ छींटे क्यों पड़े? भगवान् राम बहुत कृपालु हैं। भगवान्‌ने विचार किया—"रावणका कुछ विसर्जित किया जाए प्रयागमें। अस्थि-विसर्जन नहीं कर सकते क्योंकि पुष्पक विमान मृतकको नहीं ढोता, उसका नियम है।" तो भगवान्‌ने सोचा—"और लोग तो प्रयागमें अस्थि-विसर्जन करते हैं, मैं ऐसी लीला करूँगा कि रावणकी अस्थि-विसर्जन नहीं, मैं प्रयागमें रावणका रक्त विसर्जन करूँगा।" इसलिए ऐसा बाण मारा कि रावणके रक्तके छींटे भगवान् रामके शरीरपर विराज रहे हैं। रावणवधके समयसे भगवान् रामने स्नान नहीं किया है, सीधे पुष्पक विमानमें बैठ गये थे। अब प्रयागमें स्नान करेंगे, तो रावणका रक्त विसर्जन हो गया। **केकीकण्ठाभनीलं**।

इधर—

रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृशतनु रामबियोग॥

(मा. ७ म.दो. १)

बहुत अच्छा काण्ड है!

अब अठाईसवीं कथा **रघुबरभगति** (मा. १.३१.१४), यह रामजीकी भक्तिकी परिमिति है— **रघुबरभगति प्रेम परमिति सी** (मा. १.३१.१४)। बहुत आनन्द कर रहे हैं रामजी! रामजीकी भक्तिकी सीमा है अठाईसवीं कथा। भरतजी बैठे हैं—

रहा एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भऍउ अपारा॥

(मा. ७.१.१)

प्रभु क्यों नहीं आये?—**कारन कवन नाथ नहिं आऍउ** (मा. ७.१.२)। रघुवरकी भक्तिकी सीमा क्यों कही? इसलिए कि कहा जाता है कि व्रजाङ्गनाएँ भक्तिकी आचार्या हैं। तुलसीदासजीने कहा कि व्रजाङ्गनायें भक्तिकी आचार्या तो हैं, परन्तु क्रोधमें उन्होंने भी भगवान्‌को कपटी कह दिया। किसने कहा? व्रजाङ्गनाओंने। देखिये—**कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि** (भा.पु. १०.३१.१०), **कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि** (भा.पु. १०.३१.१६)। व्रजाङ्गनाओंने श्रीकृष्णको **कितव** कह दिया, परन्तु यहाँ तो भरतजी रामजीको कभी **कपटी** नहीं कह रहे हैं। वे तो कहते हैं—

कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ता ते नाथ संग नहिं लीन्हा॥

(मा. ७.१.४)

इसलिए **रघुबरभगति प्रेम परमिति सी** (मा. १.३१.१४)। रामजीके भक्तकी परिमति, ऐसी भक्ति कहीं देखी नहीं! वहाँ तो भगवान् अवधि बढ़ाते रहे, गोपियाँ मानती रहीं। सौ वर्ष बिता दिये अवधि बढ़ाते-बढ़ाते—

घर से घनश्याम गये कहिके हम आवेंगे ब्रज में परसों।
परसों ही देखत बाँट गयी ब्रज नारी के बीत गये बरसों।
बरसों पुनि भेंट नहीं अजहूँ अब तो ब्रज नाथ गये कर सों।
ब्रज नारी बेचारी विचार करें कब आवेंगे कुब्जा घर सों॥

वहाँ तो भगवान् अवधि बढ़ाते रहे और गोपियाँ सहन करती रहीं। यहाँ तो भरतजीने कहा कि यदि चौदह वर्षसे एक क्षण भी आगे गया और आप नहीं लौटे; तो आपके चरणोंकी शपथ! मैं तो मरूँगा ही, सभी परिजन भी मर जायेंगे—

तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जो रघुबीर न ऐहौ।
तौ प्रभु-चरन-सरोज-सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ॥

(गी. २.७६)

यह देखिये! इसलिए रामजीको स्वयं डर लगा और इसलिए पुष्पक ले आये कि जल्दी मुझे पहुँचना है। और पुष्पकसे भी जब काम न बना, कहीं रातमें ही भरतजीके प्राण न चले जायें,

तो हनुमान्‌जीको भेज दिया कि जल्दी जाओ—

प्रभु हनुमंतहिं कहा बुझाई। धरि बटुरूप अवधपुर जाई॥
भरतहिं कुशल हमारि सुनाऐहु। समाचार लै तुम चलि आऐहु॥

(मा. ६.१२१.१–२)

यह देखो! भरतजी व्याकुल हैं। अन्यत्र ग्रन्थोंमें लिखा है कि जलनेके लिए चिता लगा ली, केवल प्रवेश करना अवशेष है।

जौ करनी समुझैं प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप शत कोरी॥

(मा. ७.१.५)

"क्या करूँ? मैंने हनुमान्‌जीको बाणसे विद्ध कर दिया था, कहीं भगवान् इसीपर रुष्ट तो नहीं हो गये?" कह दिया हमारी भोजपुरीमें—

जानी कुटिल बिसरा गइले का भईया नहीं अइले॥
हमरा के कपटी कुटिल पहिचनले।
तेहि ते वन में विलमा गइले का भईया नहीं अइले।
जानी कुटिल बिसरा गइले का भईया नहीं अइले॥
मारुति की मस्तक पे बाण हम मरली।
तेहीं अपराध बिसरा गइले का भईया नहीं अइले।
जानी कुटिल बिसरा गइले का भईया नहीं अइले॥
एक दिन बचल अवधि के अधरवा।
काहूँ भक्त वृन्द में लुभा गइले का भईया नहीं अइले।
जानी कुटिल बिसरा गइले का भईया नहीं अइले॥
भईया भरत की बलिहार भक्ति।
***रामभद्राचार्य* के भुला गइले का भईया नहीं अइले।**
जानी कुटिल बिसरा गइले का भईया नहीं अइले॥

इसी समय

रामबिरह बारीश महँ भरत मगनमन होत।
बिप्ररूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥

(मा. ७.१क)

सागर महँ (मा.गी.प्रे.) नहीं **बारीस महँ**! आगे मिलेगा **बूड़त बिरह बारीश कृपानिधान मोहि कर गहि लियो** (मा. ७.५.१०)।

डूब ही रहे हैं भरतजी कि तबतक हनुमान्‌जी महाराज ब्राह्मणका वेष बनाकर आ गये। देखा हनुमान्‌जीने—

बैठे देखि कुशासन जटामुकुट कृशगात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात॥

(मा. ७.१ख)

हनुमान्‌जीने भरतजीको कुशासनपर देखा, राम राम राम राम जप रहे हैं, आँखोंसे आँसू बह

रहे हैं—**देखत हनूमान अति हरषेउ** (मा. ७.२.१)। हनुमान्‌जी बहुत प्रसन्न हुए—**पुलक गात लोचन जल बरषेउ** (मा. ७.२.१), आँखोंसे जल बरस गया। जाकर बोले कानमें—हे भैया! **जासु बिरह सोचहु दिन राती** (मा. ७.२.३)—जिनके विरहमें रात-दिन आप शोक करते रहते हैं, जिनके गुण-गणकी पङ्क्तियोंका निरन्तर रटन करते रहते हैं, वे ही—

रघुकुलतिलक सुजन सुखदाता। आऍउ कुशल देव मुनि त्राता॥

(मा. ७.२.४)

वे भगवान् राम रघुकुलके तिलक प्रभु, कौशल्याके सामने जब जा रहे थे—**रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा** (मा. २.५२.१)। वही **रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता** (मा. ७.२.४) रामचन्द्रजी सकुशल आ गये हैं।

रिपु रन जीति सुजश सुर गावत। सीता अनुज सहित प्रभु आवत॥

(मा. ७.२.५)

भरतजीने कहा—"मैंने समझा नहीं! पहले तो आपने कहा कि रामजी आ गये। फिर कहा कि रामजी आ रहे हैं। ऐसा क्यों?" हनुमान्‌जीने कहा—"मैं समझाता हूँ। आज रामजी दो विमानोंसे आ रहे हैं, दो रूप धारण करके—(१) एक तो पुष्पक विमानसे आ रहे हैं, सीताजी और लक्ष्मण सहित और (२) दूसरे मेरे हृदयके विमानपर अकेले आ रहे हैं। तो मेरे हृदयवाले रामजी आ गये और पुष्पकवाले रामजी आ रहे हैं।" क्या आनन्द!

मैंने बार-बार कहा न कि मैं रामायणजीको जीता हूँ, मैं कहता नहीं कभी कथा। I live Ramayana, I never speak about Ramayana. No. मैं तो जीता हूँ रामायणजीको, कहता नहीं हूँ।

तो भरतजीने कहा—"आप कौन हैं?" हनुमान्‌जीने अपना नाम बताया। पूरे हनुमच्चरित्रको रेखांकित एक ही पङ्क्ति करती है, बहुत अच्छी—उत्तरकाण्डके द्वितीय दोहेकी ११वीं पङ्क्ति! जय! जय!! (एक भक्त यहाँ हमको मिले। हनुमान्‌जीका चरित्र कहते हैं। हमने कहा कि यार! बहुत अद्भुत चरित्र है हनुमान्‌जीका!) कहते हैं—

कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते॥

(मा. ७.२.११)

बहुत अच्छी पङ्क्ति है रामायणजीकी! बहुत अच्छी पङ्क्ति है। भरतजी कहते हैं कि हे हनुमान्‌जी! कपि—*कममृतं पिबतीति कपिः*—आप तो मेरे अन्तर्रामजीके चरित्रामृतका पान करते रहते हैं। हे हनुमान्‌जी! (१) आपके दर्शनसे **सकल दुख बीते** सभी दुःख चले गये, और (२) **सकल दुख बीते** सभीके दुःख चले गये। आज मुझे प्यारे रामचन्द्रजी मिल गये—**मिले आजु मोहि राम पिरीते** (मा. ७.२.११)। सभीके दुःख चले गये, जिसने आपके दर्शन किये—(१) आपके दर्शनसे रामजीके दुःख चले गये, (२) आपके दर्शनसे लक्ष्मणजीके दुःख चले गये, (३) आपके दर्शनसे सुग्रीवजीके दुःख चले गये, (४) आपके दर्शनसे पूरे वानरोंके दुःख चले गये, (५) आपके दर्शनसे सीताजीके दुःख चले गये, और (६) आपके दर्शनसे आज मेरे दुःख भी चले गये—

कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते॥

(मा. ७.२.११)

आपके दर्शनसे **सकल दुख**—यहाँ षष्ठी तत्पुरुष समास है—**सकल दुख**, सभीके दुःख बीत गये। तो हनुमान्‌जी! एक बात बताइये। आज इतना तो मैं जान गया कि मुझे प्रभु अपना भाई मानते हैं। क्या मुझे कभी प्रभु अपने दासकी भाँति स्मरण करते हैं? हनुमान्‌जीने चरण पकड़ लिए। कैसा स्मरण करते हैं, यह तो भगवान् ही जानें—

भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं राम न सकहिं बखानी॥

(मा. २.२८९.२)

रघुबरभगति प्रेम परमिति सी (मा. १.३१.१४)। भरतजी कोशलपुर आये, सबको समाचार सुनाया। गुरुदेवको समाचार सुनाया। माताएँ दौड़ीं। भरतजीने सबको समाचार दिया। अयोध्यावासी चल पड़े प्रभुकी अगवानी करनेके लिए—

दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मंगलमूला॥
भरि भरि हेमथार लिय भामिनि। गावत चलिं सब सिंधुरगामिनि॥

(मा. ७.३.५–६)

माताएँ चल पड़ीं झूमकर! **बहुतक चढ़ीं अटारिन निरखहिं गगन बिमान** (मा. ७.३ख)—**बहुतक** बहुत माताएँ अथवा बहुएँ अट्टालिकाओंपर चढ़कर पुष्पक विमानको निहार रही हैं, **देखि मधुर सुर हरषित करहिं सुमंगल गान** (मा. ७.३ख) और गा रही हैं—

होनी होके रहती टाले नहीं टलती।
एक दिन हुआ था वनवास आज देखो राजतिलक है॥
जिसके माथे जटामुकट का दृश्य सभी ने देखा हो।
उसके माथेपर बिलसेगी आज तिलक की रेखा।
होनी होके रहती टाले नहीं टलती।
एक दिन हुआ था वनवास आज देखो राजतिलक है॥
चलो चले सब मिलके देखें आज अवध रजधानी।
***गिरधर* प्रभु राघव हैं राजा श्रीसीता महारानी।**
होनी होके रहती टाले नहीं टलती।
एक दिन हुआ था वनवास आज देखो राजतिलक है॥

॥ बोलिये राजारामचन्द्र भगवान्‌की जय ॥

विमान उतरा, गुरुदेवको भगवान्‌ने प्रणाम किया—**धाइ गहे गुरुचरन सरोरुह** (मा. ७.५.३)। आज धनुष-बाण नीचे रख दिया—

बामदेव बशिष्ठ मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक॥

(मा. ७.५.२)

प्रतिज्ञा की थी—"जबतक आतङ्कवाद समाप्त नहीं हो जायेगा, तबतक धनुष-बाण नीचे नहीं रखूँगा।" आज भारतका आतङ्कवाद समाप्त हो गया, खदेड़-खदेड़कर मारा भगवान्‌ने। अब हमारी सेनाको भी चाहिए कि इन्हें खदेड़-खदेड़कर इनके घरमें घुसकर मारो।

तो भरतजी मिले—**गहे भरत पुनि प्रभुपद पंकज** (मा. ७.५.६)। उठ नहीं रहे हैं। भगवान्ने बलका प्रयोग करके उठाया। आँखोंसे आँसू बह रहे हैं—**राजीव लोचन स्त्रवत जल तनु ललित पुलकावलि बनी** (मा. ७.५.९)। हृदयसे लगाकर मिले। शत्रुघ्नको मिले। लक्ष्मणजी और भरत मिले, शत्रुघ्नजी और लक्ष्मणजी मिले। दोनों भाइयोंने सीताजीको प्रणाम किया। **सीताचरन भरत सिर नावा** (मा. ७.६.२)—सीताजीके चरणोंमें शत्रुघ्नके सहित भरतजीने प्रणाम किया। सारे अयोध्यावासी मिलना चाहते हैं। अब भगवान्ने अनेक रूप बना लिये और एक क्षणमें सारे अयोध्यावासियोंसे मिल लिये—

अमित रूप प्रगटे तेहिं काला। जथाजोग मिले सबहिं कृपाला॥

(मा. ७.६.५)

रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी माताओंसे मिले। सब लोग आनन्द कर रहे हैं। सुन्दर शोभायात्रा निकल रही है। अब नन्दिग्रामसे श्रीअवध आ गये और वहाँ वसिष्ठजीने ब्राह्मणोंसे कहा—"देखिये! अब आप लोग अनुशासन दीजिये जिससे कि **रामचंद्र बैठहिं सिंघासन** (मा. ७.१०.५), रामजी राजा तो हैं ही! ये सिंहासनपर बैठ जाएँ।" ब्राह्मणोंने कह दिया—

अब मुनिवर बिलंब नहिं कीजै। महाराज कहँ तिलक करीजै॥

(मा. ७.१०.८)

वसिष्ठजी बहुत प्रसन्न हो रहे हैं—

प्रभु बिलोकि मुनिमन अनुरागा। तुरत दिब्य सिंहासन माँगा॥

(मा. ७.१२.१)

दिब्य सिंहासनका अर्थ यह है कि अयोध्याके सिंहासनपर तो पादुकाजी विराज ही रही हैं, इसलिए साकेतलोकसे भगवान्का दिव्य सिंहासन मँगवाया।

रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन सिर नाई॥

(मा. ७.१२.२)

सूर्यके समान तेजस्वी सिंहासन! **जनकसुता समेत रघुराई** (मा. ७.१२.३), सीताजीके समेत बैठ गये भगवान्! बहुत आनन्द हो रहा है!

रामं रत्नकिरीटकुण्डलयुतं केयूरहारान्वितं
सीतालंकृतवामभागममलं सिंहासनस्थं विभुम्।
सुग्रीवादिहरीश्वरैः सुरगणैः संसेव्यमानं सदा
विश्वामित्रपराशरादिमुनिभिः संस्तूयमानं प्रभुम्॥

(रा.स्त.स्तो. ९७)

सिंहासनपर विराज रहे हैं। सीताजी वाम भागमें विराज रही हैं। बहुत सुन्दर झाँकी है भगवान्की! **प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा** (मा. ७.१२.५)—वसिष्ठजीने तिलक किया। मेरी एक प्रतिज्ञा है कि जबतक अयोध्याका राममन्दिर पूर्ण रूपसे नहीं बन जाता, तबतक मेरी कथामें राम राज्याभिषेकका उत्सव नहीं होगा। भगवान् हमारी प्रतिज्ञा पूरी करें! अवस्था बड़ी हो रही है। कमसे कम ३२–३३ वर्षतक १०८ कथाओंमें तो रामजीका राज्याभिषेक हो ही जाए! चकाचक आनन्द आ जाए! भगवान् जल्दी करें! यह मनोरथ पूरा हो! सीताजीके सहित

श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हो रहे हैं और—

भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते।
गहे छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म शक्ति बिराजते॥

(मा. ७.१२.९)

(१) **छत्र**—भरतजीने छत्र लिया है हाथमें, (२) **चामर**—लक्ष्मणजी चँवर लिये हैं हाथमें, (३) **ब्यजन**—शत्रुघ्नजी व्यजन माने पंखा लिये डुला रहे हैं, (४) **धनु**—विभीषणजी धनुष लिये हैं, (५) **असि**—अङ्गदजी तलवार, (६) **चर्म**—हनुमान्‌जी ढाल, और (७) **शक्ति**—सुग्रीवजी शक्ति। सब सेवामें लगे हुए हैं। जय-जयकार हो रही है। वसिष्ठजीने तिलक किया और फिर सबने तिलक किया। जय-जयकार हो रही है। देवता पुष्पोंकी वर्षा कर रहे हैं। बोलिये राजा रामचन्द्र भगवान्‌की जय! और सभी स्तुति करके पधारे। वेदोंने भगवान्‌की स्तुति की। वेदोंने देखा कि अरे! दण्डकवनके काँटे अभी आपने निकाले नहीं?—

ध्वज कुलिश अंकुश कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेश नित्य भजामहे॥

(मा. ७.१३.४)

शिवजीने स्तुति की और कहा कि आप दोनों महारानी महाराजा बैठे हैं तो **पद सरोज अनपायनी भक्ति सदा सतसंग** (मा. ७.१४क)—सीताजीसे युगलसरकारके चरणोंमें भक्ति माँगी और रामजीसे सदा सत्संग माँगा। सब व्यवस्थित हो गये। छः महीने बीत गये, पर वानर जाना नहीं चाहते। भगवान्‌ने सबको बुलाया और कहा—**अब गृह जाहु सखा सब** (मा. ७.१६)। सब लोग चल पड़े। अङ्गदजी नहीं जाना चाहते। अङ्गदजीने बहुत प्रार्थना की। भगवान्‌ने कहा—"नहीं! अब तुम्हें भी जाना चाहिए।" **निज उर माला बसन मनि बालितनय पहिराइ** (मा. ७.१८ख)। सब लोग चल पड़े। तब सुग्रीवजीके चरणोंमें हनुमान्‌जीने प्रणाम किया और विनय की—"सरकार!—

दिन दश करि रघुपतिपद सेवा। पुनि तव चरन देखिहउँ देवा॥

(मा. ७.१९.८)

दस दिन भगवान्‌की सेवा करके फिर आ जाऊँगा।" "अरे! नहीं! नहीं!! आप निरन्तर यहीं रहें। आप वहाँ मत आइये क्योंकि भगवान्‌ने सखाओंको भेजा है। आप तो उनके बेटे हैं, आपको थोड़े ही भेजा है भगवान्‌ने।" यहाँतक **रघुबरभगति** (मा. १.३१.१४)।

कथा २९: प्रेम परमिति सी (मा. १.३१.१४)

अब उनतीसवीं कथा—**प्रेम परमिति सी** (मा. १.३१.१४)। रामजी राजसिंहासनपर विराज गये। प्रेमकी परिमिति देखिये!—

राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गये सब शोका॥

(मा. ७.२०.७)

कोई किसीसे बैर नहीं करता है, किसीकी अल्प मृत्यु नहीं हो रही है, सभी सुन्दर हैं, कोई

रुग्ण नहीं है, कोई दरिद्र नहीं है, कोई दु:खी नहीं है। बहुत आनन्द हो रहा है! हाथी और सिंह एक साथ एक घाटपर पानी पीते हैं। कोई किसीको नहीं छेड़ता है।

ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी॥

(मा. ७.२३.६)

त्रेतामें कृतजुग आ गया है। चकाचक आनन्द हो गया! धर्मके चारों चरण विराजमान हैं। बहुत आनन्द आ गया!

सीता वनवास नहीं। अब यहाँ एक बात बहुत आवश्यक है, इसको मैं कहना भी चाहता हूँ। एक अपवाद है। और सभी serials में दिखाया भी जा रहा है। इस बार *सिया के राम*में भी दिखाया। अग्निमें परीक्षित होनेके पश्चात् भी सीताजीका दूसरा वनवास किस आधारपर दिया गया? यह प्रश्न है। यहाँ मेरा बहुत विनम्रतापूर्वक उत्तर है कि सीताजीका द्वितीय वनवास नहीं हुआ था। इसपर दो-चार तर्क मैं आपको सुनाता हूँ। सुनिये! बोलिये सीता महारानीजूकी जय! अब गम्भीरतासे सुनें।

(१) *मूलरामायणमें सीताजीका दूसरा वनवास नहीं*—देखिये! श्रीरामकथाका सबसे प्रथम ग्रन्थ है *वाल्मीकि रामायण*। *वाल्मीकि रामायण*में प्रथम सर्ग है मूल रामायण। मूल रामायणमें जो विषय कहा गया, उसीका महर्षि वाल्मीकिजीने विस्तार किया। यही न! नारदजी भी कहते हैं—**वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम्** (वा.रा. १.२.३१)। जैसा तुमने नारदजीसे सुना है, उसी प्रकारका चरित्र कहना। सौभाग्य और संयोगसे मूल रामायणमें सीताजीके दूसरे वनवासकी चर्चा नहीं है। इसीसे निश्चित हो जाता है कि सीताजीके दूसरे वनवासकी कथा केवल काल्पनिक है और रामजीको अपमानित करनेके लिए कही गयी है।

(२) *महाभारतमें सीताजीका दूसरा वनवास नहीं*—दूसरा सिद्धान्त यह है कि **यन्न भारते तन्न भारते**—जो महाभारतमें नहीं कहा गया, वो भारतवर्षमें घटा ही नहीं। महाभारतमें चार बार रामकथा कही गयी पर उनमेंसे एक बार भी सीताजीके वनवासकी कथा नहीं कही गयी। इसलिए भी निश्चित है कि सीताजीका वनवास नहीं हुआ।

(३) *अग्निदेवकी आज्ञा और रामजीका प्रण*—तीसरी बात देखिये! अग्निसे सीताजी जब लौटीं, तो अग्निदेवने भगवान् रामसे कहा कि मैं आपको आज्ञा देता हूँ—**अहमाज्ञापयामि ते** (वा.रा. ६.११८.१०) इनको कभी भी कुछ मत कहियेगा। तो जब अग्निने आज्ञा दे दी, अग्निकी कृपा से भगवान्का जन्म हुआ; तो अग्निकी आज्ञाका रामजी उल्लङ्घन क्यों करेंगे? फिर रामजी भी अग्निदेवके समक्ष प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि तीनों लोकोंमें सीताकी पवित्रता प्रमाणित हो चुकी है, अब मैं सीताको कभी भी नहीं छोड़ूँगा—

अनन्या हि मया सीता भास्करेण प्रभा यथा॥
विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा।
न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा॥

(वा. रा. ६.११८.१९–२०)

(४) *सीताजी की अग्निपरीक्षा का समस्त लोकों द्वारा दर्शन*—चौथी बात! जब सीताजी अग्निजीमें खेल रही थीं—**ददृशुस्तां महाभागां प्रविशन्तीं हुताशनम्** (वा.रा. ६.११६.३३), तो

तीनों लोकोंके लोग इस दृश्यको देख रहे थे—**सीतां कृत्स्नास्त्रयो लोकाः पुण्यामाज्याहुतीमिव** (वा.रा. ६.११६.३४)—सारे चैनलोंपर जीवंत प्रसारण (live telecast) चल रहा था। तो जब सब लोग देख रहे थे, तो क्या अयोध्यावालोंने नहीं देखा होगा? फिर क्यों अविश्वास?

(५) *राज्याभिषेकके दस सहस्र वर्ष पश्चात् वनवास क्यों?* पाँचवीं बात देखिये! रामजीके संबन्धमें दस हजार वर्षतक कोई कुछ नहीं बोला, *वाल्मीकि रामायण*में वर्णन है। दस हजार वर्ष बीतनेके पश्चात् मूर्ख धोबीको ऐसी खुराफात क्यों सूझी?

(६) *अयोध्याकी प्रत्येक नारी पतिव्रता*—छठी बात कहते हैं कि धोबीसे बिना पूछे चली गयी थी उसकी पत्नी। जबकि *वाल्मीकि रामायण*में वर्णन है कि रामराज्यमें अयोध्याकी प्रत्येक नारी पतिव्रता है—**नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः** (वा.रा. १.१.७२), तो बिना पूछे कैसे चली जायेगी वो?

(७) *युद्धकाण्डके अन्तमें फलश्रुति—वाल्मीकि रामायण*के युद्धकाण्डके अन्तमें ही *वाल्मीकि रामायण*की पूरी फलश्रुति कही गयी है कि जो इसे पढ़ेगा, उसे ये-ये लाभ प्राप्त होंगे। फलश्रुति ग्रन्थकी समाप्तिमें होती है। तो जब *वाल्मीकि रामायण*की फलश्रुति युद्धकाण्डके अन्तमें कह ही दी गयी, तो फिर उत्तरकाण्ड काहेका भाई?

(८) *सीताजीकी स्वर्ण-मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा कैसे?*—एक आश्चर्य सुनिये! लोग कहते हैं कि रामजीने सोनेकी सीताजीकी मूर्ति बनवायी और प्राण-प्रतिष्ठा करके यज्ञ किया। अच्छा! आप बताओ कि प्राण-प्रतिष्ठा किसकी होती है? जो मर जाता है। यदि सीताजी वनवासमें हैं, तो उनकी प्राण-प्रतिष्ठा सोनेकी सीतामें कैसे की गयी? इसका कौन उत्तर देगा? सोचिये!

एक गुणाढ्य नामक जैन कवि था। उसने *बड्डकहा*में रामचन्द्रजीपर तीन छन्द रचकर यह कपोल कल्पना जोड़ी और उसीको क्षेमेन्द्रने बृहत्कथा में बढ़ाया तथा पूरा उत्तरकाण्ड *वाल्मीकि रामायण*में क्षेपकके रूपमें जोड़ दिया। ये सब बातें निराधार हैं। सीताजी निरन्तर रामजीके साथ हैं।

कोटिन बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन कहँ दीन्हे॥

(मा. ७.२४.१)

पति अनुकूल सदा रह सीता (मा. ७.२४.३)। सीताजी निरन्तर रामजीके साथ रहती हैं। तो कहा—"हो सकता है फोटो हो?" तो कहा नहीं—

जानति कृपासिंधु प्रभुताई। सेवति चरन कमल मन लाई॥

(मा. ७.२४.४)

यह देखिये! इसलिए—

कौशल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबहिं मान मद नाहीं॥

(मा. ७.२४.८)

अत:—

दुइ सुत सुंदर सीता जाये। लव कुश बेद पुरानन गाये॥

(मा. ७.२५.६)

सीताजीके यहाँ दो पुत्र प्रकट हुए—लव-कुश। **कुश लव** नहीं, **लव कुश**।

इस प्रकार सीताजी श्रीअवधमें विराजती हैं हमारी। अवधमें ही लव-कुशका जन्म हुआ। अवधमें ही भरतजी और माण्डवीजीके यहाँ तक्ष-पुष्कलका जन्म हुआ। श्रीअवधमें ही लक्ष्मणजी और उर्मिलाजीसे चन्द्रकेतु और अङ्गदका जन्म हुआ। और अवधमें ही शत्रुघ्नजी और श्रुतिकीर्तिजीसे सुबाहु और शत्रुघातीका जन्म हुआ।

अनुजन संजुत भोजन करहीं। देखि सकल जननी सुख भरहीं॥

(मा. ७.२६.३)

आनन्द करते हैं! **अनुजन संजुत**—(१) **अनुजन** अर्थात् छोटे भाइयोंके सहित, (२) **अनुजन** अर्थात् अनुकूल भक्त हनुमान्‌जीके सहित, (३) **अनुजन** अर्थात् अपने अनुकूल आठों बेटोंके सहित, भगवान् भोजन करते हैं। एक साथ तेरह थालियाँ लगायी जाती हैं—चार भाई, आठ बेटे और हनुमान्‌जी। सभी माताएँ प्रसन्न होती हैं। **रघुबरभगति प्रेम परमिति सी** (मा. १.३१.१४)।

कथा ३०: रामकथा मंदाकिनी (मा. १.३१)

अब सुनिये तीसवीं कथा। आपके साथ मैंने श्रम किया। अब तीसवीं कथा—

रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु॥

(मा. १.३१)

श्रीरामजीकी कथा मन्दाकिनीके समान है, चित्त चित्रकूट है, प्रेम ही वन है—जहाँ सीतारामजीका विहार हो रहा है। इसीसे सिद्ध हो रहा है कि रामजी अयोध्या छोड़कर कहीं जाते नहीं। रामजी निरन्तर सशरीर हैं। सभीका श्राद्ध होता है, रामजीका कभी श्राद्ध नहीं होता क्योंकि उन्होंने शरीर छोड़ा ही नहीं, तो श्राद्ध काहेको होगा? देखिये! अब ३२वें दोहेसे ५१वें दोहेतक रामकथा मन्दाकिनी है—**अत्रिप्रिया निज तपबल आनी** (मा. २.१३२.५)। मन्दाकिनीके घाटोंपर ऋषि आते हैं—**अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं** (मा. २.१३२.७) और यहाँ भी। **जानि समय सनकादिक आये** (मा. ७.३२.३)। अब सनकादिकजी आ गये, **तेज पुंज गुन शील सुहाए** (मा. ७.३२.३)। आहाहा! चारों भाई सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमारको भगवान्‌ने आते देखा, दण्डवत् की—

देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह।
स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह॥

(मा. ७.३२)

भगवान्‌ने अपना पीताम्बर बिछा दिया! उन्होंने भगवान्‌को निहारा। आहाहा! बहुत दिव्य स्तुति की—**जय इंदिरा रमन जय भूधर** (मा. ७.३४.४)। *इन्दि* माने लक्ष्मीजी। उनको—*इन्दिं लक्ष्मीं राति*—उनको जो प्रकट करें इन्दिरा माने सीताजी, उनके रमण—प्रभु। स्तुति की। अत्यन्त अभीष्ट वरदान पाकर गये।

भरतजी रामजीसे सत्संग कर रहे हैं। संत-असंतोंका लक्षण पूछा। भगवान्‌ने बताया। आनन्द कर दिया!

निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुनमंदिर सुखपुंज॥

(मा. ७.३८)

अद्भुत आनन्द कर दिया! संत-असंतोंका लक्षण बताया। और अब एक बार भगवान्‌ने सम्पूर्ण प्रजाको बुलाया, गुरुदेव भी आये। भगवान्‌ने कहा—"देखिये, यह कोई अनीति नहीं है, कोई हठ नहीं है। आप हमारी बात सुनिये, जो मन हो करियेगा—"

जौ अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥

(मा. ७.४३.६)

भगवान् कहते हैं कि देखो! यह मानव शरीर बड़े भाग्यसे मिला है, सुरदुर्लभ है यह! यह साधनका धाम है! मोक्षका द्वार है! बड़ी कृपासे भगवान् देते हैं इसको! ८४ लाख योनियोंमें जीव भ्रमण करता है। कभी कृपा करके भगवान् यह मानव शरीर दे देते है! इसलिए यह भवसागरका बेड़ा है। मेरी कृपा अनुकूल वायु है और सद्गुरुदेव ही खिवैया हैं—

करनधार सद्गुरु दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥

(मा. ७.४४.८)

इतना सुन्दर साज पाकर भी इस भवसागरसे कोई न तरे, तो उसे आत्महत्याका पाप लगेगा। भगवान् कहते हैं—देखो, अन्तमें मेरी भक्ति ही सब कुछ है, पर—

औरउ एक गुपुत मत सबहिं कहउँ कर जोरि।
शंकरभजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥

(मा. ७.४५)

इस दोहेको ठीकसे समझें! भगवान् कहते हैं—**शंकर भजन** के बिना मेरी भक्ति कोई नहीं पा सकता। इसका अर्थ क्या है? शङ्करका भजन नहीं। यहाँ मध्यमपदलोपी समास है—*शङ्करसमभजनम्* अर्थात् जैसे शङ्करजी मेरा भजन करते हैं। जो शङ्करजीके जैसा मेरा भजन नहीं करेगा, उसे मेरी भक्ति कभी भी नहीं मिलेगी—यह इसका अर्थ है। जैसे शङ्करजी कुछ भी नहीं चाहते पर भजन करते हैं, उसी प्रकार जो कुछ भी नहीं चाहकर मेरा भजन करेगा, उसे मेरी भक्ति मिलेगी। सब गद्गद हुए। जैसाकि मैंने कहा मन्दाकिनीके पास ऋषिगण आते हैं—**अत्रि प्रिया निज तपबल आनी** (मा. २.१३२.५)। सप्तर्षि आते हैं मन्दाकिनीमें स्नान करने—**सप्तर्षयस्तु धृतहेमकुम्भाः**, उसी प्रकार आज वसिष्ठजी आ रहे हैं। भगवान्‌ने चरणोदक लिया। वसिष्ठजीने कहा—भगवन्! पौरोहित्य कर्म मैं नहीं करना चाहता था। पर ब्रह्माजीने कहा कि श्रीराम आपके यहाँ आयेंगे रघुकुलमें। उनका पौरोहित्य करके तुम धन्य हो जाना। तो प्रभु! अब तो इन चरणकमलोंकी भक्ति दीजिये—

नाथ एक वर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभुपद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥

(मा. ७.४९)

बहुत सुन्दर दृश्य है! **रामकथा मंदाकिनी** (मा. १.३१)। अब एक ऐसी बात कहूँगा जिसे पहले तो आप नहीं मानेंगे, पर धीरे-धीरे आपको अच्छा लगेगा। भगवान्‌ने सबको सब कुछ

लुटाया।

हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई। गये जहाँ शीतल अवँराई॥

(मा. ७.५०.५)

सभी टीकाकार भी यही कहते हैं, हम भी यही कहते थे कि भगवान् शीतल अँवराईमें गये। पर कहाँ गये? यह गोस्वामीजीने नहीं लिखा। मुझे जैसा लगता है, दोहावलीमें आगे कहेंगे—

चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत।
राम नाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत॥

(दो. ४)

देखिये चित्रकूटमें भगवान् निरन्तर रहते हैं। इसका अर्थ क्या है? भगवान् शीतल अँवराईमें गये, अयोध्यासे बाहर गये—**पुनि कृपालु पुर बाहेर गयऊ** (मा. ७.५०.३)। अयोध्यासे जब गये, तो कहाँ गये? मुझे लगता है कि चित्रकूटमें ही भगवान् आये। बोलिये चित्रकूटबिहारी-बिहारिणीजूकी जय! इसलिए **रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु** (मा. १.३१)। चित्रकूटकी शीतल अँवराईमें भगवान् आये। वहाँ अँवराई है—

नाथ देखियहिं बिटप बिशाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला॥

(मा. २.२३७.२)

चित्रकूटमें रहे। अब **भरत दीन्ह निज बसन डसाई** (मा. ७.५०.६)। वहाँ भगवान्को बैठानेके लिए भरतजीने अपना वस्त्र बिछा दिया और **बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई** (मा. ७.५०.६)। लक्ष्मणजी, भरतजी, शत्रुघ्नजी सब लोग हैं, सीताजी धरतीमें नहीं समायीं। सब झूठ बोलते हैं लोग! और **मारुतसुत तब मारुत करई** (मा. ७.५०.७)—हनुमानधारावाले हनुमान्जी आ गये और वे **मारुत करई**—पंखा झल रहे हैं। **पुलक बपुष लोचन जल भरई** (मा. ७.५०.७)। तब—

हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ रामचरन अनुरागी॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥

(मा. ७.५०.८–९)

हनुमान्जीके समान कोई बड़भागी नहीं! हनुमानधारामें विराज रहे हैं हनुमान्जी, रामजीको पंखा झल रहे हैं। यह पूरा दृश्य चित्रकूटका है।

तेहिं अवसर मुनि नारद आये करतल बीन।
गावन लागे राम कल कीरति सदा नवीन॥

(मा. ७.५०)

नारदजी आये और भगवान् श्रीरामकी मधुर कीर्तिका गान करते हुए बोले—

मामवलोकय पंकजलोचन। कृपाबिलोकनि सोचबिमोचन॥

(मा. ७.५१.१)

अद्भुत आनन्द हो रहा है! सीताजीके सहित रामचन्द्रजी विहार कर रहे हैं स्नेहवनमें। इसीसे सिद्ध कर दिया कि जो लोग कहते हैं कि अयोध्याके प्रमोदवनमें; उन्हें भी गोस्वामीजीने कहा

कि नहीं! **तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु** (मा. १.३१)।

प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम।
शोभासिंधु हृदय धरि गये जहाँ बिधिधाम॥

(मा. ७.५१)

नारदजी चले गये। भगवान्‌ने कहा कि मैं तो चित्रकूटमें ही रहूँगा। मैं चित्रकूटको कभी नहीं छोड़ सकता—

चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत।
राम नाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत॥

(दो. ४)

इसके पश्चात् तो परिशिष्ट भाग है, जो हम बालकाण्डमें आपको सुना चुके हैं भुशुण्डिजीकी कथा। श्रीरामकथा केवल तीन बातें कहती है—(१) बचपनको प्रबुद्ध करो, (२) यौवनको शुद्ध करो, और (३) वृद्धावस्थाको सिद्ध करो।

मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दशरथ अजिर बिहारी॥

(मा. १.११२.४)

इस प्रकार श्रीसीताराम भगवान्‌की कृपासे मोदीनगरमें समायोजित श्रीराघव सेवा समितिके तत्त्वावधानमें प्रायोजित अपनी १२५१वीं श्रीरामकथामें मैंने रामचरितमानसकी तीस कथाओंकी संक्षिप्त विवरणिका सुनायी। मैं कथाका विसर्जन नहीं कर रहा हूँ।

कथा नित्य चलती रहे सुनहुँ वीर हनुमान।
राम लखन सीता सहित सदा करहु कल्यान॥
एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की हरे कोटि अपराध॥

॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥
॥ सीताराम जय सीताराम, सीताराम जय सीताराम ॥
सियावर रामचन्द्र भगवान्‌की जय हो!
पवनपुत्र हनुमान्‌जी महाराजकी जय हो!
गोस्वामीतुलसीदासजी महाराजकी जय हो!
जगद्गुरु स्वामी श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य भगवान्‌की जय हो!
धर्मकी जय हो! अधर्मका नाश हो!
प्राणियोंमें सद्भावना हो! विश्वका कल्याण हो!
गौ माता, गङ्गा माता, भारत-माताकी जय हो!
॥ जय जय श्रीसीताराम ॥

श्रीसीतारामजीकी आरती

॥ नमो राघवाय॥

धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय महाकवि कविकुलरत्न श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर पद्मविभूषण जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्यजी महाराज द्वारा प्रणीत भगवान् श्रीसीतारामजीकी आरती

वन्दे श्रीरामं (प्रभु) वन्दे श्रीरामम्।
मुनिजनमनोऽभिरामं नवमेघश्यामम्॥ जय राम जय श्रीराम॥
पूर्णब्रह्म निष्कामं पूरितजनकामम्। (प्रभु) पूरितजनकामम्।
निजजनशोकविरामं व्रीडितशतकामम्॥ जय राम जय श्रीराम॥
तरुणतमालमनोहर रघुवर दनुजारे। (प्रभु) रघुवर दनुजारे।
तूणशरासनशरधर दीनं पाहि हरे॥ जय राम जय श्रीराम॥
समरनिहतदशकन्धर सेवकभयहारिन्। (प्रभु) सेवकभयहारिन्।
भवपाथोनिधिमन्दर दण्डकवनचारिन्॥ जय राम जय श्रीराम॥
विधुमुखजलजविलोचन पीताम्बरधारिन्। (प्रभु) पीताम्बरधारिन्।
कोसलपुरजनरञ्जन हनुमत्सुखकारिन्॥ जय राम जय श्रीराम॥
भरतचकोरनिशेशं रिपुसूदनबन्धुम्। (प्रभु) रिपुसूदनबन्धुम्।
शरणागतसुरधेनुं नौमि कृपासिन्धुम्॥ जय राम जय श्रीराम॥
जय जय भुवनविमोहन जय करुणासिन्धो। (प्रभु) जय करुणासिन्धो।
जय सीतावर सुन्दर जय लक्ष्मणबन्धो॥ जय राम जय श्रीराम॥
दर्शय निजमुखकमलं भवसागरसेतो। (प्रभु) भवसागरसेतो।
हर *गिरिधर* भवभारं दिनकरकुलकेतो॥ जय राम जय श्रीराम॥
वन्दे श्रीरामं (प्रभु) वन्दे श्रीरामम्।
मुनिजनमनोऽभिरामं नवमेघश्यामम्॥ जय राम जय श्रीराम॥

श्रीरामचरितमानसजीकी आरती

॥ नमो राघवाय॥
धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय महाकवि कविकुलरत्न श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
पद्मविभूषण जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्यजी महाराज द्वारा प्रणीत
भगवान् श्रीरामचरितमानसजीकी आरती

आरती श्रीमन्मानस की रामसिय कीर्ति सुधा रस की॥
जो शङ्कर हियमें प्रगटानी।
भुशुण्डि मनमें हुलसानी।
लसी मुनि याज्ञवल्क्य बानी।
श्रीतुलसीदास कहें सहुलास सुकवित विलास।
नदी रघुनाथ विमल जस की आरती श्रीमन्मानस की॥
बिरति बर भक्ति ज्ञान दाता।
सुखद परलोक लोकत्राता।
पढ़त मन मधुकर हरषाता।
सप्त सोपान भक्ति पन्थान सुवेद पुरान।
शास्त्र इतिहास समंजस की आरती श्रीमन्मानस की॥
सोरठा दोहा चौपाई।
छन्द रचना अति मन भाई।
विरचि वर तुलसिदास गाई।
गायें नर नार होत भवपार मिटे दुःख भार।
हरे मन कटुता कर्कश की आरती श्रीमन्मानस की॥
ललित यह राम कथा गंगा।
सुनत भवभीति होत भंगा।
बसहु हिय हनुमत श्रीरंगा।
रामको रूप ग्रन्थको भूप हरै तम कूप।
जिवनधन *गिरिधर* सर्बस की आरती श्रीमन्मानस की॥

पद्मविभूषण जगद्गुरु रामानन्दाचार्य **स्वामी रामभद्राचार्य** भारतके प्रख्यात विद्वान्, शिक्षाविद्, बहुभाषाविद्, महाकवि, भाष्यकार, दार्शनिक, रचनाकार, संगीतकार, प्रवचनकार, कथाकार, व धर्मगुरु हैं। वे चित्रकूट-स्थित **श्रीतुलसीपीठ**के संस्थापक एवं अध्यक्ष और **जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलाङ्ग विश्वविद्यालय**के संस्थापक एवं आजीवन कुलाधिपति हैं। स्वामी रामभद्राचार्य दो मासकी आयुसे प्रज्ञाचक्षु होते हुए भी २२ भाषाओंके ज्ञाता, अनेक भाषाओंमें आशुकवि, और शताधिक ग्रन्थोंके रचयिता हैं। उनकी रचनाओंमें चार महाकाव्य (दो संस्कृत और दो हिन्दीमें), रामचरितमानसपर हिन्दी टीका, अष्टाध्यायीपर गद्य और पद्यमें संस्कृत वृत्तियाँ, और प्रस्थानत्रयीपर (ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता, और प्रधान उपनिषदोंपर) संस्कृत और हिन्दी भाष्य प्रमुख हैं। वे तुलसीदासपर भारतके मूर्धन्य विशेषज्ञोंमें गिने जाते हैं और रामचरितमानसके एक प्रामाणिक संस्करणके संपादक हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ स्वामी रामभद्राचार्यकी १२५१वीं ऐतिहासिक रामकथाका पुस्तकाकार रूप है। **श्रीरामचरितमानस-कथा—मानसमें तीस कथाएँ** शीर्षक वाली इस रामकथाका आयोजन सितम्बर २०१६में मोदीनगर, मेरठ (उत्तरप्रदेश) में हुआ था।

ज.रा.वि.वि.
www.jrhu.com

₹300 ₹३००

ISBN 978-93-82253-05-1
9 789382 253051